बेबाक बातें

संपादक : डॉ. शिप्रा मिश्र

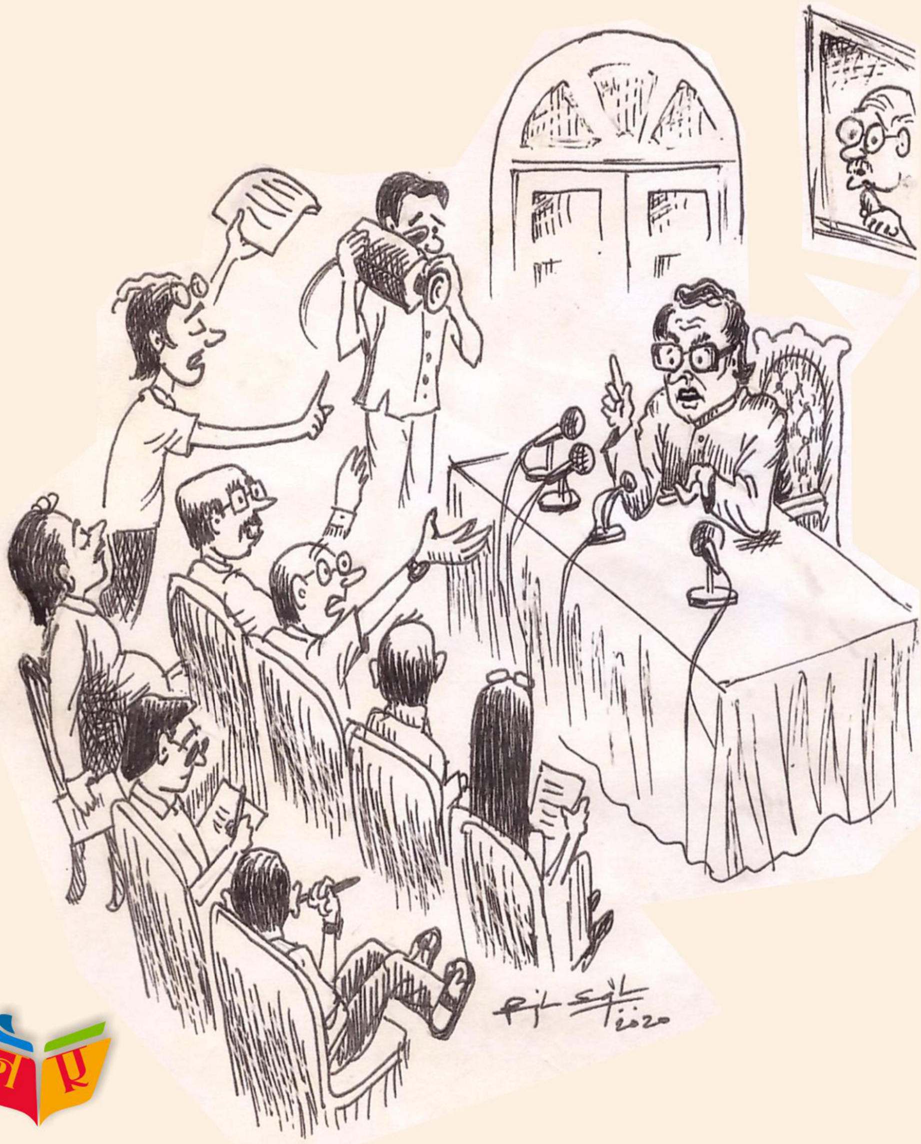

डॉ. जगन्नाथ मिश्र (1937-2019) द्वारा दिये गये
कुछ प्रेस संवादों का संकलन

बेबाक बातें

संपादक : डॉ॑. शिप्रा मिश्र

बेबाक बातें

डॉ. जगन्नाथ मिश्र

(24 जून 1937 – 19 अगस्त 2019)

सामयिक विषयों पर वर्ष 2002 से वर्ष 2019 की अवधि में दिये गये
कुछ प्रेस संवादों का संकलन

संपादक : डॉ. शिप्रा मिश्र

नवजागरण प्रकाशन
नई दिल्ली

बेबाक बातें

(डॉ. जगन्नाथ मिश्र, भूतपूर्व मुख्यमंत्री एवं भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री द्वारा सामयिक विषयों पर दिये गये कुछ प्रेस संवादों का संकलन)

प्रथम संस्करण : 2020, भारत
ISBN : 978-93-88640-6-1-9
संपादन : डॉ. शिप्रा मिश्र
सर्वाधिकार © : डॉ. जगन्नाथ मिश्र आर्थिक अध्ययन संस्थान, पटना
आवरण चित्र : श्री राजेश कुमार
मूल्य : 450/-
प्रकाशक नवजागरण प्रकाशन
: ए-3, विकासकुंज, एक्सटेंसन,
विकास नगर, उत्तम नगर, न.दि.-59
:109, प्रथम तल, मनीष मार्केट, सेक्टर-11,
द्वारका, नई दिल्ली-110 075
संपर्कः +91-9718013757
ईमेलः navjagranprakashan@gmail.com
वेबसाईट : www.navjagran.in
मुद्रक : आकृति प्रिंटर्स, नई दिल्ली

पुस्तक की मूल्य-राशि बैंक में भी भेजी जा सकती है, जिसका विवरण निम्नांकित है-
Canara Bank, Exhibition Road, Patna-800001, IFSC-CNRB0002004
Account No. 2004101005998,Account Name- Bihar Institute of Economic Studies.

❖❖❖

बेबाक बातों में संदेश

अर्थशास्त्र के प्राध्यापक के रूप में प्रतिष्ठित डॉ. जगन्नाथ मिश्र ने बिहार की राजनीति में प्रवेश किया और राजनीति में एक प्रखर राष्ट्रीय नेता के रूप में सम्मानित हुए। तीन-तीन बार बिहार के मुख्यमंत्री और एक बार भारत सरकार के कबीना मंत्री रह चुके डॉ. मिश्र ने अपने चिन्तन की ऊर्जा और सक्रियता को कभी शिथिल नहीं होने दिया। 1968 से लेकर 2019 तक राज्यपरक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्रिया कलापों पर अपने मंतव्य अभिव्यक्त करते रहे। उनके सक्रिय जीवन ने उनके चिन्तन और लोक सेवा भाव दोनों ही में इन्हें एक कालजयी विचारक के रूप में प्रस्तुत किया।

दलगत राजनीति से ऊपर उठकर एक निर्भीक राजनेता के रूप में, 2002-2019 के दरम्यान राज्य संबंधी, राष्ट्र संबंधी और विश्व संबंधी घटनाओं पर भी अपने विचार समाचार पत्रों में वक्तव्यों के माध्यम से वो अभिव्यक्त करते रहे। इन संवादों में डॉ. मिश्र के चिन्तन की व्यापकता और गहराई से हम अवगत हो सकेंगे। वस्तुत: इनके अध्ययन से किन्हीं भी सजग प्रज्ञावान को यह जानने में कठिनाई नहीं होगी कि डॉ. मिश्र 20-21वीं शताब्दी के भारत वर्ष के कुछ सजग चिन्तकों में से एक थे।

इस संकलन की विशिष्टता इसकी विविधा है। ये एक निर्भीक और नवीन सोच भी दर्शाते हैं। वे मानते थे कि प्रगति के बिना सामाजिक न्याय नहीं हो सकता। इनके 2002-2019 के प्रेस संवादों को विषयों के आधार पर सात समूहों में प्रस्तुत किया गया है। पहले समूह 'कुछ बेबाक विचार' में 'विश्व शांति कैसे हो', 'वन और पर्यावरण', 'भाषा पर उनके विचार', 'जातीय जनगणना', कट्टर हिन्दुत्व' एवं 'दहेज निषेध' जैसे विषय हैं। दूसरे समूह 'सामाजिक न्याय है आवश्यक' समूह में उनके वो संवाद है जो उन्होंने 'दलित एवं आदिवासियों के उत्थान' के लिए कहे थे, 'न्यायिक सेवा में आरक्षण' के लिए कहे थे, 'आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों' के आरक्षण के बारे में कहे थे, 'असंगठित मजदूरों के बारे में कहे थे। तीसरे समूह 'अल्पसंख्यकों की न हो अवहेलना' में उनके विभिन्न संवादों से 'अल्पसंख्यकों की दशा' वर्णित होती हैं। चौथे समूह 'शिक्षा की न हो अनदेखी' में उनके विभिन्न संवाद उनके इस दृढ़ विश्वास को प्रकट करते हैं कि शिक्षा ही समृद्धि की आधारशिला हो सकती है। पांचवे समूह 'राजपथ के मुद्दे' में उनके संवाद उनकी गहरी चिंता प्रकट करते है साथ ही कुछ अनूठे सुझाव भी देते हैं। छठे समूह 'अर्थतंत्र की चुनौतियाँ' में उनके संवाद 'निजीकरण', 'बढ़ती बेराजगारी', 'विकास की चुनौती', 'बैंको के ऋण' इत्यादि समस्याओं पर हैं। अंतिम समूह 'बदलाव जो ज़रूरी है' में उनके समय-समय दिये गये कुछ सुझाब हैं जो 'पंचायतो के अधिकार', 'न्याय व्यवस्था की गतिहीनता', 'किसानों की समस्या', 'मजदूरों के पलायन' एवं 'भूमि सुधार' आदि विषयों पर हैं।

डॉ. मिश्र देश के भविष्य के प्रति चिंतित थे :

'अगले 50 वर्ष कैसे होंगे? चिंतन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि अभी नहीं चेता गया तो राजनीतिक ढाँचा क्रमश: और विकृत होगा। हिंसा का दौर और व्याापक होगा। असंतोष, अशांति

एवं संवैधानिक व्यवस्था के क्षत-विक्षत होने की संभावना है तथा इसका परिणाम भयानक और घातक होने वाला है। कहीं गाँधी जी का भारत हिंसा का भारत न बन जाए'।

मेरी पुस्तकें, 12 मई, 2017

सरकारी प्रयत्नों के बावजूद राष्ट्रीय भाषा हिन्दी की दयनीय दशा उन्हें परेशान करती थी :

'हमें प्रशासनिक हिन्दी को अनुवाद की भाषा नहीं बनाना है। तमाम सरकारी कर्मचारियों को हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुरूप मौलिक रूप से पत्र व्यवहार तथा शासकीय कार्य में टिप्पणी एवं आलेखन का काम करना चाहिए, क्योंकि शासकीय कार्य में अनुवाद की भाषा प्राय: छद्म भाषा लगती है। जब तक तमाम पदाधिकारी अपने सभी कार्यो का निर्वाह विवेक के अनुसार हिन्दी भाषा में नहीं करते हैं, तब तक एक बाहरी भाषा का प्रचलन चलता रहेगा'।

बिहार के विभूतियों के नाम पुरस्कार, 26 सितम्बर, 2007

उन्हें ये चिंता थी कि प्रगति तो हुई लेकिन असमानता की खाई भी बढ़ गई :

'आज सम्पूर्ण विश्व में लगातार राष्ट्रों के बीच टकराव एवं हिंसा का मुख्य कारण राष्ट्र एवं राष्ट्र के बीच व्यक्ति एवं व्यक्ति के बीच असमानता में वृद्धि हो रही है जो चिन्ता का विषय बन गया है'।

विश्व शांति कैसे हो-24 अक्टूबर, 2017

माओवाद एवं नक्सलवाद को समझने के लिए उनका दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट था :

'अधिकांशत: माओवाद एवं नक्सलवाद ऐसे वातावरण में फलीभूत होते हैं जहाँ राज्य द्वारा मानवाधिकारों विशेष रूप से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की मनाही की जाती है और राज्य तथा गैर राज्य कार्यकर्ताओं द्वारा राजनैतिक अधिकारों का दण्डाभाव सहित उल्लंघन किया जाता है'।

विश्व मानवाधिकार दिवस-10 दिसम्बर, 2017

उनका मानना था कि लोकतंत्र में जनता की सोच ही सर्वोपरि होती है :

'लोकतंत्र में सरकार के कामकाज का मूल्यांकन सही मायनों में केवल जनता द्वारा ही किया जा सकता है। जनता की कसौटी पर खरा उतरने वाली व्यवस्था को ही सफल माना जा सकता है'।

सूचना का अधिकार-9 फरवरी, 2007

उनका दृढ़ विश्वास था कि शिक्षा ही विकास की आधारशिला हो सकती है :

'शिक्षा की समृद्धि ही विकास की आधारशिला है... किसी भी राज्य एवं समाज के विकास का आधार स्तम्भ शिक्षा ही हो सकता हैं। बिहार के विकास का सपना तभी पूरा होगा जब आधारभूत संरचना शिक्षा के क्षेत्र में बेहतर होगा'।

बिहार दिवस-20 मार्च, 2017

वे बिहार के गौरवमयी इतिहास को उसके वर्तमान से जोड़ना चाहते थे जिससे नई पीढ़ी को प्रेरणा मिलती रहे :

'बिहार की गौरवमयी परंपराओं को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह उचित होगा कि पटना का नाम पाटलिपुत्र किया जाए'।

पटना का नाम पाटलिपुत्र–5 फरवरी, 2006

तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने जब मैथिली को अष्टम् सूची में शामिल करने की घोषणा की तो वे काफी खुश हुए :

'जहाँ बिहार की राष्ट्रीय जनता दल सरकार ने मैथिली को बिहार लोक सेवा आयोग में चयनित विषयों की सूची से हटाकर मैथिली भाषा–भाषियों के प्रति पूर्वाग्रह, अपमान और अन्याय प्रदर्शित किया है, वहीं प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने मैथिली को संविधान की अष्टम् सूची में शामिल करने की घोषणा करके मैथिली भाषा–भाषियों को सम्मानित एवं लाभान्वित किया है'।

मैथिली अष्टम् सूची में शामिल– 7 जून, 2003

मिथिला की चित्रकला के बारे में उन्होंने कहा था :

'मिथिला चित्रकला में धार्मिकता, नैतिकता और कलात्मकता, तीनों का अनोखा समावेश है। चित्रकारी की हर रेखा प्रतीकात्मक और सांकेतिक रहती है तथा प्रत्येक चित्र कुछ न कुछ विशेष संदेश देता है'।

मिथिला चित्रकला–14 फरवरी, 2017

वे संस्कृत को भारत की आत्मा समझते थे :

'संस्कृत का अपमान भारतीय आत्मा का अपमान है।

संस्कृत का अपमान–17 फरवरी, 2007

संस्कृत वस्तुतः एक ऐसी भाषा है, जिसका भारत की किसी भी भाषा के साथ विरोध नहीं है'।

संस्कृत दिवस– 07 अगस्त, 2017

हर वर्ष आती बाढ़ और बिहार की पीड़ा से मुक्ति के लिए वो एक सार्थक प्रयास चाहते थे :

'बाढ़ से निपटने के लिए राज्य को इतनी बड़ी राशि की आवश्यकता है, जो बिहार सरकार अपने स्तर पर नहीं कर सकती, इसलिए केन्द्र सरकार पर दबाव बनाना चाहिए ताकि केन्द्र अधिक से अधिक सहायता राशि उपलब्ध कराने की व्यवस्था कर सके। बिहार को बाढ़ से मुक्त के लिए सार्थक प्रयास किया जाना चाहिए। केन्द्र सरकार विश्व बैंक से कर्ज लेने की भी छूट राज्यों को

दे रही है तो बाढ़ की विभीषिका झेलने के बजाय राज्य सरकार को आवश्यक राशि कर्ज लेकर प्रभावित क्षेत्रों को बाढ़ मुक्त करने पर बल देना चाहिए'।

बाढ़ सुरक्षा–15 मई, 2017

विकास के खोखलेपन से वो परेशान थे :

'सवाल यह उठता है कि बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर ने समानता एवं समावेशी विकास की बात संविधान में कही थी। वह समानता व समावेशी विकास आज कहाँ खड़ा है? यह बुद्धिजीवियों, राजनीतिज्ञों और पत्रकारों के लिए चिन्तन का विषय बना हुआ है'।

छात्र की आत्महत्या– 22 जनवरी, 2016

वे मानते थे कि लोकतंत्र की नींव को मजबूत करना है तो जातीय व्यवस्था को तोड़ना होगा :

'भारत में जाति–संघर्ष, वर्ग–संघर्ष से भी अधिक भयंकर हो सकता है। यदि देश को इस भावी संघर्ष से बचाना है, तो सरकार को चाहिए कि वह जातिवाद को भारत से समाप्त करने का साहस करे। ...डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर ने भी जातिविहीन समाज का सपना देखा था। उस समय संविधान सभा में उन्होंने कहा था कि भारत को तरक्की के रास्ते पर अग्रसर होना है और अपने लोकतंत्र की नींव को मजबूत रखना है, तो जातीय व्यवस्था को तोड़ना होगा। वह एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जहाँ मानवता ही जाति हो'।

जातीय जनगणना–12 अगस्त, 2010

वे विखण्डनकारी मुद्दों को एक भटकाव मानते थे :

'दुनिया हमारी आंखों के सामने बदल रही है और हमें इसके साथ ही बदलना होगा। ऐसा नहीं किया गया तो हम विश्व के आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य में किनारे कर दिये जायेंगे। हमारी सारी ऊर्जा इस विकास की ओर केंद्रित होनी चाहिए। धार्मिक हो या राजनीतिक, कोई दूसरा मामला उस असली सामाजिक दिशा से हमें भटकायेगा तो बड़ी गड़बड़ी होगी। जितने भी विखंडनकारी मुद्दे हैं, उन्हें तब तक पीछे फेंकना होगा, जब तक विकास की चुनौती से नहीं निपट लिया जायेगा। यही कसौटी है, जिस पर इतिहास में हमारे राष्ट्रवादी या राष्ट्रविरोधी होने का फैसला लिया जायेगा'।

असली मुद्दा है विकास–21 दिसम्बर, 2014

वे बिहार के विकास के लिए एक जुट होकर संघर्ष करना चाहते थे :

'आज समय है बिहार के हक को लेकर आर–पार की लड़ाई लड़ने का, संघर्ष करने का। हमें वोट की राजनीति से ऊपर उठकर बिहार के लिए एकजुट होकर संघर्ष करना होगा। यह बात राजनीति के लिए नहीं बल्कि अंतर्मन से की जाय। आज के मूल्यविहीन राजनीति के खेल में सभी अत्यंत असहज महसूस करते हैं। यह अनायास नहीं है कि आज हमारे यहाँ संसदीय लोकतंत्र सवालों से घिरा है'।

बिहार के हक के लिए–7 जून, 2018

वे चाहते थे कि भारत का निर्माण राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की सोच के अनुरूप हो : 'गाँधी जी ने कहा था कि वे ऐसे भारत के निर्माण के लिए कोशिश करते रहेंगे, जिसमें गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका देश है जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्त्व है। वे ऐसे भारत के लिए कोशिश करते रहे, जिसमें ऊँच-नीच का कोई भेद न हो'।

अगस्त क्रान्ति-09 अगस्त, 2018

समाज के निर्माण में वे मानते थे कि जनता का दायित्व भी कम नहीं है :

'एक स्वस्थ समाज का निर्माण तभी किया जा सकता है जब शासन के साथ-साथ जनता भी अपने हिस्से का काम सही तरह से करे'।

आयुष्मान भारत योजना- 24 सितम्बर, 2018

युद्ध किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इराक युद्ध के बारे में उनके ये शब्द सच निकले :

'युद्ध जीतना आसान है, लेकिन युद्ध से जर्जर इराक में शांति लाना व उसके पुनर्निर्माण का काम ज्यादा कठिन होगा'।

इराक पर अमेरिका का आक्रमण-20 मार्च, 2003

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वो भारत को अमेरिका एवं चीन के समकक्ष देखना चाहते थे :

'आज सवाल भारत को अमेरिका एवं चीन के समकक्ष विकसित करने का है'।

विकीलीक्स के खुलासे, 24 मार्च, 2011

सांप्रदायिक सोच के वे कट्टर विरोधी थे :

'सांप्रदायिकता जैसे एक गलत कदम से हमारी ऐतिहासिक प्रक्रिया रुक जायेगी और बिखराव आ जायेगा। धर्म के चोले में सांप्रदायिकता तबाही ला सकती है। राष्ट्रवाद का तकाजा यह है कि हम सांप्रदायिकता की चुनौती का आंखों में आंखें डालकर सामना करें'।

सऊदी अरब में प्रधानमंत्री का सम्मान, 09 अप्रैल, 2016

उनका मानना था कि भारत और नेपाल के बीच एक अटूट रिश्ता है :

'नेपाल का दर्द भारत का दर्द है और भारत इसे दूर करने के लिए सभी संभव प्रयास करता है। भारत-नेपाल बेशक दो अलग-अलग सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र है, मगर इनके नागरिकों के बीच अनदेखा या अदृश्य (सीमलेस) एकात्म भाव है'।

भारत नेपाल के साथ, 09 मई, 2015

संसाधन के वितरण में असमानता उन्हें विचलित करती थी :

'देश में असमानता के स्तर में भी भारी वृद्धि हो रही है। संसाधन के वितरण में असमानता,

अवसरों की असमानता में बदल जाती है, जो भारत की आर्थिक नीति के घोषित लक्ष्य–समावेशी विकास को ही नकार देती है'।

समावेशी लोकतंत्र, 06 जुलाई, 2014

असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की समस्याओं का मुद्‌दा उन्होंने उठाया :

'आज देश के तिरानबे फीसदी मजदूर असंगठित क्षेत्र में है। उदारीकरण के दौर में वे असुरक्षित हुए हैं। हाल के वर्षों में रोजगार मे आई कमी ने असंगठित मजदूरों की कमर तोड़ दी है। देश की अर्थव्यवस्था में साठ फीसदी भूमिका निभाने वाले इन मजदूरों को राज्य की ओर से कोई सुविधा नहीं मिलती है'।

असंगठित मजदूरों के लिए व्यापक कानून की आवश्यकता, 01 मई, 2003.

पिछड़ों और दलितों को भ्रमित करती राजनीति के खिलाफ उन्होंने आवाज उठाई :

'बिहार के पिछड़े वर्गों के वे ही छात्र प्रतियोगिता में आ पाते हैं जिनकी शिक्षा बिहार से बाहर होती है। बिहार में पढ़ने वाले पिछड़े वर्ग के बच्चे गुणवत्ताविहीन शिक्षा के कारण केन्द्रीय सेवाओं में भागीदारी नहीं पा सके हैं। इस संदर्भ में बिहार में मध्यवर्गीय पिछड़े वर्ग के नेताओं को गंभीरतापूर्वक आत्ममंथन करना चाहिये न कि राजनीति के लिए पिछड़ों और दलितों को भ्रमित किया जाए'।

आरक्षण पर विवाद उचित नहीं, 10 अक्टूबर, 2015

'पिछले दशकों के शासनकाल में बिहार में सरकारी सेवाओं में दलित, आदिवासी, पिछड़े एवं अत्यंत पिछड़ों के लिये निर्धारित कोटे पूरे नहीं हुए हैं, क्योंकि बिहार लोक सेवा आयोग के माध्यम से सरकारी सेवाओं के लिये प्रत्येक वर्ष आयोजित होने वाली संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षाएं नहीं हुई'।

सरकारी सेवाओं में आरक्षण का कोटा पूरा नहीं होना विस्मयकारी, 15 अक्टूबर, 2015

'दलित, आदिवासी एवं अन्य पिछड़े वर्गों के कुछ समूहों ने ही आरक्षण का लाभ केन्द्रित कर लिया है। बड़ी संख्या में कुछ वर्गों को आरक्षण का लाभ नहीं मिल सका है'।

न्यायिक सेवा में आरक्षण, 28 दिसम्बर, 2016

आदिवासी क्षेत्र में वो ज्यादा से ज्यादा सुशासन चाहते थे :

'आदिवासी–उन्मुख कानूनों को ओर शोधित किया जाए तथा उनका स्वशासन बढ़ाया जाए और संविधान की 5वीं अनुसूची के अनुसार उन्हें सारी सुविधाएं दी जाएं। यह आदिवासी क्षेत्रों में सुशासन और शांति स्थापना का एक मात्र रास्ता होगा'।

आदिवासी–उन्मुख कानून, 11 दिसम्बर, 2017

आरक्षण के प्रावधानों में वो बदलाव चाहते थे जिससे कि महिलाओं को भी उनका लाभ मिल सके :

'आरक्षण के प्रावधानों के अंदर ऐसी कौन-सी व्यवस्थाएं की जाएं, ताकि इनका लाभ अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग की महिलाओं को भी मिले। इन समूहों की महिलाएं एक साथ, जाति और लिंग-भेद, दोनों का दंश झेल रही हैं। इनको दोहरे सहारे और संरक्षण की जरूरत है। इन वर्गों की महिलाएं देश की आबादी का 40 फीसदी से ज्यादा हिस्सा हैं, इसलिए इनकी तरक्की के बिना देश के विकास की कोई भी कल्पना साकार नहीं हो सकती'।

आरक्षण पर श्वेत पत्र की आवश्यकता, 09 दिसम्बर, 2017

'महिला पुरुषों के समान ही सक्षम एवं सुशिक्षित बनना चाहती है। उन्नत राष्ट्र की कल्पना तभी यर्थाथ का रूप धारण कर सकती है जब महिलाएं भी सशक्त होकर राष्ट्र को सशक्त बनावे। आज की आवश्यकता है कि महिलाओं को प्रोत्साहित किया जाए। इसमें संदेह नहीं कि किसी भी समाज में यदि महिलायें उन्नत हो जाती हैं तो उनके अन्य पक्ष स्वत: सबल होने लगते हैं'।

महिलाओं के लिए आरक्षण, 22 सितम्बर, 2017

जातिगत विद्वेष की राजनीति के विरूद्ध इन्होंने बड़ी निर्भीकता से कहा :

'सामाजिक न्याय के नाम पर सवर्ण, खासकर ब्राह्मणों के विरुद्ध विद्वेष फैलाने का काम मिथ्या प्रचार पर आधारित है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और आचार्य मनु की मनुस्मृति के अनुसार सैनिक कमाण्डर किसी भी वर्ण के कुशल योद्धा हो सकते थे, वहाँ वर्ण का कोई व्यवधान नहीं था। मनु स्वयं ब्राह्मण नहीं थे। ब्राह्मण विद्वानों ने तो उपनिषदों के जवाब में षडदर्शनों की रचना की। ईश्वर विरोधी लोकायत दर्शन या चार्वाक्य दर्शन शोषण, आतंक और लूट जैसे कार्यो का विरोधी है, जिसके प्रतिपादक ब्राह्मण ऋषि बृहस्पति थे'।

जातिगत विद्वेष, 14 अक्टूबर, 2004

विकास में वो सभी की भागीदारी चाहते थे :

'समाज को जोड़ने का एक ही तरीका है कि विकास की राह पर सब कदम से कदम मिलाकर चलें। दलितों एवं अत्यंत पिछड़ों के अधिकारों का हनन नहीं हो। सबकी समान भागीदारी राष्ट्र को मजबूत बनायेगी'।

जातिवाद एक संकीर्ण सोच, 23 मई, 2015

आर्थिक रूप से पिछड़ों के लिए उन्होंने आरक्षण की मांग का समर्थन किया :

'राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक रूप से पिछड़ों को भी आरक्षण होना चाहिए। आजादी के तुरंत बाद तो जातिगत आधार पर आरक्षण का औचित्य बनता था, क्योंकि तब अनेक समुदायों के पिछड़ेपन का मुख्य कारण उनकी जाति थी, लेकिन अब हालात बदल चुके हैं। आज की आवश्यकता यह है कि जो भी आर्थिक रूप से पिछड़े हैं उनके उत्थान के लिए विशेष उपाय किए जाएं। वे चाहे

किसी भी जाति, वर्ग, समुदाय या क्षेत्र के हों। आर्थिक आधार पर आरक्षण सभी निर्धनों-पिछड़ों के लिए हितकारी तो होगा ही, वह समाज में किसी प्रकार का द्वेष भी पैदा नहीं करेगा'।

आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को आरक्षण, 07 नवम्बर, 2017

वो चाहते थे कि भूमि सुधार का कार्यान्वयन प्रभावी ठंग से हो :

'जब तक दलितों और पिछड़ों को भू-हदबंदी से प्राप्त अर्जित जमीन, गैर-मजरूआ सरकारी जमीन और भूदान में प्राप्त जमीन का वितरण करके उन जमीनों पर लाभान्वितों का दखल-कब्जा नहीं कराया जायेगा तब तक इन वर्गों को सामाजिक न्याय एवं समानता प्राप्त नहीं हो सकेगी'।

भूमि का भूमिहीन दलितो के बीच बाँटा जाना, 17 जनवरी, 2003

'यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि गरीबों को जमीन का अधिकार देकर उनकी खेती सुनिश्चित करने से एक ओर जहाँ उपज बढ़ेगी वहीं दूसरी ओर गरीबों की आमदनी में भी बढ़ोतरी होगी और उनकी सामाजिक हैसियत भी बदलेगी। भूमि सुधारों का क्रियान्वयन राजनीतिक इच्छाशक्ति एवं नौकरशाहों में प्रतिबद्धता की कमी, कानूनों में मौजूदा खामियों, भूस्वामियों की दाँव-पेंच की व्यापक क्षमता, गरीबों के बीच संगठन के अभाव और अदालतों की अत्यधिक दखलंदाजी की भेंट चढ़ गया'।

भूमि सुधार, 07 फरवरी, 2017

विचाराधीन कैदियों की दशा उन्हें विचलित करती थी :

'विचाराधीन कैदियों की दुर्दशा देखने पर अनुभव होता है कि अधिकतर विचाराधीन कैदियों को पुलिस-प्रशासन ने षड्यंत्र के तहत फंसाकर उन्हें बीबी-बच्चों से अलग कर अमानवीय जीवन जीने के लिए मजबूर कर दिया है। हजारों कैदियों की न्यायालय में पेशी नहीं हो पाती है, और न ट्रायल हो पाता है। विचाराधीन कैदियों में अधिकांश की माली हालत इतनी खराब है कि सुप्रीम कोर्ट क्या अनुमंडल और जिला सत्र न्यायालय में भी अपनी पैरवी के लिए एक मामूली वकील की फीस चुकाना उनके लिये मुश्किल होता है'।

विचाराधीन कैदियों की स्थिति, 14 फरवरी, 2003

किसानों की वित्तीय आर्थिक हालत का वो निराकरण चाहते थे :

'सरकार की नीतियों के कारण किसानों की कमर टूट गई है। कृषि उत्पादन का आयात बढ़ने से किसानों को लागत मूल्य नहीं मिल रहा है अतः वे निराश हो गये हैं। केन्द्र सरकार की यह नीति अन्तर्राष्ट्रीय संस्था और बहुर्राष्ट्रीय कंपनी के तर्ज पर चल रही है जिसके द्वारा उद्योग और व्यापार सहित विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को चौपट करने की अंतर्राष्ट्रीय साजिश हो रही है। इसका निराकरण किया जाना आवश्यक है'।

किसानों की विवशता, 03 फरवरी, 2003

वो मानते थे कि रोजगार की व्यवस्था सुनिश्चित करना सरकार की प्राथमिकता होनी चाहिए :

'बिहार में बेरोजगारों की आर्थिक दुरवस्था को देखते हुए कहना है कि लोक सेवा आयोग अथवा सरकार द्वारा नियुक्ति के लिए बेरोजगार आवेदकों से आवेदन के लिए किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाए। हमारे संविधान में प्रावधान है कि देश के किसी भी राज्य में सरकारी नौकरी पाने का अधिकार सभी को है। यह संविधान का मूलभूत अधिकार है। इसमें अड़चनें पैदा करना संविधान की अवहेलना है। अत: राज्य सरकार को देश के भिन्न-भिन्न राज्यों में कार्यरत बिहारियों के हितों का संरक्षण एवं बिहार से पलायन कर रहे लोगों के लिए रोजगार की व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिए'।

बे-रोजगार आवेदकों से शुल्क क्यों?, 11 फरवरी, 2004

बुनकरों के विकास के लिए उन्होंने आवाज उठाई :

'बुनकरों को नई तकनीक, नये डिजाइन, नये किस्म के कपड़े आदि के संबंध में प्रशिक्षण नहीं दिया जा रहा है। बिहार के लाखों बुनकर परिवार कर्ज से दबे हुए हैं। उनकी स्थिति पर तत्काल विचार करना आवश्यक है'।

बुनकरों की हो मद्द, 25 जून, 2017

अल्पसंख्यकों का केवल वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल उन्हें परेशान करता था :

'पिछले दशकों में देश के राजनीतिक दलों ने अल्पसंख्यकों के साथ न्याय नहीं किया है। क्षेत्रीय दलों ने उन्हें बराबर भरोसा दिलाया कि वे उनकी भलाई को अहमियत देने के पक्षधर हैं किन्तु व्यावहारिक तौर पर देखने में यह आता है कि उनका राजनीतिक इरादा पक्का नहीं था जिसके चलते उन्होंने अल्पसंख्यकों की न तो अल्पकालिक समस्या का समाधान किया और न दीर्घकालिक समस्या का। ऐसे दल अल्पसंख्यकों को महज वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करते रहे'।

अल्पसंख्यकों के साथ न्याय नहीं, 11 फरवरी, 2002

उनका मानना था कि मुसलमानों की सुविधाएं बढ़नी चाहिए। उनको मुख्यधारा में लाने के लिए व्यावहारिक उपाय किये जाने चाहिए :

'1950 के राष्ट्रपति के आदेश में एक और संशोधन किया जाए। दो संशोधन तो पहले ही किये जा चुके हैं जिनके द्वारा सिखों को (1956 में) और बौद्धों को (1990 में) उसमें जोड़ा गया था और उसके आधार पर अभी सिख एवं बौद्ध हिन्दुओं के समान ही आरक्षण का लाभ उठा रहे हैं। केवल मुसलमान और ईसाई को ही छोड़ दिया गया है। अत: मुसलमानों को भी राष्ट्रपति के उस आदेश में सम्मिलित कर लिया जाए, ताकि उन्हें भी अनुसूचित जाति की सुविधाएँ प्राप्त हो सके'।

दलित मुसलमानों को सुविधा, 26 नवम्बर, 2004

'अल्पसंख्यकों को न्याय दिलाने और मुख्यधारा में लाने की बात तो बड़े जोर-शोर से की जाती है लेकिन इसके लिए व्यावहारिक उपाय नहीं किये जाते हैं'।

मुसलमानो की समस्याओं में वृद्धि, 07 मार्च, 2017

'आज अल्पसंख्यक मुसलमानों की जीवन-दशा जितनी दर्दनाक है और जिस तरह की गरीबी से वे गुजर रहे हैं उस पर तुरंत ध्यान दिया जाना लाजिमी है। मुसलमानों के लिए रोजगार के अवसर नहीं के बराबर हैं और न उनके सामने कोई कारोबार या व्यापार चलाने का रास्ता दिखाई पड़ता है। इन सब कारणों से वे इतने पिछड़ चुके हैं कि जब तक उनके आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बंधी पिछड़ेपन को तुरंत दूर करने के उपाय काफी तेजी से नहीं किए जाएंगे तब तक वे देश की उन्नति, शान्ति और प्रगति के लिए किए जा रहे महान प्रयासों में महत्वपूर्ण भागीदारी करने योग्य नहीं बन सकते हैं'।

उर्दू से दूरी, 05 फरवरी, 2017

मुस्लिम चरमपंथ का मुकाबला वे आधुनिक शिक्षा से करना चाहते थे :

'विश्व भर में मुस्लिम चरमपंथ की वृद्धि का एक कारण वैज्ञानिक शिक्षा की कमी है। हम आज विज्ञान के दौर में जी रहे हैं। युवा मुसलमानों के लिए आधुनिक शिक्षा से लैस होना इसलिए भी जरूरी हो गया है ताकि वे स्वयं को धार्मिक कट्टरवाद से बचा पायें'।

एक हाथ में कुरान और दूसरे में कम्प्यूटर, 29 नवम्बर, 2017

शिक्षा के व्यापारीकरण के वो खिलाफ थे :

'भारत में सरकारी स्कूल और निजी स्कूलों के शिक्षा स्तर में जमीन-आसमान का अंतर है। गरीब बच्चों के लिए सरकारी स्कूल और उच्च वर्ग के बच्चों के लिए निजी स्कूल है। जिस प्रकार शिक्षा का बाजारीकरण हुआ है उसने शिक्षा के क्षेत्र को उद्योग में बदल दिया है। शिक्षा के व्यापारीकरण का सीधा अर्थ है जन्म से ही ऊँच-नीच का भाव पैदा हो जाये और गरीब के बच्चों को केवल चपरासी या चतुर्थ श्रेणी की नौकरी के लिए तैयार किया जाये'।

अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा, 21 फरवरी, 2011

वे चाहते थे कि शिक्षकों के रिक्त पदों को तुरंत भरा जाए :

'प्राथमिक, मध्य एवं माध्यमिक विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में रिक्त पड़े 4 लाख से अधिक रिक्त पदों पर अगर नियुक्तियाँ की गयी होती तो इनमें से आधे 2 लाख पद दलित एवं पिछड़े वर्गों के अभ्यर्थी को प्राप्त होते'।

शिक्षा के प्रति उदासीनता, 24 अक्टूबर, 2015

शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के वो पक्षधर थे :

'स्कूली शिक्षा में गुणात्मक सुधार सिर्फ संगठनिक परिवर्तनों से नहीं होगा। हिन्दी भाषी और अन्य राज्यों में स्कूली शिक्षा में भारी वित्तीय निवेश की जरूरत है, ताकि जरूरी बुनियादी आधुनिक

सुविधाएँ हर स्कूल को उपलब्ध हो। सूचना प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रयोग द्वारा पठन-पाठन की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार किये जा सकते हैं। शिक्षकों व विद्यार्थियों को लैपटॉप, टैबलेट देकर उस पारंपरिक शिक्षण प्रणाली को तिलांजली दी जा सकती है, जो बच्चों को रटटू तोता बनाती है। यह प्रौद्योगिकी महंगी जरूर है, किन्तु इन राज्यों के बच्चों को अन्य राज्यों के बच्चों के समकक्ष बनाने के लिए जरूरी है। साथ ही सामूहिक नकल के अभिशाप से मुक्ति के लिए शिक्षकों की शिक्षा व प्रशिक्षण में बदलाव की जरूरत हैं। वर्तमान वार्षिक परीक्षा प्रणाली में सूचना प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से परीक्षा में बदलाव होगा जिससे सामूहिक नकल की आशंकाएँ न्यूनतम हो जायेगी'।

समान शिक्षा, 11 जून, 2017

'शिक्षा में पारदर्शिता, सहभागिता और जवाबदेही जैसे प्रावधानों को शामिल करना आवश्यक है। शिक्षा को जनोन्मुखी बनाने की आवश्यकता है। राज्य सरकार शिक्षा में सुधार के लिए प्रतिबद्धता जता तो रही है पर शिक्षण संस्थानों में अध्यापकों की भारी कमी से शिक्षण कार्य बुरी तरह से प्रभावित है'।

शिक्षा होगी समृद्धि की आधारशिला, 04 जून, 2018

'चिंता की बात यह है कि राज्य में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का विस्तार न सिर्फ ठहर-सा गया है, बल्कि जो है उसका स्तर भी गिरता जा रहा है। इस संदर्भ में योजना आयोग की यह चेतावनी गौरतलब है कि अगर विश्वविद्यालयों और उच्च शैक्षणिक संस्थानों की गुणवत्ता में सुधार नहीं किया गया, तो तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था की जरूरतों को पूरा करने के लिए राज्य में कुशल और प्रशिक्षित प्रोफेशनलों की भारी कमी हो जायेगी। इसका राज्य के आर्थिक विकास पर बुरा असर पड़ सकता है, क्योंकि अर्थव्यवस्था के विकास में ज्ञान की भूमिका दिन-पर-दिन महत्वपूर्ण होती जा रही हैं।

निजी विश्वविद्यालयों में गरीब एवं पिछड़े छात्र-छात्राओं के हितों का संरक्षण, 25 अप्रैल, 2013

'बिहार में प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा के प्रति बिहार सरकार उदासीन और निष्क्रिय है। शिक्षा क्षेत्र में ह्रास और अराजकता निरंतर बढ़ती गयी है। बिहार सरकार और बिहार राज्य के विश्वविद्यालयों ने विभिन्न प्रकार के अधिनियमों की लगातार अनदेखी और उपेक्षा जारी रखी है, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता क्षीण होती जा रही है और सम्पूर्ण शैक्षणिक क्षेत्र में एक अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। राज्य सरकार और विश्वविद्यालय दोनों विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित प्रक्रियाओं और मार्गदर्शिका की अनदेखी कर रहे हैं'।

सहायक प्राचार्यों की नियुक्ति नहीं होना, 20 जून, 2015

'शिक्षा को वास्तव में बेहतर बनाने के लिए राष्ट्रव्यापी बदलाव की जरूरत है। शिक्षा का महत्व और उसकी जरूरत असंदिग्ध है, लेकिन उस पर जितना ध्यान दिया जाना चाहिये और जितने संसाधन उसमें लगने चाहिये, उतने नहीं दिये जाते'।

शिक्षा की गुणवत्ता में हो सुधार, 10 मार्च, 2019

वो मानते थे कि सरकार को संस्कृत विद्यालयों को ओर सुदृढ़ करना चाहिए :

'संस्कृत भाषा भारत की संस्कृति के मूल में रही है और उस भाषा के बिना भारत की कल्पना नहीं की जा सकती। संस्कृत भाषा एवं उसके साहित्य की प्रचुरता एवं विशालता को देश–विदेश के विद्वानों ने स्वीकार किया है। किन्तु यह बड़ा ही दुर्भाग्पूर्ण और विस्मयकारी है कि बिहार सरकार ने अपनी सोच की विकृति, नापसंदगी और भेदभावमूलक नीति के कारण 1956 के पूर्व स्थायी रूप से प्रस्वीकृत 86 संस्कृत विद्यालयों की मान्यता समाप्त करने संबंधी निर्णय लिया जिससे संस्कृत के अनुरागियों को ही नहीं, बल्कि आमलोगों को भी गहरा धक्का लगा है'।

संस्कृत विद्यालयों के प्रति दुर्भावना, 22 अगस्त, 2002

विश्वविद्यालयों के प्रबंधन में सरकार और कुलपतियों के बीच टकराव को वे अनावश्यक समझते थे :

'संविधान में कार्यपालिका की शक्तियाँ औपचारिक रूप से राज भवन में निहित मानी जाती है परंतु राज्यपाल को सभी कार्यों का निर्वहन मंत्रिपरिषद् की सलाह पर ही करना पड़ता है। मंत्रिपरिषद् जो मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करती है उसका परामर्श बंधनकारी है'।

कुलपतियों की नियुक्ति, 12 फरवरी, 2013

संसदीय प्रणाली में उनका दृढ़ विश्वास था :

'संसद से कोई ऊपर नहीं और न ही संसद का कोई विकल्प है। सदन एवं बाहर बैठे लोगों के मांगने से अगर भारत जैसे बड़े लोकतांत्रिक देश का प्रधानमंत्री एवं मंत्री इस्तीफा देने लगे तो पूरी प्रणाली ध्वस्त हो जाएगी। सवाल प्रशासनिक पारदर्शिता का है, भारत के मूल लोकतांत्रिक ढांचे को विकृत करने का नहीं। मुद्दा लोकतंत्र को अधिकाधिक जवाबदेह बनाने का है, इसमें कहीं भी कोई विसंगति नहीं है। राजनीतिक दल आपस में बैठकर यह फैसला करें कि किस प्रकार राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा करते हुए लोकतांत्रिक प्रणाली को और मजबूत बनाने में भ्रष्टाचार के विरुद्ध सर्वानुमति बनायी जाए'।

संसदीय प्रणाली के प्रति जनसाधारण में बढ़ती अनास्था, 31 जुलाई, 2015

राजनीति दलों में भी आंतरिक लोकतंत्र हो इसका वो समर्थन करते थे :

'केवल नैसर्गिक राजनीति से लोकतंत्र को कोई लेना–.देना नहीं हो सकता। लोकतंत्र में दलीय आंतरिक लोकतंत्र चाहिये, जो इन दलों में नदारद है। ऐसी राजनीति से देश हित का कोई लेना–देना नहीं। भारत को विचारनिष्ठ एवं ध्येयनिष्ठ दल चाहिये'।

लोकतंत्र में विचारधारा, 25 मई, 2015

धर्मनिरपेक्षता को वो लोकतंत्र की आधारशिला मानते थे :

'धर्मनिरपेक्षता हमारे लोकतंत्र की एक आधारशिला है। सभी धर्मों को बराबर का दर्जा देना और उनका आदर करना हमारे देश और समाज की परंपरा रही है। सदियों से भारत में नये धर्म आते

और फलते-फूलते रहे हैं। धर्मनिरपेक्षता हमारी संवैधानिक जिम्मेदारी भी है। सरकार साम्प्रदायिक सद्भाव और शांति बनाये रखने के लिए वचनबद्ध है। साथ ही, अल्पसंख्यकों की सुरक्षा और उनकी खास जरूरतों का ख्याल रखना उनका फर्ज'।

राजनीति में कठोर शब्दों का कोई स्थान नहीं, 30 अगस्त, 2018

आतंकवाद के खिलाफ वे मजबूत कार्यवाही चाहते थे :

'आतंकवाद भावनात्मक और सैद्धांतिक आग्रहों का विषय नहीं है। आतंकवाद मानवता और राष्ट्रीय सम्प्रभुत्ता के विरुद्ध खूनी जंग है, इस जंग को हम तभी जीत सकते हैं जब दुश्मन को दुश्मन समझते हुए हम उस पर करारा वार करें'।

आतंकवाद से निपटने के लिए रणनीति, 20 सितम्बर, 2016

उनकी चिंता थी कि आम लोगों को सरकार से इंसाफ नहीं मिलता :

'पूरा बिहार समस्याग्रस्त है। उग्रवादी संगठन अपनी पैठ बढ़ा रहे हैं। भूमिहीन लोगों ने अपनी किस्मत इन उग्रवादी नेताओं के साथ जोड़ ली है। जब आमलोगों को सरकार से इंसाफ नहीं मिलता, न ही सरकारी तंत्र उनकी समस्याओं को सुलझाने में समर्थ है'।

राजनीतिक दलों में इच्छा-शक्ति का अभाव, 23 जून, 2003

मोदी सरकार के कई कार्यों की उन्होंने सराहना की थी :

'मोदी सरकार का रिपोर्ट कार्ड कह रहा है कि उन्होंने सोशल सेक्टर में तगड़ा काम किया है। इन्फ्रास्ट्रक्चर बेहतर हुई है'।

एक पार्टी का संकल्प पत्र, 09 अप्रैल, 2019

'मोदी सरकार ने अपने कार्यकाल में जनहित के लिये अनेक कार्य किये जिसकी सराहना की जानी चाहिए'।

सरकार बनने की संभावना, 16 मई, 2019

उनका विश्वास था कि लोकतंत्र में आलोचना भी एक मर्यादा की सीमा में होनी चाहिए :

'लोकतंत्र में एक प्रगतिशील समाज में आलोचना का अपना स्थान है। परंतु आलोचना मर्यादा की सीमा में होनी चाहिये। देश में महत्वपूर्ण मुद्दों पर बहस में परस्पर विरोधी विचार धाराओं के लिए गुंजाइश है और होनी भी चाहिये परंतु उदारता, विनम्रता और सहनशीलता के विरुद्ध एक भी शब्द बोलने से सभी दलों को बचना चाहिये, क्योंकि लोकतंत्र में शब्दों को मर्यादा से रखना ही सर्वोपरि है'।

चुनाव में राष्ट्रवाद का मुद्दा, 25 मई, 2019

पंचायतों के स्वायत्तता के वो पक्षधर थे :

'पंचायतें स्थानीय स्वशासन की महत्वपूर्ण इकाई हैं। ये तभी सुशासन में सहायक बन सकती है जब इन्हें पूर्ण आर्थिक सहयोग व स्वायत्तता हासिल हो'।

झारखंड पंचायत राज अधिनियम में संशोधन,13 अप्रैल,2003

वे मानते थे कि श्रीमती इन्दिरा गांधी का देशवासियों के हृदय में एक विशिष्ट स्थान है :

'श्रीमती गांधी ने अनेक कार्यक्रमों से अपने देशवासियों के हृदय में एक विशिष्ट स्थान बना लिया। प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी ने गरीबी के विरुद्ध संघर्ष को सद्भाव के रूप में न देखकर दायित्व के रूप में देखना प्रारंभ किया था। उन्होंने कहा था कि मूलभूत मानव अधिकार–जीने का समुचित स्तर, भोजन और अनिवार्य स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा या उचित कार्य के अवसर या भेदभाव से मुक्ति के अधिकार ही देश के सबसे गरीब लोगों की सबसे बड़ी जरूरत है। श्रीमती इन्दिरा गांधी की दृष्टि के कारण विज्ञान और प्रौद्योगिकी का भारत में शक्तिशाली स्वदेशीय आधार निर्मित किया गया'।

पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की शताब्दी जयन्ती वर्ष, 28 नवम्बर,2017

स्वर्गीय राजीव गांधी के बारे में उन्होंने कहा था :

'स्व० राजीव गांधी एक स्वच्छ छवि के राष्ट्रवादी व्यक्ति थे'।

स्व० राजीव गांधी निर्दोष, 5 फरवरी, 2004

पूर्व प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव के देश के प्रति महत्वपूर्ण योगदान की वे सराहना करते थे :

'राव अत्यन्त योग्य नेता थे जिन्होंने देश की अर्थव्यवस्था तथा विदेश नीति की धारा दल दी थी'।

पूर्व प्रधानमंत्री की स्मृति में स्मारक, 12 अप्रैल, 2015

वाजपेयी जी को वे अद्भुत नेता समझते थे :

'वाजपेयी जी भारतीय राजनीति में एक ऐसे नेता थे, जिन्होंने यह कोशिश की कि विदेश नीति के मामले में पक्ष और विपक्ष के बीच कोई बड़ा मतभेद न हो। यही चीज आज की राजनीति में गायब है और अब तो पक्ष–विपक्ष के बीच हर स्तर पर भारी मतभेद है'।

अद्भुत अटल जी, 21 अगस्त, 2018

श्रीमती सोनिया गांधी के बारे में उन्होंने कहा था :

'राजनीति में वह ऐसी पहली नेता हैं जिन्होंने प्रधानमंत्री तक की कुर्सी ठुकरा दी थी और उन्होंने कांग्रेस को एक अलग चेहरा दिया'।

श्रीमती सोनिया गाँधी का फैसला, 16 दिसम्बर, 2017

कांग्रेस नेता श्री राहुल गांधी के बारे में उनकी सलाह थी :

'राहुल गांधी को मीडिया और पार्टी के बुजुर्ग नेताओं से लेकर सामान्य कार्यकर्ता तक के लिए अपने को उपलब्ध रखना होगा, इसी से पार्टी में प्राण फूंके जा सकेंगे'।

श्री राहुल गाँधी को सलाह, 13 दिसम्बर, 2017

वे मानते थे कि राष्ट्रीय महानता सिर्फ अतीत का बखान करने से नहीं आती :

'अतीत हालांकि महत्वपूर्ण होता है और लोगों में आत्म विश्वास भी भरता है, लेकिन राष्ट्रीय महानता अतीत का बखान करने से नहीं आती। राष्ट्रीय महानता के लिए गरीबी हटाना जरूरी है, उसके लिए आर्थिक रूप से मजबूत होना जरूरी है, राजनीतिक रूप से स्थिर होना जरूरी है, आर्थिक और राजनीतिक समस्या का सामना करने की हैसियत रखना जरूरी है और राष्ट्र की विदेश नीतियों पर पूरा नियंत्रण होना जरूरी है'।

मोदी सरकार की उपलब्धियाँ, 13 मार्च, 2019

मजदूरों के हक के लिए वो सदैव लड़ते थे :

'लोकतंत्र में मजदूरों को मौलिक अधिकार से वंचित करना खतरनाक संकेत है'।

पेट्रोलियम कम्पनियों के विनिवेश, 27 जनवरी, 2003

नई आर्थिक नितियों पर उनकी कई शंकाएं थी :

'नई आर्थिक नीतियों ने देश के पिछड़े और गरीब राज्यों को और पीछे धकेल दिया है'।

नई आर्थिक नीतियों ने देश को पीछे धकेल दिया, 26 अप्रैल, 2003

बिहार के विकास के लिए वो मानते थे कि कुछ अलग होकर विचार करने की जरूरत है :

'बिहार की वित्तीय आवश्यकता पर विकसित राज्यों से अलग होकर विचार करने की जरूरत है। इसके लिए साहसपूर्ण और सुदृढ़ वित्तीय नीति बनानी पड़ेगी। आज पिछड़े राज्यों और विकसित राज्यों की वित्तीय आवश्यकताओं को एक ही तराजू पर तौलकर अनुमान करने की जो प्रणाली बनी हुई है उसे त्यागकर पिछड़े राज्यों की विशेष समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उनकी आवश्यकताओं का आकलन करने में अधिक संतुलित दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा'।

बिहार को 12वीं पंचवर्षीय योजना के तहत 12 हजार करोड़ रूपए का विशेष पैकेज, 19 अप्रैल, 2013

प्रशासन में राजनीति के हस्तक्षेप के वे खिलाफ थे :

'बिहार में राजनीतिक हस्तक्षेप अधिक होता है। अधिकारी वर्ग की क्षमता भी कुशल नहीं है। बिहार का शासन बहुत भी केन्द्रीयकृत है जिसके चलते निर्णय लेने और परियोजनाओं के कार्यान्वयन में बाधा पड़ती है'।

बिहार सभी मापदण्डों के स्तर पर राष्ट्रीय औसत से निम्नतम, 06 जुलाई, 2015

बिहार का पिछड़ापन उनको परेशान करता था :

'बिहार देश का सबसे पिछड़ा राज्य है और सभी विकास सूचकों के लिहाज से योजना युग की लगभग शुरुआत से ही देश में सबसे निचले पायदान पर बरकरार है। इसका मुख्य कारण राज्य

में सबसे कम योजना परिव्यय तथा निवेश का निम्न स्तर है। राज्य के प्रति किए गए अन्याय को दूर करने के लिए केन्द्र द्वारा कोई प्रयास नहीं किया गया। फलत: राज्य अभी भी हर तरह की समस्या से पीड़ित है'।

विशेष राज्य का दर्जा आवश्यक, 31 मई, 2018

उनका मानना था कि बिहार को पिछड़े राज्य का दर्जा मिलना चाहिए :

'बिहार जैसे पिछड़े राज्य को विकसित राज्यों की श्रेणी में लाने के लिए विशेष सहायता एवं विशेष राज्य के दर्जे की आवश्यकता है तभी बिहार अन्य विकसित राज्यों की श्रेणी में आयेगा। बिहार में अभी भी राष्ट्रीय औसत से प्रति व्यक्ति आय काफी कम है'।

सेस और सरचार्ज का वितरण, 04 अक्टूबर, 2018

वो पिछड़ेपन और विकास को देश का असली मुद्दा मानते थे :

'भारत के सामने आज असली मुद्दा आर्थिक पिछड़ेपन और विकास का है। सिर्फ एक गलत कदम से हमारी ऐतिहासिक प्रक्रिया रूक जायेगी और बिखराव आ जायेगा। धर्म के चोले में साम्प्रदायिकता तबाही ला सकती है। राष्ट्रवाद का तकाजा यह है कि हम साम्प्रदायिकता की चुनौती का आँखों में आँखें डालकर सामना करें'।

आर्थिक विकास, 28 जनवरी, 2015

उनका मानना था कि विकास रोजगारोन्मुखी हो :

'एक तरफ जीडीपी तेजी से बढ़ रही है, लेकिन रोजगार में वृद्धि तो दूर, कमी ही दिखाई दे रही है। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार अपने विकास को रोजगारोन्मुखी बनाये'।

बढ़ती बेरोजगारी, 04 जून, 2019

रिटेल क्षेत्र में वे विदेशी कम्पनियों के आगमन के खिलाफ थे :

'विदेशी कंपनियों के रिटेल क्षेत्र में आने से महंगाई, बेरोजगारी और ट्रांसपोर्ट सेक्टर पर भी प्रतिकूल असर पड़ेगा। अंतत: इसका खमियाजा आम लोगों को उठाना होगा। जब बाजार पर कुछ बड़ी कंपनियों का नियंत्रण हो जाता है, तो वे बाजार को अपने अनुकूल चलाने की कोशिश करते हैं। इसका खामियाजा छोटे-छोटे खुदरा कारोबारियों को उठाना ही होगा, क्योंकि उनकी पूंजी और संसाधन के सामने घरेलू खुदरा व्यापारी अपने सीमित संसाधनों के बल पर सामना नहीं कर पायेंगे'।

भारतीय खुदरा व्यापार में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का प्रवेश, 29 नवम्बर, 2011

वे यह भी मानते थे कि अर्थव्यवस्था में निजी निवेश जरूरी है :

'अर्थव्यवस्था में निजी निवेश बढ़ाने की आवश्यकता है'।

निवेश की समस्या, 27 फरवरी, 2017

वे जीएसटी को एक अच्छा कदम मानते थे :

'जीएसटी से भारत 'एक कर और एक व्यवस्था' में बदल जायेगा। इससे न सिर्फ बड़ी-बड़ी कम्पनी, बड़े व्यापारी को सुविधा होगी, बल्कि देश की सवा सौ करोड़ जनता को भी लाभ मिलेगा। उपभोक्ता पर पड़ने वाली कीमत की मार कम होगी। इससे स्वैच्छिक कर अनुपालन में भी सुधार होने से कर का दायरा बढ़ेगा और जीडीपी में लगभग 2 फीसदी की बढ़ोतरी होने की संभावना है। इसके अलावा कर अधिकारियों की अवैध वसूली से भी निजात मिलेगी। स्वाभाविक है इससे देश में निजी निवेश व एफडीआई में बढ़ोतरी होगी'।

जी.एस.टी, 12 अप्रैल, 2017

उनका मानना था कि कानून ओर सख्त किये जाए जिससे फर्जी मुठभेड़ न हो सके :

'फर्जी मुठभेड़ों के अनेक मामलों की जाँच में यह सत्यापित हो चुका है कि पुलिस द्वारा निर्दोष और मासूमों पर अपनी बहादुरी दिखाकर अवॉर्ड पाने की कोशिश की जाती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में फर्जी मुठभेड़ द्वारा हत्या करके मानवाधिकार हनन की घटनाओं पर कार्रवाई के लिए कानूनी प्रावधान का अभाव है'।

फर्जी मुठभेड़, 06 जनवरी, 2003

धरालत पर काम न होना वो सरकारों के लिए एक चुनौती समझते थे :

'राज्य सरकार को ऐसी चुस्त और दुरुस्त प्रणाली बनानी चाहिए कि जब तक धरातल पर काम न हो तब तक निराकरण न माना जाए'।

लोक शिकायत निवारण अधिकार अधिनियम, 25 सितम्बर, 2017

न्यायिक व्यवस्था में वो सुधार चाहते थे :

'न्याय पाना किसी भी व्यक्ति का अधिकार है। ऐसे में यह जरूरी है कि बगैर किसी देरी के न्यायालयों में सभी रिक्त पदों पर नियुक्तियाँ हों। उच्च न्यायालय का विकेन्द्रीकरण यानी सभी राज्यों में इसके खण्डपीठ का गठन किया जाए ताकि मुकदमों के निस्तारण मे तेजी आये। छुट्टियों के दिनों में भी न्यायालय में मामलों की सुनवाई हो ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये'।

लम्बित मुकदमें, 28 जुलाई, 2018

'अदालतों को खुद से मामलों में किसी को भी अदालत में बुलाने का अधिकार होना चाहिए। उसे अपने अधीन पुलिस से जाँच कराने का अधिकार भी मिलना चाहिए। अदालती कामकाज को प्रभावित करने वाली स्थितियों में अभियोजन पक्ष के अधिकारियों को दंड देने का अधिकार भी अदालतों को होना चाहिए'।

गवाहों का बयान से मुकरना, 30 जून, 2003

'ललित बाबू बिहार को, विशेषकर मिथिलांचल को देश की अगली पंक्ति में लाने के लिए प्रतिबद्ध थे। ऐसे व्यक्ति की निर्मम हत्या की साजिश क्यों व कैसे रची गयी? ललित बाबू नहीं रहे,

लेकिन उनकी आत्मा न्याय की प्रतीक्षा कर रही होगी। मैं घायल था, संयोग से जीवित रहा। आज भी दुखी व उद्वेलित हूँ। यह सही तथ्यों का उजागर नहीं होना सम्पूर्ण न्याय प्रणाली व प्रशासनिक व्यवस्था भविष्य के लिए चुनौती है'।

न्याय व्यवस्था की गतिहीनता, 18 दिसम्बर, 2014

योजना आयोग में वो बदलाव चाहते थे :

'योजना आयोग के स्थान पर किसी ऐसे संस्थान को लाना चाहिए जो संवैधानिक ढंग से स्थापित हो और वह उन्हीं कामों को अंजाम दे जो योजना आयोग को दिया गया था'।

योजना आयोग के स्थान पर नई संस्था, 07 दिसम्बर, 2014

उनका मानना था कि समतायुक्त समाज हमारा ध्येय होना चाहिए :

'सामाजिक न्याय सुलभ करने के लिए यह आवश्यक है कि देश की राजसत्ता विधायी तथा कार्यकारी कृत्यों के द्वारा समतायुक्त समाज की स्थापना का प्रयत्न करे'।

संविधान दिवस के अवसर पर, 26 नवम्बर, 2017

कर्ज माफी जैसे उपायों के वो पक्षधर नहीं थे :

'कर्ज माफी जैसे उपाय किसानों की हालत में सुधार करने में तो नाकाम होते ही हैं, पूरी बैंकिंग व्यवस्था को भी नुकसान पहुँचाते हैं और साथ ही कर्ज लेकर उसे ईमानदारी से चुकाने वाले लोगों के समक्ष संकट भी पैदा करते हैं। यह संकीर्ण स्वार्थों वाली राजनीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं कि कुछ दल किसानों के साथ हमदर्दी दिखाने के लिए कर्ज माफी की वकालत कर रहे हैं'।

किसानों की समस्या, 20 फरवरी, 2019

वे मानते थे कि सामाजिक सुरक्षा को सुदृढ़ बनाना आवश्यक है :

'कमियों को दूर करते हुए सार्वभौमिक सामाजिक सुरक्षा को व्यावहारिक और उपयोगी बनावें क्योंकि ग्लोबल विश्व रिपोर्ट यह बताती है कि भारत के असंगठित मजदूर एवं आम आदमी की सामाजिक सुरक्षा के लिए गरीबी दूर करने, रोजगार सृजन के साथ-साथ उनके जीवन स्तर को उपर उठाना और उन्हें कार्यान्वित करना बहुत ही आवश्यक है।

श्रम दिवस, 29 मई, 2017

'पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के समय से ही असंगठित क्षेत्रों के मजदूरों के लिए कानून बनाने की घोषणा की गई लेकिन अब तक इन मजदूरों के लिए समेकित कानून नहीं बन पाना विस्मयकारी है। जब कभी भी इनके लिए सुधार कल्याण और सेवा की निरंतरता की बात हुई है तो औद्योगिक क्षेत्र के प्रभाव के कारण प्रभावकारी कार्यक्रम नहीं बन पाया'।

श्रमिकों का संरक्षण, 22 दिसम्बर, 2017

कृषि क्षेत्र में उपज कम क्यों है ? इसके लिए उन्होंने प्रमुख कारण बताएं :

'उपज में भारी कमी के अनेक कारण हैं, जैसे कम लागत लगाना, जल-प्रबंधन का अभाव और बाढ़ के प्रभाव वाले जिले में हर वर्ष बाढ़ की विभीषिका आना, परिवहन व्यवस्था की कमी और विपणन की आधारभूत संरचना का अभाव। जमीन का टुकड़ों-टुकड़ों में बाँटा जाना भी उत्पादन को प्रभावित करता है'।

कृषि रोड मैप, 18 जून, 2017

किसानों के कल्याण के लिए वो राजनीति से ऊपर उठकर कदम उठाने की राय देते थे :

'कृषि और किसानों का कल्याण एक ऐसा विषय है जिस पर न तो अकेले केन्द्र सरकार कुछ कर सकती है और न ही राज्य सरकारें। किसानों का हित तो तब होगा जब केन्द्र और राज्य मिलकर सक्रिय होंगे और राजनीतिक हानि-लाभ की चिन्ता किये बिना कदम उठाये जाएंगे'।

प्रधानमंत्री किसान सम्मान योजना, 25 फरवरी, 2019

किसानों के लिए उन्होंने सामाजिक सुरक्षा की मांग की :

'खेती भी वैसा ही व्यवसाय है जैसाकि अन्य व्यवसाय। अगर अन्य व्यवसाय में न्यूनतम आय सुनिश्चित की जा सकती है तो किसानों को अनुशंसित आय क्यों नहीं दी जा सकती है। किसानों को अन्य व्यवसायों की तरह सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करें जिसके अंतर्गत बाढ़ सुखाड़ के समय किसानों का संरक्षण किया जा सके'।

स्वामीनाथन आयोग की अनुशंसा, 19 जून, 2017

डॉ. मिश्र के साथ कार्य करने वाले अथवा उनके निकट के व्यक्ति विस्मित रहते थे। इनके चिन्तन से ऐसे-ऐसे वक्तव्य निकलते रहते थे जो अन्य चिंतकों को भी सृजनशील होने की प्रेरणा देते थे। इनके विचार समाज, देश और विश्व स्तर पर रचनात्मक कदम उठाये जाने हेतु होते थे। डॉ. मिश्र के इस विशाल बौद्धिक फलक की उपयोगिता सिर्फ अल्पकालिक नहीं है, निश्चित रूप से लोकतंत्र, समाज और भारतवर्ष के लिये दीर्घकालिक रूप में फलदायी और सृजनात्मक है। इसीलिए पाठक इन संवादों का राज्य और भारत के उत्तरोत्तर विकास के लिए उपयोग कर सकते हैं। मेरा विश्वास है कि डॉ. मिश्र के इस विराट चिंतक व्यक्तित्व के निर्भीक ज्ञान भरे संदेशों से देश का लोकतंत्र दृढ़तर होगा। जिज्ञासु नये विचार-तत्व प्राप्त कर सकते हैं। इन विचरों पर मनन, डॉ. मिश्र द्वारा प्रदत्त ज्ञान प्रकाश के आयाम को विस्तृत भी करते रहेंगे।

इन बेबाक बातों में कई संदेश हैं। इन संदेशों की मूल भावना यह थी कि देश और समाज की प्रगति हो। उनके विचारों की विशिष्टता उनका बेबाक होना था। तत्कालीन घटनाओं पर वो एक ऐसे पक्ष को दर्शाते थे जिन्हें अनदेखा करना मुश्किल था। इनमें कहीं भी किसी के प्रति न तो कभी अनादर रहा और न ही विद्वेष। जिस अंतराल, 2002-2019 में वो दिए गये थे वो व्यक्तिगत रूप से डॉं. मिश्र के लिए बहुत ही संघर्षपूर्ण समय था। फिर भी वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने संवाद जारी रखा। आज वो नहीं है लेकिन उनके शब्द हमारी जिज्ञासा की राह को प्रकाशित करते रहेंगे।

डॉं जगन्नाथ मिश्र वर्ष 1968 से 2008 तक सक्रिय राजनीति में रहे। कभी मुख्यमंत्री के रूप में, कभी विपक्ष के नेता के रूप में या कभी केन्द्रीय मंत्री के रूप में या कभी एक मुख्य प्रहरी के रूप में। इनके चिंतन के बहुव्यापी आयाम में लोकतंत्र पूरी तरह से परिलक्षित हो जाता है।

इनके विचारों में इनके चिंतन की गहराई, एक शिक्षक की सूझबूझ, एक अर्थशास्त्री का पैनापन, लोककल्याण के लिए सचेष्टता और दलितों-वंचितों के अधिकारों के लिए समर्पण-सब झलकता है।

उनके व्यक्तित्व की सबसे खास बात उनके विचारों का बेबाकीपन था। सच से कभी उन्होंने समझौता नहीं किया। भले ही उसकी वजह से उन्हें राजनीतिक कीमत चुकानी पड़ी हो .....एक-बार नहीं, बार-बार। फिर भी न लोग उनके दिल से कभी दूर हुए और न वे जनमानस से कभी अलग हो सके। चलिए, इनकी विचार-यात्र (2002-2019) से दो-चार होते हैं, समाज और देश को बेहतर बनाने के लिए।

दिनांक-19/08/2020

डॉं. शिप्रा मिश्र

वीणाकुंज, 113/70 बी,

लाल बहादुर शास्त्री नगर,

पटना-800023

❖❖❖

अनुक्रम

बेबाक बातों में संदेश 05

कुछ बेबाक विचार

01. मेरी पुस्तकें 35
02. बिहार के विभूतियों के नाम पुरस्कार 37
03. विश्व शांति कैसे हो 39
04. वन और पर्यावरण संरक्षण मानव जीवन के लिए आवश्यक 40
05. पेरिस समझौता 41
06. मानवाधिकार आयोग से अनुरोध 43
07. विश्व मानवाधिकार दिवस 45
08. मानवाधिकारों का उल्लंघन 47
09. सूचना का अधिकार 48
10. बिहार दिवस 50
11. पटना का नाम पाटलिपुत्र 52
12. संस्कृत दिवस 54
13. संस्कृत का अपमान 55
14. मैथिली अष्टम् सूची में शामिल 56
15. मैथिली का विकास 57
16. मिथिलांचल की अवस्था दयनीय 58
17. मिथिला चित्रकला 60
18. कोशी क्षेत्र का पुनर्निर्माण 62
19. बाढ़ सुरक्षा 64
20. गांधी–विचार शिक्षा 66
21. बिहार रिसर्च सोसाइटी की स्थिति 67
22. छात्र की आत्महत्या 68
23. जातीय जनगणना 70
24. कट्टर हिन्दुत्व 71

25. राज्य में कुपोषित बचपन 73
26. दहेज निषेध को सशक्त बनायें 74
27. असली मुद्दा है विकास 75
28. चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी वर्ष 77
29. बिहार के हक के लिए 79
30. नागपुर के संघ मुख्यालय में पूर्व राष्ट्रपति 81
31. अगस्त क्रान्ति 83
32. आयुष्मान भारत योजना 84
33. इराक पर अमेरिका का आक्रमण 86
34. विकीलीक्स के खुलासे 90
35. सऊदी अरब में प्रधानमंत्री का सम्मान 91
36. भारत नेपाल के साथ 92
37. सर्जिकल स्ट्राइक-दो 94

सामाजि न्याय है आवश्यक

01. समावेशी लोकतंत्र 95
02. सामाजिक न्याय 97
03. बढ़ती असमानता लोकतंत्र के लिये खतरा 99
04. सामाजिक अन्याय और शोषण 100
05. असंगठित मजदूरों के लिए व्यापक कानून की आवश्यकता.. 102
06. स्टैण्ड-अप-इन्डिया कार्यक्रम 103
07. दलितों एवं आदिवासियों का उत्थान 105
08. पंचायतों में आरक्षण 108
09. आरक्षण पर विवाद उचित नहीं 110
10. दलित अंगीभूत योजना 111
11. दलितों की स्थिति में सुधार नहीं 113
12. सरकारी सेवाओं में आरक्षण का कोटा पूरा नहीं होना विस्मयकारी 115
13. आरक्षित पदों पर दलित एवं आदिवासी शिक्षकों की नियुक्ति सुनिश्चित हो 116
14. दलितों पर बढ़ रहे हैं अत्याचार 118

15. न्यायिक सेवा में आरक्षण 121
16. दलित एवं पिछड़ी जातियाँ अपना हिस्सा प्राप्त करने में विफल 123
17. उच्च शिक्षा में दलितों का प्रतिनिधित्व 125
18. हाशिये पर खड़े दलित और आदिवासी 127
19. प्रोन्नति में आरक्षण 129
20. आदिवासी-उन्मुख कानून 131
21. आरक्षण पर श्वेत पत्र की आवश्यकता 133
22. खानाबदोस, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के लिए अलग से कोटा 135
23. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति का संरक्षण.......... 137
24. दलितों की कल्याणकारी योजनाओं की समुचित व्यवस्था..... 139
25. जातिगत विद्वेष 141
26. जातिवाद एक संकीर्ण सोच 143
27. अति पिछड़ो की उपेक्षा 144
28. पिछड़ा वर्ग आयोग 145
29. कर्पूरी फार्मूले का अनुसरण करें 147
30. पिछड़े संवर्णो को आरक्षण 149
31. आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को आरक्षण.......................... 151
32. सवर्णो को 10 प्रतिशत आरक्षण 153
33. बिहार सरकार द्वारा सरकारी सेवाओं में महिलाओं के लिए 35 प्रतिशत आरक्षण के निर्णय का स्वागत 155
34. महिलाओं के लिए आरक्षण 156
35. महिला आरक्षण बिल 157
36. भूमि का भूमिहीन दलितो के बीच बाँटा जाना.................... 158
37. विचाराधीन कैदियों की स्थिति 159
38. किसानों की विवशता 161
39. बे-रोजगार आवेदकों से शुल्क क्यों? 162
40. खाद्य सुरक्षा विधेयक 164
41. बुनकरों की हो मद्द 165

अल्पसंख्यकों की न हो अवहेलना

01. अल्पसंख्यकों के साथ न्याय नहीं 167
02. अल्पसंख्यकों की अवहेलना 169
03. अल्पसंख्यकों की दशा 171
04. दलित मुसलमानों को सुविधा 173
05. अल्पसंख्यकों के लिए योजनाएँ 175
06. मुसलमानों के लिए आरक्षण 176
07. अल्पसंख्यक समूह की अनदेखी 178
08. अल्पसंख्यक समुदाय संवैधानिक अधिकारों से वंचित.......... 180
09. मुसलमानो की समस्याओं में वृद्धि 182
10. एक हाथ में कुरान और दूसरे में कम्प्यूटर.......................... 185
11. मुस्लिमों को समान आर्थिक अवसर 187
12. अल्पसंख्यकों का विकास 188
13. उर्दू से दूरी 190
14. मदरसे की शिक्षा 191
15. मदरसों का आधुनिकीकरण 192
16. गुजरात के दंगों की जाँच 193
17. नानावती की अध्यक्षता में जाँच आयोग 195
18. लिब्रहान आयोग 197
19. रंगनाथ मिश्र आयोग की रिपोर्ट 198
20. भागलपुर साम्प्रदायिक दंगा 199
21. असहिष्णुता के बहाने एक बड़ी साजिश 201
22. तीन-तलाक कानून 203

शिक्षा की न हो अनदेखी

01. अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा 205
02. राज्य में उच्च शिक्षा की स्थिति 207
03. शिक्षा के प्रति उदासीनता 209
04. समान शिक्षा 211

05. शिक्षा का विकास 213
06. बिहार में नहीं बदली है शिक्षा की सूरत 215
07. शिक्षा होगी समृद्धि की आधारशिला 217
08. उच्च शिक्षा दलित एवं गरीब पिछड़ी जाति की पहुँच से बाहर 219
09. नई शिक्षा नीति में प्राथमिकताएं 220
10. शिक्षा में असमानता 222
11. शिक्षा पर जीडीपी का 06 प्रतिशत व्यय 224
12. सरकारी स्कूलों की हालत 226
13. संस्कृत विद्यालयों के प्रति दुर्भावना 228
14. मौलाना मजहरूल हक अरबी फारसी विश्वविद्यालय........... 230
15. कुलपतियों की नियुक्ति 231
16. निजी विश्वविद्यालयों में गरीब एवं पिछड़े छात्र-छात्राओं के हितों का संरक्षण 232
17. सरकारी प्राथमिक विद्यालयों का बंद होना.......................... 234
18. शिक्षकों की मांग 235
19. सहायक प्राचायों की नियुक्ति नहीं होना 236
20. शिक्षकों के अभाव में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा संभव नहीं.......... 238
21. विश्वस्तरीय विश्वविद्यालय 240
22. शिक्षा की गुणवत्ता में हो सुधार 241
23. शोध में हो गुणवत्ता 243

राजपथ के मुद्दे

01. संसदीय प्रणाली के प्रति जनसाधारण में बढ़ती अनास्था....... 245
02. लोकतंत्र में विचारधारा 247
03. लोकतांत्रिक आकांक्षा 248
04. राजनीति में कठोर शब्दों का कोई स्थान नहीं...................... 249
05. आतंकवाद का साया 250
06. अतिवाद से मुकाबला 252
07. आतंकवाद से निपटने के लिए रणनीति 254
08. माओवादी हिंसा से निपटने की रणनीति 256

09. आतंकवाद निवारण विधेयक (पोटा) 258
10. राजनीतिक दलों में इच्छा-शक्ति का अभाव........................ 260
11. दल-बदल कानून 264
12. विधान परिषद के दल विहीन चुनाव 266
13. धर्मनिरपेक्ष मतों के विभाजन को रोकना आवश्यक 268
14. भूमंडलीकरण और साम्प्रदायीकरण 269
15. उच्चतम न्यायालय द्वारा विधान सभा का विघटन................ 271
16. बिहार में कांग्रेस 273
17. किसने बनाया मुख्यमंत्री 275
18. एक पार्टी का संकल्प पत्र 277
19. सरकार बनने की संभावना 279
20. चुनाव में राष्ट्रवाद का मुद्दा 280
21. अयोघ्या विवाद 281
22. जम्मू-कश्मीर में शरणार्थी परिवारों की बदहाली................. 283
23. कश्मीरी पण्डितों का पुनर्वास 285
24. जम्मू-कश्मीर राज्य का पुनर्गठन 287
25. झारखंड सरकार की 'डोमिसाइल' नीति 288
26. झारखंड पंचायत राज अधिनियम में संशोधन...................... 290
27. झारखण्ड के मुख्यमंत्री पद को आदिवासी और गैर आदिवासी के रूप में देखना 296
28. चम्पारण : महात्मा गांधी का उदय 297
29. बाबासाहब डॉ अम्बेडकर 299
30. पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की शताब्दी जयन्ती वर्ष 301
31. स्व. राजीव गांधी निर्दोष 303
32. पूर्व प्रधानमंत्री की स्मृति में स्मारक 304
33. अद्‌भुत अटल जी 305
34. अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री 307
35. पूर्व राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी 309
36. श्रीमती सोनिया गांधी का फैसला 311

37. श्री राहुल गांधी को सलाह 312
38. गांधीवादी निर्मला देश पाण्डेय 313
39. स्वामी सहजानन्द सरस्वती 315
40. जे.एन.यू. की घटना 316
41. मोदी सरकार की उपलब्धियाँ 318

अर्थतंत्र की चुनौतियाँ

01. निजीकरण 320
02. पेट्रोलियम कम्पनियों के विनिवेश 321
03. नई आर्थिक नीतियों ने देश को पीछे धकेल दिया............... 322
04. विश्व व्यापार संगठन की विफलता 324
05. 12वीं पंचवर्षीय योजना का एप्रोच पेपर 326
06. बिहार को 12वीं पंचवर्षीय योजना के तहत 12 हजार करोड़ रूपए का विशेष पैकेज 327
07. आर्थिक विकास 329
08. नवउदारवादी नीतियाँ 330
09. देश की अर्थव्यवस्था 332
10. झारखंड एवं बिहार को विशेष आर्थिक सहायता................. 333
11. बिहार राज्य वित्त आयोग की रिपोर्ट 336
12. राज्यों का पिछड़ापन 338
13. 14वें वित्त आयोग की अनुशंसा 339
14. बिहार सभी मापदण्डों के स्तर पर राष्ट्रीय औसत से निम्नतम 340
15. सबका साथ सबका विकास 342
16. बिहार में गरीबी 344
17. बिहार की उपलब्धियों का रिपोर्ट कार्ड 346
18. विशेष राज्य का दर्जा आवश्यक 348
19. सेस और सरचार्ज का वितरण 350
20. बढ़ती बेरोजगारी 352
21. बिहार में उद्योगिकरण की रफ्तार 354
22. बिहार में औद्योगिक और आर्थिक विकास.......................... 356

23. बिहार की प्रगति 357
24. विकास की चुनौती 358
25. निवेश की समस्या 360
26. उद्योगों को प्रोत्साहन 362
27. बिहार में औद्योगिक विकास कैसे हो 364
28. औद्योगिक विवाद कानून 1947 366
29. उर्वरक कारखानों को बंद करने का निर्णय.......................... 368
30. लोक सभा द्वारा पारित पेटेंट विधेयक 370
31. बैंकों के ऋण 372
32. भारतीय खुदरा व्यापार में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का प्रवेश...... 373
33. नोटबंदी 375
34. कालाधन 377
35. जीएसटी 379
36. रेल बजट 2004 381
37. रेल बजट 2014-2015 382
37. केन्द्रीय बजट 383
38. बिहार बजट 385

बदलाव जो ज़रूरी हैं

01. फर्जी मुठभेड़ 387
02. राष्ट्रीय जाँच एजेन्सी विधेयक 388
03. सी.बी.आई. को राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त करना एक चुनौती है 389
04. कार्यक्रम कैसे हो 390
05. लोक शिकायत निवारण अधिकार अधिनियम....................... 391
06. नौकरशाही में भ्रष्टाचार 392
07. पुलिस की निष्क्रियता 394
08. लम्बित मुकदमें 396
09. पदों एवं सेवाओं की रिक्तियाँ 398
10. पंचायती राज 399

11. पंचायतों के अधिकार 401
12. क्रीमीलेयर को आरक्षण 402
13. सामान्य नागरिक सिविल संहिता 404
14. गवाहों का बयान से मुकरना 405
15. भोपाल गैस त्रासदी पर न्यायालय का निर्णय...................... 407
16. योजना आयोग के स्थान पर नई संस्था 409
17. न्याय व्यवस्था की गतिहीनता 411
18. जेलों की समस्याएं 414
19. संविधान दिवस के अवसर पर 416
20. न्यायिक उत्तरदायित्व 417
21. किसानों की समस्या 418
22. श्रम दिवस 419
23. श्रमिकों का संरक्षण 420
24. बिहार से मजदूरों का पलायन 422
25. नेपाल में लम्बित परियोजनाएं 424
26. भूमिहीन एवं आवासविहीन लोगों के लिये जमीन का अधिकार 426
27. भूमि अधिग्रहण कानून-2013 में बदलाव 428
28. बटाईदारों के हितों की रक्षा 430
29. भूमि सुधार 432
30. कृषि रोड मैप 434
31. प्रधानमंत्री किसान सम्मान योजना 436
32. स्वामीनाथन आयोग की अनुशंसा 438
33. भारत की नदियों को जोड़ने के कार्यक्रम 439
34. ग्रामीण विकास के लिए भूमि नीति 441
35. डॉ॰ जगन्नाथ मिश्र : एक संघर्षशील योद्धा........................ 443
36. डॉ. जगन्नाथ मिश्र द्वारा लिखित एवं सम्पादित/प्रकाशित पुस्तकें 451

❖❖❖

कुछ बेबाक विचार
मेरी पुस्तकें[1]

अपनी लिखित 20 पुस्तकों में, विशेष रूप से आर्थिक विकास, भारतीय वित्तीय प्रबंधन, बैंकिंग प्रणाली, संघ-राज्य के संबंधों आदि विषयों पर प्रकाश डालते हुए मैंने बिहार के पिछड़ेपन, गरीबी, बेरोजगारी, केन्द्र राज्य के संबंध, बिहार के लगातार पिछड़ेपन के कारणों की चर्चा करते हुए एकता अखंडता को मजबूत करने की दिशा में संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप बिहार को विशेष सहायता देने की बात की है। इस राज्य के मानवीय एवं भौतिक साधन इतने विशाल और बहुरंगी हैं कि उनके विकसित होने पर यह राज्य प्रथम कोटि का विकसित क्षेत्र हो सकता है।

अपनी पुस्तक में मुख्य रूप से राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पक्ष से संबंधित विषयों को प्रस्तुत करते हुए मैंने कहा है कि आजादी के बाद राजनीतिक दलों ने सत्ता की राजनीति को अपना साध्य बनाया है। ऐसी स्थिति में मूल्य, राजनीतिक आदर्श, सिद्धांत, नैतिकता एवं जनादेश को पीछे धकेल दिया गया है। राजनीति से आदर्श समाप्त हो गया है। गाँधी, विनोबा के विचार, भाषण तक सिमट कर रह गये हैं। संविधान का मूल अधिकार, राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत एवं प्रस्तावना शब्दों तक ही केन्द्रित हैं। आज भी देश की बहुत बड़ी आबादी संविधान में प्रदत्त अधिकारों एवं संरक्षण से वंचित है। शहर एवं गाँव के अन्तर के कारण खाई बढ़ती गयी है, जिसके कारण भारतीय युवाओं में असंतोष, अशांति, अनिश्चितता एवं अंधकारपूर्ण भविष्य की आशंका बनी हुई है। व्यावहारिक रूप से आर्थिक नीतियाँ कुछ संगठित वर्गों के लिए सिमटी हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सभी सुविधाएँ सुखी संपन्न वर्ग के लिए ही हैं।

यह अनायास नहीं है कि आज हमारे यहाँ संसदीय लोकतंत्र सवालों से घिरा है। भारत के संदर्भ में सोचें तो आर्थिक विडंबना हमारी राजनीति और सामाजिक विडंबनाओं के साथ मिलकर कहीं बड़ी हो जाती है। भारत की अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय बदलाव आया है और हाल के वर्षों में वृद्धि दरें त्वरित हुई हैं। तथापि उदारीकरण के परिणामस्वरूप, पूंजी और श्रम का गरीब राज्यों से संपन्न राज्यों की ओर पलायन हो रहा है। जिन राज्यों को सुधार से लाभ न होकर बेहतर राज्यों की ओर निवेश योग्य संसाधनों के पलायन से हानि ही हुई है, उन्हें उन खास कमजोरियों को दूर करने के लिए अवश्य मदद की जानी चाहिए जिन्होंने उन्हें पिछड़ा बना रखा है। आमतौर पर निवेश दर को किसी अर्थव्यवस्था में विकास का एक महत्वपूर्ण कारक समझा जाता है जो अधिकांशत: अधिसंरचना से संबंधित होती है। हम जानते हैं कि अधिसंरचना एक बहुदिशायी चीज है। बहरहाल, अधिसंरचना की गुणवत्ता किसी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए नितांत महत्वपूर्ण है क्योंकि वह निवेशकों व उत्पादकों को औद्योगिक गतिविधियां आरंभ करने के लिए प्रेरित करती है।

---

1 12 मई, 2017

बिहार की अर्थव्यवस्था की कमजोर स्थिति भौतिक अधिसंरचना की विपन्नता के जरिए पाली–पोसी गयी है। आर्थिक सुधारों से लाभान्वित न हुए बिहार को सहायता देना निहायत जरूरी है। बिहार के लिए अपने क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने का एकमात्र तरीका अधिसंरचनात्मक सुविधाओं में सुधार करना ही हो सकता है। इस कार्यभार को पूरा करने के लिए उसके पास कम वित्तीय संसाधन मौजूद हैं। जब तक अधिसंरचनात्मक व सेवा संबंधी स्तर इस अवस्था में न पहुँच जाए कि वहाँ निजी निवेश का अच्छा–खासा प्रवाह होने लगे, तब तक इसके लिए आवश्यक संसाधनों को केन्द्रीय पुल से ही आना है। अधिसंरचना एक मुख्य मानदंड है। अगर एक अधिसंरचना सूचकांक बनाया जाए और संवितरण के स्तरों को इससे जोड़ दिया जाए तो ऐसा करना बिल्कुल संभव है। निवेश वातावरण सूचकांक एक अधिक उपयुक्त सूचक हो सकता है।

देश की उपलब्धियाँ तथा संविधान की सफलता–विफलता का आकलन किया जा रहा है। अगले 50 वर्ष कैसे होंगे? चिंतन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि अभी नहीं चेता गया तो राजनीतिक ढाँचा क्रमशः और विकृत होगा। हिंसा का दौर और व्यापक होगा। असंतोष, अशांति एवं संवैधानिक व्यवस्था के क्षत–विक्षत होने की संभावना है तथा इसका परिणाम भयानक और घातक होने वाला है। कहीं गाँधी जी का भारत हिंसा का भारत न बन जाए।

❖❖❖

बिहार के विभूतियों के नाम पुरस्कार[1]

1983 में मेरी सरकार ने हिन्दी को समृद्ध और सशक्त बनाने के उद्देश्य से हिन्दी में लिखित विभिन्न विषयों और विधाओं की मौलिक और अनूदित पुस्तकों पर पांच हजार के पन्द्रह पुरस्कार वाली योजना को प्रारंभ किया था। बजट में भी उपबंध कर दिया गया था। ये पुरस्कार बिहार की विभूतियों के नाम पर चलाये गये परंतु, वे अखिल भारतीय स्तर के पुरस्कार थे। कालांतर में इस योजना की निरंतरता बाधित कर दी गई। अत: बिहार सरकार को हिन्दी के विस्तार, संरक्षण एवं संवर्द्धन की अक्षुण्णता को बनाये रखने के उद्देश्य से निम्नलिखित पुरस्कार योजनाओं को पुन: निरंतरता के साथ जारी रखने एवं पुरस्कार की राशि को पांच हजार से बढ़ाकर पचास हजार रुपये किया जाना चाहिए।

पुरस्कार विवरण इस प्रकार से थे :- (1) चाणक्य पुरस्कार- राजनीति शास्त्र (2) आर्यभट्ट पुरस्कार - विज्ञान (3) मंडन मिश्र पुरस्कार - दर्शन और धर्म (4) डा० सच्चिदानन्द सिंह पुरस्कार - विधि साहित्य (5) उपेन्द्र महारथी पुरस्कार - कला एवं शिल्प (6) अयोध्या प्रसाद खत्री पुरस्कार - हिन्दी भाषा एवं लिपि (7) काशी प्रसाद जायसवाल पुरस्कार - इतिहास और संस्कृति (8) डा० अमरनाथ झा पुरस्कार - शिक्षा शास्त्र (9) श्री राधिकारमण सिंह पुरस्कार- उपन्यास एवं कहानी (10) शिवपूजन सहाय पुरस्कार- ललित निबंध एवं संस्मरण (11) रामवृक्ष बेनीपुरी पुरस्कार - नाटक (12) विद्यापति पुरस्कार - लोक साहित्य (13) दिनकर पुरस्कार- काव्य (14) गोरखनाथ सिंह पुरस्कार - अर्थशास्त्र (15) बिरसा भगवान पुरस्कार - जनजातीय साहित्य।

हिन्दी राष्ट्रीय एकता का माध्यम है। देश के विभिन्न मत-मतान्तर को छोड़कर सभी राजनीतिज्ञों ने इसे स्वीकार किया है। हिन्दी देश को जोड़ने वाली महत्वपूर्ण भाषा है। स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में तमाम स्वतंत्रता सेनानियों ने हिन्दी भाषा के माध्यम से ही अपनी भावनाएँ देश के कोने-कोने में पहुँचाई, जो भावनात्मक एकता के प्रचार का सबसे बड़ा माध्यम सिद्ध हुई। इस भाषा को अपनाने के लिए तथा इसे पारस्परिक आदान-प्रदान और संपर्क की भाषा बनाने के लिए उन महापुरुषों ने भी प्रेरणा दी, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी। स्वराज्य या स्वातंत्र्य का प्रयोजन, जनराज्य या लोकतंत्र है तो सरकार का कामकाज भी जन भाषा में होना चाहिए, यह सर्वथा तर्कसंगत है। महात्मा गांधी जी की यह उक्ति यहाँ स्मरणीय है- 'अगर हमारे देश का स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला है, तो नि:संदेह अंग्रेजी ही राजभाषा होगी, लेकिन अगर हमारे देश के करोड़ों भूखों मरने वालों, करोड़ों निरक्षर बहनों और दलित जनों का है और इन सबके लिए होने वाला है तो हमारे देश में हिन्दी ही एकमात्र राजभाषा हो सकती है।' हिन्दी जन आंदोलन की भाषा रही है। हिन्दी ने देश को स्वतंत्र किया। हिन्दी ने

1 26 सितम्बर, 2007

अपने मंचों से सारे राष्ट्र के जनमानस को उद्वेलित किया।

हमें प्रशासनिक हिन्दी को अनुवाद की भाषा नहीं बनाना है। तमाम सरकारी कर्मचारियों को हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुरूप मौलिक रूप से पत्र व्यवहार तथा शासकीय कार्य में टिप्पणी एवं आलेखन का काम करना चाहिए, क्योंकि शासकीय कार्य में अनुवाद की भाषा प्रायः छद्म भाषा लगती है। जब तक तमाम पदाधिकारी अपने सभी कार्यों का निर्वाह विवेक के अनुसार हिन्दी भाषा में नहीं करते हैं, तब तक एक बाहरी भाषा का प्रचलन चलता रहेगा।

❖❖❖

विश्व शांति कैसे हो[1]

यदि विश्व के प्रमुख राष्ट्र चाहें तो आतंकवाद, बेरोजगारी, भूखमरी, गरीबी और पर्यावरण असंतुलन संबंधी जो समस्याएं हैं उनका समाधान कहीं अधिक आसानी से किया जा सकता है, लेकिन मुश्किल यह है कि विश्व के प्रमुख राष्ट्र अपने स्वार्थों का परित्याग करने के लिए तैयार नहीं हैं।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी घोषणा पत्र में लोकतंत्र को पुख्ता बनाने की बात कही गई है। आज विश्व के अनेक भागों में लोकतंत्र की जो उपेक्षा हो रही है उसके लिए विश्व के प्रमुख राष्ट्र वर्मा और पाकिस्तान सरीखे राष्ट्रों पर यह दबाव नहीं डाल पा रहे हैं कि वे लोकतंत्र को मान्यता प्रदान करें? पाकिस्तान लगातार आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ाने में सहयोग देने का काम करता रहा है। आतंकवादियों के सुरक्षित पनाहगार बने पाकिस्तान को अमेरिका ने खुले शब्दों में कहा है कि अगर जरूरत पड़ी तो वह अकेले पाकिस्तान में घुसकर आतंकियों का और उनके नेटवर्क को खत्म करने में तनिक भी संकोच नहीं करेगा। विश्व के प्रमुख राष्ट्र छोटे-छोटे ऐसे देशों पर भी अपना दबाव नहीं बना सकते जहां लोकतांत्रिक मूल्यों की उपेक्षा की जा रही है।

आज स्थिति यह है कि जो निर्धन हैं वे और अधिक निर्धन होते चले जा रहे हैं। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि अमीरों और गरीबों के बीच की खाई बढ़ती चली जा रही है। इस खाई को पाटना ही होगा। यदि इस खाई को पाटने में सफलता नहीं मिली तो स्थितियां इतनी अधिक गंभीर हो सकती हैं कि उन पर काबू पाना मुश्किल हो जाएगा। मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति में निहित है और प्रत्येक व्यक्ति से अभिन्न रूप से जुड़ा है और इसको प्रत्येक देश के संविधान में सम्मिलित किया गया है। आज सम्पूर्ण विश्व में लगातार राष्ट्रों के बीच टकराव एवं हिंसा का मुख्य कारण राष्ट्र एवं राष्ट्र के बीच व्यक्ति एवं व्यक्ति के बीच असमानता में वृद्धि हो रही है जो चिन्ता का विषय बन गया है।

❖❖❖

1 24 अक्टूबर, 2017

वन और पर्यावरण संरक्षण मानव जीवन के लिए आवश्यक[1]

पर्यावरण संरक्षण एवं परिस्थितिकीय संतुलन विश्वव्यापी महत्व का विषय बना हुआ है। पूरा विश्व पर्यावर्णिक समस्याओं से ग्रस्त है और इसके प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भयावह परिणामों से सभी चिन्तित हैं। वैश्विक उष्मीकरण के कारण मौसम में अप्रत्याशित परिवर्तन, सूखाग्रस्त क्षेत्रों में वृद्धि, बाढ़, अतिवृष्टि, असमय वृष्टि, भूक्षरण आदि हमें भविष्य की समस्याओं के प्रति आगाह कर रहे हैं। हमारा देश भी इन समस्याओं के समाधान में अपनी सकारात्मक भूमिका के प्रति सचेष्ट एवं प्रयासरत है। राष्ट्रीय वन नीति, 1988 के अनुसार देश में परिस्थितिकीय संतुलन के लिए 33 प्रतिशत भू–भाग को स्थायी हरियाली आवरण के अधीन रखने का संकल्प लिया गया है।

झारखण्ड राज्य के लगभग सभी वन क्षेत्र उग्रवाद प्रभावित हैं और इन क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य करने में तथा कार्मिकों के स्थायी प्रवास में दिक्कतें हैं। यद्यपि सरकार द्वारा उग्रवाद एवं असामाजिक तत्वों से निपटने में कारगर कार्रवाई की जा रही है परंतु जब तक समस्या पर नियंत्रण नहीं हो जाता है और भय का वातावरण समाप्त नहीं हो जाता है तब तक वनकर्मी एवं स्थानीय जनता के बीच विश्वास का सेतु बन पाना संभव नहीं है। विभाग के स्तर पर इस समस्या से निपटने के लिए वर्ष 1990 से ही वन क्षेत्रों में संयुक्त वन प्रबंधन योजना लागू की गई है और वानिकीकरण एवं वन विकास के कार्य स्थानीय लोगों की समिति के माध्यम से किये जा रहे हैं। सरकार का प्रयास है कि ग्राम वन प्रबंधन एवं संरक्षण समिति प्रभावी रूप से वनों की सुरक्षा, संरक्षण एवं संबर्धन में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करे।

झारखण्ड एक विकासोन्मुख राज्य की श्रेणी में है। राज्य की जनता की प्राथमिकता सड़क, बिजली, पानी, स्वास्थ्य एवं शिक्षा है। परंतु यह तथ्य स्थापित हो चुका है कि बगैर पर्यावरण सुरक्षा के टिकाऊ विकास एवं समृद्ध जीवन शैली अपना पाना संभव नहीं है। बगैर शुद्ध हवा, जल एवं हरियाली आवरण के मानव स्वस्थ एवं सुखी नहीं रह सकता है। विभिन्न प्रकार के जीव जन्तु पर्यावरण सुरक्षा एवं परिस्थितिकीय संतुलन के अनिवार्य कारक हैं। बिना जैव–विविधता संरक्षण के मानव का अस्तित्व संकटग्रस्त होगा। अतः इन तथ्यों की जानकारी जन–जन तक पहुँचाना एवं उन्हें पर्यावरण संरक्षण के प्रति उत्प्रेरित करना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। इसके लिए प्रखण्ड एवं पंचायत स्तर तक व्यापक प्रचार–प्रसार करने की कार्रवाई की आवश्यकता है। झारखण्ड राज्य में विकासोन्मुख योजनाओं की प्रचुरता आ गयी है। राज्य में वृहद पैमाने पर सड़क, पुल, उद्योग आदि के कार्य हो रहे हैं। इन योजनाओं के कार्यान्वयन से कई स्थानों पर वनों एवं वृक्षों की क्षति होती है एवं पर्यावरण सुरक्षा प्रभावित होती है। राज्य सरकार को संकल्प लेना चाहिये कि इस चुनौती से निपटकर एवं पर्यावरण सुरक्षा के साथ–साथ विकास का कार्य किया जाए।

❖❖❖

1 6 जून, 2017

पेरिस समझौता[1]

मानव को प्रगति की अंधी दौड़ में आगे रहने के लिए प्रकृति सदैव प्रभावित करती रही है। मानव विकास की दौड़ में यह भूल गया कि पर्यावरण का सीधा संबंध मानव जीवन से तथा मानव जीवन का सीधा संबंध पर्यावरण से है। दोनों ही एक दूसरे के पर्याय हैं। पर्यावरण में होने वाली समस्त घटनाएं किसी न किसी रूप में हमें सदैव प्रभावित करती रही हैं। हम स्पष्ट शब्दों में यह कह सकते हैं कि जीवन के लिए प्रकृति ही एकमात्र विकल्प है। अतः पर्यावरण संरक्षण ही मानव जीवन के लिए सबसे उपयुक्त उपाय है।

कहा जाता है कि ''धरती मानव की नहीं होती बल्कि मानव धरती का होता है।'' किंतु मानव जाति ने बिना हिचके सदैव अपने लाभ के लिए धरती पर नियंत्रण करने एवं उसका शोषण करने का प्रयास किया है। मानवता को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचाने की दिशा में कार्य करने का दायित्व किसी एक राष्ट्र का नहीं बल्कि पूरे विश्व का है। रियो में 1992 में संयुक्त राष्ट्र प्रारूप संधि (यूएनएफसीसीसी) को औपचारिक रूप दिए जाने के साथ ही इस दिशा में गंभीर वैश्विक प्रयास आरंभ हुए। दिसम्बर, 2015 में पेरिस में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन के 21वें सत्र में देश ने अपने वांछित राष्ट्रीय संकल्पित योगदान (आईएनडीसी) प्रस्तुत किए। भारत पहले ही अपना आईएनडीसी बता चुका है, जिसका लक्ष्य स्वच्छ अक्षय ऊर्जा को प्रोत्साहित कर, गैर-जीवाश्म ईंधन स्रोतों को प्रयोग कर, 2.5 से 3 अरब कार्बन डाईऑक्साइड के समतुल्य अतिरिक्त कार्बन सिंक तैयार करने के लिए वन का विस्तार बढ़ाकर, कार्बन कम उत्पन्न करने वाले एवं लचीले शहरी केन्द्र विकसित कर, कचरे का प्रयोग करने वाले, सुरक्षित, कुशल एवं टिकाऊ हरित परिवहन नेटवर्क को बढ़ावा देकर ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन की तीव्रता में 33 से 35 प्रतिशत तक कमी करना है। उसने विकासशील देशों से अतिरिक्त धन एकत्रा करने एवं अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रसार एवं उनसे सम्बन्धित सामूहिक अनुसंधान तथा विकास हेतु अंतर्राष्ट्रीय ढांचा तैयार करने का भी संकल्प व्यक्त किया है। इस आईएनडीसी के माध्यम से भारत ने जलवायु परिवर्तन से जूझने एवं ''समस्या का भाग नहीं होते हुए भी समाधान का भाग होने'' का अपना संकल्प प्रदर्शित किया है।

प्राथमिक तौर पर, जलवायु परिवर्तन से सम्बन्धित ज्यादातर नीतिगत हस्तक्षेप रोकथाम केन्द्रित और भूभौतिकीय मानकों पर आधारित थे। जैसा कि जलवायु परितर्वन पर अंतर सरकारी पैनल द्वारा 'जलवायु परिवर्तन अनुकूल, 2012 को आगे बढ़ाने के लिए चरम घटनाओं के जोखिमों और आपदाओं के प्रबंधन' पर दी गई विशेष रिपोर्ट में कहा गया था, अब जोखिम केन्द्रित दृष्टिकोण की ओर ध्यान दिया जा रहा है। 'आपदा जोखिम में कमी: बदलते जलवायु में जोखिम और गरीबी, 2009' पर वैश्विक मूल्यांकन रिपोर्ट में परितंत्र में क्षरण को भविष्य में प्राकृतिक खतरे को और अधिक बढ़ाने वाले कारक के रूप में चिन्हित किया गया था।

1 04 जून, 2018

विश्व बैंक समूह जलवायु जोखिम प्रबंधन विश्व बैंक समूह के संचालनों में अनुकूलन शामिल करना शीर्षक से अपने प्रकाशन के लिए 2006 में यह पाया कि दक्षिण एशिया में पर्यावरण परिवर्तन के परिणामों से विशेष रूप से गरीबी सहित निम्नलिखित चीजें प्रभावित हो रही हैं:- (1) कई शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जल की उपलब्धता और जल की गुणवत्ता में कमी। (2) कई क्षेत्रों में बाढ़ और अकाल के खतरे बढ़ गये हैं। (3) पहाड़ी आवासों में जल नियमन में कमी। (4) पनबिजली और बायोमास उत्पादन की विश्वसनीयता में कमी आ रही है। (5) मलेरिया, डेंगू और हैजा जैसे जल जनित रोगों की घटनाओं में बढ़ोतरी हो रही है। (6) मौसमी घटनाओं के चरम पर पहुँचने से इसके कारण क्षति और मृत्यु में वृद्धि हुई है। (7) कृषि उत्पादकता में कमी आई है, मत्स्यपालन पर प्रतिकूल असर हुआ है। (8) कई पारिस्थितिकी तंत्रों पर प्रतिकूल असर पड़ा है।

❖❖❖

मानवाधिकार आयोग से अनुरोध[1]

मानवाधिकार आयोग ने पिछले दिनों अनुसूचित जातियों पर हो रहे अत्याचारों और इन्हें रोकने के लिए बने कानूनों के हश्र के बारे में रिपोर्ट जारी की है। ''रिपोर्ट ऑन प्रिवेंशन ऑफ एट्रोसिटीज अगेंस्ट शेडयूल्ड कास्टस'' नामक इस दस्तावेज में कहा गया है कि अभी भी भारत में अनुसूचित जातियों की दुर्गति साफतौर पर उभरकर आती है। इस बात का विशेष महत्व है कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग जैसी एक प्रमुख संवैधानिक संस्था की रिपोर्ट हमारे सभ्य समाज व लोकतांत्रिक राज की असलियत से हमें रू-ब-रू कराती है।

'संविधान में पर्याप्त प्रावधानों और अन्य कानूनों के बावजूद यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि सामाजिक अन्याय और अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का शोषण लगातार जारी है। भारत द्वारा अपने को एक गणतंत्र घोषित करने के 65 वर्ष से अधिक समय के बाद भी सामान्यत: तमाम अनुसूचित जातियों के लोगों एवं खासकर दलितों को जिस अपमान से गुजरना पड़ता है, वह एक शर्म की बात है।' रिपोर्ट में इस 'शर्म की बात' के कारणों की शिनाख्त की कोशिश की गयी है। इसके फलस्वरूप समाज, प्रशासन एवं शासन सब कठघरे में खड़े दिखायी देते हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की यह रिपोर्ट आंकड़ों के आधार पर पूरे देश में दलितों की प्रताड़ना एवं पीड़ा को व्यापकता एवं गहराई से प्रस्तुत करती है। इसमें बताया गया है कि दलितों के नागरिक अधिकारों की रक्षा और उनके विरूद्ध अत्याचारों को रोकने के लिए बने कानूनों के तहत सबसे अधिक मामले बिहार एवं उत्तर प्रदेश में दर्ज होते हैं। इसकी बुनियादी वजह यह है कि दूसरे राज्यों की तुलना में बिहार एवं उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जातियों की आबादी कहीं ज्यादा है। बिहार एवं उत्तर प्रदेश के अलावा राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु ऐसे अन्य राज्य हैं, जहाँ अनुसूचित जातियों पर अधिक जुल्म हो रहे हैं।

इस रिपोर्ट की असली ताकत इन अत्याचारों के पीछे के कारणों की पहचान के प्रयास में निहित है। इसमें साफतौर पर रेखांकित किया गया है कि हिन्दू समाज की वर्ण व्यवस्था से उपजी सोच इसकी एक प्रमुख वजह है। दूसरी बात यह है कि ग्रामीण इलाकों में भूमि से जुड़े मामले दलितों पर अत्याचार का एक बड़ा कारण हैं। भूमि सुधारों की विफलता से अनुसूचित जातियों को वह आर्थिक सुधार नहीं मिल सका, जो उन्हें सामाजिक संरचना की काट में मददगार बनाता।

प्रतिवेदन में कहा गया है कि भूमि सुधारों को लागू करने के कुछ मामलों एवं कुछ राज्यों को छोड़कर कहीं सफलता नहीं दिखाई पड़ती। भूमि सुधारों का क्रियान्वयन राजनीतिक इच्छाशक्ति एवं नौकरशाहों में प्रतिबद्धता की कमी, कानूनों में मौजूद खामियों, भूस्वामियों की दांव-पेंच की व्यापक क्षमता, गरीबों के बीच संगठन के अभाव और अदालतों की अत्यधिक दखलंदाजी की

1 22 जुलाई, 2016

भेंट चढ़ गया। वितरण के लिए बहुत कम अतिरिक्त जमीन भूस्वामियों से प्राप्त की जा सकी। इस निराशाजनक स्थिति में यह शायद ही संभव था कि भूमि सुधारों का कुछ ठोस लाभ अनुसूचित जातियों को मिल पाए। इस तरह दलितों को उनकी कमजोर स्थिति एवं बेचारगी से उबारने के कारगर उपाय को भी बढ़ाया नहीं जा सका। इस स्थिति ने दलितों को कई जगहों पर एक नयी तरह की राजनीतिक सोच जो नक्सल और माओवादी विचारों से जुड़ने को मजबूर कर दिया है। कुछ ऐसे ही अवसर आते हैं, जब कोई दलित व्यक्ति किसी राज्य के मुख्यमंत्री की गद्दी तक जा पहुँचता है, पर वह भी सामाजिक संरचना एवं राजनीतिक समीकरण के दबाव में अपने समुदाय के हित में कोई मजबूत व असरदार निर्णय नहीं ले पाता। सामंती तत्वों के लिए यह स्थिति बर्दाश्त से बाहर साबित हुई है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि ‘अनुसूचित जाति की औरतों पर अत्याचारों की सबसे कड़ी मार पड़ती है। अनुसूचित जाति की औरतों के साथ हुए बलात्कार की गिनती बढ़ती गयी है।

❖❖❖

विश्व मानवाधिकार दिवस[1]

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में यह कथन था कि संयुक्त राष्ट्र के लोग यह विश्वास करते हैं कि कुछ ऐसे मानवाधिकार हैं जो कभी छीने नहीं जा सकते। मानव की गरिमा है। स्त्री–पुरुष के समान अधिकार हैं। इस घोषणा के परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर, 1948 को मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा अंगीकार की। इस घोषणा से राष्ट्रों को प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ और वे इन अधिकारों को अपने संविधान या अधिनियमों के द्वारा मान्यता देने और क्रियान्वित करने के लिए अग्रसर हुए। 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकृत और घोषित किया।

माओवाद एवं नक्सलवाद सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक संकट है। और इससे कारगर ढंग से निपटने के लिए, इसके कारणों का पता लगाना आवश्यक है। यद्यपि माओवाद एवं नक्सलवाद को उचित नहीं ठहराया जा सकता, तथापि हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि दूर–दराज के क्षेत्रों में बहुत से लोग ऐसी स्थितियों में रहते हैं जहां यह रोग पनप रहा है। यह सामान्य ज्ञान की बात है कि लंबे समय तक मानवाधिकारों का लगातार उल्लंघन विवादों, माओवाद एवं नक्सलवाद का मूल कारण है। आतंक और मानवाधिकारों की व्यापक अवहेलना होना तथा बेहतर भविष्य की आशा रखने वाले लोगों को उनके अधिकारों से वंचित रखना माओवाद एवं नक्सलवाद को पनपने के लिए उपजाऊ परिस्थितियां उत्पन्न करते हैं। बड़े पैमाने पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक भेदभाव राज्य के भीतर तथा बाहर विवादों को जन्म देते हैं। इसलिए, ऐसे विवादों को रोकने के लिए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को साकार करना चाहिए और इन अधिकारों को महत्व दिया जाना चाहिए।

अधिकांशत: माओवाद एवं नक्सलवाद ऐसे वातावरण में फलीभूत होते हैं जहाँ राज्य द्वारा मानवाधिकारों विशेष रूप से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की मनाही की जाती है और राज्य तथा गैर राज्य कार्यकर्ताओं द्वारा राजनैतिक अधिकारों का दण्डाभाव सहित उल्लंघन किया जाता है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों जैसे भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के अधिकारों की लगातार अवहेलना होना माओवाद एवं नक्सलवाद का कारणवाचक कारक है। विवादों, माओवाद एवं नक्सलवाद के समाधान की सटीक रणनीति से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का उपयोग सुनिश्चित करना होगा। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि मानव अधिकार मानव की अनिवार्य महत्ता को पहचान देते हैं।

ये केवल कानून और व्यवस्था के मुद्दे नहीं हैं और इनके गहरे सर्वव्यापक आर्थिक आयाम और मूल हैं, इसलिए इन गतिविधियों की रोकथाम और इनके नियंत्रण के लिए कानूनों का कारगर ढंग से प्रवर्त्तन और सुशासन अपरिहार्य है। माओवाद एवं नक्सलवाद से निपटने के लिए

---

1 10 दिसम्बर, 2017

मानवाधिकारों का संरक्षण और संवर्धन अनिवार्य है।

आज विकास, सुरक्षा और मानव अधिकारों में से कोई एक, अन्य दो के बिना सफल नही हो सकता। वास्तव में मानव अधिकार की पुरजोर वकालत करने वाला यदि मानव सुरक्षा और मानव विकास के लिए कुछ नहीं करता तो वह अपनी विश्वसनीयता और अपने ध्येय को ही कमजोर कर रहा है। गरीबों को इतना सजग बनाने की जरूरत है कि कोई उनका शोषण न कर सके। गरीबों के अधिकारों का संरक्षण करने की जरूरत है और यह तभी संभव है जब हम उन्हें अपने अधिकारों के बारे में जागरूक करें। भारत के संविधान की प्रस्तावना और संविधान के चतुर्थ भाग, अर्थात राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों से स्पष्ट है, हमारे संविधान निर्माता समाज के निर्बल वर्गों को सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता के प्रति पूर्णतः सजग थे। सामाजिक न्याय पूरे विश्व में, विशेषकर वैश्वीकरण के व्यापक संदर्भ में अति आवश्यक मुद्दा बन चुका है। वैश्वीकरण के कारण सरकारों और उनके नागरिकों के बीच संबंधों की पारंपरिक भूमिकाओं में बदलाव आ रहा है और यह सामाजिक-आर्थिक न्याय की प्राप्ति के लिए अनेक चुनौतियां पेश कर रहा है, चाहे वह विनाशकारी वित्तीय संकट के रूप में आवश्यक वस्तुओं के बढ़ते मूल्यों के रूप में हो या फिर विश्व व्यापार संगठन, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों जैसे परराष्ट्रीय निकायों के बढ़ते प्रभाव के रूप में हों। मानवाधिकारों को समाज के सभी सदस्यों, विशेषकर सरकार और उसकी एजेंसियों के व्यवहार की उपलब्धियों और सिद्धांतों के मानक के तौर पर देखा जाता है। मानवाधिकारों को समाज की आधारशिला माना जाता है और यदि उसका अनुपालन न किया जाए तो समाज बिखर जाएगा। मानव जाति के सम्मान की रक्षा और उसके उन्नयन से ही समाज को बनाये रखा जा सकता है।

❖❖❖

मानवाधिकारों का उल्लंघन[1]

देश में मानवाधिकारों के उल्लंघन की बढ़ती घटनायें विशेषकर दलितों के विरूद्ध होने पर विस्मय प्रकट करते हुए कहा है कि यह देश के विकास और राष्ट्रीय एकता अखंडता के लिये खतरे का संकेत है। देश के विभिन्न भागों में दलितों पर अत्याचार की अनेक घटनाएँ मीडिया रिपोर्टों में भरी हुई हैं।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने इसी प्रकार की पांच रिपोर्टों पर स्वतः संज्ञान लिया। ये घटनायें इस बात की ओर इशारा करती हैं कि हम कानून एवं राज्य नीतियों के माध्यम से यद्यपि स्थिति को बदलने का प्रयास कर रहे हैं परन्तु हमारी सोच पूर्वाग्रहों से ग्रसित होने के साथ-साथ समाज के हाशिये के लोगों के सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा के प्रति निरंतर दिखने वाली द्वेष की भावना का भी प्रतीक है और अपितु उनके बीच बढ़ते वर्ग संघर्ष का भी द्योतक है। हमारे समाज में लोगों के अस्तित्व का मूल्यांकन उनकी स्थिति जैसे बड़ा और छोटा, अमीर और गरीब, जाति एवं वर्ग, पद एवं स्थान, ग्रामीण एवं शहरी के होने की विभाजनकारी प्रवृत्तियों ने संभवतः हमारे संविधान निर्माताओं को कानून के समक्ष समानता के अधिकार के महत्त्व पर जोर देने तथा जाति, वर्ग संप्रदाय के आधार पर भेदभाव को दूर करने के लिये राज्य नीति के दस्तावेजों में उपायों को रखने हेतु मजबूर किया है। संवैधानिक प्रावधान एवं राज्य नीतियां इस प्रकार प्रकल्पित की जाती हैं कि वे हमारे समाज को सैद्धान्तिक रूप से ऐसा जीवन जीने को प्रेरित करें जिसमें लोगों के बीच भेदभाव व पक्षपात न हो। संवैधानिक प्रावधानों से अब हमारे समाज के दृष्टिकोंण में काफी बदलाव आया है। जब हम बदलाव के हमारे संकल्प को पूरा करने में असफल होते हैं तो अधिनियम, कानून, नीतियाँ बदलाव हेतु सशक्त दस्तावेजों के रूप में प्रस्तावित किये जाते हैं। हालांकि कोई अधिनियम, कानून तथा नीति सोच को नहीं बदल सकते, जब तक की कोई इसे बदलने की ठान न ले। हम क्यों नहीं अपने आप में बदलाव लाने का संकल्प करते ताकि हमारे नागरिकों के बीच किसी प्रकार के भेदभाव की धारणा को दूर किया जा सके? सामाजिक आदेश एवं स्थिति का मूल तत्त्व बेहतर सेवा करना है न कि एक दूसरे पर शासन करना, क्योंकि स्वंय के रूप में हम बराबर पैदा हुए हैं।

मानव अधिकारों के उल्लंघन की बढ़ती रिपोर्टों से इसके प्रति बढ़ती जागरूकता के साथ-साथ हमारे कर्तव्यों के प्रति आदर की भावना की कमी का भी संकेत है। यदि अधिकार हमारे हितों की रक्षा करते हैं, तो हमारे कर्त्तव्य दूसरों के अधिकारों का संरक्षण सुनिश्चित करते हैं। मानव अधिकारों में सभी अधिकार समाहित हैं, जिनका उल्लंघन नहीं हो सकता, यदि हम अपने कर्त्तव्यों का बेहतर तरीके से निर्वहन करें। वास्तव में हमारा देश प्रगतिशील तभी बनेगा, जब हम इसके नागरिक के रूप में ऐसी सोच तथा कार्यों को करेंगे, जो उद्देश्यपरक एवं संतुलित हों, जो दूसरों की संवैधानिक स्वतंत्रताओं को नष्ट न करें। इस दिशा में राज्य, संवैधानिक एवं वैधानिक निकाय केवल हमारे पथ प्रदर्शक हैं। ❖❖❖

1 20 नवम्बर, 2018

सूचना का अधिकार[1]

लोकतंत्र में सरकार के कामकाज का मूल्यांकन सही मायनों में केवल जनता द्वारा ही किया जा सकता है। जनता की कसौटी पर खरा उतरने वाली व्यवस्था को ही सफल माना जा सकता है। इसके लिए जनता को सरकारी सूचनाओं व जनप्रतिनिधियों के कार्यकलापों की सही जानकारी होना पहली प्राथमिकता है। किसी भी सफल लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता को यह अधिकार होना अनिवार्य है।

केन्द्र की संप्रग सरकार ने वर्तमान कानून के स्थान पर नया अधिनियम लागू किया है। अधिनियम सूचना के अधिकार को संविधान के मौलिक अधिकारों की श्रेणी में सम्मिलित करने के बाद जनता के हाथों में कारगर माध्यम साबित हो सकता है। इस अधिनियम को पारदर्शी सुनिश्चित करने की दिशा, एक नए युग की शुरुआत है। यह भी उम्मीद व्यक्त की जा रही है कि आम नागरिकों को सूचना का अधिकार मिलने से जवाबदेह प्रशासन को हकीकत में बदला जा सकेगा। सूचना के अधिकार के कार्यक्षेत्र में उन सभी संस्थाओं को शामिल करना उचित होगा, जिन्हें केन्द्र या राज्य सरकारों से सरकारी अनुदान प्राप्त होता है। देश की सुरक्षा या विदेशों से संबंधों की आड़ में इस अधिकार को सीमित करने से इसके कार्यान्वयन में कई बहाने ढूँढ़े जा सकते हैं। सूचना जबरन छिपाने के दोषी अधिकारियों को दंडित करने का प्रावधान तो अधिनियम में है, लेकिन इसकी पुष्टि करने की प्रक्रिया इतनी जटिल बना दी गई है, जिसके चलते दोषी व्यक्तियों का बच निकलना आसान हो सकता है। जनता से सूचना छिपाने वालों को तुरंत दंडित करने का प्रावधान होना जरूरी है, तभी इस अधिकार का सफल कार्यान्वयन होना संभव है, अन्यथा नहीं।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में ईमानदार व जवाबदेह शासन के लिए जनता को यह जानने का हक होना चाहिए कि उससे संबंधित फैसलों को लेते समय जन प्रतिनिधियों या जवाबदेह अधिकारियों ने कौन से आधारों पर फैसलों पर मुहर लगाई है। जब मौजूदा अधिनियम में फैसले की प्रक्रिया से संबंधित बहस या दस्तावेजों को गोपनीयता की आड़ में छिपाए जाने का प्रावधान है तो इस अधिकार की उपादेयता पर सवाल उठना स्वाभाविक है। इस प्रावधान की पुनर्समीक्षा होनी चाहिए। अगर सरकार की नीयत वास्तव में जनता को पारदर्शी प्रशासन देने की है तो इस अधिनियम की संभावित खामियों को दूर करना ही होगा, अन्यथा यह भी अन्य फैसलों की तरह केवल प्रचार का एक और जरिया बन कर रह जाएगा। यह दौर भूमंडलीकरण का है, जिसकी मूल आत्मा है, निजीकरण यानी जीवन और समाज के हर क्षेत्र में सरकारों की भूमिका घटाकर निजी क्षेत्र की भूमिका बढ़ाना–यही दर्शन भूमंडलीकरण के मौजूदा दौर का मूलमंत्र है। ऐसे में केवल सरकारी क्षेत्र को ही इस अधिनियम के दायरे में रखना कहीं न कहीं जीवन और समाज के एक व्यापक हिस्से को जवाबदेही की सीमा से बाहर करना है, जो खतरे का आभास देता है। जब समाज में

1 9 फरवरी, 2007

निजी क्षेत्र प्रभावी हो रहा हो, तब उसे जरूर ही सूचना के अधिकार कानून के दायरे में लाना होगा। बहुर्राष्ट्रीय कम्पनियों, निजी क्षेत्र के उद्यम, फर्म और अन्य संस्थाओं पर आखिर अंकुश कैसे लगेगा? सेबी और कम्पनी कानूनों से ही यह संभव हो पाता तो देश में लाखों-करोड़ों रुपये के आये दिन शेयर घोटाले और हवाला कांड न होते।

भ्रष्टाचार के मकड़जाल में फंसी भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में सूचना का अधिकार एक क्रांतिकारी कदम साबित होगा, जो प्रशासन में पारदर्शिता एवं संश्लेषण को संवर्द्धित करेगा। सूचना के अधिकार से जनता को उपेक्षित रखने का कारण राजनीतिज्ञों, अपराधियों, नौकरशाहों एवं उद्योगपतियों के गठजोड़ का प्रभावशाली होना है। जनसमान्य को सूचना का अधिकार प्राप्त होने से उक्त गठजोड़ की विखंडित होने की प्रक्रिया निश्चित ही आरंभ हो जायेगी। गोपनीयता की आड़ में खेले जा रहे भ्रष्टाचार के घिनौने खेल का भंडाफोड़ हो जाएगा।

❖❖❖

बिहार दिवस[1]

1912 में बिहार राज्य की स्थापना हुई थी। 'बिहार दिवस' पर हमें स्मरण करना चाहिए कि शिक्षा की समृद्धि ही विकास की आधारशिला है।

शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक रूप से समृद्ध रहने वाले सभी स्तर के शिक्षण संस्थान धीरे-धीरे आज बुरी अवस्था में चले गये हैं। पिछले कुछ वर्षों में बिहार में बहुआयामी विकास का दौर शुरू हुआ है। शिक्षा में लगातार गुणात्मक ह्रास लगातार जारी है। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा को हर तरह से मजबूत किये बगैर बिहार का विकास संभव नहीं है। अन्य राज्यों की श्रेणी में बिहार विकास के मामले में खरा नही उतरता, इसलिए बिहार दिवस के अवसर पर आम लोगो को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास करना है।

किसी भी राज्य एवं समाज के विकास का आधार स्तम्भ शिक्षा ही हो सकता हैं। बिहार के विकास का सपना तभी पूरा होगा जब आधारभूत संरचना शिक्षा के क्षेत्र में बेहतर होगा। आज प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा की स्थिति अत्यन्त दयनीय बनी हुई है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि अधिकतर छात्र जिनके माता-पिता सक्षम हैं वे अपने बच्चों को दूसरे राज्यों में शिक्षा ग्रहण कराना पसंद करते हैं। शिक्षा के लिए दूसरे राज्यों में जाना और इस राज्य में आना राष्ट्रीय एकता के विकास में एक सकारात्मक कदम हो सकता है परन्तु शिक्षण संस्थानों की खस्ता हालत की वजह से छात्रों का बाहर जाना एक दुखद पहलू है। वर्त्तमान स्थिति की समीक्षा की जानी चाहिए।

प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा को हर तरह से मजबूत करना होगा। शिक्षा को मजबूत करने का अभिप्राय गुणवत्ता से है और गुणवत्ता की लक्ष्य की प्राप्ति तभी संभव है जब हमारे शिक्षक भी गुणवत्ता से परिपूर्ण हो, कर्मठ हो और अपने विद्यार्थी के प्रति समर्पित हो। सरकारी तंत्र में शिक्षकों के वेतन भी पहले की तुलना में बढ़े हैं। अब यह शिकायत नहीं की जा सकती कि वेतनमान में शिक्षकों के साथ अन्याय किया जा रहा है। हालांकि कुछ स्तर के शिक्षकों में विषमता या कमियां हैं जिसमें सुधार किया जा सकता है। इसमें सुधार शिक्षको को योग्यता प्रशिक्षण देकर किया जा सकता है। योग्य शिक्षकों को प्रोत्सहित कर उनकी योग्यता का भरपूर लाभ छात्रों को दिया जा सकता हैं। इसके लिये एक सशक्त व्यवस्था की आवश्यकता है। अधिकारियों के कार्यो में शिक्षा के कार्य को प्रमुखता से जोड़ा जाए। उसी प्रकार महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में प्रभावी व्यवस्था बनाने की पूरी जिम्मेवारी प्रार्चायों और कुलपतियों को दी जानी चाहिए। संस्थानों को नजरअंदाज कर बिहार आगे नहीं बढ़ सकता है। गतिमान तरीके से योजना बनाकर ही आगे बढ़ा जा सकता है।

बिहार की स्थिति ऐसी है कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अभाव में यहां के अभिभावक जमीन जायदाद बेचकर अपने बच्चों को बाहर पढ़ाना चाहते हैं। राज्य सरकार का यह नैतिक दायित्व

1 20 मार्च, 2017

बनता है कि जो संस्थाएं दयनीय स्थिति में हैं उनमें सुधार किया जाए। साथ ही पाठ्यक्रमों में बदलाव की भी आवश्यकता है। बदलते माहौल में पुराने पाठ्यक्रम नहीं चल सकते। राज्य सरकार को इसके लिये पहल करनी होगी। बिहार में दलित एवं अत्यन्त पिछड़े छात्रों को उच्च कोटि की शिक्षा नहीं मिल पा रही है। गरीबी, पिछड़ापन एवं अभिभावकों की अनेक लाचारियों के कारण बच्चों का नामांकन नहीं हो पाता है।

सरकार की निष्क्रियता एवं शिक्षा के प्रति पिछले दशकों से उपेक्षापूर्ण नीति के कारण प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा में पूर्णतः अराजकता व्याप्त है। शिक्षा राज्य का मौलिक दायित्व है ताकि प्रत्येक भारतीय को वर्ग, वर्ण, जाति-रंग सामाजिक-आर्थिक स्तरों से निरपेक्ष होकर गुणवत्तापूर्ण उच्च स्तरीय शिक्षा की संस्था तक पहुँचाया जाए। अनिवार्य शिक्षा अधिकार कानून लागू होने के बाद नामांकन की दर में तो बढ़ोतरी हुई है, पर पढ़ाई-लिखाई का स्तर बेहद सोचनीय है।

अभी भी सारे प्रयत्नों के बाद भी बिहार में दलित केवल 37 प्रतिशत साक्षर हैं। शिक्षा की मुख्य धारा से कृषि मजदूर और अन्य वर्ग के लोग बड़ी संख्या में अलग हो रहे हैं। बिहार में आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, कृषि एवं अन्य क्षेत्रों के विकास की योजनाएं तो बनती हैं परन्तु प्रभावी नही हो पाती हैं। किसान और मजदूर के बच्चे अगर शिक्षा की मुख्य धारा में सम्मिलित नहीं किये जा सकेंगे तो बिहार कभी भी आधुनिक बिहार नहीं बन सकता है।

❖❖❖

पटना का नाम पाटलिपुत्र[1]

बिहार की गौरवमयी परंपराओं को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह उचित होगा कि कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के नाम परिवर्तन के बाद पटना का नाम पाटलिपुत्र किया जाए, क्योंकि 'पाटलिपुत्र' प्रमाणित तथ्यों जो अशोक गिरनर इदुक नं०-5 और उनके सारनाथ के स्तंभ में अंकित है, की अनदेखी नहीं की जा सकती। पाटलिपुत्र की विशेषता और महत्ता का विवरण प्राचीन भारतीय इतिहास, ग्रीक एवं चीन के इतिहास में वर्णित है। मौर्य शासनकाल में चन्द्रगुप्त और उनके पुत्र अशोक के समय पाटलिपुत्र को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गौरवपूर्ण स्थान मिला था। ग्रीक ने भी अपने इतिहास में 'पाटलिपुत्र' का उल्लेख किया है। राजगीर के स्थान पर पाटलिपुत्र को राजधानी इसलिए बनाया गया था कि यहाँ सारी सुविधाएँ उपलब्ध थी। पर्याप्त अच्छी भूमि, पानी एवं जल मार्ग की सुविधा थी। मेगास्थनीज के लेखन में भी इस क्षेत्र के उत्पादन, शैक्षणिक संस्थाओं, संस्कृति एवं शिक्षा का विवरण प्रस्तुत है। उनके लेख में सांस्कृतिक परंपराओं का विवरण भी प्रस्तुत है। पातंजलि की पुस्तक एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मेगास्थनीज का विचार उद्धृत हुआ है।

पाटलिपुत्र की महत्ता समुद्रगुप्त के समय में और बढ़ी। यहाँ उन्होंने अश्वमेघ यज्ञ पूर्ण किया था। यहीं विक्रमादित्य, महान कवि कालीदास समेत नवरत्न विराजमान रहे। पाटलिपुत्र में फाहियान ने आकर उसकी विशेषताओं की अलग से चर्चा की। फाहियान के लेख में अशोक की भव्य महल की चर्चा है। बाद के वर्षों में 'पाटलिपुत्र' का अनेक कारणों से अवसान हुआ और उसी अवसान के बाद हुँमायू को पराजित करने के बाद शेरशाह का आगमन हुआ। उन्होंने अपने को बिहार और बंगाल का शासक घोषित किया। पाटलिपुत्र को पुनः सत्ता का केन्द्र बनाया। बाद में तत्कालीन परिस्थिति के अनुरूप शेरशाह ने ही पाटलिपुत्र का नाम बदलकर पटना किया। उन्होंने ही पटना में विशाल राजधानी बनायी और उनके ही राजमहल को पूरब दरवाजा पश्चिम दरवाजा के नाम से ख्याति मिली। उन्होंने पाटलिपुत्र के अवशेषों की नवीनता को साथ संजोये रखा। उस पटना में जलान किला हाउस को छोड़कर अन्य अवशेष नहीं दीखते हैं। आधुनिक बिहार का प्रादुर्भाव शेरशाह ने ही किया था।

1574 में अकबर ने पटना पर कब्जा किया और मुगल शासन की सुदृढ़ीकरण के लिए बिहार की महत्ता समझी और उनके राजपाल ने शेरशाह द्वारा नामित पटना को राजधानी बनाया। बिहार के लिए जहाँगीर के समय से राजकुमार को भेजा जाने लगा। पटना की महत्ता उस समय बढ़ी, जब औरंगजेब के पौत्र राजकुमार अजीम उन्साह के नाम पर पटना का नाम अजीमाबाद किया गया। राजकुमार अजीम उन्साह ने अजीमाबाद को विकसित कर दिल्ली की तरह शहर

1 5 फरवरी, 2006

बनाने की योजना बनायी थी, उसके बाद हिन्दू–मुस्लिम कवियों ने अपने नाम के साथ अजीमाबादी शब्द जोड़ना प्रारंभ किया। प्रो० एस०एस० असकरी ने अपनी पुस्तक में पटना के विभिन्न मोहल्लों का नाम उस समय के विभिन्न राज घरानों के नाम से किया। जिस तरह महेन्द्रु मुहल्ला अशोक के भाई के नाम से है। पीरबहोर और सुल्तानगंज मुहल्ला उस समय के संतों का नाम है। अकबर ने बिहार को स्वतंत्र पहचान देकर 'पटना' को राजधानी बनाया। चन्द्रगुप्त, अशोक और चाणक्य द्वारा विकसित एवं गौरवान्वित पटना का नाम पाटलिपुत्र ही हो सकता है। अत: बिहार सरकार को बंगाल, महाराष्ट्र और तमिलनाडु की तरह पटना का नाम पाटलिपुत्र करने के लिए अनुशंसा भारत सरकार से करनी चाहिए।

❖❖❖

संस्कृत दिवस[1]

'संस्कृत' असंख्य कारणों एवं दृष्टिकोणों से पूरे विश्व के लिये, खासकर भारत के लिये अतुलनीय प्रतिष्ठा के साथ जीवन-पद्धति एवं देश की एकता और अखण्डता की शिक्षा देती है। संस्कृत भाषा को आज की सूचना प्रौद्योगिकी के लिए विश्व की सबसे उपयुक्त भाषा माना गया है। वेद, पुराण, दर्शन, ज्योतिष और साहित्य हमारी संस्कृति के स्मृति-चिन्ह हैं जिन्हें भुलाकर हम स्वयं को ही भुला बैठेंगे।

केन्द्र एवं राज्य सरकार को चाहिए कि इस भारतीय धरोहर को विनष्ट होने से बचाने के लिए सभी संभव प्रयत्न करें एवं इस संबंध में कड़े निर्देश जारी करे ताकि संस्कृत शिक्षा की धारा सूखने नहीं पाए। संस्कृत शिक्षा, संस्कृत एकेडमी एवं शिक्षकों के लिए पूर्व की सरकार द्वारा लिए गए सभी निर्णयों और आदेशों का ईमानदारी पूर्वक कार्यान्वयन किया जाए। संस्कृत हमें देश की एकता और अखंडता की शिक्षा देती है और संस्कृत भाषा सूचना प्रौद्योगिकी के लिए विश्व की सबसे उपयुक्त भाषा मानी गयी है। संस्कृत के पठन-पाठन की अनिवार्यता निर्द्वन्द्व, निर्विवाद एवं राष्ट्रीय एकतापरक है।

संस्कृत वस्तुतः एक ऐसी भाषा है, जिसका भारत की किसी भी भाषा के साथ विरोध नहीं है। भारतीय समाज की वास्तविक एकता और अखंडता के लिये संस्कृत का अध्ययन लाभकारी है। इससे बढ़कर इसकी महत्ता का और क्या प्रमाण हो सकता है? आज हमारा समाज मूल्यों के संकट से घिरा हुआ है। इतनी तेजी से हमारे सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है कि उससे समाज का प्रत्येक व्यक्ति चिन्तित है। ऐसे कठिन समय में संस्कृतज्ञों का दायित्व है कि वे हमारे प्राचीन धर्म ग्रंथों जैसे रामायण, भगवद्गीता और उपनिषद् इत्यादि में निहित नैतिक मूल्यों का जनता में अधिक से अधिक प्रसार एवं प्रचार करें, जिससे भारतीय समाज में आई हुई बुराइयों को समाप्त कर उत्कृष्ट एवं उदात्त मूल्यों को बढ़ावा दिया जा सके।

❖❖❖

1 07 अगस्त, 2017

संस्कृत का अपमान[1]

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल टी० राजेश्वर ने संस्कृत के विरुद्ध अपमानजनक बातें कही हैं। संस्कृत का अपमान भारतीय आत्मा का अपमान है। जबकि भारतीय संविधान में ही यह प्रावधान है कि भारत की राज भाषा हिन्दी होगी, किन्तु जब नवीन शब्दों की आवश्यकता होगी तो उन्हें संस्कृत से लिया जायेगा या संस्कृत के आधार पर बनाया जायेगा। यही कारण है कि हमारी वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली को संस्कृत भाषा के आधार पर ही बनाया गया है। संस्कृत संपूर्ण भारत में समझी, पढ़ी एवं बोली जाती रही है, जो किसी धर्म, जाति या क्षेत्र विशेष से जुड़ी हुई नहीं है। इसलिए वह राष्ट्र को जोड़ने और उसे भावात्मक एकता के दृढ़ सूत्र में बांधने में पूर्णतया समर्थ है।

महात्मा गांधी ने अपनी जीवनी में एक स्थान पर लिखा है कि प्रत्येक भारतीय को थोड़ी ही सही पर संस्कृत अवश्य पढ़नी चाहिये। संस्कृत संसार की सर्वाधिक प्राचीन भ. ाषा है, जो आज भी जीवित तथा सुरक्षित है। आज विश्व के प्रायः प्रत्येक विकसित देश में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा रूस के अनेक विश्वविद्यालयों में संस्कृत के बड़े-बड़े विभाग हैं, जिनमें संस्कृत पढ़ने वाले अनेक विदेशी छात्र हैं और संस्कृत के अनेक उत्तम शोध ग्रंथों का वहाँ से प्रकाशन होता है। इस प्रकार आज संस्कृत केवल भारत तक ही सीमित नही है, बल्कि यह विश्व की एक बहुत परिचित भाषा बन चुकी है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 351 में हिन्दी का प्रचार-प्रसार केन्द्र का कर्तव्य है। हिन्दी को समृद्ध करने के लिए संस्कृत से शब्द लेने के सुस्पष्ट संवैधानिक निर्देश हैं, बावजूद इसके एक संविधान प्रमुख संस्कृत को अपमानित कर रहे हैं। सैम पित्रोदा और राजेश्वर जैसे लोगों के मुताबिक अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। यह रोजगार देती है। भाषा रोजगार नहीं देती। रोजगार देना राष्ट्र-राज्य का कर्तव्य है। सवाल है कि जो संस्कृत और हिन्दी काव्य, साहित्य दर्शन, विज्ञान, प्रीति और प्रेम की सहज अभिव्यक्ति है, वही विज्ञान और व्यापार की सशक्त भाषा बन सकती है। हिन्दी राष्ट्रभाषा व राष्ट्रीय अभिव्यक्ति है। संस्कृत देव भाषा और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। इन्हें रोजगार परख बनाना राज्य व्यवस्था का काम है। उत्तर भारत की सभी भाषाएँ संस्कृत से ही निकली है। दक्षिण भारत की भी प्रायः सभी भाषाओं पर संस्कृत का विपुल प्रभाव है। अधिकतर भारतीय भाषाओं की साहित्यिक तथा दार्शनिक शब्दावली संस्कृत से ही बनी है। दूसरे शब्दों में भारत में बोली जानेवाली प्रत्येक भाषा पर अधिक अच्छा अधिकार प्राप्त करने के लिए संस्कृत का ज्ञान उपयोगी तथा अपेक्षित है।

❖❖❖

---

117 फरवरी, 2007

मैथिली अष्टम् सूची में शामिल[1]

निर्मली में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहार बाजपेयी द्वारा कोशी रेल महासेतु का शिलान्यास करते हुए तीन करोड़ मैथिली भाषा-भाषियों की चिर अपेक्षित मैथिली को संविधान की अष्टम् सूची में सम्मिलित करने की घोषणा की गयी।

मैथिली भाषा की साहित्यिक सम्पन्नता और विशिष्टता को देखते हुए ही 1953-54 में पंडित ललित नारायण मिश्र की पहल पर तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने मैथिली को 'साहित्य अकादमी' में भारतीय भाषाओं की सूचियों में सम्मिलित किया था। उसके बाद निरन्तर विभिन्न संगठन और संस्थानों द्वारा मैथिली को संविधान की अष्टम् सूची में सम्मिलित कर भारतीय भाषाओं की सूची में सम्मिलित करने की मांग उठती रही है। 1977 में कर्पूरी ठाकुर की सरकार ने और 1980 में मेरी सरकार ने केन्द्र सरकार से संविधान संशोधन कर मैथिली को संविधान के अनुच्छेद 344/ए और अनुच्छेद 351 के अन्तर्गत अष्टम् सूची में सम्मिलित करने की अनुशंसा की थी।

1976 में मैथिली के सवर्द्धन एवं संरक्षण के लिए मैथिली अकादमी की स्थापना की थी। अनेक विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में मैथिली का स्नातकोत्तर अध्ययन-अध्यापन और शोध की मान्यता दी थी। मैथिली भाषा-भाषी की अनेक संस्थाओं ने केन्द्र और राज्य स्तर पर लगातार आन्दोलन जारी रखकर केन्द्र सरकार पर दबाव बनाये रखा। इन आन्दोलनों की वास्तविकता को स्वीकार करते हुए ही 26 अप्रैल, 1996 को दरभंगा में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव ने मैथिली को अष्टम् सूची में शामिल करने की घोषणा की थी। लेकिन चुनाव के बाद उनकी सरकार नहीं बनने के कारण यह घोषणा पूरी नहीं की जा सकी।

जहाँ बिहार की राष्ट्रीय जनता दल सरकार ने मैथिली को बिहार लोक सेवा आयोग में चयनित विषयों की सूची से हटाकर मैथिली भाषा-भाषियों के प्रति पूर्वाग्रह, अपमान और अन्याय प्रदर्शित किया है, वहीं प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने मैथिली को संविधान की अष्टम् सूची में शामिल करने की घोषणा करके मैथिली भाषा-भाषियों को सम्मानित एवं लाभान्वित किया है।

❖❖❖

1 7 जून, 2003

मैथिली का विकास[1]

मैंने अपने मुख्यमंत्रित्वकाल में मैथिली अकादमी की स्थापना इस उद्देश्य से की थी कि मिथिलांचल में बिखरे विस्तृत मैथिली की अप्रकाशित साहित्य का संकलन तथा प्रकाशन हो। मैथिली की परंपराओं और आचार एवं व्यवहार जीवंत हो और साथ ही नई पीढ़ी में मिथिला की परंपरा और साहित्य के प्रति आकर्षण हो। नई पीढ़ी समर्पण की भावना से मिथिलांचल की सेवा विभिन्न रूपों में करने में सफल हों। मिथिलांचल की महिलाओं में मैथिली लोक गीत अभी भी जीवंत है, किन्तु प्रकाशित नहीं हो पाई है। मिथिला की लोक संस्कृति, परंपरा और व्यवहार में आघात होने की संभावना निरंतर बनती जा रही है। उसे रोका जाए और पुनर्जीवित किया जाए। मैथिली अकादमी को इस उद्देश्य की प्राप्ति में बहुत सफलता नहीं मिल पायी।

चेतना समिति से भी अपेक्षा रही है कि देश के विभिन्न हिस्सों में बिखरे मैथिली साहित्य के विद्वानों, लेखकों और नाटककारों को संगठित कर मिथिलांचल की सांस्कृतिक परपंरा को और भी सुदृढ़ और मजबूत करे। यह समिति एक संघीय रूप ले और उसकी इकाई देश के विभिन्न हिस्सों में बनायी जाए।

मैथिली भाषा को बिहार लोक सेवा आयोग में चयनित विषय की सूची से 90 के दशक के बाद हटाया गया। उच्च न्यायालय द्वारा उस निर्णय को निरस्त करने के बावजूद भी मैथिली भाषा-भाषियों द्वारा संगठित संघर्ष नहीं किये जाने के कारण मैथिली भाषा पर बड़ा आघात पहुँचा। 2005 में राजनीतिक बदलाव होने के बाद मैथिली भाषा को पुनः बिहार लोक सेवा आयोग के चयनित विषय सूची में वापस किया गया। केन्द्र में श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली सरकार में मैथिली को संविधान की अष्टम् सूची में सम्मिलित किया गया।

अब मैथिली भाषा संघ लोक सेवा आयोग में सम्मिलित भी है। परंतु यह लोकोपयोगी और व्यापक जनाधार तभी ले सकेगी जब मैथिली भाषा के प्रति जागृति व चेतना लोगों में उत्पन्न की जाए जो ऐसे आयोजनों से संभव हो सकता है।

❖❖❖

1 15 दिसम्बर, 2014

मिथिलांचल की अवस्था दयनीय[1]

बिहार को बीमारू राज्य इसलिए कहा जाता है कि यहाँ उद्योग, सिंचाई, बिजली, कृषि उत्पादन विकास राष्ट्रीय औसत से लगातार बहुत कम है। बिहार का धन-विनिवेश स्तर और विकास की दर कमजोर होने का मुख्य कारण है कि यहाँ विनिवेश का वातावरण अनुकूल नहीं है। इसके अनेक कारण हैं जैसे घटिया किस्म की आधारभूत संरचना (सड़क, बिजली, पानी, दूरसंचार साधन), कमजोर वित्तीय-बाजार और उधार मिलने के साधन का अभाव, निपुण श्रमिकों की कमी, कमजोर कानून-व्यवस्था और यदि कोई उद्यमी विनिवेश करना चाहे तो उसे राजनीतिक समर्थन नहीं मिलता है।

सरकार की विकास-नीति में प्राथमिकता दी जाने वाली दो महत्वपूर्ण बातें हैं, बिहार की कमजोर आधारभूत संरचना को ठोस बनाना तथा कानून और व्यवस्था को दुरुस्त करना।

बिहार की पुरानी मिलें एक-एक कर क्यों बंद होती गयीं और नये उद्योग क्यों नहीं बन पाये? 36 रुग्ण बंद उद्योग क्यों नहीं चालू हुए उनमें 1989-90 में निम्नांकित इकाईयों के पुनर्वास के कुछ मामले पर तत्कालीन सरकार ने निर्णय लिया था और धन आबंटन भी किया था:- उसमें (1) रोहतास इन्डस्ट्रीज लि॰ (2) अशोक पेपर मिल, दरभंगा (3) डुमराँव टैक्सटाइल्स लि॰ डुमराँव (4) गंगा बनस्पति लि॰, रोहतास (5) हथुआ वनस्पति लि॰ (6) श्री सारण इंजीनियरिंग वर्क्स। (7) फुलवारी शरीफ काटन मिल, फुलवारी शरीफ, पटना (8) कटिहार जूट मिल, कटिहार (10) ठाकुर पेपर मिल, समस्तीपुर। (11) हथुआ बनस्पति। (12) डुमराँव टैक्सटाइल्स लि॰ (13) बिहार कॉटन मिल, फुलवारी शरीफ।

1996 में 16 चीनी मिल बंद किये गये उनको क्यों नहीं चालू किया गया? जिसमें रैयाम, लोहट, सकरी, बनमन्खी जैसे मिल सम्मिलित हैं। बैद्यनाथपुर कागज कारखाना क्यों नहीं बना? पण्डौल, सीवान और भागलपुर सूत मिल क्यों बंद पड़ी हैं? दरभंगा और मुजफ्फरपुर औद्योगिक प्राधिकार के विघटन का क्या औचित्य रहा? गण्डक, सोन, कोशी, क्यूल, बडुआ, कमाण्ड एरिया डेभलपमेंट ऑथरिटी के साथ-साथ कोशी विकास प्राधिकार वर्षों से पूर्णत: निष्क्रिय है।

80 के दशक में 37 इन्डस्ट्रीयल स्टेट स्थापित किये गये वे भी पूर्णत: निष्क्रिय और ठप्प रहे। बिहार की पिछली सरकार द्वारा स्वीकृत निम्नलिखित उद्योगों का निर्माण भी नहीं हुआ:-(1) पूर्णियां-कताई मिल, यीस्ट, औद्योगिक गैसें एवं फलों के उत्पाद। (2) अररिया-गेहूँ के उत्पाद एवं रेशम। (3) किशनगंज-जूट टर्वाइन, राइस ब्रान आयल और रेशम। (4) कटिहार-ब्लो मोल्डेड प्लास्टिक प्रोडक्ट, केला परिष्करण, रेलवे के लिये सहायक सामग्रियाँ। (5) मधेपुरा- हड्डी परिष्करण, कृषि संबंधी औजार एवं कृषि पर आधारित उद्योग। (6) सहरसा-चीनी मिल एवं कागज मिल। (7) खगड़िया-डिस्पोजेबल सिरिंज एवं मकई उत्पाद। (8) बेगूसराय-कार्बन ब्लैक, एरोमेटिक कम्पलेक्स, पेट्रो नेप्थलीन। (9) दरभंगा-औद्योगिक गैस, गेहूँ उत्पाद, औषधि

---

1 30 अक्टूबर, 2015

निर्माण, रेक्टीफाईड स्प्रीट और साइट्रिक एसिड। (10) "फ्लोर मिल, कागज उत्पाद, आलू परिष्करण, मल्टी वॉल पेपर सैक। (11) समस्तीपुर-औद्योगिक अल्कोहल, पार्टिकिल बोर्ड, पोटेबल अल्कोहल। (12) मुजफ्फरपुर-इथाइल ऐसिटेट, फाइन केमिकल, मल्टी कलर पी०वी०सी०, "फ्लोरिंग कारपेट और औद्योगिक गैस। (13) सीतामढ़ी-एसिटिक एसिड, इथाइल अल्कोहल, इथाइल यार्न, एसिटेट, चीनी मिल का विस्तार, औद्योगिक धागे। (14) वैशाली-खाद्य उत्पाद, आइसक्रीम, कांच की बोतल, ग्लास ट्यूब, वैज्ञानिक उपयोग की कांच की सामग्रियाँ आयरन ऑक्साइड। (15) छपरा- छपाई के कागज, माइक्रो सोल। (16) सिवान-गेहूँ उत्पाद, चीनी मिलों का विस्तार। (17) गोपालगंज- चीनी मिल का विस्तार, रेक्टीफायड स्प्रीट, एसिटोन। (18) पं० चम्पारण- वनस्पति तेल, औद्योगिक गैसें, कागज कारखाना, चीनी मिल। (19) पू० चम्पारण-गेहूँ उत्पाद, चीनी मिल का विस्तार। (20) रोहतास-सल्फयूरिक एसिड एवं सिंगल सुपर फास्फेट, सिमेंट कारखाना का विस्तार, रोहतास उद्योगों का पुनरुद्धार। (21) औरंगाबाद-वनस्पति घी, हार्ड एण्ड सॉफ्ट फेराइटस, धुआंरहित ईंधन। (22) भोजपुर-सिंथेटिक धागे, डुप्लेक्स पेपर और औद्योगिक गैसें, ग्लेज्ड टाइल्स। (23) गया-आटा मिल, खनिज परिष्करण, हाई टेन्साईल बोल्टस का विस्तार, सेनिटरीवेयर। (24) जहानाबाद-आधुनिक चावल मिल, फेब्रिकेटेड स्वीच और क्रासिंग। (25) पटना-कौडलेस टेलीफोन, इण्डस्ट्रीयल और कम्प्यूटर स्टेशनरी। (26) नालन्दा-औद्योगिक अल्कोहल, ट्रांसफारमर ऑयल, आलू एवं जंगली उत्पाद पर आधारित पोटेबुल अल्कोहल। (27) नवादा- लो-एलॉय कास्टिंग। औद्योगिक नीति के बावजूद राज्य के विभिन्न जिलों में पिछले दशकों से औद्योगीकरण नहीं हो रहा है।

2008 की कोशी प्रलयकारी बाढ़ से उत्पन्न त्रासदी की समस्या का समाधान 7 वर्ष बीतने के बाद भी नहीं हो पाना दुःखद है। अभी तक मुख्य कोशी नहर और उप नहर पुनर्निमित नहीं होने के कारण सिंचाई पूर्णतः ठप्प है। उनके द्वारा घोषित 4,900 करोड़ की लागत से कोशी की प्रलयकारी बाढ़ से क्षतिग्रस्त सहरसा, सुपौल, मधेपुरा, पूर्णियां एवं अररिया जिलों के 3.50 लाख गृहविहीन परिवारों के लिए आवासों का पुनर्निर्माण एवं हरेक बस्ती में एक सामुदायिक भवनों का निर्माण कार्य अभी तक नहीं हो पाया है। विश्व बैंक से प्राप्त 1000 करोड़ की सहायता राशि से 1 लाख आवास एवं ग्रामीण सड़क के साथ-साथ अन्य सुविधा उपलब्ध कराने की योजना भी कार्यान्वित नहीं हो पा रही है। कोशी की प्रलयकारी बाढ़ से संसाधनों की व्यापक क्षति हुई। उपजाऊ जमीन बालू की रेत से भरी हुई है। सरकार द्वारा दिया गया मुआवजा पर्याप्त नहीं है। क्षेत्रों में आवागमन के लिए पुल सड़क निर्माण कार्य भी नहीं किया जा सका है। विस्मयकारी है कि अत्यंत गरीब परिवारों की आवास संबंधी क्षति का मूल्यांकन अभी तक नहीं हो पाया है। इस कारण उन्हें आवास सहायता प्राप्त नहीं हो पाई है। कोशी क्षेत्र की स्थिति में विशेषकर छोटे-मझोले किसानों एवं दलित परिवारों के जीवन में कोई सुधार नहीं हो पाया। अभी तक कोशी क्षेत्र की जमीन बालू से भरी हुयी है और वह खेती योग्य नहीं बन पायी है। उस क्षेत्र के लाखों परिवार पलायन किये हुये हैं। बालिया कमीशन ने 2008 की टूटान के लिये बिहार प्रशासन को जिम्मेवार ठहराया। परन्तु अभी तक किसी पदाधिकारी के विरूद्ध कार्रवाई नहीं हुई है।

❖❖❖

मिथिला चित्रकला[1]

मिथिला चित्रकला की मौलिकता तथा इसकी शैली पर किसी अन्य बाहरी कला का प्रभाव नहीं पड़ा है। यहाँ की चित्रकला का संबंध धार्मिक आस्थाओं, कर्मकाण्डों तथा सामाजिक संस्कारों के साथ इतना गहरा रहा है कि इसके स्वरूप में युग परिवर्तन के साथ कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। सच्चाई यह है कि मिथिला चित्रकला में धार्मिकता, नैतिकता और कलात्मकता, तीनों का अनोखा समावेश है। चित्रकारी की हर रेखा प्रतीकात्मक और सांकेतिक रहती है तथा प्रत्येक चित्र कुछ न कुछ विशेष संदेश देता है। चाहे भूमि चित्र हो अथवा भित्ति चित्र, दोनों सहज तथा आकर्षक होते हैं। हर चित्र से सौंदर्यबोध तथा कलाकार की सृजनात्मक कल्पना की ऊँची उड़ान का आभास होता है।

आश्चर्य की बात यह है कि इतनी श्रेष्ठ कला की जन्मछात्री मिथिला की अनपढ़ ग्रामीण महिलाएं रही हैं। इन कलाकारों की गणना हम विश्व के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों में बेहिचक कर सकते हैं। मिथिला चित्रकला की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है इसकी प्रणेत्री यहाँ की महिलाएं रही हैं। गाँव-घर की अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित महिलाओं के सृजनात्मक मस्तिष्क की यह उपज है।

पुरुष वर्ग द्वारा संपादित धार्मिक यज्ञ तथा अन्य धर्मकर्मों में धार्मिक आस्था और परिकल्पनाओं को प्रतीकात्मक चित्र रूप में विविध प्राकृतिक रंगों से चित्रित कर महिला वर्ग ने अपना समानान्तर योगदान दिया है। चित्रांकन की प्रेरणा अधिक संभव धर्माचार्यों से मिली होगी।

तत्कालीन जानेमाने कलाकारों द्वारा की गयी चित्रकारियों के कुछ अनूठे नमूने ललित बाबू द्वारा प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी को दिखाये जाने पर वे इतना अधिक प्रभावित तथा रोमांचित हो गयी थीं कि उन्होंने तत्काल अपनी इच्छा प्रकट कर दी कि उनके नयी दिल्ली स्थित आवास की कलात्मक सजावट में वैसी ही सुंदर मिथिला चित्रकला को प्रमुखता से स्थान दिया जाए। तदनुसार मिथिला के सुपरिचित कलाकारों की कृतियों से श्रीमती गाँधी के आवास में चिन्हित स्थलों को सुशोभित कर दिया गया।

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में मिथिला लोक चित्रकला का वैसा धमाकेदार प्रवेश हो जाने का सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि अल्प समय में ही संसद भवन, सभी प्रमुख सरकारी कार्यालय भवनों तथा बड़े-बड़े सितारा होटलों में मिथिला चित्रकला के आकर्षक नमूने प्रदर्शित किये जाने लगे। विदेशों में भी मिथिला चित्रकला को केन्द्र सरकार द्वारा प्रचारित किया गया तथा कलाकारों को कला प्रदर्शन करने हेतु विदेश भ्रमण पर जाने की सुविधा दी जाने लगी। स्वदेश में आयोजित उद्योग मेलों में मिथिला चित्रकला के स्टॉल लगने लगे जो देश भर से आये कलाप्रेमियों के आकर्षण का केन्द्र बन जाते थे।

स्थिति अब यहाँ तक पहुँच गयी है कि अपने देश में आज असंख्य शिक्षित और संभ्रांत

1 14 फरवरी, 2017

परिवार के 'ड्राइंग रूमों' (बैठक कक्षों) की शोभा मिथिला की इंद्रधनुषी चित्रकला बढ़ा रही है। लोक चित्रकला मिथिला का एक सांस्कृतिक राजदूत बनकर सर्वत्र सृजनात्मक सौंदर्य और स्वस्थ लोकमंगल का संदेश पहुँचा रही है। विदेहभूमि मिथिला की सुसमृद्ध सभ्यता एवं संस्कृति का जीवंत प्रतीक है लोक चित्रकला। फलत: अनंत समय प्रवाह के साथ आज की तारीख में मिथिला चित्रकारी किसी एक जातीय वर्ग की थाती न होकर सम्पूर्ण समाज की सांस्कृतिक धरोहर बन गयी है। भूमि और भित्तिचित्र बनाने में विशेष दक्ष उच्च वर्ग की स्त्रियाँ होती हैं, जबकि मिट्टी के बरतनों, खिलौनों, तिनके की चटाइयों, बाँस की टोकरियों, कागज की मंजूषाओं, सलहेश, दीनाभद्री, धर्मराज, विषहारा आदि अवतारी पुरुषों तथा दैवी विभूतियों के गहबरों में चित्रकारी करने का कौशल मध्यम और अन्य वर्ग की स्त्रियाँ रखती हैं।

इस श्रेष्ठ चित्रकला का सम्मान विगत शताब्दी के 7वें दशक में सर्वप्रथम तत्कालीन केन्द्रीय मंत्रिमंडल में मिथिला के प्रतिनिधि श्री ललित बाबू ने किया था। ललित बाबू जब रेल मंत्री थे, उनकी ही पहल पर नयी दिल्ली और समस्तीपुर के बीच चलने वाली जयंती जनता एक्सप्रेस ट्रेन के सभी डिब्बों में दोनों तरफ महासुंदरी देवी द्वारा चित्रित अति आकर्षक राम-जानकी विवाह दृश्य के प्लेट लगा दिये गये थे। संसद भवन (लोकसभा) के अंदर भी इनकी एक बहुत बड़े आकार की भव्य चित्रकारी लगायी गयी। ललित बाबू ने विदेश व्यापार मंत्री बनने पर मिथिला (मधुबनी) चित्रकारी को अंतर्राष्ट्रीय बाजार दिया और यह विदेशी मुद्रा अर्जन करने का एक प्रमुख साधन बन गया है।

विदेशों में मधुबनी पेंटिंग की निरंतर बढ़ती लोकप्रियता तथा भारत भ्रमण पर आये विदेशी पर्यटकों में उसके प्रति 'क्रेज' (धुन, लगन) को देखते हुए मिथिला से बाहर राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली तथा अन्य बड़े शहरों के कला भण्डारों में भी बिक्री के लिए विविध प्रकार की मिथिला शैली की चित्रकारियाँ उपलब्ध रहती हैं। भारत की एक क्षेत्रीय लोककला को इस प्रकार आज एक विश्वव्यापी बाजार मिल गया है; संग-संग अंतर्राष्ट्रीय कला और संस्कृति मंच पर इसकी एक सशक्त पहचान भी स्थापित हुई है। मिथिला-लोक चित्रकला को देश-विदेश में अब तक अपार प्रसिद्धि जिन कलाकारों ने दिलायी है, वे सबकी सब महिलायें ही रही हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि इन महिला कलाकारों में से किसी को भी चित्रकला की शिक्षा या प्रशिक्षा किसी विद्यालय अथवा कला संस्थान से प्राप्त नहीं हुई है। वंश परंपरा से चित्रकला का व्यावहारिक ज्ञान इन्हें अपने परिवार तथा आस-पड़ोस की कुशल महिलाओं से प्राप्त हुआ है। चित्रकारी सीखने की यह परंपरा सदियों से अबाध गति से चलती आ रही है।

❖❖❖

कोशी क्षेत्र का पुनर्निर्माण [1]

18 अगस्त, 2008 को कोशी के कुसहा तटबंध के टूटान से उत्पन्न त्रासदी से सुपौल, मधेपुरा, सहरसा, अररिया एवं पूर्णियां जिलों की लगभग 35 लाख आबादी बुरी तरह प्रभावित हुई थी और सैकड़ों लोगों की मौत हुई थी, 3 लाख से अधिक लोग बेघर हुए थे और लाखों एकड़ भूमि बालू से भर गयी थी।

उसी त्रासदी की न्यायिक जाँच के लिये 2008 में बिहार सरकार ने अवकाश प्राप्त माननीय जस्टिस राजेश बालिया की अध्यक्षता में न्यायिक जाँच गठित की थी। उस आयोग ने कुछ माह पूर्व अपना जाँच प्रतिवेदन बिहार सरकार को सौंप दिया था, जिसे 01.08.2014 को बिहार विधान सभा में राज्य सरकार की ओर से प्रस्तुत किया गया। इस रिपोर्ट के तथ्यों के आलोक में सरकारी पदाधिकारियों की अकुशलता, अनुभवहीनता और सरकार के स्तर से गंभीरता नहीं दिखायी जाने से सम्बन्धित बातें स्पष्ट हुई हैं। इन तथ्यों को देखने से उन तथ्यों की सम्पुष्टि होती है जो कोशी के पूर्व अभियंता प्रमुख श्री गोकुल प्रसाद की अध्यक्षता में 11 अनुभवी अभियंताओं द्वारा तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने और त्रासदी के कारणों के साथ-साथ जिम्मेवारी का निर्धारण और भविष्य में ऐसी त्रासदी नहीं हो उस संबंध में अनुशंसा की थी। आयोग के रिपोर्ट में उपलब्ध तथ्यों से यह स्थापित होता है कि सरकारी पदाधिकारियों ने पूर्वी एफलॉक्स बांध के कटाव को 5 अगस्त, 2008 को रोकने में लापरवाही बरती थी। उन्हीं लोगों की कर्तव्यहीनता एवं तत्परता के अभाव में 'स्पर' को टूटने से बचाने का कार्य नहीं हुआ। 'स्पर' में टूटने से ही कोशी नदी की धारा बदली। क्षेत्रीय अभियंताओं की अनुशंसाओं और चेतावनी को सरकार ने गंभीरता से नहीं लिया और उसने इस संभावित खतरे के प्रति अपनी शीघ्रता और तत्परता नहीं दिखायी। कोशी उच्च स्तरीय कमिटी की अनुशंसाओं के अनुसार पूर्वी एफलॉक्स बांध में कटाव को रोकने का उपचार नहीं किया गया। कोशी योजना के बहुत से प्रमंडलों और अंचलों, सिविल और मेकेनिकल को या तो इधर से उधर कर दिया गया या हटा दिया गया। एशिया के एक समय के सबसे बड़े मेकेनिकल वर्क शॉप वीरपुर को समाप्त कर दिया गया।

सिंचाई विभाग के इंजीनियर बेवस और लाचार रहे हैं। इंजीनियरों का तबादला इतनी बार किया गया है कि वे विभाग की अद्यतन जानकारी भी नहीं प्राप्त कर सके और विशेषज्ञ बनना तो दूर की बात थी। सिंचाई विभाग की ओर से बाढ़ से उत्पन्न स्थिति के मुकाबले के लिए वहाँ पहले से क्रेट व नई सामग्री मौजूद नहीं थी। 21 वर्ष पूर्व तक कटाव निरोधक कार्य नदी के तल से होता था, परंतु अनुभवहीन एवं कर्तव्यहीन पदाधिकारियों के कारण स्पर को बचाना संभव नहीं हुआ। इस टूट का महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि जल संसाधन विभाग ने कोशी में पदस्थापित होने वाले अभियंताओं के लिए कोशी के अनुभव की पूर्व शर्त की परंपरा को समाप्त कर दिया। उसी तरह कुसहा बांध का प्रभार वैसे अभियंता को दिया गया जो सुपौल नगर परिषद् में कार्यपालक

1 14 जून, 2017

पदाधिकारी थे। पूर्व में उन्हें केवल ग्रामीण सड़क निर्माण का अनुभव था। भारत-नेपाल समझौते वर्ष 1954 के अनुसार नेपाल में कार्यों हेतु नेपाली मजदूरों को प्राथमिकता देनी थी। ऐसा कहा जाता था कि दिनांक 17 अगस्त, 2008 को स्थल पर स्थानीय (नेपाली मूल के) लोगों द्वारा कार्य बंद करवा देने से स्थल की स्थिति अत्यंत ही नाजुक हो गयी। इन सभी बिन्दुओं को जाँच आयोग ने अपनी जाँच रिपोर्ट में सम्मिलित किया। परन्तु यह विस्मयकारी है कि जाँच रिपोर्ट आने के बाद राज्य सरकार द्वारा रिपोर्ट में उल्लेखित बिन्दुओं और त्रासदी के लिए जिम्मेवार पदाधिकारियों के विरूद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई है।

2008 की कोशी प्रलयकारी बाढ़ से उत्पन्न त्रासदी की समस्या का समाधान 7 वर्ष बीतने के बाद भी नहीं हो पाना दु:खद है। कुसहा तटबंध का निर्माण तो कराया परंतु उनके द्वारा घोषित 4,900 करोड़ की लागत से कोशी की प्रलयकारी बाढ़ से क्षतिग्रस्त सहरसा, सुपौल, मधेपुरा, पूर्णियां एवं अररिया जिलों के 3.50 लाख गृहविहीन परिवारों के लिए आवासों का पुनर्निर्माण एवं हरेक बस्ती में एक सामुदायिक भवनों का निर्माण कार्य अभी तक नहीं हो पाया है। विश्व बैंक से प्राप्त 1000 करोड़ की सहायता राशि से 1 लाख आवास एवं ग्रामीण सड़क के साथ-साथ अन्य सुविधा उपलब्ध कराने की योजना भी कार्यान्वित नहीं हो पा रही है। कोशी प्रलय से संसाधनों की व्यापक क्षति हुई। उस क्षति की भरपाई करने एवं उन क्षेत्रों को पहले से बेहतर बनाने के लिए राज्य स्तर पर मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एवं जिला स्तर पर मंत्री की अध्यक्षता में कोशी पुनर्वास एवं पुनर्निर्माण समितियों का गठन किया गया था परन्तु ये समितियाँ अपने दायित्वों का निर्वहन नहीं कर पा रही है। उसकी बैठक नहीं होती है।

उपजाऊ जमीन बालू की रेत से भरी हुई है। सरकार द्वारा दिया गया मुआवजा पर्याप्त नहीं है। बिहार सरकार को केन्द्रीय कृषि मंत्रालय से विशेष अपील करनी चाहिए थी कि वह कृषि वैज्ञानिकों का एक दल कोशी क्षेत्र में प्रतिनियुक्त करे जो बालू से भरी जमीन एवं जमीन की बदली हुई स्थिति में गुणात्मक सुधार के लिए वैज्ञानिक अध्ययन कर समुचित सुधार हेतु सरकार एवं किसानों को सुझाव करे किन्तु ऐसा भी नहीं हो पाया है। राज्य एवं जिला स्तर पर पुनर्वास समिति की सक्रियता के अभाव में लेखा-जोखा नहीं हो पा रहा है। कोशी की आपदा से भवनों, लोक संपत्तियों तथा आधारभूत संरचनाओं का विस्तृत आकलन भी नहीं हुआ है। आकलन के आधार पर पुनर्वास की आवश्यकता पूरी होनी चाहिये थी जो अभी तक नहीं हो पायी है। क्षेत्रों में आवागमन के लिए पुल सड़क निर्माण कार्य भी नहीं किया जा सका है। विस्मयकारी है कि अत्यंत गरीब परिवारों की आवास संबंधी क्षति का मूल्यांकन अभी तक नहीं हो पाया है। इस कारण उन्हें आवास सहायता प्राप्त नहीं हो पा रही हैं। यह महसूस किया जा रहा है कि आवास संबंधी क्षति का पुन: सर्वेक्षण किया जाना चाहिये।

कोशी की प्रलयकारी बाढ़ से जितनी बड़ी क्षति हुई है उसकी भरपाई करने और क्षेत्र को पहले से अच्छा बनाने के लिए राज्य सरकार का संकल्प अभी तक अधूरा है। प्रमुख सड़कों एवं पुलों का निर्माण नहीं होने के कारण आवागमन सामान्य नहीं हो पाया है।

❖❖❖

बाढ़ सुरक्षा[1]

बिहार राज्य में लगातार वर्षों से आ रही विनाशकारी बाढ़ की विभीषिका को ध्यान में रखते हुए राज्य के प्रमुख शहरों-दरभंगा, मुजफ्फरपुर, खगड़िया, समस्तीपुर, सीतामढ़ी एवं कटिहार शहर की कार्य योजना पर जल संसाधन विभाग द्वारा त्वरित कार्रवाई करने पर बल दिया जाना चाहिए। इन शहरों के लिए इन योजनाओं को पूरा किया जाए। योजनाओं में- (क) दरभंगा शहर सुरक्षात्मक कार्य हेतु दरभंगा बागमती नदी अवस्थित मब्बी से एकमी, एकमी से सिरनियाँ, मब्बी से विशम्भरपुर, मब्बी से खिरोही एवं एकमीघाट से सिनौरा तक तटबंध का उच्चीकरण एवं सुदृढ़ीकरण कार्य। (1) दरभंगा शहर सुरक्षात्मक रिटेनिंग वाल की विशेष मरम्मति। (2) दरभंगा शहर सुरक्षात्मक कार्य हेतु एयरपोर्ट गेट संख्या-2 में दरभंगा-मधुबनी रोड तक तटबंध का उच्चीकरण एवं सुदृढ़ीकरण कार्य। (3) दरभंगा-मधुबनी रोड से बी०एम०पी० कैम्प तक के तटबंध का उच्चीकरण एवं सदृढ़ीकरण कार्य। (4) बी०एम०पी० कैम्प से बिसआ टोला रोड तक तटबंध का उच्चीकरण एवं सुदृढ़ीकरण कार्य। (5) लालपुर के निकट पुराने कमला नदी का क्लोजर। (ख) (1) मुजफ्फरपुर शहर सुरक्षा हेतु बूढ़ी गंडक नदी के दाँये तटबंध के शहरी भाग का उच्चीकरण, सुदृढ़ीकरण एवं सड़क निर्माण कार्य। (2) शहरी भाग में दाँये तटबंध के नदी भाग से ब्रिक पीचिंग एवं पूर्व में कराये गये बोल्डर पीचिंग का पुनर्स्थापन। (3) जल निकासी हेतु शहरी भाग में स्लुईस गेटों का पुनर्स्थापन। (4) शहरी भाग से जल निकासी हेतु मानिकपुरमन एवं सिकन्दरपुर मन में क्रमशः एक-एक अदद स्लुईस तथा क्रमशः एक-एक अदद् स्लुईस तथा कलभर्ट का निर्माण किया जाए। (ग) (1) निर्मित तटबंधों का उच्चीकरण एवं सुदृढ़ीकरण तथा नये तटबंधों का निर्माण। (2) बाढ़ पूर्वानुमान/ चेतावनी प्रणाली में सुधार तथा आकस्मिकता योजना को तैयार किया जाना। (3) पर्यवेक्षण एवं संचार हेतु तटबंधों पर सभी ॠतुओं में उपयोग लायक सड़कों का निर्माण। (4) पिछले वर्ष की बाढ़ में जिन तटबंधों में टूट हुई है उसकी मरम्मति के साथ उन तटबंधों को विशेष रूप से सुदृढ़ और विस्तार किया जाए।

बाढ़ की विभीषिका से राज्य के लगभग 40 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को सुरक्षा प्रदान करने हेतु तटबंधों के निर्माण एवं पुराने तटबंधों के सुदृढ़ीकरण कार्य को अगले पाँच वर्ष में पूरा करने के लिए 15000 करोड़ रुपये की राशि की आवश्यकता होगी। बाढ़ से स्थायी निदान हेतु कोशी हाई डेम के विभिन्न कार्य मद पर कुल 22,000 करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त कमला एवं बागमती डेम के निर्माण के लिए भी 10000.00 करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी।

झारखंड राज्य के गठन के साथ ही बिहार राज्य की अर्थव्यवस्था पूर्णतः कृषि पर आधारित हो गयी है, अतः इसकी आर्थिक प्रगति हेतु कृषि व्यवस्था को समुन्नत करना ही एक मात्र विकल्प है और बाढ़ की विभीषिका उसकी मूल बाधा है। राज्य का अधिकांश उत्तरी हिस्सा बाढ़ प्रभावित है। बाढ़ से निपटने के लिए राज्य को इतनी बड़ी राशि की आवश्यकता है, जो बिहार

1 15 मई, 2017

सरकार अपने स्तर पर नहीं कर सकती, इसलिए केन्द्र सरकार पर दबाव बनाना चाहिए ताकि केन्द्र अधिक से अधिक सहायता राशि उपलब्ध कराने की व्यवस्था कर सके। बिहार को बाढ़ से मुक्ति के लिए सार्थक प्रयास किया जाना चाहिए। केन्द्र सरकार विश्व बैंक से कर्ज लेने की भी छूट राज्यों को दे रही है तो बाढ़ की विभीषिका झेलने के बजाय राज्य सरकार को आवश्यक राशि कर्ज लेकर प्रभावित क्षेत्रों को बाढ़ मुक्त करने पर बल देना चाहिए।

❖❖❖

गांधी-विचार शिक्षा[1]

गांधी जी के विचार-दर्शन को आजादी के परिप्रेक्ष्य में गांधी जी का योगदान बिहार की नव-पीढ़ी तक पहुँचाने की बहुत आवश्यकता है। विशेष ध्यान गांधी जी के विचारों को शैक्षणिक क्षेत्रों में स्थायित्व प्रदान करने के उद्देश्य से विश्वविद्यालय से महाविद्यालय स्तर तक गांधी जी के विचारों को एक विषय के रूप में प्रविष्ट करने पर दिया जाए।

गांधी विचार को नई पीढ़ी में प्रसारित करने के उद्देश्य से पढ़ाई का महत्व समझते हुए राष्ट्र कवि दिनकर ने भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में 1964 में गांधी विचार में एक वर्षीय स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम प्रारंभ करने का निर्णय लिया था। परंतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं बिहार सरकार ने उनकी सोच को स्वीकार नहीं किया। तथापि, इस विषय की प्रासंगिकता एवं राष्ट्रीय हित में 'गांधी विचार' की पढ़ाई की उपादेयता को देखते हुए तत्कालीन सरकार ने भागलपुर तिलका मांझी विश्वविद्यालय में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्वीकृति एवं प्रतीकात्मक आर्थिक सहयोग से 2 अक्टूबर, 1980 को गांधी विचार विभाग का दो वर्षीय पाठयक्रम शुरू किया। तत्कालीन सरकार ने गांधी विचार में एम॰ए॰ पाठयक्रम की भी स्वीकृति दी और उदारता के साथ नियमित रूप से अपेक्षित राशि का भी वार्षिक बजट में प्रावधान कर दिया। परंतु पिछले वर्षों में इस पाठयक्रम को बाधित किया गया है। स्वीकृत शिक्षकों के पद रिक्त हैं, पुस्तकालय एवं भवन का अभाव है। वर्तमान भवन पूर्ण रूप से क्षतिग्रस्त है। भागलपुर विश्वविद्यालय ने बी॰ए॰ स्तर में भी गांधी विचार का पाठयक्रम बना दिया है किन्तु अभी केवल कुछ सम्बद्ध महाविद्यालयों में ही इसकी पढ़ाई शुरू हो पायी है।

सभी अंगीभूत महाविद्यालयों में बी॰ए॰ तक गांधी विचार को भी एक वैकल्पिक विषय माना जाए तथा उसी प्रकार इन्टरमीडिएट स्तर में भी इसको एक विषय एवं दस्तकारी के किसी प्रशिक्षण के रूप में लागू किया जाए ताकि विद्यार्थी समाज परिवर्तन की दिशा में ठोस रूप से कुछ कर सके। यह निश्चित है कि जब हमारी नई पीढ़ी गांधी के विचारों को अपने आचरण में उतारेगी तभी इस विषय की स्थापना सार्थक होगी। समाज एवं देश का कल्याण तो होगा ही।

❖❖❖

1 18 अप्रैल, 2017

बिहार रिसर्च सोसाइटी की स्थिति[1]

अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त बिहार रिसर्च सोसाइटी राज्य सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति के कारण समाप्ति की कगार पर पहुँच चुकी है। यहाँ रखी गयी दुर्लभ पांडुलिपियों की हिफाजत की मुकम्मल व्यवस्था करने के बजाय कला एवं संस्कृति विभाग इसकी अस्मिता को ही समाप्त कर रहा है। स्थिति यह है कि जिस पटना संग्रहालय को कभी बिहार रिसर्च सोसाइटी ने ही जन्म दिया था आज उसी संग्रहालय में इसे एक गैलरी की शक्ल देकर सोसाइटी की ऐतिहासिक धरोहर को नष्ट कर दिया गया है। समुचित रख-रखाव के अभाव में वहाँ रखी दुर्लभ पांडुलिपियाँ दीमक का ग्रास बन रही हैं।

दिसम्बर, 2007 में सरकार ने इसका अधिग्रहण किया मगर अधिग्रहण के बीस माह गुजर जाने के बाद भी बिहार रिसर्च सोसाइटी अधिग्रहण अधिनियम, 2007 के किसी भी प्रावधान का अब तक क्रियान्वयन नहीं हुआ है। कला संस्कृति विभाग यह स्वीकार करता है कि अधिग्रहण का मामला विधि विभाग में काफी समय तक लंबित रहा। औपचारिकताएं पूरी करने में काफी विलंब हो गया। इस वजह से संभवत: प्रावधानों को लागू करने में कठिनाई हो रही थी। अब जब सभी औपचारिकताएं पूरी हो गई हैं तो वहाँ कार्यरत कर्मचारियों की सेवा शर्तों पर विचार किया जाए और संस्थान की परिसंपति व देनदारी का शीघ्र आकलन किया जाए। 1915 में स्थापित राज्य का यह सबसे पुराना एवं प्रतिष्ठित शोध संस्थान अपने शोध एवं प्रकाशन संबंधी कार्यकलापों की उत्कृष्टता के चलते मुल्क की स्वतंत्रता के पहले ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी शोहरत अर्जित कर चुका था। 'बिहार रिसर्च सोसाइटी अधिनियम' के अंतर्गत राज्य सरकार इस संस्था का पूर्ण संचालन शीघ्र प्रारंभ करे।

❖❖❖

1 26 अगस्त, 2009

छात्र की आत्महत्या[1]

हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय के छात्र रोहित की आत्महत्या के बाद दलितों के प्रति हित दिखाने वालों की आज होड़ दिख रही है। इस घटना के पूर्व 2008 के बाद विभिन्न विश्वविद्यालयों में 18 से अधिक दलित छात्रों ने आत्म हत्याएं की हैं। क्या इसके कारणों का और व्यवस्था को जानने की कोशिश सरकार ने या किसी राजनीतिक दल ने की है? सभी केन्द्रीय/राज्य विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों में दलित और आदिवासी छात्र प्रवेश नहीं कर पाते हैं। क्या किसी राजनीतिक नेता या दलों ने इसका गंभीरता से अध्ययन किया है? जब हैदराबाद विश्वविद्यालय से रोहित और उसके साथियों को निलम्बित किया गया तो उसकी आत्महत्या करने के कारण का यहाँ तक कि दलित प्रोफेसरों ने भी इसकी सुध नहीं ली। निलंबन से प्रभावित छात्र किस अवस्था में रहने पर मजबूर है। वहाँ के दलित प्रोफेसर ने भी तभी मौन तोड़ा हैं जब छात्र रोहित की आत्महत्या से राष्ट्रीय स्तर पर बवाल मच रहा है।

हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय की स्थिति लगातार पांच महीनों से बिगड़ती गयी। परन्तु, किसी राजनीतिक दल के नेता हैदराबाद की स्थिति का जायजा नहीं लेने गये। दलित छात्र ने उत्पीड़न और उपेक्षा से त्रस्त होकर आत्महत्या की। ऐसी स्थिति में किसी राजनीतिक दल के नेताओं ने वस्तुस्थिति की जानकारी लेने की कोशिश नहीं की। इस समय हैदराबाद की घटना के बाद दलित हितैषियों में अपना-अपना रुख साबित करने की होड़ लगी है। ये सभी दलित समुदाय को यह संदेश देने में लगे हैं कि उनके हितैषी केवल वे ही हैं। हकीकत तो यह है कि सभी राजनीतिक दलों के नेता यहाँ की घटना के प्रति मौन साधे रहे। वस्तुस्थिति यह है कि पिछले 67 वर्षों के लोकतंत्र में दलित और आदिवासी छात्रों की शिक्षा पर किसी राजनीतिक नेता या दल ने गौर नहीं किया है। देश के महाविद्यालय में 75 हजार दलित और आदिवासी आरक्षित शिक्षकों के पद रिक्त पड़े हैं। उन पदों पर दूसरे जातियों के शिक्षक आसीन हैं।

देश में 6 से 11 वर्ष की आयु के बच्चे स्कूल जाने योग्य है । दलित और आदिवासी बच्चों की कुल संख्या तीन करोड़ 31 लाख है उनमें से कुल दो करोड़ 88 लाख दलित बच्चे देश भर के प्राइमरी विद्यालयों में अध्ययनरत हैं। प्राइमरी स्कूलों में दाखिला लेने योग्य कुल दलित बच्चों का 87 प्रतिशत विद्यालयों में हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि दलित समाज शिक्षा को समझता है और इसे पाने की महत्वाकांक्षा रखता है। उनका विश्वास है कि उनकी अगली पीढ़ी शिक्षित बनेगी और समाज में अपना स्थान बनायेगी। इसी उम्मीद से माता-पिता अपने बच्चों का दाखिला स्कूल में कराते हैं। दाखिले का प्रतिशत 90 के आसपास है।

परन्तु, उसी रिपोर्ट में स्तब्ध करने वाली सूचनायें हैं, 11 से 14 वर्ष आयु वर्ग के कुल बच्चों की संख्या 1.4 करोड़ है जिन्हें कायदे से 6-8 में अध्ययनरत होना चाहिये, लेकिन इनमें से

1 22 जनवरी, 2016

मात्र 87 लाख दलित बच्चे ही उन कक्षाओं में अध्ययनरत थे। यानी मिडिल कक्षा में स्कूल जाने वाले कुल दलित बच्चों का 58.8 प्रतिशत ही अध्ययनरत था। अर्थात् प्राइमरी से मिडिल के बीच 28.61 प्रतिशत बच्चे शिक्षा से अलग हो चुके थे। रिपोर्ट बताती है कि हाई सकूल यानी कक्षा 9 में अध्ययनरत दलित बच्चों की संख्या मात्र 35 लाख थी। जहाँ प्राइमरी स्कूलों में दलितों की कुल संख्या 2 करोड़ 88 लाख थी, वहीं हाई स्कूलों में घटकर मात्र 35 लाख रह गयी, यानी प्राइमरी कक्षाओं में मात्र 12.1 प्रतिशत बच्चे ही हाई स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। स्तब्ध करने वाला प्रश्न यह है कि इसके लिये कौन जिम्मेदार है? 2 करोड़ 53 लाख दलित बच्चे जिन्हें हाई स्कूलों में होना चाहिये था, वे ज्ञान की दुनिया से अलग हो चुके और हाई स्कूल के नीचे तक की पढ़ाई के साथ वे कैसा जीवन व्यतीत करेंगे? दलित बच्चे सांसदों या विधायकों के नहीं हो सकते, दलित ऑफिसर के नहीं हो सकते। सवाल यह भी उठना लाजिमी है कि वे कौन से कारक हैं जो दलित बच्चों को स्कूल से बाहर खींच लाते हैं और उन्हें अंधेरी दुनिया में शिक्षा के बगैर लाकर छोड़ देते हैं? दलित और आदिवासियों के संबंध में ऐसी सूचनाएं हैं कि विभिन्न नरसंहारों में 1000 से अधिक दलित मारे गये और राज्य सरकार की शिथिलता के कारण किसी भी अपराधी को सजा नहीं मिली न ही इन दलित परिवारो का पुनर्वास हो पाया। क्या किसी राजनीतिक दल या विचारक ने बिहार के ऐसे दलित परिवारों की स्थिति को जानने की कोशिश की, जो आज हैदराबाद की घटना के बाद अपनी संवेदनशीलता दिखा रहे हैं?

सवाल यह उठता है कि बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर ने समानता एवं समावेशी विकास की बात संविधान में कही थी। वह समानता व समावेशी विकास आज कहाँ खड़ा है? यह बुद्धिजीवियों, राजनीतिज्ञों और पत्रकारों के लिए चिन्तन का विषय बना हुआ है।

❖❖❖

जातीय जनगणना[1]

केन्द्र सरकार जातीय जनगणना को स्वीकार करने जा रही है जो अत्यंत ही विस्मयकारी है। आज भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र माना जाता है। जातिवाद भारत के लोकतंत्र की जड़ों को लगातार खोखला कर रहा है। अब जाति आधारित जनगणना से जातिवाद को सरकारी मान्यता दी जाने वाली है।

भारतीय संविधान के निर्माता एवं संवैधानिक विशेषज्ञ डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर जातिवाद के दंश का भली–भांति अनुभव कर चुके थे। इसलिए उन्होंने बड़े चिंतन–मनन के बाद कहा था, 'जातिविहीन समाज की स्थापना के बिना लोकतंत्र जीवित नहीं रह सकता। सैद्धांतिक तौर पर भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला 'समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय' जैसे महान मानवीय मूल्य होते हैं, लेकिन देश की संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था जातिवाद और उससे उत्पन्न भेदभाव, असमानता एवं छुआछूत पर निर्भर करती है। इसलिए देश में लोकतंत्र संवैधानिक उपबंधों को कार्यान्वित करने में विफल हो रहा है।

भारत में जाति–संघर्ष, वर्ग–संघर्ष से भी अधिक भयंकर हो सकता है। यदि देश को इस भावी संघर्ष से बचाना है, तो सरकार को चाहिए कि वह जातिवाद को भारत से समाप्त करने का साहस करे। भारत में निवास करने वालों के लिए केवल एक ही जाति होनी चाहिए और वह है सिर्फ 'भारतीय'। यदि भारत को आधुनिक और शक्तिशाली राष्ट्र बनना है तो प्रत्येक भारतवासी को अपने आपको 'भारतीय', 'हिन्दुस्तानी' या 'इन्डियन' ही कहना होगा। केन्द्र सरकार द्वारा जाति के आधार पर जनगणना कराये जाने की घोषणा एक प्रतिगामी, राष्ट्र को विभक्त एवं खण्डित करने वाला साबित हो सकता है। यह निर्णय भारतीय लोकतंत्र की मजबूत नींव को कमजोर कर सकता है। इससे समाज में विभाजन का खतरा और बढ़ जायेगा। जाति आधारित जनगणना संवैधानिक उपबंधों की अनदेखी करती है।

संविधान में कहा गया है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था बराबरी के नियमों पर कार्य करेगी। इसमें यह भी कहा गया है कि देश में किसी भी स्थिति में जाति, सम्प्रदाय और नागरिकता के आधार पर व्यक्तियों और समाजों के बीच भेदभाव नहीं किया जायेगा। हमारा संविधान समाज को टुकड़ों में बांटने और इसे सार्वजनिक करने की अनुमति प्रदान नहीं करता है। डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर ने भी जातिविहीन समाज का सपना देखा था। उस समय संविधान सभा में उन्होंने कहा था कि भारत को तरक्की के रास्ते पर अग्रसर होना है और अपने लोकतंत्र की नींव को मजबूत रखना है, तो जातीय व्यवस्था को तोड़ना होगा। वह एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जहाँ मानवता ही जाति हो।

❖❖❖

1 12 अगस्त, 2010

कट्टर हिन्दुत्व[1]

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन में टूट पूर्णत: वैचारिक और सैद्धांतिक आधार पर हुई है, जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंचालक, श्री मोहन भागवत और भारतीय जनता पार्टी के चुनाव अभियान समिति के अध्यक्ष द्वारा कट्टर हिन्दुत्व की ओर भाजपा को ले जाने की घोषणा से प्रमाणित होता है। श्री मोहन भागवत ने दो टूक शब्दों में मेरठ में कहा था कि कोई पसंद करे या नहीं करें, हिन्दुत्व ही हमारा रास्ता है। संघ के ओटीसी कैम्प में उन्होंने कहा- हमने नेता और एजेंडा बदलकर देख लिया, कुछ काम नहीं आया। हिन्दुत्व ही देश को बदल सकता है और हिन्दुत्व की बात करने वाली भाजपा का यदि कोई विरोधी है तो पार्टी उसे सहयोगी बनाने के लिए उसके आगे-पीछे नहीं घूमेगी। श्री नरेन्द्र मोदी ने भी यह कहा है कि जो राजग छोड़कर गया उसकी चिन्ता नहीं है और न ही आगे किसी भाजपा विरोधी पार्टी को पटाने की कोशिश होगी। आरएसएस ने हिन्दुत्व के मौजूदा आईकॉन श्री नरेन्द्र मोदी को आगे बढ़ाने का फैसला किया है उसमें कहीं कोई किन्तु-परंतु नहीं है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भाजपा ने श्री नरेन्द्र मोदी को चुनाव अभियान समिति का मुखिया बनाया, उसमें यह बात शामिल थी कि उसे न पार्टी के अंदरूनी विरोध की परवाह है, न गठबंधन के साथियों की और न यूपीए-2 से लड़ने के लिए जरूरी नये सहयोगियों की। उसे श्री नरेन्द्र मोदी के चमत्कारी व्यक्तित्व और क्षमता पर इतना भरोसा है कि वह जोखिम मोल ले सकती है।

बिहार में भाजपा और जद (यू॰) एक दूसरे से सैद्धांतिक मेल या स्नेह की जगह लालू विरोध के चलते एक हुए थे। श्री नीतीश कुमार ने श्री मोदी का विरोध किया है, उससे राष्ट्रीय राजनीति में उनका कद काफी बढ़ गया है। जाति धर्म की राजनीति से उन्होंने ऊपर उठने का साहस दिखाया है। भाजपा देश की दूसरे नम्बर की सबसे बड़ी पार्टी है, लेकिन उसका आधार और विस्तार दोनों सीमित हैं। दक्षिण भारत में भाजपा अब तक पैर नहीं जमा पायी; उत्तरी-पूर्वी भारत में भी उसकी पैठ न के बराबर है, उत्तर प्रदेश, बिहार जैसे बड़े राज्यों में भी उसकी स्थिति डांवांडोल है। ऐसे में भाजपा श्री मोदी के नेतृत्व में चमत्कार की अपेक्षा कर रही है, मानकर चल रही है कि 2014 के चुनाव में वह इतनी सीटें जीत लेगी कि चुनाव के बाद छोटे दल उसके साथ स्वत: आकर जुड़ जायेंगे।

भाजपा को यदि कांग्रेस का विकल्प बनना है तो उसे उस राजधर्म को समझना होगा, जिसके पालन की बात कभी श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने श्री नरेन्द्र मोदी से कही थी। ठोस आर्थिक-सामाजिक नीतियों पर आधारित कार्य-पद्धति अपनाकर भाजपा को एक ऐसी राह पर

---

1 21 जून, 2013

चलना होगा जहाँ उसे धर्म अथवा जाति की बैसाखियों की आवश्यकता न पड़े। भाजपा को सही मायने में एक राजनीतिक दल बनना होगा– एक सही जनतांत्रिक दल, जिसमें तानाशाही प्रवृत्ति के लिये कोई स्थान नहीं हो। भाजपा का विचार संविधान की उस मूल भावना के विपरीत है जो देश को पंथनिरपेक्ष लोकतांत्रिक प्रजातंत्र बनाना चाहती हैं। सेक्युलरिज्म उस ढ़ांचे की नींव है जो बंटवारे के बाद भारत ने खड़ी करने की कोशिश की है।

❖❖❖

राज्य में कुपोषित बचपन[1]

महापंजीयक और जनगणना आयुक्त कार्यालय द्वारा कराये गये सर्वेक्षण का यह निष्कर्ष चिन्तित करने वाला है कि 5 से 18 वर्ष आयु वर्ग के स्कूली बच्चों की कुपोषण दर में बिहार देश में पहले स्थान पर है। जिस पीढ़ी का बचपन ही कुपोषित एवं अस्वस्थ हो, उससे ऊर्जावान एवं खुशहाल यौवन की उम्मीद नहीं की जा सकती।

सर्वेक्षण के मुताबिक बिहार में करीब 55 फीसद स्कूली बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। राज्य सरकार को इस सर्वेक्षण के निष्कर्ष को अत्यधिक गंभीरता से लेना चाहिए तथा स्थिति में बदलाव के लिए हर संभव कदम उठाने चाहिये। उत्तर-भारतीय हिन्दीभाषी राज्यों में बच्चों का कुपोषण कोई चौंकाने वाली बात नहीं है। यह प्रवृत्ति लम्बे समय से जारी है। समय-समय पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठन इन हालात पर चिन्ता व्यक्त करते रहे हैं, लेकिन बिहार में कुपोषित बच्चों की दर करीब 55 फीसद हो जाना नई चिन्ता है। इससे पहले यह दर 40 फीसद के आस-पास रहती थी। गौरतलब है कि बच्चों को कुपोषण से बचाने के लिए आँगनबाड़ी केन्द्र तथा मीड-डे मील जैसी परियोजनाएं चल रही हैं जिन पर सरकार अरबों रुपये खर्च करती है। इसके बावजूद घटने के बजाय कुपोषण दर में बढ़ोतरी से जाहिर है कि परियोजनाओं का संचालन विधिवत् नहीं हो रहा है तथा बच्चों के पोषण के लिए आबंटित संसाधनों का सदुपयोग नहीं हो रहा है। आँगनबाड़ी परियोजना तथा मीड-डे मील में धांधली के तमाम प्रकरण उजागर भी होते रहते हैं। अब स्कूली बच्चों की कुपोषण दर में बढ़ोतरी की रिपोर्ट ने इस बात पर पक्की मुहर लगा दी कि ये परियोजनाएं भ्रष्टाचार की चपेट में आ चुकी है।

यह भी कहा कि राज्य सरकार खुद बच्चों के पोषण का व्यापक सर्वे कराये तथा उसके निष्कर्षों के आधार पर हालात में बदलाव लाने के लिए वृहद कार्य योजना तैयार करावे। इसके अलावा एक आयोग या विशेषज्ञों का दल गठित करके आँगनबाड़ी परियोजना तथा मीड-डे मील के क्रियान्वयन की हकीकत की जाँच करवायी जाए। एक अध्ययन दल गठित कराके उत्तराखण्ड सहित उन राज्यों का अध्ययन भी कराया जा सकता है जहाँ बच्चों की कुपोषण दर उत्तर प्रदेश, बिहार और झारखण्ड के मुकाबले बहुत कम है। राज्य सरकार इच्छाशक्ति रखे तो शराबबंदी की तरह बच्चों की पोषण परियोजनाओं में भ्रष्टाचार करने वालों के खिलाफ कठोर कानून बनाया जा सकता है। सरकार को इस बात पर भी गौर करना चाहिये कि स्कूली बच्चों के स्वास्थ्य परीक्षण सबंधी योजना का क्या हाल है। क्या स्कूलों में नियमित अन्तराल पर बच्चों का स्वास्थ्य परीक्षण किया जा रहा है? यदि परीक्षण हो रहा है तो उसका फॉलोअप हो रहा है अथवा नहीं? बच्चों का पोषण बेहद अहम विषय है। राज्य सरकार को इसे अपने एजेन्डे में टॉप पर रखना चाहिये। यदि भावी पीढ़ी कुपोषित रहती है तो विकास के बाकी तमाम दावों का कोई मतलब नहीं रह जाता।

❖❖❖

1 25 नवम्बर, 2017

दहेज निषेध को सशक्त बनायें[1]

दहेज नियमावली को सशक्त बनाया जाए साथ ही वैवाहिक संबंधों की बातचीत के दौरान कोई पक्ष दहेज की माँग करता है तो उस पर दहेज निषेध अधिनियम के अंतर्गत मुकदमा चलाया जा सकता है और दोषी पाये जाने पर उसे जेल जाना पड़ सकता है।

इस संबंध में सन् 1996 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण मुकदमें में एक ऐतिहासिक निर्णय देते हुए कहा कि बातचीत के दौरान भी यदि कोई पक्ष दहेज की माँग करता है तो वह दहेज निषेध अधिनियम के अंतर्गत दोषी है तथा उस पर नियमानुसार मुकदमा चलाया जा सकता है। दहेज निषेध अधिनियम 1961 की धारा 4 के अंतर्गत क्रमश: 9 तथा 6 माह की कारावास की सजा सुनाई जा सकती है।

सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष पहली बार यह तर्क उठाया गया कि जब शादी ही नहीं हुई तब दहेज के लिए सजा क्यों? क्या ऐसी स्थिति में दहेज निषेध अधिनियम 1961 के प्रावधान लागू किये जा सकते हैं? यहाँ अधिनियम की धारा 2 के अंतर्गत दहेज शब्द की व्याख्या की गई है। धारा–3 के अंतर्गत दहेज लेने व देने के लिए कम से कम 5 वर्ष की सजा तथा 15000 रूपये जुर्माने का प्रावधान है। इसी प्रकार धारा–4 के अंतर्गत दहेज मांगने के अपराध हेतु 6 माह से 2 वर्ष तक की सजा का प्रावधान है। सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक निर्णय देते हुए कहा कि दहेज निषेध अधिनियम एक सामाजिक कानून है जिसका उद्देश्य दहेज नामक सामाजिक बुराई को समाज से दूर करना है तथा उसके अंतर्गत दहेज को वास्तविक रूप में लेना ही अपराध नहीं है, बल्कि दहेज की माँग करना भी अपराध के कटघरे में खड़ा कर देता है। इस अधिनियम के उद्देश्य को ठोस और प्रभावी कानून के साथ–साथ जागरूकता लायी जानी आवश्यक है। साथ ही होने वाली शादी के संदर्भ में भी दहेज की मांग दोषी को इस अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत दोषी बना देती है। इस संदर्भ में विवाह शब्द की परिभाषा में वह विवाह भी होंगे, जिनके लिए सिर्फ बातचीत की गई है तथा जो दहेज मांग के कारण सम्पन्न नहीं हो सके हैं अथवा टूट गये हैं। क्योंकि विवाह शब्द की परिभाषा के अंदर इन होने वाने विवाहों को यदि शामिल नहीं किया गया तो दहेज निषेध अधिनियम का उद्देश्य ही विफल हो सकता है।

राज्य में महिलाओं के यौन–शोषण, उत्पीड़न, बलात्कार, भ्रूण–हत्या, आदि आम बात बन गई है। भ्रूण हत्या, दहेज हत्या, डायन हत्या, बलात्कार जैसी घटनाएँ स्त्री अस्मिता को नकारते हैं। ऐसे में शराबबंदी और दहेज निषेध कानून इन पर अंकुश लगाने में कारगर हथियार साबित हो सकता है।

❖❖❖

1 27 नवम्बर, 2017

असली मुद्दा है विकास[1]

आज असली मुद्दा आर्थिक पिछड़ेपन और विकास का है। सिर्फ संप्रदायिकता जैसे एक गलत कदम से हमारी ऐतिहासिक प्रक्रिया रूक जायेगी और वैसा ही बिखराव आ जायेगा, जैसा 1947 में आया था। धर्म के चोले में सांप्रदायिकता तबाही ला सकती है। राष्ट्रवाद का तकाजा यह है कि हम सांप्रदायिकता की चुनौती का आंखो में आंखे डालकर सामना करें। हमें फिलहाल विश्व में चल रही नई औद्योगिक क्रांति में हिस्सेदारी से चूकना नहीं चाहिए और वही हमारा असली राष्ट्रीय एजेंडा होना चाहिए।

दुनिया हमारी आंखों के सामने बदल रही है और हमें इसके साथ ही बदलना होगा। ऐसा नहीं किया गया तो हम विश्व के आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य में किनारे कर दिये जायेंगे। हमारी सारी ऊर्जा इस विकास की ओर केंद्रित होनी चाहिए। धार्मिक हो या राजनीतिक, कोई दूसरा मामला उस असली सामाजिक दिशा से हमें भटकायेगा तो बड़ी गड़बड़ी होगी। जितने भी विखंडनकारी मुद्दे हैं, उन्हें तब तक पीछे फेंकना होगा, जब तक विकास की चुनौती से नहीं निपट लिया जायेगा। यही कसौटी है, जिस पर इतिहास में हमारे राष्ट्रवादी या राष्ट्रविरोधी होने का फैसला लिया जायेगा।

अतीत हालांकि महत्वपूर्ण होता है और लोगों में आत्मविश्वास भी भरता है, लेकिन राष्ट्रीय महानता अतीत का बखान करने से नहीं आती। राष्ट्रीय महानता के लिए गरीबी हटाना जरूरी है, उसके लिए आर्थिक रूप से मजबूत होना जरूरी है, राजनीतिक रूप से स्थिर होना जरूरी है, आर्थिक और राजनीतिक समस्या का सामना करने की हैसियत रखना जरूरी है और राष्ट्र की विदेश नीतियों पर पूरा नियंत्रण होना जरूरी है। भले ही हम दुनिया के सभी देशों के साथ विश्व समुदाय का हिस्सा बने रहें, आजादी और राजनीतिक ताकत आज आर्थिक मजबूती और समृद्धि, कृषि और ऊर्जा की आत्मनिर्भरता और उत्पादकता पर निर्भर है। दूसरी ओर, राष्ट्रीय एकजुटता, आर्थिक और सामाजिक विकास, सामाजिक और आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय से जो भी चीज ध्यान हटाती है, वह बुरी है और असल में राष्ट्रद्रोही है। भारत को दुनिया के मंच फिर स्थापित करना है। देश में विदेशी निवेश लाना है तथा भारत की व्यापक सुरक्षा का इंतजाम करना है।

घोटालों ने पिछली सरकार को ठप्प कर दिया इसलिए बहुत जरूरी था कि दुनिया को यह संदेश जाए कि इंडिया इज बैक। हम एक नई शुरूआत कर रहे हैं। इसके लिए नई विदेश नीति की भी जरूरत है और ऐसा वही प्रधानमंत्री ही कर सकता है जो मजबूत हो तथा जिसमें भारत की सुस्त व्यवस्था को बदलने का दम हो। बराक ओबामा ने उन्हे 'मैन ऑफ एक्शन' अकारण नहीं कहा।

---

1 21 दिसम्बर, 2014

लगातार नए-नए मुद्दे उठा कर सांप्रदायिक तनाव बढ़ाया जा रहा है जिससे सभी मगर विशेष रूप से अल्पसंख्यक बेहद डरे हुए और परेशान हैं क्योंकि कोई भी आम हिंदुस्तानी नहीं चाहता कि उसके दैनिक जीवन में व्यर्थ के तनाव पैदा हों। लोगों के अपने पेशेवराना और पारिवारिक जीवन में वैसे ही तनाव कम नहीं हैं, उन्हे झेलते-झेलते ही लोगों का दम निकलने लगता है तो ये तनाव वे कैसे झेलें, जिसके लिए वे जिम्मेवार नही हैं।

भारतीय संविधान की पहली पंक्ति ही यह घोषित करती है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य होगा। मुश्किल यह है कि हिंदुत्व के दबाव में सेक्युलर विपक्ष भी इस हद तक है कि उसमें हिंदुत्व के एजेंडे का लगातार और कड़ा विरोध करने की हिम्मत नहीं बची है, क्योकि जमीनी संघर्ष करने का उसमें न मुद्दा है न हिम्मत है। वह संसद में तो तलवारें भांज सकता है, जो अत्यंत सुरक्षित रणक्षेत्र है, मगर जमीन पर नहीं, क्योंकि उसने अपना नैतिक आधार खो दिया है।

❖❖❖

चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी वर्ष[1]

भारत के सफल स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में बिहार का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं प्रेरणाप्रद रहा है। धार्मिक राजनीति हो अथवा विशुद्ध संवैधानिक उग्र क्रांतिकारी विस्फोट हो या फिर गांधीजी के अनुप्रेरक नेतृत्व में सत्याग्रह, इन सभी में बिहार की महत्वपूर्ण देन रही है। सरकारी प्रलेखों, पत्रों, अप्रकाशित अभिलेखों तथा निजी पत्राचारों सहित सभी उपलब्ध सूत्रों पर आधारित होने के फलस्वरूप यह सर्वथा प्रमाणिक भी है।

गांधीजी ने सत्याग्रह का पहला प्रयोग चंपारण से किया जिसका सर्वाधिक महत्व है। यह सत्याग्रह हमारे स्वतंत्रता संग्राम जिसका गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस प्रमुख उपकरण बन गई। गांधीजी ने कहा था कि वे ऐसे भारत के निर्माण के लिए कोशिश करते रहेंगे, जिसमें गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका देश है जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्त्व है। वे ऐसे भारत के लिए कोशिश करते रहे, जिसमें ऊँच नीच का कोई भेद न हो। सभी जातियाँ मिल-जुल कर रहें। उनके भारत में, अस्पृश्यता व शराब तथा नशीली चीजों के अनिष्टों के लिए कोई स्थान न हो। उसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिले। सारी दुनिया से भारत का संबंध शांति और भाईचारे का रहे। यह था उनके सपनों का भारत।

उनकी सोच के अंतर्गत अभिप्राय है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेद न माना जाए, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्तियों के समुचित विकास के समान अवसर उपलब्ध हो, किसी भी व्यक्ति का किसी भी रूप में शोषण न हो और उसके व्यक्तित्व को एक पवित्र सामाजिक विभूति माना जाए, किसी परोक्ष लक्ष्य की सिद्धि का साधन-मात्र नहीं। उनकी सोच सामाजिक न्याय सुलभ करने के लिए यह आवश्यक है कि देश की राजसत्ता विधायी तथा कार्यकारी कृत्यों के द्वारा समतायुक्त समाज की स्थापना का प्रयत्न हो। सामाजिक न्याय के इस मूलभूत मानवीय सिद्धांत को संविधान में अनेक रूपों में मान्यता मिली है। गांधी जी के अनुसार आर्थिक न्याय के अभाव में सामाजिक न्याय कल्पना मात्र है। उनके अनुसार आर्थिक न्याय का अभिप्राय है कि धन-सम्पदा के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच विच्छेद की कोई दीवार खड़ी नहीं की जाए। एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य का अथवा एक वर्ग को दूसरे वर्ग का शोषण करने का अधिकार नहीं है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट एवं संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी दो टूक शब्दों में कहा है कि भारत में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के पक्ष में बने कानून बेअसर रहने के कारण इन वर्गों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाया है। इन वर्गों के प्रति उदासीनता दिखाई पड़ती है। अनुसूचित जातियों पर हिंसा रोकने के मामले में नौकरशाही का पक्षपात सामाजिक एवं आर्थिक कानूनों को लागू करने के संदर्भ में भी खुलकर सामने आ जाता है। यहाँ नौकरशाही ही अपराधी है जिसका

1 11 अप्रैल, 2017

नजरिया और व्यवहार दोनों तमाम स्तरों पर क्रियान्वयन की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। सदियों से आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिये पर जी रहे दलितों के प्रति समाज के प्रभुत्वशाली वर्गों का नजरिया लोकतंत्र, समता और न्याय आदि की दृष्टि से नहीं बदला है। यह सुनना अत्यंत कष्टदायक लग सकता है। पर दलितों के मामले में क्या अगड़ा, क्या पिछड़ा सब के सब एक हैं। देश के कोने–कोने में दलित आज भी भीषण पीड़ा और प्रताड़ना की जिन्दगी झेल रहे हैं। दलित तबका राष्ट्र के विकास में अपनी सहभागिता ढूंढता है तो उसे मायूसी ही दिखती है और उसे विषमता, शोषण एवं जुल्म सहने पड़ते हैं।

❖❖❖

बिहार के हक के लिए[1]

आज समय है बिहार के हक को लेकर आर-पार की लड़ाई लड़ने का, संघर्ष करने का। हमें वोट की राजनीति से ऊपर उठकर बिहार के लिए एकजुट होकर संघर्ष करना होगा। यह बात राजनीति के लिए नहीं बल्कि अंतर्मन से की जाए। आज के मूल्यविहीन राजनीति के खेल में सभी अत्यंत असहज महसूस करते हैं। यह अनायास नहीं है कि आज हमारे यहाँ संसदीय लोकतंत्र सवालों से घिरा है।

भारत के संदर्भ में सोचें तो आर्थिक विडंबना हमारी राजनीतिक और सामाजिक विडंबनाओं के साथ मिलकर कहीं ज्यादा बड़ी हो जाती है। इस अर्थनीति ने सीधे-सीधे दो हिन्दुस्तान बना दिये हैं। एक चमकता-दमकता वह इण्डिया जहाँ मर्सिडीज और फरारी जैसी गाड़ियों के शो-रूम खुल रहे हैं और दूसरा वह गरीब पस्तहाल हिन्दुस्तान, जो अब भी अंधेरे में डूबा हुआ है। इण्डिया अंग्रेजी बोलता है, बाकी सारा हिन्दुस्तान इण्डिया जैसा होने के लिए अंग्रेजी बोलना चाहता है। इस कोशिश में वह अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक ताकत भी खोता जा रहा है। यह नितान्त आवश्यक है कि राज्य सरकार पर केन्द्र सरकार के ऋण का जो बोझ है उससे बिहार को मुक्ति दे दी जाये जैसा कि अनेक अवसरों पर कई अन्य राज्यों के मामलों में किया जा चुका है। वस्तुत: जरूरत इस बात की है कि बिहार को विशेष कोटि के राज्य का दर्जा दिया जाये और उसी के अनुरूप वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जाये।

अलग झारखण्ड राज्य बन जाने के बाद बिहार में औद्योगिक इकाइयाँ लगभग रह ही नहीं गयी है। अत: बिहार में उद्योग स्थापित करने के लिए उद्यमियों को प्रेरित करने की दृष्टि से बिहार में आयकर, केन्द्रीय उत्पाद कर और केन्द्रीय बिक्री-कर में भी रियायत देनी होगी।

अगले 50 वर्ष कैसे होंगे? यह विचारणीय है। चिन्तन करने से ऐसी अनुभूति होती है कि यदि अभी नहीं चेता गया तो राजनीतिक व्यवस्था एवं उसका ढ़ाँचा क्रमश: और विकृत होगा। हिंसा का दौर और व्यापक होगा। असंतोष, अशांति एवं संवैधानिक व्यवस्था के क्षत-विक्षत होने की संभावना है तथा इसका परिणाम भयानक और घातक होने वाला है। ऐसा डर है कि कहीं गाँधी का भारत हिंसा का भारत न बन जाये। आजादी के बाद राजनीतिक दलों ने सत्ता की राजनीति को अपना साध्य बनाया है। ऐसी स्थिति में मूल्य, राजनीतिक आदर्श, सिद्धांत, नैतिकता एवं जनादेश को पीछे धकेल दिया गया है। राजनीति से आदर्श समाप्त हो गया है। गाँधी, बिनोवा के विचार, भाषण तक सिमट कर रह गये हैं।

बिहार आर्थिक सुधारों से लाभान्वित नहीं हुआ है। बिहार जैसे राज्य के लिए अपने क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने का एकमात्र तरीका अधिसंरचनात्मक सुविधाओं में सुधार करना ही हो सकता है। बिहार में अधिसंरचनात्मक निवेश की जरूरत अधिक है, लेकिन इस

---

1 7 जून, 2018

कार्यभार को पूरा करने के लिए उनके पास कम वित्तीय संसाधन मौजूद हैं। जब तक उनके अधिसंरचनात्मक व सेवा संबंधी स्तर इस अवस्था में न पहुँच जाएँ कि वहाँ निजी निवेश का अच्छा-खासा प्रवाह होने लगे, तब तक इसके लिए आवश्यक संसाधनों को उस समय तक केन्द्रीय पुल से ही आना है। अधिसंरचना एक मुख्य मानदंड है इसलिए केन्द्र सरकार को चाहिए कि वह बिहार को न्यायोचित ढंग से संसाधन उपलब्ध कराये। अगर एक अधिसंरचना सूचकांक बनाया जाए और संवितरण के स्तरों को इससे जोड़ दिया जाए, तो ऐसा करना बिल्कुल संभव है।

1990 के दशक से लागू आर्थिक सुधार और उदारीकरण से गरीब समूह को लाभ नहीं मिल पा रहा है और दूसरी ओर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ बड़े उद्योगपति और कॉरपोरेट क्षेत्र सभी आर्थिक सुधारों से लाभान्वित हो रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप ही समाज का बड़ा समूह शासन से क्रुद्ध हो सकता है, जो लोकतंत्र के लिये खतरा उत्पन्न कर सकता है। विषमता में लगातार वृद्धि से संविधान की अवधारणाओं और प्रावधानों का उल्लंघन कर देश में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संकट उत्पन्न होने की संभावना बन सकती है।

❖❖❖

नागपुर के संघ मुख्यालय में पूर्व राष्ट्रपति[1]

पूर्व राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी ने नागपुर में संघ मुख्यालय में कहा है कि देशभक्ति का मतलब देश के प्रति निष्ठा। धर्मनिरपेक्षता हमारे लोकतंत्र की एक आधारशिला है। सभी धर्मो को बराबर का दर्जा देना और उनका आदर करना हमारे देश और समाज की परंपरा रही है। सदियों से भारत में नये धर्म आते और फलते-फूलते रहे हैं। धर्मनिरपेक्षता हमारी संवैधानिक जिम्मेदारी भी है। सरकार साम्प्रदायिक सद्भाव और शांति बनाये रखने के लिए वचनबद्ध है। साथ ही अल्पसंख्यकों की सुरक्षा और उनकी खास जरूरतों का ख्याल रखना भी फर्ज समझते हैं। अपने राष्ट्रीय लक्ष्य के बारे में हमारी स्पष्ट कल्पना होनी चाहिये। हम चाहते हैं कि भारत सशक्त, स्वाधीन और लोकतंत्री हो, जहाँ हर नागरिक को समान स्थान और तरक्की व सेवा के समान अवसर मिलें, जहाँ आजकल की जैसी धन-सम्पत्ति और हैसियत की असमानताएं मिट जाएं, जहाँ हमारा उत्साह और भावनाएं रचनात्मक और सहकारी अध्यवसाय की दिशा में काम करें। धर्म यहाँ स्वतंत्र रहेगा, लेकिन उसे राष्ट्रीय जीवन के आर्थिक और राजनीतिक पक्ष में दखल देने की इजाजत नहीं दी जायेगी। अगर ऐसा होता है तो हिन्दू, मुसलमान, सिख और इसाई के ये सब झगड़े राजनीतिक जीवन से बिल्कुल खत्म हो जायेंगे। कुल मिलाकर आज हम जो आधुनिक सशक्त, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक भारत देख रहे हैं, वह पं॰ जवाहर लाल नेहरू की दूरदर्शिता और प्रगतिशील दृष्टिकोण का ही नतीजा है। इसे अक्षुण्ण रखना हम सबकी सामूहिक जिम्मेदारी है।

वैचारिक अस्पृश्यता तोड़ी, जिसके भारतीय राजनीतिक जीवन में दूरगामी परिणाम होंगे। आश्चर्य है कि जो लोग जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के खिलाफ आवाज उठाते हैं, उनमें से कुछ तथाकथित सेक्युलर एवं विद्वान कांग्रेस नेता और पूर्व राष्ट्रपति के विवेक पर शक करने लगे थे, क्योंकि उन्होंने आर॰एस॰एस॰ का निमंत्रण स्वीकार कर लिया था। यह देश विविधताओं एवं इन्द्रधनुषी वैचारिक भिन्नताओं का देश है। यदि विचार भिन्नता सामाजिक अस्पृश्यता शत्रुता में बदल दी जाये, तो देश के भीतर कितने 'देश' बन जायेंगे? आर॰एस॰एस॰ वैचारिक अस्पृश्यता में विश्वास नहीं करता, पचास के आस-पास पं॰ नेहरू जी अपनी पहली लन्दन यात्रा पर गये तो वहाँ के भारतीय मूल के नागरिकों ने उनकी पाकिस्तान नीति तथा हिन्दुओं के प्रति भेदभाव के विरूद्ध लन्दन में विरोध प्रदर्शन की योजना बनायी। पं॰ नेहरू जी के समय 1962 का चीनी हमला हुआ। आर॰एस॰एस॰ ने सैनिकों तथा नागरिकों की जो सहायता की, उसकी प्रशंसा में नेहरू सरकार ने संघ के स्वयंसेवकों को पूर्णगणवेश में 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस की परेड में शामिल किया था। श्री मुखर्जी का नागपुर जाना वैचारिक अस्पृश्यता के विरूद्ध बौद्धिक सत्याग्रह है, जो एक अनुकरणीय उदाहरण है। हमारे समाज में यह बहुलतावाद सदियों से चले आ रहे तमाम विचारों के मिलन से आई है। सेक्युलरिज्म और सर्वसमावेशी विचार हमारी आस्था के विषय हैं। ये हमारी

1 8 जून, 2018

मिश्रित संस्कृति ही है, जिसके कारण हम एक राष्ट्र बन सके हैं।

हिन्दू एक उदार धर्म है। राष्ट्रवाद किसी धर्म और भाषा में बंटा हुआ नहीं है। उन्होंने सहनशीलता को समाज की ताकत बताया। श्री मुखर्जी के अनुसार हमारा राष्ट्रवाद कोई एक भाषा, एक धर्म या एक शत्रु से पैदा नहीं हुआ है। यह तो सवा सौ करोड़ लोगों की सदाबहार सार्वभौमिकता का परिणाम है, जो अपने दैनिक जीवन में 122 भाषाएं इस्तेमाल करते हैं। यहाँ आर्य, मंगोल और द्रविड़ सभ्यताओं के लोग एक झण्डे के नीचे भारतीय बनकर रहते हैं और कोई किसी का शत्रु नहीं होता है। आधुनिक भारत का जिक्र आने पर पं॰ जवाहर लाल नेहरू को याद करना भी नहीं भूले। उनकी डिस्कवरी ऑफ इण्डिया पुस्तक का जिक्र करते हुए कहा कि मैं इस बात से सहमत हूँ कि राष्ट्रवाद सिर्फ हिन्दू, मुस्लिम, सिख एवं भारत में रह रहे अन्य समूहों के मिलन से ही आ सकता है।

❖❖❖

अगस्त क्रान्ति[1]

भारत को आजादी एक लम्बे संघर्ष के बाद प्राप्त हुई। भारत के सफल स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अगस्त क्रांति (भारत छोड़ो आंदोलन) अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं प्रेरणाप्रद योगदान रहा है। चाहे धार्मिक राजनीति हो अथवा विशुद्ध संवैधानिक उग्र क्रांतिकारी विस्फोट हो या फिर गाँधी जी के अनुप्रेरक नेतृत्व में सत्याग्रह, इस सभी में गांधी जी की महत्वपूर्ण देन रही है। सरकारी प्रलेखों, पत्रों, अप्रकाशित अभिलेखों तथा निजी पत्राचारों सहित सभी उपलब्ध सूत्रों पर आधारित होने के फलस्वरूप यह सर्वथा प्रमाणिक भी है, किन्तु उन्होंने जो किया उसका सर्वाधिक महत्व है। यह आंदोलन हमारे स्वतंत्रता संग्राम का, जिसका गाँधी जी ने नेतृत्व किया, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रमुख उपकरण बन गया।

गाँधी जी के अनुसार आर्थिक न्याय के अभाव में सामाजिक न्याय कल्पना मात्र है। उनके अनुसार आर्थिक न्याय का अभिप्राय है कि धन-सम्पदा के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच विच्छेद की कोई दीवार खड़ी नहीं की जाए।

सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन का अपना अलग ही गौरवशाली महत्व है। इस आन्दोलन से यह स्पष्ट हो गया था कि लोगों में आजादी को लेकर आकांक्षा नई ऊँचाई तक पहुँच गयी थी। गाँधी जी ने भारत की आजादी के संघर्ष में आजादी को अहिंसा से परिभाषित किया। अहिंसा उनके आंदोलन का सर्वोत्तम हथियार रही।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने देश के कमजोर वर्गों के लिए न्याय, समानता, सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक-वित्तीय सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए संविधान में पर्याप्त और अनिवार्य प्रावधान किये थे। बाद की सरकारों ने भी व्यापक वित्तीय समावेश हेतु सामाजिक और आर्थिक अनिवार्यताओं को समझा और गरीब तबकों को बराबरी पर लाने के लिए समय-समय पर महत्वपूर्ण नीतिगत परिवर्तन किए। इसके लिए संविधान में आवश्यक संशोधन भी किए गये और आम जन को सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा प्रदान के लिए ढ़ाँचा तैयार किया गया।

❖❖❖

1 09 अगस्त, 2018

आयुष्मान भारत योजना[1]

आयुष्मान भारत योजना (प्रधानमंत्री जन-आरोग्य योजना) स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए लाभकारी साबित होगा। दुनिया की सबसे बड़ी आयुष्मान भारत के तहत स्वास्थ्य बीमा प्रधानमंत्री जन-आरोग्य योजना का शुभारंभ हुआ जिससे देश के 50 करोड़ लोगों को इसका लाभ मिलेगा। आज भारत का सपना साकार हो रहा है। सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया का सदियों पुराना ऋषियों-मुनियों का संकल्प इसी शताब्दी में पूरा हो रहा है। यह जन कल्याण की दिशा में दुनिया को राह दिखाने वाली एक अति महत्वपूर्ण पहल है। यह कितनी बड़ी जन कल्याणकारी योजना है, इसे इससे समझा जा सकता है कि इसके दायरे में 10 करोड़ से अधिक परिवारों के करीब 50 करोड़ लोग आयेंगे। इसी के साथ केन्द्र और राज्य सरकारों को सरकारी स्वास्थ्य ढांचे को दुरुस्त करने के लिए विशेष ध्यान देना होगा। सरकार का यह दायित्व बनता है कि वह लोगों के स्वास्थ्य की चिन्ता करे और उनके लिए उपयुक्त एवं प्रभावी स्वास्थ्य ढांचा उपलब्ध कराये। उसी तरह खुद आम लोगों की भी यह जिम्मेदारी बनती है कि वे अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग रहें।

एक स्वस्थ समाज का निर्माण तभी किया जा सकता है जब शासन के साथ-साथ जनता भी अपने हिस्से का काम सही तरह से करे। सरकारी सहायता से चलने वाले हेल्थ केयर कार्यक्रम ने आयुष्मान भारत के तहत गरीबों को नि:शुल्क इलाज कराने का उपहार दिया है। योजना से लाभार्थियों को नकदी रहित स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध होगी। लोग सरकारी और सूचीबद्ध निजी अस्पतालों में सुविधाओं का लाभ उठा सकते हैं। बड़ी संख्या में भारत के लोगों के लिए चिकित्सा सेवाओं का विस्तार वांछनीय नीतिगत लक्ष्य है ताकि स्वास्थ्य में सुधार की संभावनाएं बढ़ाई जा सकें और करोड़ों भारतीयों द्वारा उठायी जा रही वित्तीय कठिनाइयों को कम किया जा सके। परन्तु, सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधनों के संदर्भ में यह लक्ष्य हासिल करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त बड़ी संख्या में सार्वजनिक बीमा योजनाओं का प्रभावी कार्यान्वयन जरूरी है।

देश में बेहतर इलाज सीमित लोगों तक न रहे, इसी भावना के साथ यह योजना राष्ट्र को समर्पित की गई है जिससे लोगों का बेहतर इलाज हो सके। पूरे विश्व में इतनी बड़ी योजना किसी भी देश में नहीं है। अमेरिका, कनाडा, मैक्सिको की आबादी मिला दें तो उससे भी अधिक लोगों को इस योजना का लाभ मिलेगा। 5 लाख रूपये तक स्वास्थ्य बीमा देने वाली विश्व की यह सबसे बड़ी योजना है। भारत में स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में यह अब तक की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षी योजना है।

भारत आर्थिक विकास, सामाजिक समावेश एवं पर्यावरण संरक्षण के तीन स्तम्भों पर टिके

1 24 सितम्बर, 2018

अपने ही विकास के मार्ग में परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। नई स्वास्थ्य नीति में ये उद्देश्य पूरा करने की दृष्टि होनी चाहिये और लक्ष्य निर्धारित करने एवं इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वित्तीय, तकनीकी तथा प्रशासनिक सहायता उपलब्ध कराने के मामले में व्यावहारिक भी होनी चाहिये। अनुसूचित जनजातियों की आबादी के स्वास्थ्य सेवा संकेतकों में पिछले दशकों के दौरान यकीनन सुधार हुआ है। हालांकि सामान्य आबादी की तुलना में यह काफी खराब स्थिति में है। अनुसूचित जनजाति की आबादी के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा सबसे कमजोर कड़ी है।

❖❖❖

इराक पर अमेरिका का आक्रमण[1]

इराक पर आक्रमण कर अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सार्थकता और उपयोगिता पर ही सवालिया निशान लगाकर संयुक्त राष्ट्र संघ को निरर्थक बना दिया है। इस युद्ध का फलाफल जो भी हो, लेकिन इस जंग के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ निश्चित रूप से विश्व समुदाय के समक्ष दन्तहीन दिखेगा और वह अब केवल अपनी कार्रवाई को प्रस्तावों और वक्तव्यों तक ही केन्द्रित रख सकेगा। जिस तरह अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र को अपमानित किया है इसी तरह भविष्य में अन्य शक्तिशाली राष्ट्र अनदेखी करते हुए विश्व शांति के लिए खतरा उत्पन्न कर सकते हैं। अमेरिका भले ही आतंकवाद समाप्ति के लिए इस युद्ध को आवश्यक माने परंतु, इसका प्रभाव उलटा ही होगा, आतंकवाद को बढ़ावा मिलेगा और विश्व को इस आक्रमण के लिए बड़ी कीमत चुकानी पड़ सकती है।

अमेरिका द्वारा एक तरफा संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणा पत्र और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना में स्वीकृत 'चार्टर' के प्रावधान के विरुद्ध, दुनिया के अधिकांश देशों की इच्छा के विरुद्ध इराक पर आक्रमण करना 'विश्व समुदाय' एवं 'संयुक्त राष्ट्र संघ' के लिए अत्यन्त ही दुर्भाग्यपूर्ण एवं दुखदायी है। सुरक्षा परिषद् की भरपूर कोशिश निरन्तर किये जाते रहने और फ्रांस, रूस, जर्मनी तथा चीन द्वारा युद्ध रोकने के प्रयास से भी युद्ध नहीं टल सका। अब संयुक्त राष्ट्र संघ की सार्थकता एवं अमेरिका के लिए विश्व शांति और मानवाधिकार के संरक्षण के लिये किये जाते रहे सभी प्रयत्नों पर सवालिया निशान खड़ा हो गया है।

अमेरिका की इस लड़ाई के पीछे सुरक्षा परिषद और विश्व समुदाय के अधिकांश देशों का न तो समर्थन और न ही सहयोग है, यह किसी देश की सार्वभौमिकता पर सीधा आक्रमण होने के साथ-साथ बल प्रयोग से किसी राष्ट्र के शासन को बदलने का प्रयत्न है जो अत्यन्त ही निन्दनीय है और कष्टकारक है। देश के शासन को दूसरे देशों के बल प्रयोग द्वारा नहीं बदला जा सकता। सुरक्षा परिषद इस विवाद के समाधान के लिये प्रयत्न करती रही। अमेरिका का यह कहना कि इराक पर उसका आक्रमण आतंकवाद की समाप्ति के लिए है, यह सही प्रतीत नहीं होता। क्योंकि ऐसे आक्रमण से एक तो उस क्षेत्र में अस्थिरता उत्पन्न होगी और अस्थिरता से आतंकवाद को पनपने का मौका भी मिलेगा। इसलिए अमेरिका की इस सैनिक कार्रवाई से महत्वपूर्ण क्षेत्र अस्थिर होगा, और इससे आतंकवाद को नियंत्रित करने में बल नहीं मिलेगा। अमेरिका की यह कार्रवाई गलत अवधारणा और सभी अंतर्राष्ट्रीय कानून एवं मानवाधिकार के विरुद्ध है।

अमेरिका सम्पूर्ण विश्व में अपना वर्चस्व और आधिपत्य स्थापित करने के लिए आमादा है। अमेरिका की सैनिक कार्रवाई से विश्व व्यवस्था को बड़ा ही आघात पहुँचा है। ऐसा लगता है

1 20 मार्च, 2003

कि 11 सितम्बर, 2001 को आतंकवादी हमले के कलंक को धोने तथा 'लादेन' को खत्म न कर पाने की विफलता के दुख को कम करने के लिए अमेरिका ने इराक पर यह हमला किया है। अच्छा यह होता कि अमेरिका फ्रांस के राष्ट्रपति श्री सिराक की राय को मानते हुए इराक को और तीन माह का समय देता, जिससे श्री सद्दाम हुसैन संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव के अनुसार अपनी संहारक मिसाइल को नष्ट करने में संयुक्त राष्ट्र के साथ सहयोग कर सकते।

अमेरिका ने एक बार फिर विश्व को अपना खौफनाक साम्राज्यवादी चेहरा दिखाया है। अपार सैनिक शक्ति रखकर भी इस समय वह राष्ट्र संघ नाटो और यूरोपीय संघ की उपेक्षा कर इराक पर हमला करके सारे विश्व में अलग-थलग पड़ चुका है। अमेरिका हमलावर की भूमिका में है जबकि इराक अपनी रक्षा के लिए जान की बाजी लगा रहा है। इसलिए वह हर कुर्बानी के लिए तैयार है। अमेरिका ने इराक पर हमला कर विश्व जनमत की उपेक्षा की है इसका फलाफल उसे भोगना पड़ेगा।

इराक पर अमरीकी हमले ने यह सिद्ध कर दिया है कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान पर परमाणु बम गिराने वाला अमेरिका, सोच के स्तर पर आज भी वैसा ही है। उसके लिए राष्ट्रीय सम्प्रभुता और लोकतांत्रिक अवधारणा अपनी विस्तारवादी योजना को कार्यरूप देने के औजार भर हैं। अमेरिका ने यह भी साबित कर दिया कि उसकी नजर में संयुक्त राष्ट्र का औचित्य तभी तक था जब तक उससे उसका हित सध रहा था। जार्ज बुश ने तमाम अंतर्राष्ट्रीय नियमों को अपनी सामरिक क्षमता से तौल दिया है। इराक में मानवता की हत्या हो रही है।

रूस ने अमरीकी हमले को एक बड़ी राजनीतिक भूल करार दिया है। फ्रांस के राष्ट्रपति ने भी क्षोभ प्रकट करते हुए कहा है कि इस अमरीकी हमले के गंभीर परिणाम होंगे। चीन ने भी अमेरिका की सैन्य कार्रवाई को अंतर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन करार दिया है। अमेरिका विश्व को अपना उपनिवेश बनाने की कोशिश कर रहा है। यूरोप के सभी देश यह महसूस कर रहे हैं कि अमेरिका की यह कार्रवाई इराक तक ही सीमित रहने वाली नहीं है। अमेरिका जिस तरह मनमानी पर उतर चुका है, आने वाले समय में किसी न किसी बहाने उन तमाम देशों पर ऐसे युद्ध थोपे जा सकते हैं जो अमरीकी नीतियों का समर्थन नहीं करते। सारे विश्व को मालूम है कि इराक के पास 300 साल तक चलने वाला तेल का भंडार है। सारे संसार के तेल भंडार पर कब्जा जमाकर अमेरिका संसार की प्रगति को अपने हाथों बंदी बनाना चाहता है। सारा जनमानस अमेरीकी साजिश को समझता है।

लगातार बारह साल से अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबंधों के साये में जी रहे एक युद्ध-जर्जर देश के खिलाफ यह सैनिक कार्रवाई पूरी तरह एक तरफा और गैर कानूनी है। अपनी इस कार्रवाई को किसी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर जायज ठहराने की स्थिति में अमेरिका नहीं है। अपनी सुरक्षा के लिए जो पारंपरिक हथियार इराक ने जुटा रखे थे, उनकी भी काफी मात्रा संयुक्त राष्ट्र हथियार पर्यवेक्षकों की निगरानी में नष्ट की जा चुकी है। जहां तक इस युद्ध के राजनैतिक पहलुओं का प्रश्न हैं, इसे इतिहास के अब तक के सबसे अतार्किक युद्धों में गिना जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र के मुख्य

हथियार निरीक्षक हैंस ब्लिक्स व मोहम्मद अल बरदेई ने भले इराक को क्लीन-चिट दी हो, लेकिन उनकी रिपोर्ट के आधार पर किसी भी रूप में युद्ध को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता।

युद्ध जीतना आसान है, लेकिन युद्ध से जर्जर इराक में शांति लाना व उसके पुनर्निर्माण का काम ज्यादा कठिन होगा, खासकर यह देखते हुए कि इलाके में इजराइल-फिलीस्तीन संघर्ष बदस्तूर जारी है। अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र संघ की उपेक्षा कर ऐसी परंपरा शुरू कर दी है कि भविष्य में अन्य शक्तिशाली राष्ट्र भी इसे अनदेखी करते हुए विश्व शांति के लिए खतरा उत्पन्न कर सकते हैं। क्योंकि इराक पर अमेरिका का आक्रमण संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों में निहित प्रावधानों के पूर्ण रूप से विरुद्ध है। इतना ही नहीं फ्रांस, रूस, चीन और जर्मनी के साथ-साथ बहुसंख्यक राष्ट्रों द्वारा इस विनाशकारी युद्ध को रोकने के प्रयासों के बावजूद अमेरिका द्वारा यह युद्ध प्रारंभ किया गया है। यह अफसोस की बात है कि बुश के शासनकाल में संयुक्त राष्ट्र संघ की अहमियत और सुरक्षा परिषद जैसी कोई संस्था नही बची है। अब प्रश्न सिर्फ यही है कि जो अमेरिका अपने को विश्व का सबसे बड़ा प्रजातंत्र समझता था, जिसने सबसे पहले लीग ऑफ नेशन की स्थापना करायी, जिसने सबसे पहले संयुक्त राष्ट्र संघ की जरूरत समझी, 1945 के पश्चात् विश्व शांति के नाम पर सैकड़ों संधियां करायी और बुश के पूर्व के राष्ट्रपतियों ने बड़ी हिफाजत से उस विरासत को संभाले रखा, आज बुश द्वारा इराक पर हमले से सब कुछ क्षत-विक्षत हो रहा है। भारत की ओर से अमेरिका की इस सैनिक कार्रवाई का विरोध तो हुआ है परंतु, वह सशक्त विरोध नहीं है। यह एक अजीब त्रासदी है कि भारत समेत विश्व के तामम बड़े-बड़े देश भी मिलकर इस आक्रमण को रोक नहीं सकें।

इस जंग का एक नतीजा यह निकलेगा कि संयुक्त राष्ट्र अपना प्रभाव पूरी तरह खो देगा ओर फिर हर मजबूत देश कमजोर देशों को धमकाना शुरू कर देगा। अमेरिका ने जिस तरह संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य देशों के विरोध की परवाह किये बिना इराक पर हमला किया है, उससे यह संकेत भी मिल गया है कि वह आगे भी अपनी मनमानी करेगा।

जहां तक इराक के तथाकथित जैविक और रासायनिक हथियारों की बात है तो इसका प्रमाण वहां महीनों खोजबीन करनेवाला संयुक्त राष्ट्र हथियार निरीक्षक दल नहीं प्राप्त कर पाया, पर अमेरिका को इसकी जानकारी हो गयी। यदि सचमुच 'जनसंहारक हथियारों' की बात की जाए तो आज की तारीख में अमेरिका के पास जितने जनसंहारक हथियार हैं उतने दुनिया के किसी देश के पास नहीं हैं। अमेरिका के पास तो इतने जनसंहारक हथियार हैं कि उनसे समूची मानवता को कम से कम दस बार नष्ट किया जा सकता है।

यूरोप और अगड़ी दुनिया के देशों के लिए हो सकता है इसके सबक थोड़े भिन्न हों पर गरीब, कमजोर और तीसरी दुनिया के मुल्कों को भविष्य में इराक जैसे कड़वे अनुभवों के लिए तैयार रहना चाहिए। इसकी पूरी आशंका है कि इराक के बाद बुश के दिमाग में यह फितूर पैदा हो जाए कि उत्तरी कोरिया, भारत और पाकिस्तान जैसे देश इस लायक नहीं है कि उनके पास परमाणु अस्त्र जैसे घातक हथियार होने चाहिए। अमेरिका 'विश्वशांति' के लिए खतरा बताकर

कभी भी ऐसे देशों को 'निहत्था' हो जाने का फरमान जारी कर सकता है और उसे मानने में आनाकानी करने पर वह इन देशों पर हमला बोलने के लिए भी उद्धत हो सकता है। बगदाद तथा अन्य शहरों पर हवाई बमबारी के जरिये, इराकी जनता को बर्बर हमलों का निशाना बनाया गया है। नागरिकों की प्राणहानि और संपत्तियों के नुकसान का आंकड़ा लगातार बढ़ रहा है। इराक के साथ भारत के घनिष्ठ व मैत्रीपूर्ण संबंध रहे हैं। इराक की संप्रभुता पर इस हमले का, भारतीय जनता के सभी हलकों ने विरोध किया है।

इस अन्यायपूर्ण युद्ध के खिलाफ आवाज उठाने के लिए देश भर में तरह-तरह की विरोध कार्रवाइयाँ हुई हैं। यह जरूरी है कि इस युद्ध के विरोध को मजबूत किया जाए और अमरीकी तथा ब्रिटिश सरकारों को बता दिया जाए कि भारतीय जनता, इस फौजी हमले के पूरी तरह से खिलाफ है। अतः सम्पूर्ण विश्व जनमत को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ को तुरन्त इस अमानवीय गैर कानूनी एकतरफा आक्रमण को बंद कराने के लिए संयुक्त राष्ट्र के बहुसंख्यक सदस्य देशों की भावना को देखते हुए प्रभावकारी पहल करनी चाहिये। साथ ही इराक के प्रभावित लोगों को राहत एवं पुनर्वास की सुविधा उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

किसी राष्ट्र के राष्ट्राध्यक्ष और उसके परिवार को 48 घंटे के भीतर देश छोड़ देने की चेतावनी देना सभी लोकतांत्रिक और संयुक्त राष्ट्र संघ में निहित उद्‌देश्य के विरुद्ध है। फ्रांस, रूस, जर्मनी और चीन दुनिया के बहुसंख्यक राष्ट्रों के सहयोग से विनाशकारी युद्ध को रोकने में विफल रहे हैं।

❖❖❖

विकीलीक्स के खुलासे[1]

विकीलीक्स के तथ्यहीन खुलासे ने कुछ गंभीर प्रश्न देश के सामने खड़े कर दिये हैं। अंदरूनी मुद्दा यह है कि अमेरिका का बढ़ता दखल भारत ही नहीं सारी दुनिया में लगातार बढ़ता जा रहा है। ताजा उदाहरण लिबिया है। अमेरिका की दादागिरी बढ़ती जा रही है। 40 वर्ष पहले श्रीमती इन्दिरा गांधी ने देश का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था, जब बंगला देश के युद्ध में भारत के जीत के बाद अमेरिका ने भारत में अधिकतम राजनीतिक हस्तक्षेप शुरू कर दिया था। श्रीमती इन्दिरा जी ने कहा था कि अमेरिका सी॰आई॰ए॰ के माध्यम से सरकार को अस्थिर करना चाहता है। विकीलीक्स के प्रतिवेदन से अमेरिका का हस्तक्षेप खुलकर सामने आ गया है। समय आरोप-प्रत्यारोप का नहीं है बल्कि भारत की संप्रभुता बचाने का है। विपक्ष को अमेरिका के इस आचरण को हल्के से नहीं लेना चाहिए। सोवियत संघ के विघटन के बाद उसका हस्तक्षेप लगातार बढ़ता जा रहा है। विशेषकर 1991 के बाद भूमंडलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण के नीतियों से विश्व बैंक अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन अमेरिका के हित में अपना आर्थिक वर्चस्व अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्थापित करने में लगा हुआ है। पण्डित जवाहर लाल नेहरू एवं श्रीमती इन्दिरा गांधी की नीतियाँ इन अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से लगातार खंडित की जा रही हैं। श्रीमती गांधी ने 1971 में बंगला देश युद्ध के समय में भारत के विरूद्ध अमेरिका द्वारा भेजे गये 7वें बेड़े की कोई परवाह नहीं की। श्रीमती गांधी की नीतियों का परित्याग करते हुए ही भारत की निर्भरता पश्चिमी राष्ट्रों पर बढ़ती जा रही है। श्रीमती गांधी की निर्भीकता एवं दृढ़ निश्चय ने तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन के रात्रि भोज को बहिष्कार करने का साहस दिखाया था जब उन्होंने कहा था कि जब तक बंगला देश के एक करोड़ शरणार्थियों के पुनर्वास की व्यवस्था के लिए अमेरिका सहमति नहीं देता तब तक वह अमेरिकी राष्ट्रपति से बात नहीं करेंगी।

वही भारत आज अमेरिकी दबाव के परमाणु समझौता एवं अन्य समझौते के माध्यम से अपनी संप्रभुता पर आघात महसूस कर रहा है। विकीलीक्स के खुलासे को इसी पृष्ठभूमि तथा तथ्यों के आलोक में बगैर किसी राजनीति एवं मतभेदों के विचार करना चाहिए जिससे भारत की संप्रभुता, प्रतिरक्षा एवं लोकतांत्रिक ढांचे को सुरक्षित रखा जा सके। आज सवाल भारत को अमेरिका एवं चीन के समकक्ष विकसित करने का है।

❖❖❖

1 24 मार्च, 2011

सऊदी अरब में प्रधानमंत्री का सम्मान[1]

इस बात पर प्रसन्नता है कि सऊदी अरब जो मुस्लिम दुनिया का सबसे अहम मुल्क है और यहाँ स्थित पवित्र तीर्थ स्थलों मक्का और मदीना का प्रबंधक भी है, उसने प्रधानमंत्री का सम्मान किया है। सऊदी अरब ने श्री मोदी को इस्लामी कायदे से नवाजा है जिससे यह सिद्ध हो गया है कि भारत के वजीरे आजम की सऊदी अरब में हैसियत किसी मजहब के आइने और किसी राजनीतिक दल के खास चश्मे से नहीं आंकी गई है बल्कि हिन्दुस्तान के तौर पर आंकी गई है। श्री मोदी को अपना सर्वोच्च नागरिक सम्मान देकर सऊदी अरब के शाह ने यही सिद्ध किया है कि भारत के साथ उनके देश के संबंध सिर्फ मजहब के दायरे में नहीं बंधे हुए हैं बल्कि हिन्दुस्तानियों की रवायतों के दायरे में बंधे हुए हैं।

1968 की वह घटना अचानक याद की जा सकती है जब इस मुल्क के 'रब्बात शहर' में हुए इस्लामी मुल्कों के सम्मेलन में भारत को भाग लेने नहीं दिया गया था और तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा भेजे गये तत्कालीन कैबिनेट मंत्री स्व० फखरूद्दीन अली अहमद को बहुत शर्मिन्दा होकर इस सम्मेलन से बेरंग वापस आना पड़ा था। उस समय कहा गया था कि भारत एक मुस्लिम राष्ट्र नहीं है। अत: उसे इस सम्मेलन में भाग लेने नहीं दिया जा सकता जबकि भारत का तर्क यह था कि दुनिया में मुसलमानों की आबादी किसी अन्य मुल्क के मुकाबले दूसरे नम्बर पर आती है इसलिए इसे मुस्लिम दुनिया की खोज-खबर रखने का अधिकार होना चाहिए और इस्लामी दुनिया की हलचलों से वाकिफ होना चाहिए। मगर तब भारत की कोई बात नहीं मानी गई थी और श्री अहमद को खाली हाथ नई दिल्ली लौटना पड़ा था। इस मुद्दे पर तब श्रीमती इन्दिरा जी की जमकर आलोचना हुई थी। खासकर तब की जनसंघ पार्टी ने इसे 'राष्ट्रीय शर्म' की संज्ञा दी थी और तब इस पार्टी के कानपुर में हुए वार्षिक सम्मेलन में इस घटना को 'किक इन्डिया' के तौर पर पेश किया गया था। भारत में रब्बात की घटना पर रोष भी था और केन्द्र सरकार की नीतियों के प्रति गुस्सा भी था। जनसंघ ने तब इसे मुस्लिम तुष्टीकरण का नया रिकार्ड बताया था।

श्रीमती इन्दिरा जी ने तब जो इसका जवाब दिया था वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं था। उन्होंने कहा था कि भारत को रब्बात सम्मेलन से बाहर जरूर निकलना पड़ा है मगर मुस्लिम दुनिया को यह समझना चाहिए कि भारत विभिन्न धर्मों को मानने वाले अपने नागरिकों को समय की दौड़ से पीछे रखने का समर्थक कभी नहीं रहा है। उस समय पाकिस्तान भारत के विरूद्ध मुस्लिम देशों में जहर उगल रहा था और तब श्रीमती इन्दिरा जी ने कहा था कि रब्बात सम्मेलन में हमारे देश के मुस्लिमों की आवाज को भी सुना जाना चाहिए था। इसके बावजूद उनके तर्क को मानने के लिए कोई तैयार नहीं था। क्या फिजा बदली है कि आज स्वयं सऊदी अरब के शाह हमारे प्रधानमंत्री को 'इस्लामी पट्टिका' से नवाज रहे हैं और दुनिया में भाईचारे को मजहब से ऊपर रख रहे हैं।

❖❖❖

1 09 अप्रैल, 2016

भारत नेपाल के साथ[1]

नेपाल का दर्द भारत का दर्द है और भारत इसे दूर करने के लिए सभी संभव प्रयास करता है। भारत–नेपाल बेशक दो अलग–अलग सम्प्रभु सत्ता सम्पन्न राष्ट्र है, मगर इनके नागरिकों के बीच अनदेखा या अदृश्य (सीमलेस)एकात्म भाव है। यही वजह रही है कि जब भारत में अंग्रेजों की दासता से मुक्ति पाने के लिए स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था तो नेपाल में 'राणाशाही' के अत्याचारों से छुटकारा पाने के लिए समानान्तर संघर्ष हो रहा था और भारत के स्वतंत्रता सेनानी इसमें पुरजोर तरीके से शिरकत कर रहे थे। चाहे जयप्रकाश नारायण हो या डॉ॰ राम मनोहर लोहिया अथवा श्री चन्द्रशेखर, सभी ने नेपाल के नागरिकों के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी और राजशाही के बीच पंचायती लोकतंत्र स्थापित करने में निर्णायक भूमिका निभाई लेकिन आज इतिहास दोहराने का समय नहीं है बल्कि नेपाल में आयी त्रासदी में इसके नागरिकों में भारत सरकार ने पुनः आत्मबल भरने का सत्प्रयास किया है। भारत युद्ध स्तर पर नेपाल में राहत कार्य कर रहा है। भारत की सशस्त्र सेनाओं से लेकर नागरिक संस्थाएं इस कार्य में जुटी रही हैं। नेपाल के मुद्दे पर किसी प्रकार की राजनीति की कोई गुंजाईश नहीं है क्योंकि इस देश के साथ भारत की रक्षा संधि राष्ट्रीय सुरक्षा की गारंटी के तौर पर काम करती है। यही वजह थी कि जब 2007 में इस देश में राजशाही के विरूद्ध व्यापक विद्रोह पनप रहा था तो भारत ने अपना कर्तव्य समझते हुए घोषणा की थी कि भारत सरकार नेपाल को एक सशक्त और आत्मनिर्भर देश के रूप में देखना चाहती है। इसकी नीति कभी भी किसी दूसरे देश के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप की नहीं रही है मगर इसकी नीति यह भी है कि किसी भी देश में उसके लोगों की इच्छा ही सर्वोपरि होनी चाहिए और वे जैसी सरकार चाहते हैं उन्हें वैसी सरकार मिलनी चाहिए।

बिना किसी भी देरी के भारतीय सेनाओं के विमानों और हेलिकाप्टरों को काठमान्डू जाने के आदेश दिये और इसके साथ ही चिकित्सकीय सुविधाएं एवं अन्य सारी सुविधा उपलब्ध कराने की भी पूरी व्यवस्था की गई। इसमें किसी प्रकार की औपचारिकता को बीच में नहीं आने दिया गया है।

नेपाल में आये भूकम्प ने नेपाल के अर्थतंत्रों को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया है। इस प्रलयकारी भूकम्प से नेपाल को करीब 20 खरब रुपये की क्षति का अनुमान है। अमरीकी ज्योलिजिकल सर्वे द्वारा जारी प्रारंभिक कार्रवाई से इसमें अभी बढ़त हो सकती है। विशेषज्ञों का मानना है कि इस त्रासदी से उबरने में 1 दशक से ज्यादा समय लग सकता है। नेपाल की अर्थव्यवस्था में करीब 53 प्रतिशत की भागीदारी वाले सेवा उद्योग का सबसे बड़ा हिस्सा पर्यटन का है लेकिन भूकम्प से काठमान्डू की सभी विश्व धरोहरें तहस–नहस हो चुकी हैं। पर्यटन ही पूरी नेपाली अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। पर्यटन उद्योग में 2014 में 5 लाख 36 हजार लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार मुहैया हुआ था जबकि 2013 में यह आंकड़ा 5.4 लाख का था। पिछले साल 8.61 लाख विदेशी पर्यटक

1 09 मई, 2015

नेपाल आये थे जबकि 2013 में 7.96 लाख पर्यटकों का आगमन हुआ था लेकिन भूकम्प ने इन संभावनाओं को ध्वस्त कर दिया है। विनाशकारी भूकम्प से नेपाल में 3 संकट उत्पन्न हुए हैं–भोजन, सफाई और शरण/आश्रम के संकट। काठमान्डू–केन्द्रित राहत कार्यक्रम का नेपाल में संचालन अन्य प्रभावित क्षेत्रों तक पहुँच के बाहर होने के कारण इस त्रासदी में संलग्न क्षेत्रीय एवं वैश्विक संस्थाओं के समक्ष भयंकर चुनौती उपस्थित हो गयी है। इस विषम परिस्थिति में खाद्य संकट और भुखमरी दूर करने के लिये नेपाल में अनिवार्य क्षेत्रीय हस्तक्षेप अत्यावश्यक है। कोई पूछ सकते हैं कि दक्षिण एशियाई देश क्यों नहीं सार्क फूड बैंक का संचालन करवा रहे हैं। 1987 में 'सार्क फूड सेक्योरिटी रिजर्व' की स्थापना के लिये काठमान्डू में समझौता हस्ताक्षरित हुआ था। इस समझौते में सदस्य देशों में आपातकाल से निपटने के लिये खाद्यानों को सुरक्षित रखने का प्रावधान है। इस समझौते को सभी सदस्य देशों (सार्क देशों) द्वारा सम्पुष्ट भी किया जा चुका है। इसलिये दक्षिण एशियाई देशों (सार्क देशों) के शासनाध्यक्षों से यह अपील है कि नेपाल के प्रलयकारी भूकम्प से उत्पन्न प्राकृतिक आपदा में भुखमरी से बड़ी संख्या में लोगों को बचाने के लिये उक्त सुरक्षित खाद्यान्न भण्डार का अन्न मुहैया करने हेतु अविलम्ब कदम उठाने को वे तत्पर होने का कष्ट करें।

❖❖❖

सर्जिकल स्ट्राइक-दो[1]

पुलवामा में हुए जघन्य आतंकी घटना के बाद देश में आक्रोश का महौल बन गया था, जिसकी जवाबी कार्रवाई करते हुए भारतीय सेना ने पाकिस्तान के आतंकी ठिकानों को नष्ट किया है। भारतीय वायु सेना द्वारा की गयी एयर स्ट्राइक ने कई आतंकवादियों और उनके ठिकानें को खत्म कर दिया। उनके कैम्प तबाह कर दिये। ऐसा पहली बार हुआ है कि इस तरह के ऑपरेशन के बाद पाक द्वारा कबूल किया गया हो। सेना ने देश को भी प्रेस द्वारा सर्जिकल स्ट्राइक की बातों से अवगत कराया। पूरा देश आज सेना के शौर्य और पराक्रम को सलाम कर रहा है। 40 सैनिकों के पुलवामा हमले में शहीद होने के बाद विपक्षी दलों ने भी सरकार का भरपूर समर्थन किया।

भारतीय सेना के पराक्रम, साहस, युद्ध-कौशल और एकता पर देश को हमेशा से गर्व रहा है। आत्म रक्षा के लिये दुनिया भर की सेनाओं और सरकारों ने भी ऐसे ऑपरेशन को अंजाम दिये हैं जिनकी सच्चाई का आज तक लोगों को पता नहीं चला। अमेरिका ने तो ओसामा बिन लादेन का शव भी नहीं दिखलाया था। अमेरिका के सभी राजनीतिक दल एकजुट और चुप थे। जून, 2015 में म्यांमार में घुसकर आतंकवादियों का खात्मा किया गया था। वह भी एक सर्जिकल स्ट्राइक थी, जो सार्वजनिक नहीं की गयी। 1965 और 1971 के युद्ध संबंधी दस्तावेज सेना ने कभी सार्वजनिक नहीं किये। प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी और श्रीमती इन्दिरा गाँधी के कार्यकाल में परमाणु परीक्षण किये गये थे, जिसकी भनक विदेशी मीडिया तक को नहीं लगी। 28-29 सितम्बर, 2016 को भी नियंत्रण रेखा पार कर पाक अधिकृत कश्मीर के अन्दर जाकर कार्रवाई की गयी थी, आज इसे वायु सेना द्वारा पुनः दोहराया गया है। आतंकी कार्रवाई सरकार और सेना के बर्दाश्त की सीमा लाँघ गयी थी।

पाकिस्तान यह सोच रहा है कि भारत एक शांति प्रिय देश है। भारत गरजकर शांत हो जायेगा। उसे यह अनुमान नहीं था कि यह एक नया भारत है, जो आतंकवाद के सख्त खिलाफ है। जहाँ 1971 के बाद कभी भारत सरकार ने अन्दर जाकर ऑपरेशन करने की इजाजत नहीं दी थी वहीं अन्दर घुसकर मारने की इजाजत देते हुए श्री नरेन्द्र मोदी ने भारतीय सेना को एक्शन में लाने का काम किया है। पाकिस्तान सरकार से निपटने के लिए भारत सरकार ने कूटनीति, आर्थिक और सैनिक तीनों हथियारों का इस्तेमाल करने का पूर्णरूपेण सर्वसम्मति से मन बना लिया है। दुनिया के देश भी आतंकी कैम्प बंद करने की बातें लगातार कहकर पाकिस्तान को हिदायत देते रहे हैं। भारत की इतनी बड़ी विजय को पाक के द्वारा भी स्वीकार किया गया है।

❖❖❖

1 26 फरवरी, 2019

सामाजिक न्याय है आवश्यक

समावेशी लोकतंत्र[1]

गांधी जी ने रामराज की जो कल्पना की थी दरअसल वह बराबरी की व्यवस्था थी। वह अन्तिम आदमी की बात इसलिये करते थे। दुर्भाग्यवश उदारीकरण में अन्तिम आदमी के बारे में संजीदगी से सोचने की परिपाटी पर ही विराम लगा दिया है। जब तक इसमें बदलाव नहीं लाया जायेगा सामाजिक दायित्वों को निभाने के लिये कठोर सरकारी कानून और बाध्यतायें लागू नहीं की जायेगी तो समावेशी विकास का लक्ष्य हासिल कर पाना मुश्किल होगा।

अर्थव्यवस्था को फिर से तेजी के राह पर लाने के लिये पूंजी निवेश नीतियों के उदारीकरण, समय और लागत के हिसाब से परियोजनाओं की कड़ी निगरानी, कराधान ढांचे में आमूलभूत सुधार की नींव डालने के साथ ही सरकारी बकाये राशि की तेजी से वसूली करने के लिये समय पर योजना बनानी होगी। इससे राजस्व और राजकोषीय घाटे की भरपायी की जा सकती है। एक सर्वेक्षण की रिपोर्ट के मुताबिक देश के ग्रामीण इलाकों में सबसे नीचले लोग औसतन महज 17 रुपये प्रतिदिन और शहरों में सबसे निर्धन लोग महज 23 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से जीवन जीने को विवश हैं। डॉ॰ अम्बेडकर ने 26 नवम्बर, 1949 को राष्ट्र को चेताया था कि भारत में राजनीतिक समानता एवं दूसरी तरफ सामाजिक एवं आर्थिक असमानता का अंतर्विरोध स्थापित हो रहा है इसे शीघ्र समाप्त करने की जरुरत है, अन्यथा गैर–बराबरी के शिकार समूह राजनीतिक बराबरी में अपना विश्वास खो देंगे। आज 67 वर्ष के बाद भी अम्बेडकर की चेतावनी प्रासंगिक है। समाज के विभिन्न तबकों की महिलाओं, पिछड़े एवं दलितों का सशक्तीकरण करना पड़ेगा। समावेशी लोकतंत्र तभी काम कर सकता है जब समाज के सभी वर्गों के लोगों को प्रशासन में भागीदारी, निर्णय लेने और समाज और राजनीति के प्रति जवाबदेह होने हेतु सशक्त किया जाए। दरअसल भारत में न पूरी तरह सामंती व्यवस्था है न ही पूरी तरह आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था ही है। इस प्रकार भारत कहीं न कहीं इन दोनों ही व्यवस्थाओं के बीच जी रहा है। यह वर्तमान भारतीय समाज का अन्तर्विरोध है।

भारत ने जब से नवउदारवादी नीतियों को अपनाया है तब से अरबपतियों की संख्या और उनकी दौलत में तो नाटकीय ढंग से वृद्धि हुई ही है, लेकिन मानव आबादी के सबसे निचले हिस्से की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। परिणाम यह हुआ कि विषमता की खाई लगातार चौड़ी होती चली गयी। भारत जैसे देश को बिल्कुल उपभोक्तावादी आर्थिक कार्यक्रमों के अनुरूप चलाना न तो संभव है और न उपयोगी ही। सरकार को अपना केन्द्र बिन्दु आम आदमी को सशक्त बनाए रखने की जरूरत है। विश्व बैंक के मुताबिक भारत की लगभग 41.6 प्रतिशत आबादी अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा के नीचे है। देश में असमानता के स्तर में भी भारी वृद्धि हो रही है। संसाधन के वितरण में असमानता, अवसरों की असमानता में बदल जाती है, जो भारत की

1 6 जुलाई, 2014

आर्थिक नीति के घोषित लक्ष्य–समावेशी विकास को ही नकार देती है। इसी परिस्थिति ने देश में चरम पंथी, माओवादी और नक्सलवादी के बीच असंतोष उत्पन्न किया है और यह असमानता एक भयंकर रोग है जो भारत में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक, लैंगिक एवं राजनीतिक असमानता अन्यायकारी रूप धारण कर चुकी है। एक प्रगतिशील एवं सुदृढ़ व्यवस्था के लिये सरकार को दक्ष एवं पारदर्शी होने के साथ–साथ शासन के प्रति प्रतिबद्ध रहना बेहद आवश्यक है। दुनियाँ की हर व्यवस्थाओं ने 'गर्वनेन्स' तथा 'स्ट्रक्चर' को कुशल एवं पारदर्शी बनाने पर अधिक जोर दिया, जो भारत में नहीं किया जा सका। उसी के परिणामस्वरूप आज भारत अनेक आर्थिक संकटों के दौर से गुजर रहा है। समावेशी लोकतंत्र को पूरी तरह से हासिल करने के लिये केन्द्र सरकार को बहुत कुछ करना पड़ेगा।

भारत में समावेशी लोकतंत्र की अनिवार्यताएं काफी हद तक युवाओं से जुड़ी हैं। युवाओं की अधिकारिता उसकी शिक्षा, स्वास्थ्य उनके लैंगिक न्याय निचले स्तर पर प्रशासन में उनकी भागीदारी जैसे मसले समावेशी लोकतंत्र के लिये आवश्यक हैं। बजट प्रस्तावों में समावेशी लोकतंत्र के लिये युवा शक्तियों को आधी आबादी से जोड़कर देखना आवश्यक है। समावेशी लोकतंत्र को बजट प्रस्ताव तभी साकार कर सकता है जब महिला'–युवकों को सशक्तीकरण के लिये आर्थिक सामाजिक और कानूनी आयामों को व्यवहार में लाया जाए। समावेशी लोकतंत्र सत्त समावेशी विकास के साथ आगे बढ़ सकता है और भारत सशक्त देशों के कतार में तभी खड़ा हो सकता है। भारत में आज जो वैश्वीकरण का चेहरा उभर रहा है वो हमारे किये का ही परिणाम है। इसलिये हमारे वे मूल आदर्श मर रहे हैं जो गांधी, दीनदयाल उपाध्याय, पं॰ नेहरू, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, डॉ॰ अम्बेडकर और श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने देश को दिये थे। इसकी पुनर्स्थापना अपेक्षित है।

❖❖❖

सामाजिक न्याय[1]

बेशक किसान भारत के नागरिक हैं। इसलिए उनके हितों की रक्षा करना राज्य सरकार का दायित्व है। इसी प्रकार बटाईदार भी तो भारत के नागरिक हैं। क्या उनके हितों की रक्षा करना राज्य सरकार का दायित्व नहीं है?

सरकार बटाईदारों के हितों की रक्षा के बारे में चुप्पी साधे हुए है। जबकि इन बटाईदारों में 90 प्रतिशत से अधिक दलित एवं अत्यंत पिछड़ी जाति के लोग ही सम्मिलित हैं। इन बटाईदारों को बाढ़ एवं सुखाड़ में हुई क्षति के लिये सरकार द्वारा घोषित सहायता अनुदान इसलिए उपलब्ध नहीं हो रही है, क्योंकि सरकारी रिकार्ड में इनका नाम पंजीकृत नहीं है, जबकि खेती में सारी पूंजी बटाईदारों की ही लगती है।

2008 में कोशी के प्रलयकारी बाढ़ के बाद फसल की क्षति के लिये किसानों को सहायता दी गयी वह वास्तव में खेती में पूंजी लगाने वाले बटाईदारों को उपलब्ध नहीं हो पाई। उसी तरह इस वर्ष सुखाड़ के कारण किसानों को हुई क्षति पूर्ति के लिए जो सहायता सरकार की ओर से दी जा रही है वह वास्तव में बटाईदारों द्वारा लगायी गयी पूंजी की क्षति पूर्ति के लिये सहायता राशि बटाईदारों को प्राप्त नहीं हो रही है। बटाईदारों की ऐसी पीड़ा को देखते हुए बंधोपाध्याय आयोग ने बटाईदारों के नाम पंजीकृत करने की अनुशंसा की थी, जो पिछले आठ वर्षों से सरकार के समक्ष विचाराधीन पड़ा हुआ है। सरकार द्वारा निर्णय नहीं लिये जाने के कारण ही मुख्य रूप से दलित एवं अत्यंत पिछड़ी जाति को बटाईदारों की बड़ी क्षति हो रही है, जो किसी संवेदनशील सरकार के लिये उचित नहीं कहा जा सकता।

बिहार में भूमि समस्या में बटाईदारी एक प्रमुख समस्या है। इसी प्रकार से वासगीत पर्चाधारियों को वासस्थल से बेदखल करना, सरकारी भूमि, गैर मजरूआ आम, हदबंदी से फाजिल भूमि से बेदखल करना बदस्तूर जारी है। बंधोपाध्याय कमीशन के मुताबिक बटाईदारी व्यवस्था को लागू करने की जहाँ तक बात है उसे तो ठंडे बस्ते में डाला गया है। 10 लाख से अधिक गृहविहीन परिवारों को प्रति परिवार 3 डी० वासभूमि उपलब्ध करना, पर्चाधारियों को भूमि पर कब्जा दिलाना, सरकारी, गैर सरकारी भूमि पर बसे भूमिहीनों को बासगीत का पर्चा देने, हद. बंदी से फाजिल सरकारी, भूदान की जमीन का वितरण, बटाईदारों की बेदखली पर रोक, सीमांत, लघु एवं गरीब खेतिहरों का ऋण माफ करने, खेत मजदूरों के लिए व्यापक केन्द्रीय कानून बनाने, खेत मजदूरों के लिए कल्याण बोर्ड का गठन करने जैसे महत्वपूर्ण मांगों को पूरा करने की दिशा में कोई कारगर कार्रवाई बिहार सरकार द्वारा आज तक नहीं की गयी जो विस्मयकारी लगता है।

बिहार राज्य में भूमिहीनता के विशाल स्तर के मद्देनजर बड़े पैमाने के नीतिगत हस्तक्षेपों

1 20 अक्टूबर, 2015

की आवश्यकता है, ताकि राज्य के एक बहुसंख्यक हिस्से को आजीविका का एक स्थायी आधार उपलब्ध हो सके। बिहार के कम से कम एक तिहाई ग्रामीण परिवार पूरी तरह से भूमिहीन हैं और कुछ जिलों में यह अनुपात 70 प्रतिशत है। आबंटित भूखण्डों पर गरीबों को प्रभावी कब्जा दिलवा पाना राज्य प्रशासन की सबसे बड़ी चुनौती है। इसके लिए आवश्यक है कि सुयोग्य श्रेणियों के अतिरिक्त अन्य भूसम्पन्न वर्गों द्वारा जमीन के किसी भी प्रकार के अनाधिकृत कब्जे के निषेध हेतु कड़े से कड़े दण्डात्मक प्रावधान किये जाएँ। बिहार सरकार के राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग के एक दस्तावेज के मुताबिक विभिन्न न्यायालयों में भूहदबन्दी के कुल 1723 मामले लम्बित हैं जिनमें कुल 159820.17 एकड़ जमीन सन्निहित हैं। इन मामलों का यदि निष्पादन किया जाए तो बड़ी संख्या में भूमिहीनों के बीच जमीन बँटवारे के लिए भूमि उपलब्ध हो सकती है।

❖❖❖

बढ़ती असमानता लोकतंत्र के लिये खतरा[1]

बढ़ती असमानता लोकतंत्र के लिये हानिकारक साबित हो रही है। भारत के लिए आर्थिक विकास अब भी उच्च प्राथमिकता वाला विषय है। लेकिन समाज में व्याप्त असमानता एवं विषमता को खत्म करने की प्रतिबद्धता का कमजोर पड़ना दु:ख की बात है। इस समय देश में दलितों एवं अल्पसंख्यकों के प्रति अत्याचार बढ़ रहा है। ऐसे वक्त में लोगों को विभाजनकारी नीति एवं राजनीति को नकारने के लिए एकजुट होना होगा। देश की राजनीतिक विमर्श में स्वतंत्रता और विकास के बीच चयन करने का एक खतरनाक एवं गलत मेल उभर रहा है जिसे खारिज किया जाना चाहिये। विकास नियोजन और योजना आयोग की संकल्पना इसलिए की गयी थी कि अर्थव्यवस्था के विकास के दौर में असमानता न बढ़ने पाये। लेकिन योजना आयोग को खत्म किये जाने के बाद असमानता को काबू में करने के लिए नये सिरे से कोशिश करनी होगी। प्रधानमंत्री द्वारा अपनाई गई आर्थिक नीति सामाजिक एवं आर्थिक विशेषाधिकारों से वंचित लोगों को भी नये अवसर मुहैया कराने की प्रक्रिया रही है और आर्थिक सुधारों के पीछे यही सोच रही है। इस समय एक प्रमुख चिन्ता यह है कि असमानता को नहीं बढ़ने देने की प्रतिबद्धता कमजोर पड़ती जा रही है। यह हमारे लोकतंत्र के लिए गंभीर खतरा बन सकती है।

आज भारत समेत दुनिया भर के अर्थशास्त्री और विकास विशेषज्ञ लगातार कह रहे हैं कि बढ़ती असमानता से सतत् वृद्धि को गंभीर खतरा है। भारत के लिए आर्थिक असमानता को बढ़ने से रोकना और इसे कम करने की दिशा में प्रयास करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। समानता और लोकतंत्र को लेकर हमारी प्रतिबद्धता के संकेत के रूप में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता के सिद्धांतों के बारे में सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है। समानता के लिए बनाई जाने वाली नीतियाँ अल्प अवधि में वृद्धि को महंगा बना सकती हैं, लेकिन असमानता बढ़ना लम्बी अवधि में आर्थिक सेहत और सतत् वृद्धि के लिए ज्यादा बड़ा खतरा है। अल्पसंख्यकों और दलितों पर बढ़ते अत्याचारों पर लगाम नहीं लगाई गई तो भारत के लोकतंत्र को नुकसान पहुँच सकता है। लोकतांत्रिक संस्थानों एवं निर्वाचित प्रतिनिधियों पर लगातार हमलों, राजनीतिक भ्रष्टाचार में बढ़ोतरी और निहित हित वाले लोगों के राजनीतिक दलों और राजनीतिक पदों पर कब्जा करने से लोकतंत्र में भरोसा कम हो रहा है। यह सवाल करना चाहिये कि क्या हमारा लोकतंत्र के प्रति धैर्य खत्म होता जा रहा है? शासन जटिल अव्यवस्थित और धीमा है। फायदे लम्बी अवधि में मिलते हैं। इसके लिए धैर्य की जरूरत होती है।

❖❖❖

1 22 नवम्बर, 2018

सामाजिक अन्याय और शोषण[1]

संविधान में पर्याप्त प्रावधानों और अन्य कानूनों के बावजूद यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि सामाजिक अन्याय और अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं अत्यन्त पिछड़े तबके का शोषण लगातार जारी है। संविधान लागू होने के 67 वर्ष से अधिक होने के बाद भी सामान्यत: तमाम अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लोगों और खासकर दलितों एवं अत्यन्त पिछड़ी जातियों को जिस तरह अपमान से गुजरना पड़ता है वह शर्म की बात है। संयुक्त राष्ट्र की विश्व सामाजिक स्थिति रिपोर्ट ने केन्द्र एवं राज्य सरकारों के दलितों की कल्याणकारी योजनाओं के उन तक पहुँचाने की स्थिति को उजागर किया है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में दलित और विशेषकर दलित परिवार की महिलाएं संविधान के बुनियादी अधिकारों से वंचित हैं। आज भी वे हाशिये पर हैं। समाज में जाति आधारित व्यवस्था के कारण अनुसूचित जाति के लोग अभी भी बहिष्कार के शिकार हैं।

हमें समाज के कमजोर वर्गों के उन बच्चों के बारे में भी सोचना चाहिए जो अल्प पोषित हैं और उनमें से कुछ प्रतिशत ही 14 वर्ष तक की अपनी शिक्षा पूरी कर पाते हैं जबकि अब शिक्षा प्रत्येक भारतीय बच्चों का मौलिक अधिकार है। उपलब्ध सूचना के अनुसार अनुसूचित जाति में मात्र 37.41 प्रतिशत एवं जनजाति में मात्र 29.60 प्रतिशत साक्षर हैं। यह संविधान की भावना का अपमान है। अपमान की वह प्रक्रिया अभी जारी है; जिस दलित-आदिवासी ने सफलता प्राप्त की, उसकी कुंजी शिक्षा है। दलित-आदिवासी शिक्षा की स्थिति कितनी भयावह है, वह निम्न आंकड़ों से साबित हो जाती है। कक्षा 1 से 5 के बीच, कुल 2 करोड़ 88 लाख दलित-आदिवासी बच्चे अध्ययनरत हैं। पर, इसी वर्ष हाई स्कूल में इनकी संख्या मात्र 35 लाख है, यानी प्राइमरी और हाई स्कूल के बच्चों में 2 करोड़ 53 लाख का अंतर। कक्षा 6 में प्रवेश के समय बच्चों की औसत उम्र 12 वर्ष होती है।

शिक्षा समता लाने का सबसे बड़ा उपकरण है और समाज के सभी वर्गों के लिए उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा को सुनिश्चित कर हम विकास को अधिक से अधिक समग्र बना सकते हैं। वहीं भारत सरकार की एक अन्य रिपोर्ट में दलितों के संबंध में कहा गया है कि देश में 6 से 11 वर्ष की आयु के स्कूल जाने योग्य अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों की कुल संख्या तीन करोड़ 31 लाख है उनमें से कुल दो करोड़ 88 लाख दलित बच्चे देश भर के प्राइमरी विद्यालयों में अध्ययनरत हैं। प्राइमरी स्कूलों में दाखिला लेने योग्य कुल दलित बच्चों का 87 प्रतिशत विद्यालयों में हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि दलित समाज शिक्षा को समझता है और इसे पाने की महत्वाकांक्षा रखता है। उनका विश्वास है कि उनकी अगली पीढ़ी शिक्षित बनेगी और समाज में अपना स्थान बनायेगी। इसी उम्मीद से माता-पिता अपने बच्चों का दाखिला स्कूल में कराते हैं। दाखिला का प्रतिशत 90 प्रतिशत के आसपास है। परन्तु, उसी रिपोर्ट में स्तब्ध करने वाली

1 06 जनवरी, 2019

सूचनायें हैं; 11 से 14 वर्ष आयु वर्ग के कुल बच्चों की संख्या 1.4 करोड़ है जिन्हें कायदे से 6–8 में अध्ययनरत होना चाहिये लेकिन इनमें से मात्र 87 लाख दलित बच्चे उन कक्षाओं में अध्ययनरत थे। यानी मिडिल कक्षा में स्कूल जाने वाले कुल दलित बच्चों का 58.8 प्रतिशत ही अध्ययनरत था। अर्थात् प्राइमरी से मिडिल के बीच 28.61 प्रतिशत बच्चे शिक्षा से अलग हो चुके थे। रिपोर्ट बताती है कि हाई स्कूलों यानी कक्षा 9 में अध्ययनरत दलित बच्चों की संख्या मात्र 35 लाख थी। जहाँ प्राइमरी स्कूलों में दलितों की कुल संख्या 2 करोड़ 88 लाख थीं, वहीं हाई स्कूल में घटकर मात्र 35 लाख रह गयी। यानी, प्राइमरी कक्षाओं से मात्र 12.1 प्रतिशत बच्चे हाई स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। स्तब्ध करने वाला प्रश्न यह है कि इसके लिये कौन जिम्मेदार हैं? 2 करोड़ 53 लाख दलित बच्चे जिन्हें हाई स्कूल में होना चाहिये था वे ज्ञान की दुनिया से अलग हो चुके और हाई स्कूलों के नीचे तक की पढ़ाई के साथ वे कैसा जीवन व्यतीत करेंगे?

सवाल यह भी उठाना लाजमी है कि वे कौन से कारक हैं जो दलित बच्चों को स्कूल से बाहर खींच लाते हैं और उन्हें अंधेरी दुनिया में शिक्षा के बगैर लाकर छोड़ देते हैं? महात्मा फुले ने 1856 में उद्घोष किया था कि विद्या पाने का अधिकार सबको है। उन्होंने शिक्षा के महत्व के बारे में कहा–''विद्या के बिना समझदारी नहीं आती। समझदारी के बिना नैतिकता नहीं आती। नैतिकता के बिना विकास नहीं आता। विकास के बिना धन नहीं आता और निर्धनता ने ही इन लोगों को बर्बाद कर दिया है।'' डॉ॰ अम्बेडकर ने कहा था–''शिक्षा वह महानतम लाभ है जिसके लिए पिछड़े तबकों को लड़ना चाहिए। हम भौतिक लाभों को भले ही ठुकरा दें मगर शिक्षा के फायदों को हासिल करने के अधिकार और मौकों को नहीं छोड़ सकते। पिछड़े तबके समझते हैं कि शिक्षा के बिना उनका अस्तित्व सुरक्षित नहीं है।'' नेल्सन मंडेला ने इसलिये कहा था कि–'शिक्षा सबसे बड़ा ताकतवर हथियार है, जिसका इस्तेमाल आप दुनिया बदलने के लिए कर सकते हैं।'

❖❖❖

असंगठित मजदूरों के लिए व्यापक कानून की आवश्यकता[1]

आज देश के तिरानबे फीसदी मजदूर असंगठित क्षेत्र में है। उदारीकरण के दौर में वे असुरक्षित हुए हैं। हाल के वर्षों में रोजगार मे आई कमी ने असंगठित मजदूरों की कमर तोड़ दी है। देश की अर्थव्यवस्था में साठ फीसदी भूमिका निभाने वाले इन मजदूरों को राज्य की ओर से कोई सुविधा नहीं मिलती है। हाल ही में असंगठित मजदूरों की समस्याओं पर केन्द्रीय श्रम मंत्रालय की ओर से राजधानी में एक सेमिनार का आयोजन किया गया, जिसमें उनकी सामाजिक सुरक्षा, कौशल विकास और कानूनी संरक्षण जैसे मुद्दों पर विस्तार से चर्चा की गई। हालांकि इस सेमिनार का उद्देश्य द्वितीय श्रम आयोग की अनुशंसाओं पर व्यापक रूप से बहस कराना था, फिर भी असंगठित मजदूरों की समस्याओं पर इसी बहाने ट्रेड यूनियनों, नियोजकों, स्वयंसेवी संस्थाओं और राज्य प्रतिनिधियों के बीच बहस महत्वपूर्ण मानी जा सकती है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के अनुसार वर्ष 2000 में देश के सम्पूर्ण श्रम बल की संख्या 41 करोड़ थी, जिसमें 36.3 करोड़ श्रम बल असंगठित क्षेत्र में है। भूमंडलीकरण और मुक्त बाजार के कारण संगठित मजदूरों की संख्या वर्ष 1991 के 9.5 फीसदी की तुलना में वर्ष 2000 में सिर्फ सात फीसदी रह गई है। कारखानों के निजीकरण, पुनर्गठन और लचीले श्रम बाजार के नाम पर स्थायी रोजगार को अनुबंध प्रणाली या दिहाड़ी रोजगार की शक्ल रही है। इससे नियोजकों को तो सस्ता श्रम मिल जाता है, किन्तु यहीं से मजदूरों का शोषण भी प्रारंभ होता है। देश के 958 रोजगार कार्यालयों में दर्ज 4.1 करोड़ शिक्षित बेरोजगारों को भी असंगठित क्षेत्र में काम करना पड़ रहा है।

असंगठित मजदूरों को संरक्षण प्रदान करना राज्य का संवैधानिक दायित्व है। देश में श्रम कानून तो उपलब्ध हैं किन्तु असंगठित मजदूरों को इसका लाभ शायद ही मिल पाता हो। श्रम कानून प्रावधानों से बचने के लिए नियोजक मजदूरों का नाम नियमित रूप से बही में दर्ज नहीं करते। वैसे असंगठित श्रमिकों के लिए बने कानूनों में भी कई प्रकार की गड़बड़िया हैं।

विभिन्न सरकारों द्वारा राष्ट्र के 41 करोड़ से अधिक श्रमिकों में 36 करोड़ से अधिक असंगठित मजदूरों के लिए व्यापक अधिनियम भारत सरकार द्वारा बनाये जाने की घोषणा का अभी तक कार्यान्वयन नहीं हो पाना असंगठित मजदूरों को संवैधानिक मूल अधिकारों से वंचित करना है। अत: कांग्रेस एवं अन्य दलों को भाजपा सरकार की घोषणा के कार्यान्वयन के लिए व्यापक दबाव सरकार पर देना आवश्यक है।

❖❖❖

1 1 मई, 2003

स्टैण्ड-अप-इन्डिया कार्यक्रम[1]

भारत में दलित की सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक स्थिति अत्यन्त ही दयनीय है। दलितों को अपना जीवन-यापन करने में अत्यंत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। दलितों की कुल जनसंख्या 77 प्रतिशत है जिसमें इनका 85 प्रतिशत भाग ग्रामीण अंचलों में रहता है। आर्थिक सुधारों के परिप्रेक्ष्य में दलित वर्ग के समक्ष उत्पन्न नवीन समस्याओं का मुकाबला करने तथा दलित वर्ग में संरक्षण, उत्थान के लिए नये सिरे से ज्यादा प्रभावकारी योजनाएं, कार्यक्रम एवं नीति बनाने तथा उन्हें तत्परता और निष्ठापूर्वक लागू करने की आवश्यकता है।

इसी वस्तुस्थिति के संबंध में प्रधानमंत्री ने केन्द्र सरकार की स्टैण्ड-अप-योजना का शुभारंभ किया है जिससे दलितों, आदिवासियों और महिलाओं की दुनिया का आर्थिक समीकरण बदल सकता है। इस योजना में छोटा-मोटा रोजगार तलाशने वाले लोगों में भी अपना उद्यम करके उद्यमी बनने की संभावना दिख रही है, वे नौकर की जगह स्वयं स्टैण्ड-अप-इन्डिया योजना के अंतर्गत मालिक बन सकते हैं। एक तरह स्टैण्ड-अप-इन्डिया योजना मुद्रा योजना का अगला चरण है जिसमें दलित आदिवासी और महिलाओं को आसान कर्ज देकर व्यवसाय शुरू करने के लिये तैयार किया जायेगा। इस योजना के अंतर्गत 2.5 करोड़ से ज्यादा लोगों को कर्ज दिया जा चुका है। स्टैण्ड-अप-इन्डिया में मुद्रा बैंक से कर्ज लेकर काम करने वालों के लिए धन की कमी नहीं होने दी जायेगी। इस योजना ने बैंकों की सोच एवं उनकी कार्य प्रगति में बदलाव लाने की संभावना बढ़ा दी है परन्तु इसके लिए बैंक प्रबंधन की मानसिकता में बदलाव लाया जा सकता है।

अभी तक बैंकों की आम आदमी और गरीबों के प्रति उपेक्षापूर्ण नीति रही है। इस योजना से उन कमियों को पाटा जा सकता है जो आर्थिक सुधारों के परिप्रेक्ष्य में दलित वर्ग के समक्ष उत्पन्न नवीन समस्याओं के रूप में आती हैं, इनका मुकाबला करने तथा दलित वर्ग के संरक्षण, उत्थान के लिए नये सिरे से जयादा प्रभावकारी योजनाएं, कार्यक्रम एवं नीति पूरी तत्परता एवं निष्ठापूर्वक लागू कराने की आवश्यकता है। महिलाओं, अनुसूचित जातियों, जनजातियों में उद्यमिता को बढ़ावा देने और उनके लिए सुनिश्चित आसान ऋण मुहैया कराने हेतु स्टैंड-अप-इंडिया योजना का शुभारंभ होने से युवाओं का नियोजन/नौकरी सृजित करने में यह इंजन का काम करेगी। अवसर दिये जाने पर दलित और गरीब देश में विभिन्न प्रकार के सुधार ला सकते हैं। यह योजना दलित और जनजातीय समुदायों की जिन्दगी रूपांतरित कर सकती है। नये उद्योग लगाने के अनुसूचित जाति, अनु॰ जनजाति और महिलाओं को इस योजना के तहत 10 लाख और 1 करोड़ रू. के बीच उद्योग लगाने हेतु ऋण मुहैया कराये जाने का प्रावधान है। यह योजना 2 लाख 50 पचास हजार उद्यमियों को देश भर में सृजित करेगी, चूंकि प्रत्येक बैंक शाखा से एक दलित, एक अनुसूचित जनजाति एवं एक महिला को दो ऋण मुहैया कराये जायेंगे।

1 07 अप्रैल, 2016

भूमण्डलीकरण का प्रतिरोध करते हुए दलित समाज को प्रत्येक स्तर में इसके लिए नये विकल्प ढूंढ़ना है। स्टैण्ड-अप-इन्डिया योजना का यही विकल्प सहजता से दलित समाज को प्रदान करता है। परन्तु इसके लिए दलित समाज को सैद्धांतिक, वैचारिक संगठनात्मक विचारों में तेजी लानी पड़ेगी। डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर के मूल मंत्र ''शिक्षित बनो संगठित हो और संघर्ष करो।'' यह आज भी दलित समाज का मार्ग प्रशस्त करता है। इसी से दलित का उत्थान संभव है। घोषित स्टैण्ड-अप-इन्डिया योजना के पीछे यह भी सोच है कि नयी आर्थिक नीति के बाद दलितों के लिए रोजगार के अवसरों का विस्तार निजी क्षेत्रों में नहीं हो रहा है। दलितों और पिछड़ों को निजी क्षेत्र में भागीदारी नहीं मिल रही है, क्योंकि जो नयी नौकरियाँ ईजाद हो रही है वे तकनीकी संरचना, सूचना, प्रौद्योगिक आदि क्षेत्रों में हो रही हैं। इन क्षेत्रों में दलितों और पिछड़े वर्ग के गरीबों को प्रशिक्षित नहीं किया जा रहा है। उच्च शिक्षा, इंजीनियर, डॉक्टर, लेखा विशेषज्ञ आदि क्षेत्रों में दलित कर्मियों की उपलब्धता नहीं है। ऐसी स्थिति में स्टैण्ड-अप-योजना से दलित आदिवासी और महिलायें सब उद्यमी बनकर नौकर की जगह मालिक बनेंगे।

❖❖❖

दलितों एवं आदिवासियों का उत्थान[1]

दलितों और आदिवासियों के उत्थान के सवाल को कुछ दलित नेता केवल दलित एवं आदिवासी बनाम अन्य के रूप में पेश करते हैं जिसके चलते उन्हें वांछित सफलता नहीं मिलती है। दलित एवं आदिवासी की समस्या एक राष्ट्रीय समस्या है। ये वर्ग देश की कुल आबादी के लगभग 23 प्रतिशत हैं और इन्हें ऊपर उठाए बिना राष्ट्र का विकास संभव नहीं है।

पिछले पचास वर्षों का अनुभव बताता है कि आज भी अनुसूचित जातियों-जनजातियों की उपेक्षा आरक्षण के मामले में तो की ही जा रही है, उन्हें समाज में आदरणीय स्थान दिलाने में भी वांछित सफलता नहीं मिली है। अब तो सवाल उठने लगे हैं कि जातिजन्य दुर्व्यवहारों को या जातिभेद को रंगभेद की तरह ही राष्ट्र संघ में विचारणीय विषय बनाया जाए। दलितों एवं आदिवासियों की हत्याएँ जिस पैमाने पर हुई हैं उसकी तुलना दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद युग में की गई हत्याओं से की जा सकती है।

इस स्थिति को रोकने के लिए संविधान के भाग 4 (क) में निर्धारित नागरिकों के मूल कर्तव्य को बड़े पैमाने पर प्रचारित करने की जरूरत है। इसके लिए सार्वजनिक चर्चा चलानी होगी क्योंकि दलितों, आदिवासियों और मुसलमानों या दूसरे अल्पसंख्यकों एवं महिलाओं के उत्थान के बिना भारत का उत्थान असंभव है। इसके लिए न तो संविधान में कोई प्रावधान है न ही सरकार इसके लिए कोई प्रयत्न कर रही है। इतना ही नहीं, दलितों और आदिवासियों या कमजोर वर्ग के लिए बजट में उपबंधित राशि का लाभ भी उन्हें नहीं मिल पाता है। जब तक दलित एवं आदिवासी नहीं जागेंगे या उन्हें भय मुक्त नहीं किया जायेगा तब तक स्थिति में बदलाव नहीं आ सकता है। संविधान में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण अनुच्छेद 38 है जिसके मुताबिक राज्य को लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाने का अधिकार है। अनुच्छेद 38 (2) में विभिन्न व्यवसायों और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रावधान है और राज्य का यह कर्तव्य बताया गया है कि वह आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा। अत: इन प्रावधानों को लागू करने की जरूरत है। इसी प्रकार अनुच्छेद 39 में आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चलाने की बात कही गयी है कि धन और उत्पादन का संकेन्द्रण न हो जो जन सामान्य के लिए अहितकारी है। इसमें स्त्री और पुरुष को समान अधिकार देने की बात कही गयी है। इन प्रावधानों को लागू करके ही अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त हो सकता है। हमारे देश में निजी क्षेत्र का दायरा विशाल है और उसे बढ़ाने की दिशा में सरकार प्रयत्नशील है। जरूरत है कि उस पर भी यह जिम्मेवारी डाली जाये कि वह भी संविधान के मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए बाध्य हो।

दलितों और आदिवासियों के उत्थान के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर तुरंत प्रभावकारी

---

1 19 फरवरी, 2002

निर्णय लिया जाना आवश्यक है :-

1.सरकार उपलब्ध अधिशेष भूमि अविलंब वितरित करे।

2.दलितों एवं आदिवासियों की जमीन पर उनके वास्तविक हकदारों को कब्जा दिलाया जाए।

3.वनों और वनोत्पादों पर उनका हक पुन: स्थापित किया जाए।

4.दलितों एवं आदिवासियों को प्रतिस्पर्धा में शामिल करने के लिए उनमें पर्याप्त योग्यता के साथ कौशल विकसित किये जायें और उनके लिए निजी क्षेत्र की नौकरियों में भी आरक्षण का प्रावधान किया जाए।

5.आरक्षण की स्थिति पर एक श्वेतपत्र प्रकाशित किया जाए। संविधान के अनुच्छेद 16(4) में बकाये रिक्तियों के लिए 50 प्रतिशत की सीमा शिथिल की गयी है। अत: राष्ट्रव्यापी भर्त्ती अभियान की आवश्यकता है।

6.अनुसूचित जातियों और जनजातियों के साथ होने वाले भेदभावों के लिए जिम्मेदार समाज के सबल लोगों के अलावा इसमें लिप्त सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों पर कानूनी कार्रवाई की जाए। वैसे क्षेत्रों में चौकसी बढ़ा दी जाए जहाँ दलित उत्पीड़न की ज्यादा घटनायें होती हैं।

7.हजारों दलितों और आदिवासियों को जमीन, जंगल और जल सहित जीवन के तमाम स्रोतों से विस्थापित किये जाने का सिलसिला पिछले पंद्रह साल से लगातार जारी है। अत: विभिन्न परियोजनाओं से विस्थापित लोगों को पुनर्वास की सभी सुविधायें उपलब्ध करायी जाये।

8.नेतरहाट में फायरिंग रेंज और कोयलकारो परियोजना के कारण बेदखल हुए आदिवासियों की कराह आज भी बरकरार है। उनकी असुविधा दूर की जाए।

9.मध्य बिहार में न्यूनतम मजदूरी और आत्म-सम्मान की मांग करने पर भूमिहीन दलितों एवं आदिवासियों का सामूहिक नरसंहार किया जाता है, सरेआम हिंसा एवं अत्याचार किया जाता है। अत: भूमि सुधार के अधूरे कार्य को तुरंत पूरा किया जाए। कृषि से संबंधित अन्य विवादों का प्रभावकारी समाधान किया जाए।

10.बाजार की प्रतिस्पर्धा के अनुरूप दलितों एवं आदिवासियों में योग्यता और कौशल विकसित कर उन्हें प्रचलित बाजार और सूचना के लिए उपयुक्त बनाया जाए। अत: उच्च शिक्षा, शोध एवं उच्चकोटि की कोचिंग की सुविधा उपलबध हो।

11.शिक्षा सरल, सुलभ एवं सर्वव्यापी हो, पूरी आबादी आच्छादित हो। इसलिए शिक्षा व्यय में पर्याप्त वृद्धि की जाए जिससे सर्व शिक्षा अभियान शीघ्र पूरा हो।

12.दलित और आदिवासी आर्थिक दृष्टि से बेहद पिछड़े हुए हैं। उनके आर्थिक सशक्तिकरण के लिए जनजाति उपयोजना, अंगीभूत योजना, आत्म नियोजन एवं गरीबी उन्मूलन स्कीम में पर्याप्त धन का आबंटन किया जाए।

13. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के गृह विहीन लोगों को इन्दिरा आवास की सुविधा जल्दी उपलब्ध हो।

14. गरीबी एवं विकासविहीनता की समाप्ति के लिए लघु, मध्य एवं वृहद उद्योगों की स्थापना के लिए प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश इन वर्गों के लिए अलग से किया जाए। जिससे उदारीकरण एवं आर्थिक सुधार के अन्तर्गत यह समूह लाभान्वित हो सके।

15. झारखण्ड राज्य में अधूरे, लघु एवं मध्य सिंचाई परियोजनाओं का प्राथमिकता से कार्यान्वयन कराने हेतु पर्याप्त धन का शीघ्र आबंटन किया जाए।

❖❖❖

पंचायतों में आरक्षण[1]

राज्य सरकार का त्रिस्तरीय पंचायत चुनावों में महिलाओं के लिए आरक्षण सीमा 33 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 फीसदी किया जाना तथा अत्यन्त पिछड़ी जातियों के लिए सभी स्तरों पर 20 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने का निर्णय, बिहार में एक मौन सामाजिक एवं राजनीतिक क्रान्ति का शुभारंभ दिखता है। संविधान के प्रावधानों एवं समय-समय पर विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा सामाजिक न्याय एवं समतामूलक समाज के निर्माण की घोषणा की जाती रही है। किन्तु, उन घोषणाओं से महिलाओं एवं अत्यन्त पिछड़ा वर्ग को उस रूप में साझेदारी स्थापित नहीं हो सकी, जिसकी कल्पना स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में राष्ट्र में की गई थी। समतामूलक समाज की स्थापना के लिये अनेकों उपाय किये जाते रहे हैं, किन्तु दलित एवं अत्यंत पिछड़े वर्गों को आरक्षण का लाभ समान रूप से प्राप्त नहीं हो सका है। संविधान के अनुच्छेद 15 (10) एवं 16 (1) में महिलाओं एवं पुरुषों के लिए समानता का अधिकार अवश्य सुनिश्चित किया गया है, किन्तु, महिलाएं राजनीतिक सशक्तीकरण से वंचित रहीं हैं। यह पहला अवसर है जब पंचायत राज व्यवस्था में सभी स्तरों पर महिलाओं का 50 प्रतिशत आरक्षण सुनिश्चित किया गया है। बिहार का यह फैसला अन्य राज्यों के लिए अवश्य ही अनुकरणीय होगा। सामान्यत: बिहार अपनी उपलब्धियों के लिए जिस तरह 1990 के पहले उर्दू संबंधी एवं प्राथमिक, माध्यमिक विद्यालयों, कॉलेज, मदरसा एवं संस्कृत शिक्षा संबंधी निर्णयों के लिए चर्चित हुआ था, उसी तरह अब पंचायतों में महिलाओं और अत्यन्त पिछड़ों के आरक्षण किये जाने की भी चर्चाएँ होंगी। महिलाओं के लिए अभी बिहार सरकार ने 50 प्रतिशत आरक्षण सुनिश्चित कर निश्चय ही प्रशंसनीय कार्य किया है। देश में बिहार ही पहला राज्य होगा, जहाँ महिलाओं के सशक्तीकरण की ऐसी मिसाल प्रस्तुत की गयी है। जबकि सभी राजनीतिक दल लोक सभा एवं विधान सभा में 33 प्रतिशत आरक्षण का संकल्प बार-बार दोहराने के बावजूद महिला आरक्षण विधेयक को संसद से पारित नही करा सके हैं।

राज्य सरकार ने आरक्षण के संबंध में पटना उच्च न्यायालय के 19 मार्च, 1996 के निर्णय के आलोक में अत्यंत पिछड़ी जातियों के लिए 20 प्रतिशत का आरक्षण सुनिश्चित कर यह स्थापित कर दिया है कि मध्यवर्त्ती पिछड़ी जातियों की तुलना में अत्यंत पिछड़ी जातियाँ राजनीतिक साझेदारी से वंचित समूह हैं। यह निर्विवाद है कि समतामूलक समाज की स्थापना के संवैधानिक उद्देश्य के प्रख्यापन के बावजूद इस समूह को राजनैतिक हिस्सेदारी न तो शासन में और न राजकीय सेवाओं में उपलब्ध हो पायी है। अत्यंत पिछड़ी जातियों के लिए संविधान में ही दलितों की तरह आरक्षण एवं अन्य सुविधाएं सुनिश्चित की जानी चाहिए थी। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए श्री नीतीश कुमार की सरकार का यह निर्णय एक ऐतिहासिक संवैधानिक निर्णय साबित होगा।

महिला सशक्तीकरण की सामाजिक क्रान्ति लाने की दिशा में राज्य सरकार के इस निर्णय से 8400 पंचायतों में से 4200 पंचायतों में महिला मुखिया होगी और 529 पंचायत समितियों में

1 13 जनवरी 2006

से 265 में महिला प्रमुख होंगी तथा 38 जिला परिषदों में 19 महिला अध्यक्ष होंगी। इसी क्रम में पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद में 20 प्रतिशत अत्यन्त पिछड़ी जाति के मुखिया, प्रमुख एवं जिला अध्यक्ष होंगे। यह उल्लेखनीय है कि 2001 के पंचायत चुनावों में राज्य में पिछड़ी जाति की 46 प्रतिशत आबादी में से अत्यन्त पिछड़ी जातियों का 30 प्रतिशत रहने के बावजूद भी उनका प्रतिनिधित्व सांकेतिक ही था। इस गैर बराबरी को समाप्त करने की दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति प्रदर्शित कर बिहार मंत्रिपरिषद ने अध्यादेश प्रख्यापित कर पटना उच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में अत्यन्त पिछड़ी जातियों तक ही आरक्षण सीमित रखने का निर्णय लिया है। वर्तमान राज्य सरकार का यह निर्णय बिहार की जातिवादी राजनीति को समाप्त करने की दिशा में निश्चय ही कारगर कदम साबित होगा। इस निर्णय से सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण बदलाव आयेगा।

❖❖❖

आरक्षण पर विवाद उचित नहीं[1]

केन्द्रीय और राज्य सेवाओं एवं शिक्षण संस्थानों में दलित आदिवासी एवं पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षण पूर्ण रूप से संवैधानिक प्रावधान के अनुच्छेद 16 के उपखण्ड 4 के अंतर्गत प्राप्त है; जिसमें कोई भी परिवर्तन संविधान संशोधन के बगैर नहीं हो सकता है। इसलिए आरक्षण को विवाद का मुद्दा बनाना किसी भी तर्क की कसौटी पर उचित नहीं है। अनावश्यक रूप से राजनीतिक उद्देश्य से लोगों को भ्रमित करने के लिए आरक्षण विवाद उपस्थापित किया जा रहा है। आरक्षण सामाजिक आर्थिक और शैक्षणिक परिवर्तन का उपकरण है। केन्द्र सरकार द्वारा संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत दिये पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण को उच्चतम न्यायालय ने 16 नवम्बर, 1992 के निर्णयानुसार वैध और संवैधानिक ठहरा दिया है। अत: यह स्पष्ट है कि संवैधानिक संशोधन के बगैर आरक्षण में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित 27 प्रतिशत का लाभ पिछड़ा एवं अपेक्षाकृत पिछड़ों के बीच वर्गीकरण आबादी के अनुपात में किया जाना आवश्यक है। उच्चतम न्यायालय ने अपने 16 नवम्बर, 1992 के निर्णय में वर्गीकरण का निर्देश दिया था उसके निर्णय के बाद भी अभी तक पिछड़ी जाति का वर्गीकरण नहीं किया गया है। सभी राजनीतिक दलों का आचरण अत्यंत दुखदायी और सामाजिक न्याय के विरूद्ध है जबकि इस बीच कांग्रेस, वामपंथी, भाजपा, जनता पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल एवं जद (यू०) की सरकारें 1992 से अब तक रही हैं। परंतु किसी सरकार ने उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आलोक में पिछड़े वर्गों का वर्गीकरण नहीं किया है क्योंकि मध्यवर्गीय पिछड़े वर्ग का नेतृत्व सभी दलों एवं सरकार पर हावी है। बिहार के लिए यह भी बड़ा ही महत्वपूर्ण है कि केन्द्रीय आरक्षण नीति के बावजूद बिहार में पिछड़े वर्ग के छात्रों को केन्द्रीय सेवाओं की प्रतियोगिता परीक्षाओं में स्थान पिछले 25 वर्षों में नहीं मिल पाया है क्योंकि बिहार की शिक्षा व्यवस्था लगातार गुणवत्ताविहीन रही है। बिहार के पिछड़े वर्गों के वे ही छात्र प्रतियोगिता में आ पाते हैं जिनकी शिक्षा बिहार से बाहर होती है। बिहार में पढ़ने वाले पिछड़े वर्ग के बच्चे गुणवत्ताविहीन शिक्षा के कारण केन्द्रीय सेवाओं में भागीदारी नहीं पा सके हैं। इस संदर्भ में बिहार में मध्यवर्गीय पिछड़े वर्ग के नेताओं को गंभीरतापूर्वक आत्ममंथन करना चाहिये न कि राजनीति के लिए पिछड़ों और दलितों को भ्रमित किया जाए।

❖❖❖

1 10 अक्टूबर, 2015

दलित अंगीभूत योजना[1]

केन्द्र सरकार ने कहा है कि अनुसूचित जातियों के लिए विशेष घटक योजना (एससीपी) और अनुसूचित जनजातियों के लिये जनजातीय उप योजना (टीएसपी) की रणनीति 1980 में शुरू की गयी थी क्योंकि ऐसा महसूस किया गया कि पंचवर्षीय योजनाओं का लाभ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, जो कि हाशिये पर हैं उन तक देश का आर्थिक विकास नहीं पहुँच पा रहा है। यह निर्णय लिया गया था कि संसाधनों का निर्धारण सभी मंत्रालयों में होने वाले योजना परिव्यय अनुसूचित जातियों की 15.7 प्रतिशत और आबादी के अनुपात में किये जाएँ। पिछले वर्षों में अनुसूचित जातियों पर हुए खर्च अभी नगण्य हैं जो कि योजना आयोग द्वारा जारी स्पष्ट दिशा-निर्देश के विरूद्ध है। बिहार में कुल योजना परिव्यय का केवल 1.2 प्रतिशत ही पिछले वर्षों में अनुसूचित जातियों पर खर्च किया जाता रहा है। 2009-10 में 1.1 प्रतिशत और 2010-11 में 1.2 प्रतिशत ही आबंटित किया गया था। यही स्थिति अन्य वर्षों में भी रही है। यहाँ आबंटित योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए कोई संस्थागत तंत्र नहीं हैं। यहाँ अनुसूचित जातियों की योजनाओं के लिए जरूरत है अधिक से अधिक नवाचार के लिए डिजाइन और इक्विटी को शामिल करने की। हमें अनुसूचित जाति के सशक्तीकरण के लिए उनके विकास हेतु लम्बी समयावधि की दृष्टि की सख्त जरूरत है ताकि इसका प्रयोग बिहार में किया जा सके। एससीपी के लिए देश में अनुसूचित जाति की महिलाओं, पुरुषों और बच्चों के सशक्तीकरण के बारे में मौलिक परिवर्तन लाने की क्षमता है। इसलिए आज विचार करने के लिए तत्काल आवश्यकता है कि निर्णय लेने वाले नीति निर्माता, सरकारी अधिकारी और नागरिक समाज जैसे कलाकार कैसे एससीपी नीति को प्रभावी ढंग से सुनिश्चित कर सकते हैं जो कि उनके विकास और प्रगति के अधिकार को एक मामले के रूप में उनके (अनुसूचित जाति) द्वारा उपयोग किया जा सके।

हम सब जो अनुसूचित जातियों की भलाई के बारे में चिन्तित हैं और इसमें रुचि रखते हैं, कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं कि एससीपी नीति उनके लिए आसान पहुँच और प्रभावी आनन्द के लिए कानूनी तौर पर मंजूर एनटाइटेलमेंट का एक सेट हो? अनुसूचित जाति के लक्षित और आर्थिक सशक्तीकरण के लिए योजना आयोग द्वारा 1980 में शुरू की गयी विशेष घटक योजना अब भी बिहार में वास्तविकता पर नहीं हैं। अनुसूचित जातियों पर राज्य सरकार ने राज्य योजना का कुल खर्च 1.1 प्रतिशत कर दिया है। अनुसूचित जातियाँ राज्य योजना बजट में 3140.0 करोड़ रुपये पाने के हकदार हैं, लेकिन केवल 232.9 करोड़ रुपये ही मिले हैं जो कि योजना परिव्यय का केवल 1.20 प्रतिशत है। एससीपी के क्रियान्वयन के पिछले वर्षों के अध्ययन से संकेत मिलता है कि 2008-09 से 2010-11 वित्तीय वर्ष से अनुसूचित जाति के लिए आबंटन नगण्य रूप से क्रमशः केवल 1.2 प्रतिशत है। यह पर्याप्त राशि भी यदि आबंटित की जाती है और ठीक से इसे व्यय किया जाता तो अनुसूचित जातियों के जीवन में परिवर्तन आ सकता था। इसके अलावा,

1 05 फरवरी, 2015

यहाँ एससीपी के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए कोई निवारण व्यवस्था सुनिश्चित नहीं करता है। अनुसूचित जातियों के लिए स्पष्ट एंटाइटेलमेंट परिभाषित है और आवश्यक निवारण करने के लिए और एससीपी तंत्र के सभी ड्यूटी पदाधिकारियों को कारगर ढंग से लागू करने हेतु सुनिश्चित करने के लिए एससीपी को एक अधिनियम बनाया जाना चाहिये।

बिहार के उपेक्षित एवं शोषित दलित जो संविधान और अन्य कानूनों के अंतर्गत प्राप्त अधिकारों का उपयोग नहीं कर रहे हैं, बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है। दलितों के प्रति सामाजिक अन्याय और शोषण अभी भी विद्यमान है। इन वर्गों से सम्बन्धित व्यक्तियों के प्रति अत्याचार एवं आर्थिक विषमता अशांति का कारण है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने एक प्रतिवेदन में कहा है कि दलितों के लिए अगड़ा–पिछड़ा वर्गों में अभी तक दलितों के प्रति उनके विचार और आचरण में परिवर्तन नहीं हो सका है। बिहार में पिछले 25 वर्षों में 25 से अधिक सामूहिक नरसंहारों में 1000 से अधिक दलितों की हत्याएं हुई हैं परन्तु उनसे सम्बन्धित दोषियों को न ही दण्डित किया गया और न ही प्रभावित परिवारों का पुनर्वास ही हो सका है।

❖❖❖

दलितों की स्थिति में सुधार नहीं[1]

मण्डल आयोग की अनुशंसा के अंतर्गत सामाजिक न्याय का अर्थ केवल मध्यवर्गीय पिछड़ों को प्रशासनिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक लाभ दिलाना रहा है क्योंकि बिहार में दलित को दु:स्थिति से निकालने के लिए संविधान में जो विशेष व्यवस्था की गई है उसका नियमन नियामक शक्तियाँ एवं संस्थायें बिहार में पिछले 25 वर्षों में ठीक से नहीं कर-करा पायीं है। संविधान की इन व्यवस्थाओं को लागू करने के लिए कानून भी बनाये गये हैं। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों पर होने वाले अत्याचार को रोकने के लिए अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 पारित किया गया है। यह अधिनियम भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 के आलोक में पारित किया गया है और यह 30 जनवरी, 1990 से भारत में लागू है। इस अधिनियम के द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों पर होने वाले अत्याचारों को रोकने के लिए कानूनी तौर पर पुख्ता इंतजाम है और इसे और मजबूती प्रदान करने के लिए इसका विस्तार करते हुए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, 1995 भी पारित किया गया है। मगर इन तमाम प्रावधानों के बावजूद ये प्रावधान व्यावहारिक स्तर पर बिहार में लागू नहीं हो पा रहे हैं।

बिहार में पिछले 25 वर्षों में 1000 से अधिक दलितों की सामूहिक हत्या हुई। परन्तु, किसी भी दोषी को सजा दिलाने में सरकार विफल रही है। निश्चित रूप से इसलिए कि दलितों के संरक्षण के लिए लागू करने-कराने का दायित्व जिन संस्थाओं और अधिकारियों का है, वे शिथिल रहते हैं। इस शिथिलता के कई कारण हैं। एक तो उनका अपना पूर्वाग्रह है। ये अधिकारी किसी विशेष जाति के होने के कारण इन नियमों, अधिनियमों के पालन के प्रति उदासीन रहे हैं, उन्हें सख्ती से लागू करने-कराने में लापरवाही करते हैं। जिन लोगों ने इन जातियों पर अत्याचार किया है, वे इतने समर्थ हैं कि इन अधिकारियों पर ऊपर से कोई दबाव डलवा कर उन्हें अपना काम करने से रोकते रहते हैं। इन अधिकारियों को तथ्य की पूरी जानकारी नहीं मिल पाती है; क्योंकि घटना के वक्त घटना-स्थल पर कोई अधिकारी स्वयं मौजूद नहीं होता है। उस घटना के बारे में जानकारी किसी अन्य माध्यम से मिलती है। इसलिए कई बार गवाह नहीं मिलने या फिर पीड़ित ही पीड़ित करने वाले के भय से पूरी बात अधिकारी को नहीं बता पाता। इनके अतिरिक्त कानूनी झोल दांव-पेंच भी है। लेकिन इन सब में बड़ी और प्रमुख वजह इन जातियों का गरीब और अशिक्षित होना है।

धन और शिक्षा किसी को भी समर्थ बना देने के प्रमुख कारक हैं। इसलिए जो व्यक्ति धनी और शिक्षित हैं, इनमें भी पहला धन ही है, उसके साथ अन्याय, अत्याचार की घटनायें या तो नहीं होती हैं या न्यूनतम होती हैं। अब चूंकि धन के अभाव में ये जातियाँ असमर्थ होती हैं और शिक्षा के अभाव में नियम-कानून से अनभिज्ञ, इसलिए इन पर अत्याचार होता है और तमाम संवैधानिक

1 09 मई, 2015

व्यवस्था और कानूनी प्रावधान होते हुए भी अपराधी को दंड राज्य सरकार से नहीं मिल पाता है। दरअसल संवैधानिक प्रावधानों को लागू कराने के लिए होने वाली कानूनी प्रक्रिया इतनी जटिल, खर्चीली और विलम्बित होती है कि अक्सर इसका लाभ ये निर्बल और निर्धन जातियाँ नहीं उठा पातीं। इसीलिए पिछले 25 वर्षों में बिहार में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है। यह सचमुच आश्चर्य है कि कई कानूनों और नियमों के बावजूद दलितों पर अत्याचार बिहार में रुका नहीं है। भारतीय संविधान की धारा-17, अस्पृश्यता कानून, 1995, नागरिक अधिकार कानून 1976, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार की रोकथाम) कानून 1989 अपने दण्ड निवारक धाराओं तथा इस तरह के अपराधों के लिए विशेष अदालत का प्रावधान बिहार में व्यर्थ साबित हुए हैं। विशेष अदालत के प्रावधान और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (पीओए) कानून 1989 के अनुच्छेद 14 और 15 के तहत विशेष सरकारी वकील की नियुक्ति के बावजूद लम्बित मामलों की लम्बी सूची दलितों की दुर्दशा और समाज में व्याप्त असंतोष को साबित करती है।

❖❖❖

सरकारी सेवाओं में आरक्षण का कोटा पूरा नहीं होना विस्मयकारी[1]

पिछले दशकों के शासनकाल में बिहार में सरकारी सेवाओं में दलित, आदिवासी, पिछड़े एवं अत्यंत पिछड़ों के लिये निर्धारित कोटे पूरे नहीं हुए हैं, क्योंकि बिहार लोक सेवा आयोग के माध्यम से सरकारी सेवाओं के लिये प्रत्येक वर्ष आयोजित होने वाली संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षाएं नहीं हुई। इसी संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा के माध्यम से उत्तीर्ण उम्मीदवारों की नियुक्ति सरकार के सभी विभागों में की जाती है। लोक सेवा आयोग के माध्यम से संयुक्त परीक्षायें कम होने के कारण तीन लाख से अधिक प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी की नौकरियाँ रिक्त पड़ी रही हैं। अगर लोक सेवा आयोग की ये परीक्षायें नियमित रूप से होती रहती तो आधी नौकरी दलित एवं पिछड़ी जाति के युवकों को मिलती।

प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च विद्यालय एवं महाविद्यालय के शिक्षकों के 4 लाख से अधिक पद रिक्त पड़े रहे हैं, कुछ तदर्थ नियुक्तियाँ हुई हैं। वर्षों से नियमित नियुक्तियाँ नहीं हो पायी हैं। विश्वविद्यालय सेवा आयोग, कॉलेज सेवा आयोग एवं विद्यालय सेवा आयोग को 2006 में विघटित कर दिया गया है और वैकल्पिक व्यवस्था नहीं की गयी है, जिससे विश्वविद्यालय, महाविद्यालय और विद्यालयों में नियुक्तियाँ नहीं हो सकी हैं। विद्यालयों में चार लाख से अधिक एवं अंगीभूत महाविद्यालयों में आठ हजार से अधिक रिक्तियाँ पड़ी हुई हैं। अगर इन शिक्षकों के पदों पर इन वर्षों में नियुक्तियाँ की गयी होती तो आधे से अधिक नियुक्तियाँ दलित पिछड़ों की हुई होती।

इन अकाट्य तथ्यों के आलोक में नेताओं को कोई नैतिक और वैधिक अधिकार नहीं बनता है कि आरक्षण के सम्बन्ध में कोई विवाद उत्पन्न करें।

❖❖❖

---

1 15 अक्टूबर, 2015

आरक्षित पदों पर दलित एवं आदिवासी शिक्षकों की नियुक्ति सुनिश्चित हो[1]

कल रात नई दिल्ली के राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी से मिलकर उन्हें नव वर्ष की शुभकामनाएं दी और उनका ध्यान विशेष रूप से इस ओर दिलाया कि नयी आर्थिक नीति के बाद रोजगार के अवसरों का विस्तार मुख्य रूप से निजी क्षेत्रों में हो रहा है, जिसमें दलितों और आदिवासियों के नवयुवकों को भागीदारी नहीं मिल रही है, क्योंकि जो नई नौकरियाँ सृजित हो रही हैं, वे तकनीकी संरचना, सूचना एवं प्रौद्योगिक क्षेत्रों में ही हो रही है। इन क्षेत्रों में दलितों, आदिवासी एवं अत्यंत पिछड़े वर्गों के दलितों को प्रशिक्षित नहीं किया जा रहा है। उच्च शिक्षा से ही किसी राष्ट्र का वास्तविक विकास संभव हो पाता है, क्योंकि शिक्षा से ही राष्ट्र को अच्छे इंजीनियर, डॉक्टर, व्यवसायी, अधिवक्ता, लेखा विशेषज्ञ, प्रोफेसर तथा सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित कुशल तकनीकी कर्मियों की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है। परन्तु इन क्षेत्रों में इन वर्गों के छात्रों का प्रवेश नहीं हो पाता है क्योंकि उच्च शिक्षा में आरक्षित पदों पर रिक्तियाँ रहने के कारण दलित आदिवासी समाज अभी तक राष्ट्र की मुख्य धारा में सम्मिलित होने से वंचित है।

राष्ट्रपति को मैंने बताया कि एक रिपोर्ट के मुताबिक केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के प्राध्यापकों की संख्या नगण्य है। बी॰एच॰यू॰ में कुल 360 प्रोफेसरों में मात्र एक अनुसूचित जाति के हैं। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में शून्य, जे॰एन॰यू॰ में मात्र 2, दिल्ली विश्वविद्यालय में 3, जामिया में एक भी नहीं, विश्व भारती में मात्र 1 और हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय में 1 अनुसूचित जाति के प्रोफेसर कार्यरत हैं। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में इसी प्रकार अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के प्राध्यापकों का मामला है तो बी॰एच॰यू॰ में मात्र–1, अलीगढ़ शून्य, जे॰एन॰यू॰ में 3, दिल्ली विश्वविद्यालय में–2, जामिया में एक, विश्व भारती में 1, हैदराबाद केन्द्रीय विद्यालय में मात्र 2 रीडर नियुक्त हैं वही बी॰एच॰यू॰ में 1, अलीगढ़ में शून्य, जे॰एन॰यू॰ में 11, दिल्ली विश्वविद्यालय में 9, जामिया में 1, विश्व भारती में 16 एवं हैदराबाद विश्वविद्यालय में 13 प्राध्यापक कार्यरत हैं।

इन आंकड़ों के जरिये यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि 1956 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना के बाद से देश में विश्वविद्यालयों तथा उनके अंतर्गत आने वाले कॉलेजों में अनुसूचित जाति के 75,000 पद अभी भी खाली हैं। उन पर अन्य गैर दलितों और गैर आदिवासियों का कब्जा है। इन आंकड़ों से यह साबित होता है कि संविधान में पर्याप्त प्रावधानों और अन्य कानूनों के बावजूद यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि अनुसूचित जातियों, जनजातियों के प्रति विषमता एवं सामाजिक स्तर पर अन्याय का क्रम जारी है। बिहार में विश्वविद्यालय में शिक्षकों के पदों के लिए 1976 में दलित आदिवासियों के लिये आरक्षण नीति लागू किया गया। यू॰जी॰सी॰

1 02 जनवरी, 2016

ने 1993 में सभी विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में दलित आदिवासी आरक्षण लागू किया परन्तु देश में सभी विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में अभी तक इन वर्गों को आरक्षण का लाभ नहीं मिल रहा है।

राष्ट्रपति को यह भी बताया कि बाबा साहब अम्बेडकर की 125वीं जयन्ती वर्ष में उन्हें सरकार को यह निर्देश देना चाहिये कि शिक्षा सबके पहुँच के अन्दर होनी चाहिये उसे हर मुमकिन तरीके से यथा संभव सस्ता बनाया जाना चाहिये। इस अवसर पर मैंने उन्हें स्मरण कराया कि महात्मा फूले ने भी 1856 में कहा था कि विद्या पाने का अधिकार सबको है। उन्होंने शिक्षा के महत्व के बारे में कहा था कि शिक्षा के बिना समझदारी नहीं आती, समझदारी के बिना नैतिकता नहीं आती, नैतिकता के बिना विकास नहीं आता, विकास के बिना धन नहीं आता। निर्धनता ने ही दलित, आदिवासियों को बर्बाद कर दिया है। वहीं डॉ॰ अम्बेडकर ने कहा है कि शिक्षा वह महानतम लाभ है जो सभी पिछड़े, शोषित पीड़ितों को मिलना चाहिये। भौतिक लाभों को भले झुठला दे मगर शिक्षा के फायदे को हासिल करने के लिए अधिकार और मौकों को नहीं छोड़ सकते। इन वर्गों को यह समझना है कि शिक्षा के बिना उनका अस्तित्व सुरक्षित नहीं है।

राष्ट्रपति से मुलाकात में उनसे यही अपील की कि नये वर्ष में केन्द्र एवं राज्य सरकारों को यह निर्देश दें कि सभी विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं तकनीकी संस्थानों में शिक्षकों की नियुक्ति में आरक्षण सख्ती से लागू हो। उच्च तकनीकी शिक्षा में दलितों एवं आदिवासियों का अधिक से अधिक प्रवेश हो।

❖❖❖

दलितों पर बढ़ रहे हैं अत्याचार[1]

संविधान में पर्याप्त प्रावधानों और अन्य कानूनों के बावजूद यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि सामाजिक अन्याय और अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं अत्यन्त पिछड़े तबके का शोषण जारी है। 65 वर्ष से अधिक होने के बाद भी सामान्यत: तमाम अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लोगों और खासकर दलितों एवं अत्यन्त पिछड़ी जातियों को जिस तरह अपमान से गुजरना पड़ता है वह शर्म की बात है। संयुक्त राष्ट्र की विश्व सामाजिक स्थिति रिपोर्ट ने केन्द्र एवं राज्य सरकारों के दलितों की कल्याणकारी योजनाओं के उन तक पहुँचाने की स्थिति को उजागर किया है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में दलित और विशेषकर दलित परिवार की महिलाएं संविधान के बुनियादी अधिकारों से वंचित हैं। आज भी वे हाशिये पर हैं। समाज में जाति आधारित व्यवस्था के कारण अनुसूचित जाति के लोग अभी भी बहिष्कार के शिकार हैं।

अनुसूचित जातियों के पक्ष के बने कानून बेअसर रहने के कारण इन वर्गों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाया है। इन वर्गों के प्रति उदासीनता दिखाई पड़ती है। देश के कोने-कोने में दलित आज भी भीषण पीड़ा और प्रताड़ना की जिन्दगी झेल रहे हैं। दलित तबका राष्ट्र के विकास में अपनी सहभागिता ढूंढता है तो उसे मायूसी ही दीखती है और उसे विषमता, शोषण एवं जुल्म सहने पड़ते हैं। इस भीषण सामाजिक, आर्थिक गैर-बराबरी और अन्याय से निजात पाना ही होगा। मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट ने इस दिशा में अनेक सिफारिशें भी पेश की हैं। सारांशत: अनुसूचित जातियों एवं जन-जातियों पर जारी त्रासदी से मुक्त कराने के लिए उनके संरक्षण के लिए बने विभिन्न कानूनों को प्रभावी ढंग से लागू करने और दोषियों को दंड देने के साथ-साथ सामाजिक सरंचना एवं सोच में व्यापक परिवर्तन की भी जरूरत है। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों पर हिंसा रोकने के मामले में नौकरशाही का पक्षपात पूर्ण रवैया सामाजिक एवं आर्थिक कानूनों को लागू करने के संदर्भ में भी खुलकर सामने आ जाता है। यहाँ नौकरशाही ही अपराधी है जिसका नजरिया और व्यवहार तमाम स्तरों पर क्रियान्वयन की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। सदियों से आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिये पर जी रहे दलितों के प्रति समाज के प्रभुत्वशाली वर्गों का नजरिया, लोकतंत्र, समता और न्याय आदि के तमाम प्रचार के बावजूद नहीं बदला है। दलितों के मामले में क्या अगड़ा क्या पिछड़ा सब के सब एक हैं।

केन्द्र और राज्य स्तर पर पूरे भारतीय शासन को अनुसूचित जाति एवं जनजाति पर बढ़ते अत्याचारों की ओर प्राथमिकता के आधार पर ध्यान देना चाहिये। अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम-1989 और उसके अर्न्तगत नये नियमों को पूरी तरह से और प्रभावी कार्यान्वयन के लिये सरकार द्वारा तुरंत उपाय किये जाने चाहिये।

---

1 05 अप्रैल, 2016

आवश्यक है कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति पर अत्याचार निवारण अधिनियम–1989 में निम्नलिखित बिन्दुओं पर केन्द्र सरकार संशोधन करने पर विचार करे और प्रभावित परिवारों को पुनर्वास और उन परिवारों के भरण–पोषण की समुचित व्यवस्था के लिये सरकार जिम्मेवारी निर्धारित करें:– (1) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम–1989 की धारा 3(1) में संशोधन करके इसमें उन अपराधों को शामिल किया जाए जो अनुसूचित जाति एवं जनजाति पर किये जाते हैं, जो अभी तक इसके अपराधों की सूची में शामिल नहीं किये गये हैं जैसे कि सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार और ब्लैक मेल, झूठे जवाबी मामले फाइल करना, हत्या, सामूहिक हत्या, बलात्कार, सामूहिक बलात्कार, चोट, गंभीर चोट, अपहरण, भेदभाव या अनुसूचित जनजाति, अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की पहचान) अधिनियम 2006 के अंतर्गत वन अधिकारों के प्रयोग में अनुसूचित जाति के लिये अड़चन पैदा करना, संपत्ति नष्ट करना, चुनाव में पद के लिए नामांकन भरने या निर्वाचित प्रतिनिधियों के रूप में काम करने में बाधा डालना, मजदूरी या उचित मजदूरी देने से इन्कार करना, (बाल श्रम निषेध और विनियमन) अधिनियम 1986 में निषिद्ध व्यवसाय में बच्चों का नियोजन, हाथ से मैला साफ करने के लिये किसी व्यक्ति का नियोजन करना, किसी अनुसूचित जाति और जनजाति महिला को देवदासी के रूप में अर्पित करना, आंगनबाड़ी या शैक्षिक संस्थाओं में भेदभाव। अधिनियम की धारा 3(1) में संशोधन करके ''इरादे के साथ'', ''जानबूझकर'' और ''गलत तरीके'' शब्दों को हटाया जाए और अधिनियम की धारा 3(2) में संशोधन करके ''के आधार पर'' शब्दों को हटाया जाए ताकि अधिनियम में इन शब्दों की इच्छानुसार व्याख्या करके पुलिस और न्यायपालिका को अत्याचार के मामलों को अब की तरह हल्का करने का मौका न मिले। अधिनियम की धारा 3(2) में संशोधन करके यह व्यवस्था की जाए कि यदि कोई सरकारी सेवक इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध करेगा तो उसे एफआईआर दर्ज होते ही निलम्बित कर दिया जायेगा और मुकदमा पूरा होने तक उसे कोई पदोन्नति, पुरस्कार या अन्य लाभ नहीं दिया जायेगा। गृह मंत्रालय के दिशा–निर्देशों के अनुसार सभी शिकायतों को अनिवार्य रूप से एफआईआर के रूप में दर्ज किया जाए और शिकायत दर्ज करने वाले पुलिस अधिकारी के पास कोई विवेकाधिकार न हो। अधिनियम और नियमों के कार्यान्वयन के बारे में आंकड़े इकट्ठे करने, संकलित करने और साक्ष्यांकित कर आवश्यक कार्रवाई हेतु कठोर उपबंध करे तथा शासकीय कर्त्तव्यों में लापरवाही के बारे में धारा 4 में संशोधन करके निम्नलिखित को शामिल किया जाए:–(क) जुबानी की गयी और पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा लिखित में तैयार की गयी शिकायत पर सूचनादाता के हस्ताक्षर लेने से पहले उसे उसके सामने पढ़कर सुनाया जाना आवश्यक हो। (ख) शिकायत की विषयवस्तु को बदलने के लिये शिकायतकर्ता को गुमराह नहीं किया जाए। (ग) एफआईआर रजिस्टर करना अनिवार्य हो। (घ) अधिनियम के अंतर्गत एफआईआर दर्ज न करना अपराध हो। (ङ.) अधिनियम की उपर्युक्त धाराओं के अंतर्गत एफआईआर दर्ज नहीं करना अपराध हो। (च) जाँच अधिकारी द्वारा पीड़ितों या गवाहों के बयान दर्ज न किया जाना अपराध हो। (छ) जाँच अधिकारी द्वारा जाँच में 30 दिनों से अधिक विलम्ब और (ज) शिकायतकर्ता, सूचनादाता और पीड़ित की किसी भी सहायता करने वाले व्यक्ति के प्रति किसी अधिकारी या कर्मचारी के अभद्र व्यवहार

की मनाही हो। अधिनियम की धारा के अंतर्गत अपने कर्तव्यों के पालन में लापरवाही करने वाले पुलिस अधिकारियों के खिलाफ तुरंत कानूनी और विभागीय अनुशासनिक कार्रवाई की जाए।

यह सुनिश्चित किया जाए कि पुलिस अधीक्षक अत्याचार के स्थल का तुरंत दौरा करें और अनुसूचित जाति एवं जनजाति नियमों के नियम 12(1) (2) और (3) के अंतर्गत अपने कर्तव्यों को पूरा करें; विशेष रूप से- (क) यह सुनिश्चित किया जाए कि अधिनियम के अंतर्गत एफआईआर दर्ज की गयी है और अभियुक्तों को पकड़ने के लिये कारगर उपाय किये जा रहे हैं। (ख) क्षेत्र में पुलिस बल तैनात करना और अत्याचारों की पुनरावृति को रोकने के लिये अन्य निवारक उपाय करना आवश्यक हो। अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अ.नि.) अधिनियम के अंतर्गत फाइल किये गये सभी मामलों में यह सुनिश्चित किया जाए कि जाँच अधिकारी पुलिस उप अधीक्षक से नीचे के रैंक का न हो जैसी कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अ.नि.) नियमों के नियम 7(1) में व्यवस्था की गयी है। जिलों में अत्याचारों की गंभीरता, बर्बरता और व्यापकता को देखते हुए प्रत्येक जिले में और पुलिस उप-अधीक्षक नियुक्त किये जाएँ जो अधिनियम के अंतर्गत अत्याचारों की जाँच के प्रभारी हों। यह अनिवार्य बना दिया जाए कि कोई पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश और वारंट के बगैर शिकायतकर्ता, पीड़ित, गवाह या पीड़ित की सहायता करने वाले व्यक्ति को पूछताछ या अन्य किसी उद्देश्य के लिये गिरफ्तार नहीं करे। सभी राज्य/संघ राज्य पुलिस विभागों को अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अ.नि) अधिनियम, मानवाधिकार अधिनियम 1993 और आईसीईआरडी, आईसीसीपीआर, आईसीईएससीआर और सीईडीए डब्ल्यू में लिपिबद्ध अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों की जानकारी दी जाए। पुलिस कार्मिकों को विशेष रूप से अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अ.नि.) अधिनियम और पीसीआर अधिनियम के मामले में पुलिस कार्मिकों को यह समझाया जाए कि उनका उद्देश्य क्या है, उनका मूल क्या है और किस तरह से उनके पीछे मंशा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के अधिकारों की रक्षा करती है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अ.नि.) अधिनियम और नियमों के बारे में पुलिस अधिकारियों के लिये नियमित रूप से अनुकूलन प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाने चाहिये।

❖❖❖

न्यायिक सेवा में आरक्षण[1]

बिहार मंत्रिपरिषद् ने राज्य उच्च न्यायिक सेवा में एसटी, एससी, ओबीसी एवं इबीसी को 50 प्रतिशत आरक्षण देने का निर्णय किया है। राज्य सरकार बनाम दयानन्द सिंह मामले में सुनवाई के बाद उच्चतम न्यायालय ने 29 सितम्बर, 2016 को पारित आदेश के आधार पर पटना हाई कोर्ट और बिहार लोक सेवा आयोग के परामर्श से राज्य उच्च न्यायिक सेवा में 50 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान किये जाने और उस आरक्षण में प्रत्येक श्रेणी में महिला के 35 प्रतिशत और शारीरिक रूप से अक्षम को एक प्रतिशत का आरक्षण देने का निर्णय स्वागतयोग्य है।

भारत के संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 333, 334 एवं 335 अनुच्छेदों के अंतर्गत राज्य के उच्च न्यायालय के अंतर्गत उच्च न्यायिक सेवा में आरक्षण की व्यवस्था की गई है। इन्हीं अनुच्छेदों के अंतर्गत राज्य सरकार न्यायिक प्रशासन के लिए उच्च न्यायालय के निर्देशों के अधीन कार्य करने के लिए बाध्य है।

बिहार में स्व॰ कर्पूरी ठाकुर की सरकार ने 10 नवम्बर, 1978 को जारी अधिसूचना के अंतर्गत पिछड़ा वर्ग के लिए राज्य सेवा में आरक्षण सुनिश्चित किया था। उस समय पटना उच्च न्यायालय ने उच्च न्यायिक सेवा में आरक्षण की अनुमति नहीं दी थी। उच्च न्यायिक सेवा में आरक्षण का मामला पटना उच्च न्यायालय के परामर्श के अभाव में लम्बित रहा। 1982 में तत्कालीन(मेरी सरकार) कांग्रेस सरकार ने पटना उच्च न्यायालय से राज्य की अन्य राजकीय सेवा की तरह उच्च न्यायिक सेवा में आरक्षण किये जाने के लिए अनुमति मांगी थी, जो पटना उच्च न्यायालय ने नहीं दी थी। इसलिए उच्च न्यायालय की अनुमति के अभाव में अभी तक उच्च न्यायिक सेवा में आरक्षण लम्बित रहा। इतने वर्षों से लम्बित उच्च न्यायिक सेवा में दलित, आदिवासी, पिछड़ा वर्ग एवं अत्यंत पिछड़ा वर्ग में आरक्षण लागू नहीं होने से इस समूह में असंतोष व्याप्त रहा।

मंत्रिपरिषद् के निर्णय से बिहार की उच्च न्यायिक सेवा के लिए संशोधन न्यायिक 2016 और बिहार असैनिक बिहार न्यायिक शाखा भर्ती नियमावली 2016 में निहित आरक्षण और अन्य प्रावधानों को संशोधित कर लागू करने का फैसला लिया है। इसके तहत अब बिहार उच्च न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीश के पदों पर प्रवेश बिन्दु और बिहार असैनिक सेवा न्याय शाखा के पद पर सीधी नियुक्ति में इन वर्गों को आरक्षण प्राप्त होगा। मंत्रिपरिषद् के इस निर्णय से उच्च न्यायिक सेवा में आरक्षण तुरंत प्रारम्भ हो जायेगा। इस संबंध में पटना उच्च न्यायालय के आदेश का अनुपालन स्वत: प्रारंभ हो जायेगा। पूर्व में पटना उच्च न्यायालय की सहमति से केवल कनीय न्यायिक सेवा के लिए आरक्षण अनुमान्य था।

---

1 28 दिसम्बर, 2016

1982 में मेरी सरकार ने पटना उच्च न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने की चेष्टा की थी। परंतु उस समय पटना उच्च न्यायालय का अभिमत था कि उच्च न्यायिक सेवा के लिए इन वर्गों में अपेक्षित योग्यता और गुणवत्ता न्यायिक निर्णय के लिए अनुकूल नहीं है। अत: तत्काल आरक्षण गुणवत्ता की दृष्टि से उचित नहीं होगा। अब इतने वर्षों के बाद पटना उच्च न्यायालय इससे संतुष्ट है कि इन वर्गों में योग्यता और क्षमता ऐसी हो गई है कि उन्हें राज्य सरकार की पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण सम्बन्धित 10 नवम्बर, 1978 को जारी पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण सरकारी सेवाओं में अन्य सरकारी सेवा की तर्ज पर आरक्षण दिया जा सकता है।

पटना उच्च न्यायालय राज्य सरकार बनाम दयानन्द सिंह मामले में सुनवाई के बाद उच्चतम न्यायालय ने 29 नवम्बर, 2016 को आदेश पारित कर इन वर्गों के लिए अन्य सरकारी सेवाओं की भांति उच्च न्यायिक सेवा में भी 50 प्रतिशत आरक्षण देने का आदेश राज्य सरकार को दिया है। इतने वर्षों के बाद उच्च न्यायिक सेवा में इन वर्गों को अन्य सरकारी सेवाओं की तरह आरक्षण सुनिश्चित किया जाना अत्यंत प्रशंसनीय है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय एवं संविधान के अनुच्छेद-16 के उपखण्ड-4 के प्रावधान के अंतर्गत अब तक उच्च न्यायिक सेवाओं में इन वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं था।

आरक्षण का अब तक मौजूदा ढांचा अपने उद्देश्यों को पूरा करने में विफल रहा है। संविधान लागू होने के साथ ही अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण लागू है। 1993 के बाद से मंडल आयोग की अनुशंसा अन्य पिछड़ा वर्ग यानि ओबीसी के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण लागू है। शिक्षण संस्थानों में अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण लागू है। लेकिन इस तरह के तमाम आरक्षणों का क्या नतीजा निकला? इतने वर्षों के बाद भी अनुसूचित जाति एवं जनजाति और केन्द्रीय सेवा में अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण लागू होने के बाद की क्या स्थिति है? अब आरक्षण नीति की गहन समीक्षा की जानी चाहिये और देखा जाना चाहिये कि आरक्षण नीति अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में कहाँ तक कामयाब रही है। यह जानने की कोशिश नहीं की गई है कि जाति के अलग-अलग समुदायों की वास्तविक स्थिति क्या है? किन-किन समुदायों को कितना और किस तरह विशेष अवसर देने की जरूरत है। इस बात को छुपाने पर इतना जोर है कि समाज में महत्व के आंकड़े नहीं जुटाये जा रहे हैं। इसलिए आवश्यक है कि भारत के संसाधनों और अवसरों पर देश के विभिन्न सामाजिक समूहों की सुसंगत भागीदारी बेहतर ढंग से सुनिश्चित की जाए। अब तक सूचना है कि दलित, आदिवासी एवं अन्य पिछड़े वर्गों के कुछ समूहों ने ही आरक्षण का लाभ केन्द्रित कर लिया है। बड़ी संख्या में कुछ वर्गों को आरक्षण का लाभ नहीं मिल सका है।

❖❖❖

दलित एवं पिछड़ी जातियाँ अपना हिस्सा प्राप्त करने में विफल[1]

आर्थिक आजादी से तात्पर्य है अन्तिम पंक्ति में जो व्यक्ति खड़ा है उसको देश की मुख्यधारा में जोड़ा जाए और यह तभी संभव है जब विकास की किरणें उन तक पहुँच पाये। देश की उन्नति में उनका भी योगदान हो। सामाजिक आजादी से तात्पर्य है कि समाज के सभी वर्ग एक समान हो। जाति, सम्प्रदाय, लिंग, धर्म के आधार पर कोई भेदभाव न हो।

आज आजादी के 70 वर्ष बाद भी न तो आर्थिक आजादी पूर्णतया: प्राप्त हुई और न सामाजिक आजादी और न ही शिक्षा एवं नियोजन में यथोचित हिस्सा मिल पाया है, केवल राजनीतिक मुद्दा बना रहा है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया में गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या सबसे अधिक भारत में है। रिपोर्ट में कहा गया है कि उस साल भारत की 30 प्रतिशत आबादी की औसत दैनिक आय 1.90 डॉलर से कम थी और दुनिया के एक तिहाई गरीब भारत में थे। आज भी इस स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया है। 2013 में जारी आंकड़ों के मुताबिक पूरी दुनिया में गरीबों की संख्या करीब 80 करोड़ में से भारत में गरीबी रेखा के अंतर्राष्ट्रीय मानक से नीचे जीवनयापन कर रहे लोगों की संख्या 22.7 करोड़ है।

बिहार के स्कूलों, कॉलेजों एवं सरकारी नियोजन में भर्ती की रिपोर्ट पर नजर डालना अनावश्यक नहीं होगा। दलितों और पिछड़ी जाति के बच्चों के ड्राप आउट रेट का अध्ययन करें तो पता चलता है कि जैसे-जैसे इन समुदायों के बच्चों की कक्षा आगे बढ़ती जाती है उनकी शिक्षा क्रमश: कम होने लगती है। दलित समुदायों में मुसहर समुदायों एवं अन्य दलितों की हालत तो सबसे खराब है। मुसहर समुदाय में 5 से 14 वर्ष के बच्चों के स्कूल जाने की दर मात्र 10 प्रतिशत है जबकि भुईयाँ में यह 15 प्रतिशत है। मुसहर समुदाय के 1 प्रतिशत से भी कम नौजवान एम॰ए॰ तक पहुँच पाते हैं। प्राइमरी तो 27 प्रतिशत तक पहुँचते हैं, जबकि मिडिल तक पहुँचते-पहुँचते उनकी तादाद 7 प्रतिशत पर सिमट जाती है। 5.5 प्रतिशत बच्चे ही मैट्रिक तक पहुँच पाते हैं। इन्हीं समुदायों से खेत मजदूरी की संख्या सर्वाधिक है। बिहार में ड्राप आउट रेट कक्षा 1 से 5 के बीच 51 प्रतिशत है जबकि देश का औसत 25 प्रतिशत है। अनुसूचित जाति के छात्रों में यह दर 61 प्रतिशत है। बिहार में कक्षा 1 से 8 तक यह दर 76 प्रतिशत है। कक्षा 1 से 10 के बीच यह दर 85 प्रतिशत पहुँच जाती है। पहली से 8वीं तक पहुँचने के बीच बड़ी संख्या में बच्चे पढ़ाई छोड़ देते हैं। प्राइमरी में तो उनका कोटा पूरा हो जाता है, लेकिन आगे का कोटा भरता नहीं है।

आरक्षण के बावजूद एक अध्ययन से पता चला कि राज्य के तमाम विभागों और श्रेणियों में 3,94,173 पदों में दलितों का प्रतिनिधित्व 6.19 प्रतिशत है। यानी आरक्षित पदों में आधे से कम पदों पर ही दलितों की बहाली हुई। हाउस होल्ड सर्वे में पता चला कि 23 लाख बच्चे स्कूलों से बाहर हैं। 65 हजार बच्चे घरेलू काम में लगे थे। 94 हजार बच्चे जीविकोपार्जन में लगे थे और

---

1 08 दिसम्बर, 2017

55 हजार बच्चे पलायन कर गये थे।

स्कूलों के बाद बिहार के विश्वविद्यालयों पर नजर डालें तो स्वीकृत 12913 पदों में 7083 पर शिक्षक बहाल हुए हैं। इनमें अति पिछड़ी जातियों एवं दलित की 32 प्रतिशत आबादी वाली जातियों का प्रतिनिधित्व सिर्फ 3 प्रतिशत। सरकारी विभागों एवं शिक्षकों के 4 लाख पद वर्षों से रिक्त हैं। अगर नियुक्ति की जाए तो 2 लाख पिछड़ी जाति एवं दलितों की नियुक्ति हो सकती है। सरकारी सेवा के लिए बिहार लोक सेवा आयोग की नियमित परीक्षा नहीं होती है। फलत: आरक्षित पद रिक्त रह जाते हैं।

क्या 25 वर्षों के सामाजिक न्याय के शासन और सामाजिक परिवर्तन का लक्ष्य पूरा हो गया? नहीं, उसे पूरा किया जाना बाकी है। उच्च शिक्षा से लेकर नौकरियों तक में अब भी हालत अच्छी नहीं है। दलित और ओबीसी आरक्षण के बावजूद उनका कोटा भरता नहीं है। राजनैतिक सशक्तीकरण के बावजूद आर्थिक, सामाजिक और ज्ञान के क्षेत्र में आगे आने के लिए अवसर तलाशने और बनाने होते हैं।

नेशनल सैम्पल सर्वे 61वें राउंड के सर्वे पर नजर डालें। उसके अनुसार एक गाँव में रहने वाले पिछड़ी जाति के बिहारी का मासिक औसत खर्च अथवा व्यय सिर्फ 458 रूपये 58 पैसे है। मुल्क के सबसे अधिक गरीब बिहार में बसते हैं। सामाजिक और आर्थिक विषमताओं कर पैठ गहरे स्तर तक बनी हुई है। देश के हरेक छह ग्रामीण गरीब आदमी में एक गरीब बिहारी होता है।

अमर्त्य सेन कहते हैं-यदि गरीबी का स्तर पूर्ववत् बना रहा तो भी आर्थिक विषमताएं समाज के पिछड़े वर्गों की अनेक क्षमताओं को कुंठित कर देती हैं। आर्थिक गैर बराबरी से सामाजिक जीवन का स्वरूप राजनैतिक प्रक्रियाओं का चरित्र और समाज की प्राथमिकताएं सब कुछ बदल जाती हैं। विषमता सामाजिक तनाव का एक बहुत बड़ा कारण बन सकता है। बिहार जैसे राज्य में पिछड़े हुए समाज को आज भी राज्य के संरक्षण और आरक्षण की जरूरत है। इन चुनौतियों को पिछड़ा समाज अपने बूते पूरा नहीं कर सकता है। ऐसे में समाज की आगामी शक्तियों के साथ मिलकर उसे साकार करना है। बिहारी समाज की पुनर्रचना का अर्थ है पिछड़े हुए और बहुसंख्यक समाज को आगे बढ़ाना। जिस समाज की बड़ी आबादी गरीबी में जी रही हो, अशिक्षा और कुपोषण तथा अकाल मृत्यु का शिकार हो रही हो वह समाज, राज्य इनको छोड़कर आगे कैसे बढ़ सकता है?

बिहार के राजनीतिक दल इन जातियों के प्रति असंवेदनशील हैं। केवल दलित एवं पिछड़ी जातियाँ इन दलों का राजनीतिक मुद्दा है। इनकी प्रतिबद्धता इनके उत्थान के लिए नहीं है।

❖❖❖

उच्च शिक्षा में दलितों का प्रतिनिधित्व[1]

1956 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना के बाद से देश भर में फैले ढाई सौ से अधिक विश्वविद्यालयों तथा उनके अंतर्गत आने वाले कॉलेजों में अनुसूचित जाति के लिए 75,000 पद आज भी खाली क्यों पड़े हैं या उन पर सवर्णों या अन्य गैर दलितों का परोक्ष कब्जा कैसे बना हुआ है? देश में पहलीबार उनकी सरकार ने विश्वविद्यालयों में दलित आरक्षण सुनिश्चित किया था। काफी दिनों बाद 1993 में यू॰जी॰सी॰ ने भी देश के सभी विश्वविद्यालयों में दलित आरक्षण लागू किया। बिहार में सभी विभागों की गणना की जाए तो लगभग 4 लाख रिक्तियां हैं। अगर सरकार द्वारा रिक्त पदों पर नियुक्ति की जाए तो 50 प्रतिशत दलित एवं पिछड़े वर्ग को नियोजन मिलेगा।

दलित वर्गों को निजी क्षेत्र में भागीदारी नहीं मिल रही है। जो नयी नौकरियां इजाद हो रही हैं, वे तकनीकी संरचना, सूचना प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में हो रही हैं। इन क्षेत्रों में दलित वर्गों के गरीब को प्रशिक्षित नहीं किया जा रहा है। उच्च शिक्षा से ही किसी राष्ट्र का वास्तविक विकास संभव हो पाता है क्योंकि उच्च शिक्षा से ही किसी राष्ट्र को अच्छे इंजीनियर, डाक्टर, व्यवसायी, अधिवक्ता, लेखा विशेषज्ञ, आचार्य (प्रोफेसर) तथा सभी क्षेत्रों से संबंधित कुशल तकनीक कर्मियों की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है।

अत: निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षा को विकसित करने में व्यय धनराशि अनुत्पादक निवेश नहीं है बल्कि दीर्घकालिक रूप में एक उत्पादक निवेश है। कहने की जरूरत नहीं कि साक्षरता के प्रति नयी जागरूकता के बावजूद काम अभी बाकी है।

तमाम अभियानों-कार्यक्रमों के बावजूद आज भी देश में लगभग 36 करोड़ लोग शिक्षा से वंचित हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षा के मद में सकल घरेलू उत्पाद के 6 प्रतिशत आबंटन की जरूरत रेखांकित की गयी थी पर यह आज तक नहीं हो सका। 1990 के दशक के दौरान प्रारंभिक शिक्षा पर चालू सार्वजनिक खर्च सकल घरेलू उत्पाद के 1.69 से घटकर 1.47 प्रतिशत पर प्रारंभिक शिक्षा को प्राथमिकता देने के शोर के बीच ही पहुँच गया।

कुछ वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा संपन्न व्यक्तियों के भरोसे नई सदी की आवश्यकता की पूर्ति संभव नहीं है इसलिए इक्कीसवीं सदी के लिए व्यापक शिक्षा की मांग की जा रही है। बच्चों की एक बहुत बड़ी आबादी स्कूल से आज भी बाहर है। प्रत्येक सौ बच्चे जो विद्यालय की प्रथम कक्षा में नामांकित होते हैं, उनमें से साठ बच्चे पाँचवाँ वर्ग तक पहुँचते-पहुँचते विद्यालय से पलायन कर जाते हैं। केवल 40 बच्चे ही पाँचवीं कक्षा की शिक्षा पूरी कर पाते हैं। 8वीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते इसमें से 77 बच्चे विद्यालय छोड़ देते हैं और मात्र 23 बच्चे 8वीं कक्षा की शिक्षा पूरी कर पाते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर दलित समूह के 3 करोड़ 35 लाख बच्चों का नामांकन

---

1 12 नवम्बर, 2017

प्राथमिक कक्षा में होता है परन्तु उनमें से केवल 35 लाख बच्चे ही माध्यमिक स्तर तक पहुँच पाते हैं। उन 35 लाख में से केवल एक तिहाई डिग्री स्तर तक पहुँच पाते हैं।

आखिर पढ़ाई छोड़ने वाले ये 77 बच्चे कौन हैं? दलित गरीब परिवारों के बच्चे ही हैं। इन समूहों के लिए आरक्षण का क्या महत्व रह जाता है। संविधान बनाते समय इस बात पर खास ध्यान दिया गया था कि देश के सदियों पुराने सामाजिक ढांचे से जो असमानता पैदा हुई है, उसे किस तरह से खत्म किया जाए। इस दृष्टिकोण का व्यावहारिक अर्थ यह हुआ कि सामाजिक व शैक्षिक रूप से दलितों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया। इसलिए यह देखने की जरूरत आ गई है कि किस समूह के लोग गरीब हैं और मुख्यधारा से अलग-थलग हैं। यह समझना सामाजिक समरसता के लिए भी जरूरी हो गया है।

दलितों को सामाजिक न्याय एवं संरक्षण के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों ने अनेक कानून बनाए हैं, परंतु उनका कार्यान्वयन नहीं हो पा रहा है। अधिकारी सचेष्ट और प्रतिबद्ध नहीं है। उनमें कार्यशीलता और कुशलता लाने के लिए राज्य सरकार के अधिकारियों के संबंध में वार्षिक गोपनीय अभ्युक्ति के लिये कुछ नये स्तम्भ जोड़ें जाएं। ये स्तम्भ इस प्रकार हों:- अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विकास और संरक्षण के लिये उपाय (क) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के प्रति दृष्टिकोण। (ख) सामाजिक न्याय के प्रति संवेदनशीलता। (ग) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को न्याय दिलाने तथा उन पर हो रहे अत्याचार को रोकने के संबंध में शीघ्र कार्रवाई करने की क्षमता। (घ) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का विकास करने में सफलता।

❖❖❖

हाशिये पर खड़े दलित और आदिवासी[1]

देश में दलितों और आदिवासियों की जनसंख्या करीब 25 करोड़ है जिसमें 16 करोड़ 70 लाख दलित और 8 करोड़ 60 लाख आदिवासी हैं। इसमें से लगभग 80 प्रतिशत दलित आदिवासी गाँवों में रहते हैं, जिनमें आधे से अधिक भूमिहीन कृषि मजदूर हैं। आधे से अधिक निरक्षर हैं जिनके बच्चों को पढ़ने की अच्छी व्यवस्था नहीं है।

इन दोनों वर्गों को आरक्षण देकर एक बेहतर शुरूआत की गयी थी लेकिन शिक्षा के अभाव, संसाधन की कमी और जागरूकता के अभाव में इस आरक्षण का फायदा कुछ ही दलित और आदिवासी परिवारों के दायरे में सिमटा हुआ है।

सरकार के जन कल्याण संबंधित कार्यक्रमों में इन वर्गों के लोगों के साथ पक्षतापूर्ण व्यवहार किया जाता रहा है चाहे वह शिक्षा, स्वास्थ्य या आर्थिक सशक्तीकरण की बात हो।

देश के ग्रामीण इलाकों में औसत रूप से 35 फीसदी लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन जी रहे हैं, वहीं दूसरी ओर देश के ग्रामीण इलाको में 40 फीसदी दलित और 48 फीसदी आदिवासी गरीबी रेखा से नीचे जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। देश के शहरी इलाकों में जहां सामान्य लोगों में सिर्फ 25 फीसदी आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन जी रही है वहीं दलित और आदिवासी समुदाय के 36 फीसदी लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। मजदूरी करने वाले लोगों में भी दलित और आदिवासी मजदूरों में 46 से 64 फीसदी तक गरीब हैं। भूमिहीनता के मामलों में आदिवासियों की तुलना में दलितों की स्थिति काफी चिंताजनक है। देश के ग्रामीण इलाकों में करीब 70 फीसदी दलित परिवार ऐसे हैं जिनके पास जमीन नहीं है या है तो एक एकड़ से भी कम है। अगर हम सरकारी आँकड़ों को देखें तो गरीबों के बीच भूमि वितरण की गति काफी धीमी है। अब तक जोत वाली जमीन की सिर्फ 2 फीसदी जमीन ही सीलिंग के तहत भूमिहीन लोगों में बांटी जा सकी है अगर हम सरकारी जमीनों को भी इसमें मिला दें तों यह कुल जमीन का मात्र 10 फीसदी है। अब तक केवल 18 लाख एकड़ जमीन का दलितों को वितरण हो पाया है।

राज्य और केन्द्र सरकार को भूमि सुधार जैसे मुद्दों पर गंभीरता से विचार करना होगा। हमारे समाज की जो संरचना है उसमें दलित और आदिवासी एक शक्तिविहीन समुदाय है। समाज का जो ताकतवर तबका है, जमीन पर उसका ही हक होता है। इसलिए केन्द्र और राज्य सरकार का यह सम्मिलित दायित्व बनता है कि जो जमीन वितरित की जा चुकी है या की जा रही है उस पर उसी समुदाय का हक रहे जिनका कानूनी तौर पर हक बनता है। 2011 के आंकड़ों के अनुसार 61 फीसदी ग्रामीण व शहरी दलित परिवार और करीब 50 फीसदी आदिवासी परिवार मजदूरी कर अपनी जीविका चला रहे हैं। इसमें 40 फीसदी दलित परिवार और 61 फीसदी आदिवासी परिवार गरीबी रेखा के नीचे जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं।

---

1 18 नवम्बर, 2017

दुर्भाग्यपूर्ण है कि संविधान में पर्याप्त प्रावधानों और अन्य कानूनों के होते हुए भी दलितों एवं आदिवासियों के साथ सामाजिक न्याय नहीं हो रहा है। उस कमजोर तबके का शोषण जारी है। उनके लिए राजकीय सेवाओं और शैक्षणिक संस्थानों में समुचित प्रतिनिधित्व की व्यवस्था आरक्षण के बावजूद यह स्थिति भारत सरकार द्वारा अपने को एक गणतंत्र राज्य घोषित करने के 67 वर्ष से अधिक समय गुजर जाने के बावजूद बनी हुई है जिसके चलते दलित एवं आदिवासी वर्ग के लोगों को अपमान सहना पड़ रहा है और अभी तक इससे उन्हें मुक्ति दिलाने के कारगर उपाय नहीं किये जा सके हैं। समाज के विभिन्न वर्गों में आरक्षण व्यवस्था का लाभ सभी जातियों तक समान रूप से नहीं पहुँच पाया है। गहन परीक्षण के उपरांत पाया गया है कि जो जातियाँ प्रभावशाली तथा बहुसंख्यक हैं, उन्होंने धीरे-धीरे, सेवा में नियोजन और शिक्षा के क्षेत्र तक सभी निर्धारित सुविधाएं अपने लिए ही सीमित करने में सफलता हासिल की है। नतीजा यह है कि इससे सम्बन्धित वर्ग की जो जातियाँ लाभ से वंचित रह गई हैं उनके बीच वर्तमान व्यवस्था के चलते असमानता बढ़ती गई है।

❖❖❖

प्रोन्नति में आरक्षण[1]

उच्चतम न्यायालय ने नागराजन केस में सरकार को निर्देश दिया कि अनुसूचित जाति/ जनजाति को प्रोन्नति में आरक्षण देते समय तीन बिन्दुओं पर तथ्यों की जाँच कर प्रोन्नति अनुमान्य करे-(1) ऐसे सांख्यिकी योग्य आंकड़ों का संकलन करना जिनसे वर्ग का पिछड़ापन और लोक सेवा में उक्त वर्ग का अपर्याप्त प्रतिनिधित्व निर्दिष्ट हो (2) संविधान की धारा 335 का अनुपालन सुनिश्चित करना जिसके अनुसार आरक्षण करते समय प्रशासनिक सक्षमता के संधारण पर समुचित विचार कर लेना है। (3) यह सुनिश्चित करना कि 50 प्रतिशत की अधिकतम आरक्षण सीमा का उल्लंघन आरक्षण के प्रावधान से नहीं होता है, मलाईदार परत मिटाई जाती है और न आरक्षण अनिश्चित काल तक होता है।

बिहार सरकार ने अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के हित में प्रोन्नति में आरक्षण के लिए उच्चतम न्यायालय की उन तीन शर्त्तों का अनुपालन नहीं किया। दो सदस्यीय पीठ ने भी एक सदस्यीय पीठ के उस निर्णय को वैध ठहराते हुए स्पष्ट किया है कि बिहार सरकार ने प्रोन्नति में आरक्षण संबंधी उच्चतम न्यायालय के निर्देश और संवैधानिक प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया। एक सदस्यीय पीठ और दो सदस्यीय पीठ को बिहार सरकार प्रोन्नति में आरक्षण के मामले में संतुष्ट नहीं कर पायी।

बिहार सरकार अनुसूचित जनजाति के पदाधिकारियों को संविधान के अनुच्छेद-16 के उपखण्ड 4(क) के अनुसार प्रोन्नति में आरक्षण देने के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है। सरकार के समक्ष उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्देशित तीन शर्त्तों की पूर्ति नहीं की गई ऐसा न्यायालय के निर्णय से लगता है। उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित निर्देशों के अनुसार उच्च न्यायालय के समक्ष तथ्य एवं सांख्यिकी उपस्थापित नहीं की गयी। मंडल आयोग की अनुशंसानुसार पिछड़े वर्गो के लिये सरकारी सेवा में आरक्षण को वैध ठहराते हुये 16 नवम्बर, 1992 के निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि केन्द्रीय सेवाओं में आरक्षण लागू करते समय केन्द्र सरकार को आरक्षण की परिधि से सुखी सम्पन्न (क्रीमीलेअर) लोगों को बाहर रखा जाए और अन्य पिछड़ी जातियों को पिछड़ों और अतिपिछड़ों के रूप में विभक्त करते हुए उनकी जनसंख्या के अनुपात में 27 प्रतिशत को वितरित किया जाए। उच्चतम न्यायालय ने इसके अतिरिक्त यह भी निर्देश दिया था कि अनुसूचित जाति/ जनजाति को प्रथम नियुक्ति में आरक्षण संवैधनिक रूप से अनुमान्य है। किन्तु, उन्हें सेवा में नियुक्ति के बाद प्रोन्नति में आरक्षण नहीं दिया जा सकता। परन्तु, उच्चतम न्यायालय ने 5 वर्षो तक प्रोन्नति में अनुसूचित जाति/जनजाति को आरक्षण जारी रखने का निदेश दिया था।

उच्चतम न्यायालय ने अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए संविधान के अनुच्छेद 16 के

1 04 दिसम्बर, 2017

उपखण्ड-4 के अंतर्गत आरक्षण को संवैधानिक रूप से जायज ठहराया, परन्तु उनके लिए प्रोन्नति में आरक्षण का निषेध कर दिया। लेकिन अगले 5 वर्षों तक प्रोन्नति में आरक्षण यथावत बना रहने का भी निर्देश दिया। यह उल्लेखनीय है कि वी॰पी॰ मण्डल आयोग के एक सदस्य एल॰आर॰ नायक ने रिपोर्ट में एक विमति की टिप्पणी देते हुए कहा था कि पिछड़े वर्गों में एक बड़ा समूह है जिनकी स्थिति दलितों और आदिवासियों जैसी ही है। इसलिए ऐसे लोगों के लिए आरक्षण की सीमा में कोटा को विभाजित करने के लिए एक विशेष आयोग की नियुक्ति करने की अनुशंसा की थी। ऐसे आयोग के गठन के लिए सरकार ने 123वाँ संशोधन विधेयक लोक सभा से पारित कराया है। उच्चतम न्यायालय ने संभवत: नायक की इसी टिप्पणी के आलोक में पिछड़े वर्गों को पिछड़ों/अतिपिछड़ों के रूप में विभाजित करने का अनुदेश दिया था, परन्तु ऐसा नहीं हो सका।

1995 में श्री पी॰वी॰ नरसिम्हा राव सरकार ने उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय के आलोक में संविधान के अनुच्छेद-16 के खण्ड-(4) में (क) जोड़ते हुये प्रावधान किया कि अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों को राज्य के अधीन सेवाओं में यदि पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है, तो राज्य के अधीन सेवाओं में किसी वर्ग या वर्गो के पदों पर परिणामिक श्रेष्ठता सहित प्रोन्नति के मामले में आरक्षण सरकार दे सकती है। इस प्रावधान को भी उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गयी और उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 16(4)(क) को विशेष रूप से परिभाषित करते हुये यह नियमन दिया है कि अगर कोई राज्य सरकार (या इस मामले में केन्द्र सरकार) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति को परिणामी वरीयता के साथ प्रोन्नति में आरक्षण प्रदान करना चाहती है तो तीन शर्तो के पालन के आधार पर व्यवस्था करनी होगी।

❖❖❖

आदिवासी-उन्मुख कानून[1]

पं॰ जवाहर लाल नेहरू ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संचालन के लिए पांच सिद्धांत तय किये थे, जिन्हें पंचशील के नाम से जाना जाता है। परन्तु इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं कि नेहरू जी ने जनजातियों के विकास के लिए अन्य पांच बुनियादी सिद्धांत भी सुझाये थे।

इन सिद्धांतों का वर्णन जाने-माने मानवशास्त्री वेरियर एलविन की पुस्तक ए फिलॉसफी ऑफ नॉर्थ-इस्टर्न फ्रंटियर एरिया (नेफा) की प्रस्तावना में नेहरू जी ने किया था। नेहरू जी एलविन का सम्मान करते थे और उनकी सराहना भी करते थे। जनजातीय विकास की नेहरूवादी परिकल्पना की बुनियाद भूमि और वन संसाधनों पर जनजातियों के अधिकारों की स्वीकृति पर आधारित थी। उन्होंने जनजातियों पर बाहरी लोगों की विचारधारा और मूल्य थोपे जाने के प्रति आगाह किया था और यह सुझाव दिया था कि ''उन्हें अपनी प्रतिभा के अनुरूप विकसित होने'' की आजादी दी जानी चाहिये। इन सिद्धांतों में जनजातीय सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थानों की स्वायतत्ता बनाये रखने और उसका सम्मान करने की आवश्यकता पर स्पष्ट रूप से बल दिया गया था। उनके ये विचार संविधान के अनुच्छेद 244 की भावना के अनुरूप हैं, जिसमें अनुसूचित जनजातियों की परम्परा एवं संस्कृति के संरक्षण और अनुसूचित क्षेत्रों की स्वायतत्ता बनाये रखने की व्यवस्था की गयी है।

1927 के भारतीय वन अधिनियम के जरिये 'रेस नलियस' का सिद्धांत लागू किया गया, जिसका अर्थ यह था कि सरकार किसी भी ऐसी सम्पत्ति को अपने कब्जे में ले सकती थी जिसके लिए मालिकाना हक का कोई वैधानिक दस्तावेज प्रस्तुत न किया जा सके। इस सिद्धांत का इस्तेमाल करते हुए ब्रिटिश सरकार ने विस्तृत भू-भाग वन विभाग को सौंप दिये थे, जिसकी स्थापना इस कानून को लागू करने के लिए की गयी थी। इसी प्रकार 'एमिनेंट डोमेन' के विधान ने सरकार को यह अधिकार प्रदान कर दिया था कि वह सार्वजनिक प्रयोजन के लिए किसी भी भूमि का अधिग्रहण कर सकती थी। इस कानून की उत्पत्ति 1984 के भूमि अधिग्रहण अधिनियम से हुई थी। भूमि और प्राकृतिक संसाधनों से जनजातियों के परंपरागत अधिकारों को छीने जाने के कारण इस कानून की व्यापक आलोचना की जाती रही है। उद्योग लगाने, खनन कार्यों, बड़े बाँधों के निर्माण जैसी विभिन्न विकास परियोजनाओं के लिए जनजातियों को विस्थापित और अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है।

कुछ अनुमानों के अनुसार देश में ऐसी विकासात्मक गतिविधियों को अंजाम देने के कारण करीब एक करोड़ जनजातियों को विस्थापित किया गया और उन्हें अपनी आजीविका गंवानी पड़ी। आधुनिक राष्ट्र राज्य वास्तव में 'अपने भू-भागों को जटिल और अतिव्याप्त राजनीतिक और

1 11 दिसम्बर, 2017

आर्थिक अंचलों में विभाजित करते हैं, लोगों और संसाधनों को इन इकाइयों में पुनर्वासित करते हैं और ऐसे नियम बने हैं जिनसे यह तय किया जाता है कि इन क्षेत्रों का इस्तेमाल कैसे और किन लोगों द्वारा किया जा सकता है? बावजूद इसके आज देश के लोगों के अधिकारों की रक्षा और उनके सांस्कृतिक और आजीविका को बचाना राष्ट्र के बुनियादी दायित्व के रूप में स्वीकृत किया जा चुका है।

भारत में भी संविधान की 5वीं और 6वीं अनुसूची जैसे प्रावधान हैं जो आदिवासियों को उनकी भूमि पर अधिकार की ऐतिहासिक गारंटी देते हैं। जहाँ तक जनजातियों के अधिकारों का प्रश्न है, इन अनुसूचियों को 'संविधान के भीतर संविधान' समझा जाता है। पंचायत (अनुसूचित जाति विस्तार) अधिनियम (पेसा) जनजातीय लोगों को प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और स्व-शासन के बारे में व्यापक अधिकार प्रदान करता है। वन अधिकार अधिनियम भी साझा संसाधनों पर सामुदायिक अधिकार प्रदान करता है। यह कानून वंचितों में भी अति वंचित लोगों को जीविका का अधिकार देने के साथ ही संरक्षण का दायित्व भी पूरा करने के दृष्टिकोण से बनाया गया है। संविधान में आदिवासियों के कल्याण के लिये विशेष प्रावधान किये गये हैं। असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम में ये प्रावधान छठी अनुसूची के जरिये लागू किये गये जबकि आंध्र प्रदेश, ओड़िसा, झारखण्ड, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान के लिये 5वीं अनुसूची के प्रावधान रखे गये। इनके पीछे मुख्य विचार यह था कि आदिवासियों की एक अपनी जीवनशैली है जो आज की औद्योगिक विकास की भोगवादी व्यवस्था से मेल नहीं खाती। इस प्रकार से जरूरी समझा गया कि उन्हें आधुनिक विकास के आक्रामक रवैये से अलग रखा जाए।

ब्रिटेन के प्रशासक, नेतृत्वशास्त्री और समाज सुधारक तथा सक्रिय समाजसेवक वेरियर एल्विन का प्रमुख विचार ऐसा ही था। वह नेहरू जी के आदिवासियों से सम्बन्धित पंचशील के विचारों से सहमत थे। आदिवासी-उन्मुख कानूनों को और शोधित किया जाए तथा उनका स्वशासन बढ़ाया जाए और संविधान की 5वीं अनुसूची के अनुसार उन्हें सारी सुविधाएं दी जाएं। यह आदिवासी क्षेत्रों में सुशासन और शांति स्थापना का एक मात्र रास्ता होगा।

❖❖❖

आरक्षण पर श्वेत पत्र की आवश्यकता[1]

सरकारी सेवाओं में आरक्षण को लेकर भ्रम पैदा किया जा रहा है, जिसे आने वाले दिनों में और बढ़ाने की कोशिश हो सकती है। इसलिए आवश्यक है कि सरकार के स्तर पर स्थिति को स्पष्ट कर दिया जाए कि आरक्षण की संवैधानिक व्यवस्था को न सिर्फ कायम रखा जाएगा, बल्कि इसे और मजबूत किया जायेगा।

आरक्षण की व्यवस्था को मजबूत करने के लिए एक श्वेत पत्र केन्द्र सरकार लाये। उस श्वेत पत्र में आरक्षण से जुड़े तमाम पहलुओं पर छानबीन करके रिपोर्ट रखी जाए। उस श्वेत पत्र पर राष्ट्रीय बहस हो और उसके हिसाब से नीतियाँ बनें।

आरक्षण रहने के बावजूद केन्द्र और राज्य सरकारों की सेवाओं में अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व क्यों नहीं हो पाया है? इस बारे में मिली जानकारी और तमाम अन्य स्रोत बताते हैं कि आरक्षण की वजह से जितने पद भरे जाने थे, उनमें से आधे या उससे भी कम पद अब तक भरे गये हैं। जाहिर है कि आरक्षण लागू करने में कहीं न कहीं कोई गड़बड़ी हो रही है। जिन पदों को आरक्षण के द्वारा भरा जाना है, उन पदों को किसी और तरीके से कैसे भरा जा रहा है? इस बारे में जाँच हो। इस बारे में विचार करना चाहिये कि क्या आरक्षण को लेकर ऐसा कानून बनाया जाना चाहिये जिससे आरक्षण संबंधी प्रावधान के उल्लंघन को दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराध घोषित करके इसके लिए आर्थिक दंड और कैद की सजा का प्रावधान हो। श्वेत पत्र विचार करे कि पदोन्नति में आरक्षण का प्रावधान किस तरह सख्ती से अमल में आये, ताकि प्रशासन के शिखर पर भी सामाजिक विविधता नजर आये। पदोन्नति में आरक्षण का प्रावधान अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के साथ ही अन्य पिछड़े वर्ग के लिए भी लागू हो, क्योंकि उच्च पदों पर इन तीनों समूहों की उपस्थिति न के बराबर है।

दलितों और पिछड़ी जाति के बच्चों के ड्राप आउट रेट का अध्ययन करें तो पता चलता है कि जैसे-जैसे इन समुदायों के बच्चों की कक्षा आगे बढ़ती जाती है उनकी शिक्षा क्रमशः कम होने लगती है।

विश्वविद्यालयों में शैक्षणिक पदों पर अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग की उपस्थिति कैसे सुनिश्चित हो? खासकर केन्द्रीय विश्वविद्यालयों और केन्द्र सरकार के शिक्षा संस्थानों में कुलपति, निदेशक, संकाय प्रमुख, प्रोफेसर और एसोसिएट प्रोफेसर के पदों पर सामाजिक विविधता का घोर अभाव है। सरकार इस बारे में आरटीआई में बार-बार जानकारी देती है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि स्थिति को सुधारा कैसे जाए। इस बारे में ठोस सुझाव

1 09 दिसम्बर, 2017

देने चाहिये, ताकि ज्ञान के सृजन के केन्द्रों में सामाजिक विविधता आये और शैक्षिक परिसरों का वातावरण समावेशी बने। इस बात का अध्ययन शामिल होना चाहिये कि आरक्षण के प्रावधानों के अंदर ऐसी कौन-सी व्यवस्थाएं की जाएं, ताकि इनका लाभ अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग की महिलाओं को भी मिले। इन समूहों की महिलाएं एक साथ, जाति और लिंग-भेद, दोनों का दंश झेल रही हैं। इनको दोहरे सहारे और संरक्षण की जरूरत है। इन वर्गों की महिलाएं देश की आबादी का 40 फीसदी से ज्यादा हिस्सा हैं, इसलिए इनकी तरक्की के बिना देश के विकास की कोई भी कल्पना साकार नहीं हो सकती। इन वर्गों की महिलाओं को महिला विकास के तमाम कार्यक्रमों में हिस्सेदार बनाने के लिए श्वेत पत्र उपाय सुझाये।

आरक्षण और विशेष अवसर का सिद्धांत हमारे संविधान और लोकतंत्र के मूल में है। इसलिए संविधान निर्माताओं ने इसका प्रावधान मूल अधिकारों के अध्याय में ही किया है और स्पष्ट किया है कि इससे समानता के अधिकारों का उल्लंघन नहीं होता।

भारत जैसा विविधतापूर्ण देश, राजकाज की संस्थाओं और अवसरों में सामाजिक विविधता सुनिश्चित किये बगैर एक मजबूत राष्ट्र नहीं बन सकता। सामाजिक विविधता इस देश की ताकत है। इसका प्रतिबिम्ब तमाम संस्थाओं में नजर आये इसके लिए आरक्षण के प्रावधानों को मजबूत किया जाए। सरकार और राजनीतिक पार्टियों को महज वोट बैंक की राजनीति से ऊपर उठकर समाज के वंचित वर्ग के लिए ठोस कार्यनीति अपनाने की जरूरत है। इनकी गरीबी दूर हो इस पर गंभीर विमर्श और पहल की जरूरत है। आरक्षण के हिमायती अक्सर इन मुद्दों से कतराते नजर आते हैं।

❖❖❖

खानाबदोस, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के लिए अलग से कोटा[1]

70 साल से अधिक के लोकतंत्र वाले देश के विभिन्न हिस्सों में खानाबदोस जातियाँ निवास करती हैं, किन्तु सरकार द्वारा उन्हें अभी तक अधिसूचित नहीं किया गया है। इन जनजातियों को अद्यतन अपराधी मानकर उनके साथ उचित व्यवहार नहीं किया जाता है। फलस्वरूप उन्हें जनाक्रोश का शिकार होना पड़ता है। फलत: वे संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत मिलने वाले लाभों से वंचित हो जाते हैं। यह सीधा मानवाधिकार हनन का मामला बनता है। हाल में आयोग द्वारा एक रिपोर्ट में कहा है कि ऐसे खानाबदोस की दलित, आदिवासी एवं पिछड़ी जातियों में भी बड़ी संख्या है। ऐसे लोग सामाजिक और शैक्षणिक स्तर पर बहुत पीछे हैं। इसलिए इन जातियों के बच्चे शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते हैं। ये बच्चे दूसरे दलित, आदिवासी एवं पिछड़े जातियों के बच्चे से मुकाबला नहीं कर पाते। ये जातियाँ तो (डीएनटी) आरक्षित कोटे में तो आती हैं लेकिन इन्हें कोई सुविधा नहीं मिल पाती है।

इन खानाबदोस और दलित एवं पिछड़ों के लिए एक उपवर्ग (डीएनटी/एससी/एसटी) अलग से आरक्षण के प्रावधान किये जाएँ। अभी तक संविधान की उद्देशिका के अनुच्छेद 15-16 में प्रत्येक नागरिक को समानता का अधिकार मिला है, उससे वे वंचित हैं। 68 साल के लोकतंत्र के बाद इन जातियों के लिए शिक्षा और नियोजन के साधन उपलब्ध कराए जाएं।

प्रधानमंत्री ने पिछड़े वर्गों के वर्गीकरण के लिए पिछड़ा एवं अति पिछड़ा वर्ग का गठन किया है। देश के अधिकांश राज्यों में खानाबदोस दलित जातियाँ और पिछड़े वर्ग निवास करते हैं। उन्हें अपराधी मानकर उनके साथ उचित व्यवहार नहीं किया जाता है। आयोग ने तीन वर्ष के अनुसंधान के बाद प्रतिवेदन भेजा है। यह भी आवश्यक है कि इन वर्गों के लिए अनुसूचित जाति एक्ट 1952 बना हुआ है। इस अधिनियम द्वारा समानता, बराबरी और जागरूकता लाने के लिए आवश्यक है कि इस अधिनियम को तत्काल लागू किया जाए।

यह सोचनीय है कि अंग्रेजी शासनकाल में 1878 ई॰ में जातिगत कानून बनाए गए थे। अपराध को रोकने के लिए आजादी के बाद इस अधिनियम को रद्द कर दिया गया और दूसरे कानून बनाये गये। बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि देश के एक खास वर्ग को सदैव अपराधी मानकर उनके लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है। यह बड़ा ही विस्मयकारी है कि भारत की इन जातियों के समूहों को निरंतर अपराधी मानकर उन्हें लांछित किया जाता रहा है। भिन्न-भिन्न राज्यों में इन जातियों के अलग-अलग नाम हैं। यह भी आवश्यक है कि पूरे देश में खानाबदोसों को संरक्षण प्रदान किया जाए और उन्हें सारी सुविधाएं मुहैया की जाएं, जो दलित, आदिवासी और

1 09 जनवरी, 2018

पिछड़ों के लिए किए जा रहे हैं।

प्रधानमंत्री सबका साथ सबका विकास का संकल्प ले रखें हैं। इस आधार पर पिछड़ी जातियों को न केवल दो मुख्य वर्गों में अलग-अलग पिछड़ा एवं अतिपिछड़ा में विभाजित किया जाए बल्कि इन जातियों में खानाबदोस, दलित अथवा आदिवासी या अन्य पिछड़ी जातियाँ हो उनका भी विभाजन और वर्गीकरण अलग से किया जाए। इसके लिए गहन अध्ययन की भी आवश्यकता होगी। यह आवश्यक प्रतीत होता है कि संवैधानिक प्रावधानों के लिए इन जातियों को अलग से सूचीबद्ध किया जाए। पिछड़ा, अतिपिछड़ा एवं गैर अनुसूचित जातियों, जनजातियों और पिछड़े वर्गों का अलग से निर्धारण किया जाए तथा ऐसी व्यवस्था की जाए जिससे दलित, आदिवासी और पिछड़ा वर्ग को भी आरक्षण तथा शिक्षा संभव हो। अभी तक ओबीसी के पिछड़े वर्गों की ताकतवर जातियों ने आरक्षण पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया है, जो सामाजिक न्याय की दृष्टि से उचित नहीं है। लोकतंत्र का लाभ, अधिकार का लाभ एवं समानता का लाभ सभी वर्गों के जातियों एवं गरीब को प्राप्त हो सके उसके लिए आवश्यक है ''हैविचुअल ऑफन्स एक्ट'' को लागू किया जाए ताकि हो रही ज्यादतियों को कम किया जा सके।

❖❖❖

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति का संरक्षण[1]

उच्चतम न्यायालय के निर्देश के बाद दलित एवं आदिवासी वर्गों पर कुप्रभाव पड़ रहा है और ऐसा लगता है कि यह समूह संवैधानिक सुरक्षा से वंचित हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम–1989 के तहत प्रभावकारी कार्यान्वयन एवं संशोधन कर इसे और प्रभावकारी बनाया जाए। उच्चतम न्यायालय के दलित एवं आदिवासी के निर्णय के आलोक में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण कानून से सम्बन्धित उसके फैसले से देश में दुर्भावना, क्रोध एवं असहजता का भाव पैदा हुआ है। यह बहुत ही संवेदनशील मसला है। न्यायालय के फैसले से देश में क्षोभ, क्रोध और उत्तेजना का माहौल बना है, साथ ही आपसी सौहार्द्र का वातावरण भी दूषित हुआ है।

कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के अपने–अपने अधिकार सन्निहित हैं और इनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। न्यायालय के फैसले से कानून कमजोर हुआ है और इसकी वजह से देश को बहुत नुकसान उठाना पड़ेगा। एसटी के खिलाफ कथित अत्याचार के मामलों में स्वतः गिरफ्तारी और मुकदमे के पंजीकरण पर प्रतिबंध के शीर्ष अदालत के आदेश से 1989 का यह कानून दंतविहीन हो जायेगा। सर्वोच्च न्यायालय के हालिया आदेश से लोगों में सम्बन्धित कानून का भय कम होगा और एससी/एसटी समुदाय के व्यक्तियों के खिलाफ हिंसा की घटनाओं में बढ़ोतरी होगी।

यह अत्यन्त विस्मयकारी है कि आजादी के 70 वर्षों के बाद और लोकतंत्र के 68 वर्ष बीतने के बाद भी दलित एवं आदिवासी समुदाय को इन मौलिक अधिकरों से वंचित रहना पड़ रहा है। संविधान के अनु०–17 द्वारा अस्पृश्यता को समाप्त किया गया, परन्तु वह समाप्त नहीं हो पाया। इसलिए अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम 1955 संसद् द्वारा पारित किया गया, वह अधिनियम भी प्रभावकारी नहीं हुआ जबकि उसमें अनेक संशोधन के साथ प्रोटेक्शन ऑफ सिविल राइट्स नियम–1955 पारित किया गया परन्तु यह भी प्रभावकारी नहीं हुआ तो 1989 में अनु० जाति/अनु० जनजाति (अत्याचार निवारण अधिनियम) पारित किया गया। इस अधिनियम के लागू होने के बाद भी दलित और आदिवासियों पर अत्याचार लगातार जारी है। बिहार में विशेषकर पिछले 25 वर्षो में तथाकथित सामाजिक न्याय और गरीबों को आवाज देने वाले शासन में रहने के बावजूद भी लगभग 25 से अधिक अलग–अलग घटनाओं में 1000 दलितों की सामूहिक हत्याएं हुई हैं। उनमें 1 दिसम्बर, 1997 में लक्ष्मणपुर बाथे नरसंहार के अतिरिक्त बिहार के अरवल जिले में 38 दलितों की सामूहिक हत्याएं की गयीं, जिनमें अनेक औरत, बच्चे और पुरुष शामिल थे। इस घटना के संबंध में तत्कालीन राष्ट्रपति श्री के.आर.नारायणन ने शर्म की बात कही थी।

1 13 अप्रैल, 2018

ये मामले 12 वर्षो तक न्यायालयों में चलते रहे और अप्रैल 2010 में निचली अदालत ने 46 अपराधियों में से 16 को मृत्युदंड और 10 को आजीवन कारावास दिया, परन्तु 3 वर्षों के बाद 2013 में पटना उच्च न्यायालय ने सभी 26 व्यक्तियों को साक्ष्य के अभाव में बरी कर दिया। उसके पहले 1996 में बथानी टोला के 21 दलितों की सामूहिक हत्याएं हुईं। निचली अदालत ने 23 अपराधियों को सजा दी। बाद में पटना उच्च न्यायालय ने अपराधियों को बरी कर दिया। उसी तरह नागरी बाजार में 1998 में 10 व्यक्तियों की सामूहिक हत्याएं हुईं, निचली अदालतों ने अपराधियों को सजा दी पर उच्च न्यायालय ने उन्हें बरी कर दिया। 2000 में मायापुर में 34 दलितों की सामूहिक हत्याएं हुई, निचली अदालत ने सजा दी और उच्च न्यायालय ने साक्ष्य के अभाव में अपराधियों को बरी कर दिया।

ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो प्रमाणित करते हैं कि संवैधानिक संरक्षण और विभिन्न प्रकार के अपराध नियंत्रण अधिनियमों के अन्तर्गत निचली अदालतों द्वारा सजा देने के बावजूद उच्च न्यायालय से दोषी लगातार साक्ष्य के अभाव में बरी होते रहे हैं। जिसके परिणामस्वरूप दलितों और आदिवासियों पर व्यक्तिगत और सामूहिक जुल्म और अन्याय करने वालों का मनोबल बढ़ता ही गया है। इतने वर्षों के बाद भी दलितों के पुनर्वास और उनकी हालत में सुधार लाया नहीं जा सका है। उपर्युक्त उदाहरणों से प्रमाणित होता है कि न्याय प्रणाली, पुलिस प्रणाली और सरकारी तंत्र में कुछ विशेष खमियां हैं और उनकी मानसिकता दलित विरोधी है।

दलितों और आदिवासियों के मामले में क्या अगड़ा क्या पिछड़ा दोनों ही एक ही मानसिकता से कार्य करते हैं। दु:खद पक्ष तो यह है कि पुलिस प्रशासन और सामान्य प्रशासन का झुकाव भी दलित विरोधी ही रहता है जो केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर जारी किये गये आदेशों/निर्देशों की अनदेखी करते हैं। विशेषकर अनुसूचित जाति और जनजाति पर अत्याचार निवारण के लिए समय-समय पर जो अधिनियम बनाये गये हैं उनका अनुपालन नहीं होता है।

❖❖❖

दलितों की कल्याणकारी योजनाओं की समुचित व्यवस्था[1]

संयुक्त राष्ट्र की विश्व सामाजिक स्थिति रिपोर्ट ने केन्द्र एवं राज्य सरकारों के दलितों की कल्याणकारी योजनाओं को उन तक पहुँचाने की स्थिति उजागर किया है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में दलित और विशेषकर दलित परिवार की महिलाएं संविधान की बुनियादी अधिकारों से वंचित हैं फलतः आज भी वे हाशिये पर हैं। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट ने सभी सरकारों एवं सभी राजनीतिक दलों के नेताओं की पोल खोल दी है, जो दलित कल्याण के लिए हजारों करोड़ खर्च के दावे करते रहे हैं। केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों की योजनाओं का बहुत बड़ा हिस्सा उन तक पहुँच नहीं पाता, जो इसके हकदार हैं।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट से एवं संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट से यह प्रमाणित हुआ है कि दलितों पर जुर्म बढ़ता ही गया, सिर्फ जुर्म करने वाले बदले हैं। दलितों को अधिकारों से वंचित करने के लिए मध्यवर्गीय, पिछड़ा वर्ग समूह और प्रशासनिक पदाधिकारी मुख्य रूप से जिम्मेवार हैं। राजनीतिक दलों ने सामाजिक संरचना में मौजूद असमानता को हटाने का संकल्प जरूर लिया है परंतु यह केवल राजनीति तक ही सीमित रह गया है। मानवाधिकार आयोग ने पिछले दिनों अनुसूचित जातियों पर हो रहे अत्याचारों और इन्हें रोकने के लिए बने कानूनों के हश्र के बारे में एक रिपोर्ट जारी की है। ''रिपोर्ट ऑन प्रिवेंशन ऑफ एट्रोसिटीज अगेंस्ट शेडयूल्ड कास्ट्स'' नामक इस दस्तावेज से आजाद भारत में भी अनुसूचित जातियों की जारी दुर्गति साफतौर पर उभरकर आती है। इस बात का विशेष महत्व है कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग जैसी एक प्रमुख संवैधानिक संस्था की रिपोर्ट हमारे सभ्य समाज व लोकतांत्रिक राज की असलियत से हमें रू-ब-रू कराती है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की यह रिपोर्ट आंकड़ों के आधार पर पूरे देश में दलितों की प्रताड़ना एवं पीड़ा को व्यापकता एवं गहराई से प्रस्तुत करती है। देश के कोने-कोने में दलित आज भी भीषण पीड़ा और प्रताड़ना की जिन्दगी झेल रहे हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट ने भी दो टूक शब्दों में कहा है कि अनुसूचित जातियों के पक्ष में बने कानून बेअसर रहने के कारण इन वर्गों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाया है। इन वर्गों के प्रति उदासीनता दिखाई पड़ती है। अनुसूचित जातियों पर हिंसा रोकने के मामले में नौकरशाही का पक्षपात पूर्ण रवैया सामाजिक एवं आर्थिक कानूनों को लागू करने के संदर्भ में भी खुलकर सामने आ जाता है। यहाँ नौकरशाही ही अपराधी है जिसका नजरिया और व्यवहार तमाम स्तरों पर क्रियान्वयन की प्रक्रिया को प्रभावित करता है।

सदियों से आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिये पर जी रहे दलितों के प्रति समाज के प्रभुत्वशाली वर्गों का नजरिया, लोकतंत्र, समता और न्याय आदि के तमाम प्रचार के बावजूद नहीं बदला है। यह सुनना अत्यंत कष्टदायक लग सकता है। पर दलितों के मामले में क्या अगड़ा, क्या पिछड़ा सब के सब एक हैं। प्रथम श्रेणी में नामांकन कराने वाले 100 बच्चों में से केवल 23

1 24 फरवरी, 2019

बच्चे सातवें वर्ग तक पहुँच पाते हैं। पढ़ाई छोड़ बैठ जाने वाले छात्रों की संख्या क्रमशः वर्ग 1 और 5 के बीच तथा 5 और 7 के बीच घटकर 41.34 प्रतिशत और 58.61 प्रतिशत पर पहुँच गई है। उच्च शिक्षा में दलितों का प्रतिनिधित्व नहीं रहने के कारण वह दलित समाज अभी तक राष्ट्र की मुख्य धारा में सम्मिलित होने से वंचित है। एक रिपोर्ट के मुताबिक, केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में अनुसूचित जाति के अध्यापकों की संख्या नगण्य है। देश भर में फैले ढाई सौ से अधिक विश्वविद्यालयों तथा उनके अंतर्गत आने वाले कॉलेजों में अनुसूचित जाति के लिए 75,000 पद आज भी खाली क्यों पड़े हैं या उन पर सवर्णों या अन्य गैर दलितों का परोक्ष कब्जा कैसे बना हुआ है?

नई आर्थिक नीति के बाद रोजगार के अवसरों का विस्तार निजी क्षेत्र में ही हो रहा है। आरक्षण समर्थकों का मत है कि यदि निजी क्षेत्र में जल्दी से जल्दी आरक्षण लागू नहीं किया गया तो अनुसूचित जाति व जनजाति के लोग और पिछड़ जाएंगे। आरक्षण को आज सरकारी और निजी क्षेत्रों में बांटकर नहीं देखा जा सकता। यह समाज के कमजोर वर्ग का समता प्राप्ति की दिशा में कानून और संविधान से सम्मत अधिकार बन चुका है। शिक्षा का उद्देश्य भी सामाजिक परिवर्तन होना चाहिए तभी वंचित समाज को लाभ मिलेगा। बाबा साहब का मत था कि शिक्षा की व्यवस्था करते समय एवं नियम बनाते समय सम्पन्न वर्ग के छात्रों और वंचित वर्ग के छात्रों के लिए एक जैसे नियम व व्यवस्था निश्चित नहीं की जा सकती। वंचित वर्ग के छात्रों को उनकी सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए उदार व्यवस्था प्रदान करनी होगी।

❖❖❖

जातिगत विद्वेष[1]

14 अक्टूबर, 2004 को प्रकाशित विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित ''ब्राह्मणवाद के खिलाफ पिछड़े एकजुट हों'' शीर्षक के अंतर्गत भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० पी०सी० पातंजलि के वक्तव्य पर कहना चाहूंगा कि कुलपति जैसे उच्च और सम्मानित पद धारण करने वाले व्यक्ति को ऐसे वक्तव्य से परहेज करना चाहिए। हालांकि उनके कथन पर बुद्धिजीवियों की स्वाभाविक प्रतिक्रिया को भी नकारा नहीं जा सकता। कुलपति के बयान में सामाजिक समरसता, राष्ट्रीय अखंडता और एकता को तोड़कर सामाजिक विद्वेष फैलाने का षड्यंत्र सामने उभर कर आया है। एक ओर जब देश और समाज में अखंडता, एकता को सुदृढ़ करने का प्रयास चल रहा हो, वहाँ दूसरी ओर ऐसा वक्तव्य किसी विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा खुलकर व्यक्त किया गया हो तो क्या इससे देशद्रोह का मामला नहीं बनता है? इस तरह सामाजिक विद्वेष फैलाकर क्या गृह-कलह उत्पन्न करने की साजिश नहीं बनती है? सवर्ण जाति खासकर ब्राह्मणों की जमकर बखिया उधेड़ने और पिछड़ों को तथाकथित ब्राह्मणवादी सत्ता के खिलाफ संगठित होकर उखाड़ फेकने का आह्वान जो एक कुलपति द्वारा किया गया है, क्या उससे विश्वविद्यालयों, खासकर भागलपुर विश्वविद्यालय के छात्रों, शिक्षकों और कर्मचारियों में विद्वेषजन्य हिंसा की ज्वाला नहीं भड़क सकती है? समाज में शिक्षा के क्षेत्र में इस तरह वक्तव्य देकर विद्वेष और घृणा फैलानेवाले के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा-505 की उपधारा (2) में स्पष्ट प्रावधान किया गया है कि जो कोई इस आशय से वक्तव्य दे या जिससे यह संभाव्य हो कि विभिन्न धार्मिक, मूलवंशीय, भाषाई या जातियों या समुदायों के बीच शत्रुता, घृणा या वैमनस्य की भावनाएँ उत्पन्न या समवर्तित हों वह तीन वर्षों के कारावास से या जुर्माने से या दोनों से दंडित किया जाता है।

सामाजिक न्याय के नाम पर सवर्ण, खासकर ब्राह्मणों के विरुद्ध विद्वेष फैलाने का काम मिथ्या प्रचार पर आधारित है। वे शायद भूलते हैं कि वेदों के रचयिता वेद-व्यास शूद्र थे। महाभारत और अठारह पुराण भी वेद-व्यास द्वारा रचित है। श्रीमद्भागवद गीता में श्रीकृष्ण द्वारा उद्गीत गीता के उपदेश भी व्यास द्वारा ही महाभारत में अंकित किये गये हैं। गीता के उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण भी ब्राह्मणवंशीय नहीं थे, फिर ब्राह्मणवाद का हौआ खड़ा करके पिछड़ों को भड़काने का यह कौन सा आधार है? कुलपति पातंजलि शायद यह भी भूल रहे हैं कि उपनिषदों के रचयिता ब्राह्मणेतर वंशीय थे और गीता भी एक उपनिषद ही है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और आचार्य मनु की मनुस्मृति के अनुसार सैनिक कमाण्डर किसी भी वर्ण के कुशल योद्धा हो सकते थे, वहाँ वर्ण का कोई व्यवधान नहीं था। मनु स्वयं ब्राह्मण नहीं थे। ब्राह्मण विद्वानों ने तो उपनिषदों के जवाब में शडदर्शनों की रचना की। ईश्वर विरोधी लोकायत दर्शन या चार्वाक्य दर्शन शोषण, आतंक और लूट जैसे कार्यो का विरोधी है, जिसके प्रतिपादक ब्राह्मण ऋषि बृहस्पति थे। इस तरह बाल्मीकि द्वारा रचित रामायण और व्यास द्वारा रचित महाभारत और गीता में लिखी गयी बातों के लिए ब्राह्मण

1 14 अक्टूबर, 2004

कैसे उत्तरदायी हो सकते हैं?

श्री पातंजलि शायद भूल चुके हैं कि चौधरी चरण सिंह के अजगर संगठन के विरोध पर 1977 में और 1979 में गैर ब्राह्मण राष्ट्रपति श्री संजीव रेड्डी के कार्यकाल में बाबू जगजीवन राम को प्रधानमंत्री नहीं बनने दिया गया। पंडित नेहरू ने बाबा साहब अम्बेडकर को संविधान सभा का सदस्य एवं विधि मंत्री और संविधान ड्राफ्टिंग कमिटी का चेयरमेन बनाया, जबकि उस समय सरदार पटेल ने उनके लिए सभी प्रान्तीय विधान सभाओं के दरवाजे बंद करा दिये थे फिर भी वे बंगाल विधान सभा से प्रतिनिधि बने। डा० अम्बेडकर को इस तरह का व्यवहार किसी ब्राह्मण से नहीं बल्कि गैर ब्राह्मण से मिला था। पंडित मदन मोहन मालवीय ने तो 1944 ई० में डा० अम्बेडकर को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में बुलाकर सम्मानित किया गया था। मालवीय जी तो ब्राह्मण थे फिर भी उनका विचार कितना उदार था यह इस तथ्य से स्पष्ट होता है। भारत के मुख्य न्यायाधिपति श्री गजेन्द्र गढ़कर, श्री पी०एन० भगवती और पूर्व न्यायाधिपति श्री बी०आर० कृष्ण अय्यर और श्री डी०ए० देसाई ने बराबर क्रान्तिकारी और प्रगतिशील निर्णय लिये। वे सभी ब्राह्मण न्यायाधिपति थे। मध्य युगीन भारत में हुकूमत की बागडोर लगातार गैर ब्राह्मणों के हाथों में रही। अंग्रेजी शासनकाल में 600 देशी रियासतों में से केवल एक दर्जन रियासत में ही ब्राह्मणों का शासन था।

❖❖❖

जातिवाद एक संकीर्ण सोच[1]

राष्ट्र कवि दिनकर की दो कृतियों की स्वर्ण जयन्ती पर दिल्ली में आयोजित समारोह में प्रधानमंत्री द्वारा बिहार राज्य के लोगों से जातिवाद से ऊपर उठकर बिहार के समावेशी विकास में सक्रिय भूमिका निभाने का आह्वान किया गया। अगर जातिवादी राजनीति से बिहार के लोग नहीं उठ पायेंगे तो इस प्रदेश का सार्वजनिक जीवन समाप्त हो जायेगा। दिनकर ने ठीक ही लिखा है कि एक-दो जातियों के समर्थन से राज्य नहीं चलता, अपितु, बहुतों के समर्थन से चलता है।

1990 से लगातार बिहार में जाति आधारित राजनीति चलायी जा रही है। इसी के परिणामस्वरूप बिहार में सारी संभावनाएं रहने के बावजूद बिहार राज्य सभी राष्ट्रीय मापदंडों में नीचे है। मार्च, 1961 में दिनकर द्वारा लिखी गयी चिट्ठी आज के बिहार के लिए जागृति का संदेश है।

समाजवादी महानायक राम मनोहर लोहिया तो जाति व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे। उनका मानना था कि भारत के विकास के मार्ग में जाति बाधक है न कि वर्ग। इतिहास में भारत की पराजयों का मुख्य कारण यही था कि लोग स्वयं को राष्ट्र का नागरिक होने के बजाय एक जाति का सदस्य मानते रहे। उनके शब्दों में जाति अवसरों को रोकती है। अवसर नहीं मिलने से योग्यता कुंठित हो जाती है। यह कुंठित योग्यता फिर अवसरों को बाधित करती हैं। उनके अनुसार जाति की दीवारों को तोड़ने का प्रमुख उपाय है उच्च और निम्न जातियों में भोजन और विवाह का संबंध बनना। उन्होंने जाति तोड़ो अभियान भी चलाया था।

क्या भारत राम मनोहर लोहिया, बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के सपनों जैसा बन पाया? आजादी के बाद आरक्षण और जातिवादी राजनीति ने उनके सपनों को खण्डित कर दिया। एक सामाजिक समस्या के समाधान को जब राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए साधन बना लिया गया तो परिणाम हमारे सामने हैं। देश अमीर तथा गरीब में बंटने के बजाय अगड़े और पिछड़े वर्गों में विभाजित हो गया। इसी मानसिकता से हमें आज तक मुक्ति नहीं मिल पायी। यही कारण है कि गाँवों और कस्बों में अत्यंत पिछड़ों एवं दलितों के साथ सामाजिक असमानता, दुर्व्यवहार किया जाता है। आज भी अनेक राजनीतिक दल हैं जो जातीय समीकरणों के आधार पर चल रहे हैं। इन पार्टियों के अध्यक्षों की राजनीति अपनी जाति के आधार पर चलती है। वोट बैंक के लिए हर हथकंडा अपनाया जाता है।

समाज को हमने जातियों, धर्मों, वर्गों में पहले ही बांट रखा है तो फिर संकीर्ण विचारधारा खत्म कैसे हो सकती है? दलितों में व्याप्त असुरक्षा की भावना को दूर करना बहुत जरूरी है, इसलिए दलितों पर अत्याचार करने वालों को दण्डित किया जाना बहुत जरूरी है।

बिहार में पिछले 25 वर्षों में मध्यवर्गीय पिछड़ा एवं धनी सवर्ण द्वारा 1000 से अधिक दलितों की सामूहिक हत्या हुई परन्तु दोषी दण्डित नहीं हुए। समाज को जोड़ने का एक ही तरीका है कि विकास की राह पर सब कदम से कदम मिलाकर चलें। दलितों एवं अत्यंत पिछड़ों के अधिकारों का हनन नहीं हो। सबकी समान भागीदारी राष्ट्र को मजबूत बनायेगी।

❖❖❖

1 23 मई, 2015

अति पिछड़ों की उपेक्षा[1]

केन्द्र सरकार ने भारत के 3743 पिछड़ी जातियों के लिये केन्द्रीय सेवाओं में आरक्षण का निर्देश दिया था। इस आदेश को माननीय उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गयी। जिस पर 16 नवम्बर, 1992 के फैसले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट आदेश दिया था कि पिछड़ों में अति पिछड़ों की अलग पहचान की जाए और आबादी के अनुपात में अन्य पिछड़े वर्गों के लिये निर्धारित 27 प्रतिशत आरक्षण में से अत्यंत पिछड़ा वर्ग का आरक्षण अलग किया जाए। यह उच्चतम न्यायालय के निर्देशानुसार चार माह के अंदर किया जाना था, जो अभी तक 23 वर्ष के बाद भी पिछड़ों के अपेक्षा अति पिछड़ों का वर्गीकरण नहीं किया गया है।

पिछड़ों और अपेक्षाकृत अति पिछड़ों के बीच विषमता लगातार बढ़ती गयी है। मण्डल आयोग का लाभ केवल मध्यवर्गीय पिछड़े वर्गों तक ही सीमित रहा है और इन दोनों पिछड़े वर्गों के बीच विषमता बढ़ती गयी है। केन्द्रीय स्तर पर अति पिछड़े वर्गों का राजनीतिक नेतृत्व सबल नहीं रहा है। इसलिये अपेक्षाकृत अधिक पिछड़ा वर्ग लगातार उपेक्षित और शोषित होता रहा है।

यह स्पष्ट होता रहा है कि मण्डल आयोग के बाद उच्च पिछड़ा वर्ग का प्रभुत्व सरकारी नौकरी, शिक्षण संस्थान और राजनीति में प्रभुत्व कायम है। उदाहरणस्वरूप बिहार में यादव, कुर्मी, बनिया, तमिलनाडु में चटियार, खेवार तथा दनियार, आंध्र प्रदेश में रेडडी, कम्मा, कर्नाटक में लिंगाय, डोवालिंगो, महाराष्ट्र में कुम्भी, मराठा, गुजरात में पटेल, छमिआर उत्तर प्रदेश में यादव, कुर्मी, जाठ तक ही पिछड़े वर्ग के नाम सारी सत्ता सीमित है, बांकि हजारों अति पिछड़े हाशिये पर हैं।

वर्तमान स्थिति मण्डल आयोग के एक सदस्य श्री एल॰आर॰ नायक के कथन को सत्यापित करती है। उन्होंने बड़े स्पष्ट रूप से मण्डल आयोग रिपोर्ट में कहा है कि ''मध्यवर्गीय पिछड़ा वर्ग, उच्च पिछड़े वर्ग पर हावी बना हुआ है जो अत्यंत पिछड़ा और गरीब है। गरीब एवं अत्यंत पिछड़ों की दशा दलित आदिवासी जैसी बना दी गयी है। मध्यवर्गीय पिछड़ा वर्ग समूह जिनका राजनीतिक, आर्थिक और प्रशासनिक प्रभाव निरंतर बढ़ता गया है और ये गरीब एवं अति पिछड़े वर्ग के लोगों को दबाकर रखते रहे हैं।'' इसलिये नायक ने यह अनुशंसा की थी कि 27 प्रतिशत आरक्षण उन वर्गों में बांटा जाए। 15 प्रतिशत अति पिछड़ों के लिये तथा 12 प्रतिशत मध्यवर्गीय पिछड़ों को दिया जाए। इसे ही उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में इन बातों का उल्लेख करते हुए पिछड़ों को दो वर्गों में विभक्त करने का निर्देश दिया था।

❖❖❖

1 24 जुलाई, 2015

पिछड़ा वर्ग आयोग[1]

पिछड़े वर्गों के लिए कार्यरत राष्ट्रीय आयोग के स्थान पर सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना करने के लिए केन्द्र सरकार ने संविधान संशोधन विधेयक संसद में प्रस्तुत किया है जिससे लंबे अर्से से हो रही मांगों का निराकरण संभव होगा।

सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों और पिछड़े वर्गों के सांसदों के मंच द्वारा इसकी स्थापना के लिए मांग रखी जा रही थी। एनसीबीसी तथा एसएसबीसी की संसदीय समिति ने भी इसकी अनुशंसा की थी। इस आयोग की उपयोगिता और प्रभावोत्पादकता इसके (आयोग के) गठन से होगी। एनसीबीसी एक्ट के अंदर एनसीबी का कार्य सिर्फ किसी वर्ग के नागरिकों के एनसीएसईसी की सूची में प्रवेश हेतु किये गये आग्रह/अनुरोध को और किसी वर्ग के अधिक समावेश या कमतर समावेश संबंधी शिकायत को जाँचना और केन्द्र सरकार को परामर्श देने का है जो (परामर्श) सरकार पर साधारणतः बाध्यकारी होगा। इस आयोग के अदालती न्यायालय की जो शक्तियाँ हैं वह सभी इस आयोग को प्रदान की जाती हैं। वे इस आयोग को भी दी जाती रहेंगी। एनसीबीसी की इसमें भूमिका यह है कि केन्द्र सरकार जब कभी इस सूची से पिछड़े नहीं रहने वालों को हटाने या नये पिछड़े वर्ग को सम्मिलित करने के दृष्टिकोण से एसइडीबीसी सूची का पुनरीक्षण करेगी तो इससे (इसे आयोग से) विमर्श करेगी। एनसीबीसी का प्रमुख दायित्व एवं समयानुसार कार्य, दोनों ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय को 16 नवम्बर, 1992 वाले उस फैसले में प्रदत्त मार्गदर्शन द्वारा निर्धारित किये गये हैं। सूचनानुसार एनसीबीसी को एसईडीबीसी में आने वालों की शिकायतों को दूर करने का अतिरिक्त कार्य भी सौंपा जा रहा है। इसमें एक नयी धारा 342(ए) के आधार पर इसे (एनसीएसईडीबीसी को) किसी समुदाय को एसईडीबीसी सूची से हटाने या सूची में जोड़ने के कार्य की स्वीकृति संसद से लेना अनिवार्य होगा; इससे अधिकाधिक पारदर्शिता प्रत्यक्ष होगी। निरंतर लोक-दृष्टि और लोक-समीक्षा के अंदर कार्यरत संसद से गलत निर्णय प्राप्त करना कार्यपालिका की चार दीवारों में अवस्थित कार्यालय से निर्गत कार्यपालिका के आदेशों को प्राप्त करने से सचमुच अधिक कठिन है।

उद्देश्यों और कारणों में कहा गया है कि पिछड़े वर्गों के हितों को और प्रभावी रूप में सुरक्षा देने के लिए राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के समान संवैधानिक परिस्थिति के साथ राष्ट्रीय सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा वर्ग आयोग बनाने का निर्णय है। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने अपनी 2014-15 की रिपोर्ट में यह सिफारिश की है कि अनुच्छेद 338 के खंड 10 के अधीन सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की शिकायतों को निपटाये जाने के लिए राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग के आयोग को संवैधानिक दर्जा दिया जाना चाहिए।

---

1 08 अप्रैल, 2017

आरक्षण के संबंध में अनिश्चितता का माहौल आशंकाएं विगत कुछ वर्षो से प्रसारित हो रही हैं उसे समाप्त करने एवं आरक्षण विवाद पर पूर्ण विराम लगाने के उद्देश्य से ही ऐसे संवैधानिक आयोग का गठन किया जा रहा है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति आयोग जो संवैधानिक संस्थाएं हैं, उसी तरह यह भी संवैधानिक संस्था हो जायेगी जो वर्तमान में आयोग नहीं है। अब नया आयोग अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति आयोग की तरह ही संवैधानिक संस्था के रूप में होगा। सभी विसंगतियों और विषमताओं को दूर कर सभी वर्गों को लाभ देने हेतु यह निर्णय लिया गया है। केन्द्र सरकार के निर्णय के अनुसार जो सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हैं उनके लिये आरक्षण का संविधान में प्रावधान बन रहा है। अब आयोग के गठन से पिछड़े वर्गो की शिकायतों का निराकरण संभव हो सकेगा। अब यह होगा कि राष्ट्रीय स्तर पर पिछड़ा वर्ग में किसे रखा जाए यह अब केन्द्र सरकार के बजाय संसद करेगी। यह आयोग केन्द्र सरकार को अपनी सिफारिश भेजेगा। यह केन्द्र सरकार के लिये बंधनकारी होगी।

❖❖❖

कर्पूरी फार्मूले का अनुसरण करें[1]

बाबा साहेब डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर के अनुसार आरक्षण का आधार गरीबी ही है, सभी जातियों के गरीब नि:सहाय परिवारों व महिलाओं के लिये आरक्षण सुनिश्चित किये जाएं ताकि सामाजिक समरसता स्थापित किया जा सके। सभी राजनीतिक दलों से कर्पूरी फार्मूले का अनुसरण करने की अपील करते हुए मैंने कहा कि 'अदर बैकवार्ड क्लासेज' को आर्थिक स्थिति के आधार पर विभाजित करते हुए उप-वर्गों में वर्गीकृत करने की पुरजोर मांग पूरे देश में मुखर हो उठी है, जिसके लिए सभी स्तरों पर ठोस कदम उठाये जाने की जरूरत है। आरक्षण से छूटी हुई सभी जातियाँ अर्थहीन, कमजोर परिवारों के प्रति न्याय हित में शीघ्र निर्णय लेकर उन्हें संवैधानिक अधिकार और न्याय दिलाये जाएं, जिससे राष्ट्र की मुख्य धारा में उनकी प्रतिभागिता स्पष्ट रूप से उन्हें लाभान्वित करे।

बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री कर्पूरी ठाकुर ने सामाजिक समरसता के वैचारिक सिद्धांत के अनुरूप 10 नवम्बर, 1978 को आरक्षण अधिसूचना में सरकारी सेवाओं में पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण सुनिश्चित करते समय 26 प्रतिशत में 12 प्रतिशत अति पिछड़े, 8 प्रतिशत पिछड़ों, 3 प्रतिशत गरीब सवर्णों और 3 प्रतिशत सभी जातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित कर सामाजिक न्याय के साथ-साथ सामाजिक समरसता को स्थापित किया था। आरक्षण के लाभ से उन सभी परिवारों को वंचित किया था जो परिवार आयकर की सीमा में थे। मण्डल आयोग के एक सदस्य एल॰आर॰ नायक ने कहा था कि अत्यंत पिछड़े वर्ग की स्थिति, दलित और आदिवासी की तरह है। अत: वे आरक्षण के लाभ से वंचित रहते हैं। शिक्षा और व्यवसाय में अत्यंत पिछड़ी जातियों को उनकी हिस्सेदारी नहीं मिल पाती है। एक विचारणीय विषय है कि 10 नवम्बर, 1978 को जारी अधिसूचना की कण्डिका 6 में कहा गया है कि "आरक्षण शाश्वत नहीं रहेगा। जैसे-जैसे पिछड़े वर्ग के लोग समुन्नत होते जायेंगे, उन वर्गों के लिए आरक्षण समाप्त होता जायेगा। यह कार्य समय-समय पर पुनरीक्षण एवं पुनरावलोकन के पश्चात् किया जायेगा।" आरक्षण सामाजिक न्याय का उपकरण है। निश्चित रूप से समाज के वंचित और शोषित समूह को न्याय मिलना चाहिये, परंतु ऐसा करते समय यह देखा जाता है कि सम्पन्न एवं सक्षम समूह ही आरक्षण व्यवस्था का लाभ उठा रहे हैं। आरक्षण का लाभ उन्हें ही मिलना चाहिए जो उसके हकदार हैं, न कि उन्हें जो उसका लाभ उठाकर सम्पन्नता के दायरे में आ चुके हैं।

एनसीबीसी के पूर्व अध्यक्ष के ही विचारों के साथ अन्य बहुमूल्य विचारों तथा गतिविधियों, जिनका सीधा संबंध राजनीतिक दलों और शासन से भी है, को भी उद्धृत किया। नौकरी में गरीब सवर्णों तक आरक्षण के विस्तार के लिए उठी आवाजों के बीच राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग ने कहा है कि यह आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को ओबीसी में सम्मिलित करने के लिए तैयार है, चूंकि जाति की तरह पेशा भी पिछड़ापन का चिह्न लगाता है। एनसीबीसी के पूर्व अध्यक्ष

1 09 सितम्बर, 2018

न्यायाधीश श्री वी. ईश्वरैया ने कहा कि सर्वोच्च न्यायालय ने मण्डल कमीशन पर इन्दिरा सहनी वाले फैसले में अपना मंतव्य दिया था कि सरकार को पिछड़े वर्गों की पहचान के लिए जाति के अतिरिक्त सिद्धांतों/प्रमाणों पर भी विचार करना चाहिए। उन्होंने कहा कि पेशा-सह-आय एक ऐसा विकल्प हो सकता है। ''अगर कोई व्यक्ति वर्षों तक रिक्शाचालन-कार्य में लगा हो, तो वह एक ओबीसी है।'' ईश्वरैया ने कहा कि सवर्ण/उच्च जातियों के लिए मण्डलोत्तर वाद-विवाद में आरक्षण एक हृदय-वेदना का मुद्दा रहता आ रहा है और इसके पक्षधर यह कहते रहे हैं कि मण्डल द्वारा उल्लिखित वर्गों तक ही इसकी (आरक्षण की) स्वीकृति की क्रिया को सीमित रखना उस 'ईबीसी' के प्रति अन्याय सूचक है जो ईबीसी वैसी ही समान कठिनाइयाँ भोगते हैं जैसी ओबीसी। उनका तर्क है कि मलाईदार परत सुखी-सम्पन्न 'ओबीसी' को भी आरक्षण के लिए अधिकृत करती है, जबकि आर्थिक साधनहीन उच्च/सवर्ण जातियाँ खुली कोटि की प्रतियोगिता में सफल होने में असमर्थ हैं।

❖❖❖

पिछड़े सवर्णों को आरक्षण[1]

गुजरात सरकार द्वारा आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर सरकारी सेवाओं में सवर्णो को 10 प्रतिशत आरक्षण दिये जाने की घोषणा स्वागतयोग्य।

यह निर्णय 1962 के 28 सितम्बर को माननीय न्यायाधीश गजेन्द्र गडकर द्वारा 'मिस्टर बालाजी बनाम मैसूर' मामले में स्पष्ट नियमन के अनुकूल है जिसमें कहा गया है कि नागरिकों का ये वर्ग जो पूरी तरह निर्धन है स्वत: सामाजिक रूप से पिछड़े हो जाते हैं और वे समाज में सभी स्तरों का आनन्द नहीं ले पाते हैं। 2008 की 10 अप्रैल को माननीय न्यायाधीश के. जी. बालकृष्णन ने उन्हीं के निर्णय को दोहराते हुए कहा है कि सामाजिक पिछड़ेपन की विनिर्मिति गरीबी के साथ-साथ सामाजिक आर्थिक पिछड़ेपन का एक प्रतिरक्षात्मक क्षेत्र तैयार कर देती है, जिससे आर्थिक रूप से पिछड़ों के लिए आरक्षण स्वाभाविक हो जाता है। माननीय मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली पीठ ने आर्थिक रूप से पिछड़ों की शिकायत पर ध्यान दिया। माननीय न्यायाधीश मशायत और माननीय न्यायाधीश ठक्कर के कथानुसार 'यदि मलाईदार परत को आरक्षण से बहिष्कृत करना पड़ता है तो आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गो को अन्तर्हित मना है। इससे सामाजिक संतुलन होगा और संविधान के अनुदेशों का सत्यपरक अर्थ भी होगा। माननीय न्यायाधीश का नियमन है- 'पिछड़े वर्गो का निर्धारण पूर्णत: जाति पर नहीं हो सकता। गरीबी, समाजिक पिछड़ापन, आर्थिक पिछड़ापन ये सब पिछड़ेपन के निर्धारण के लिए अनिवार्य लक्षण है। माननीय मुख्य न्यायाधीश बालाकृष्णन ने गरीबी और आर्थिक पिछड़ेपन पर आधारित वर्गीकरण को अनुज्ञापित करते हुए सामाजिक संतुलन का कार्य किया है, जो संतुलन इंदिरा सहनी मामले में दिये गये माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के विपरीत बहुत लम्बे समय तक भटक गया था।

बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री कर्पूरी ठाकुर की सरकार द्वारा निर्गत आरक्षण अधिसूचना में स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया था कि पिछड़े वर्ग के लोगों में यह सुविधा उन्हीं परिवारों को मिल सकेगी जिनकी वार्षिक आय आयकर की छूट की सीमा से अधिक नहीं है। उसी अधिसूचना में यह प्रावधान किया गया था कि सरकारी सेवाओं की प्रत्येक श्रेणी की नियुक्तियों में और गैर-अनुसूचित जाति, गैर अनुसूचित जनजाति और अन्य गैर पिछड़े वर्ग में आर्थिक दृष्टि से कमजोर जातियों के लिये 3 प्रतिशत आरक्षण आरक्षित किया गया। उक्त अधिसूचना में यह भी कहा गया है कि जिस परिवार की वार्षिक आय आयकर की छूट की सीमा से अधिक नहीं हो उन्हें ही आर्थिक रूप से कमजोर समझा जाए। आरक्षण का लाभ वैसे ही परिवार के सदस्यों को मिलेगा।

कर्पूरी ठाकुर द्वारा 10 नवम्बर, 1978 को जारी अधिसूचना में पिछड़ा वर्ग, अति पिछड़ा

---

1 30 अप्रैल, 2016

वर्ग, महिला सवर्ण एवं सभी जातियों की महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया। गैर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, गैर अनुसूचित पिछड़े वर्ग के अन्तर्गत आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोगों के लिए सरकारी सेवा में आरक्षण शाश्वत नहीं रहेगा जैसे-जैसे आर्थिक दृष्टि से पिछड़े समूह के लोग विकसित और समुन्नत होते जायेंगे आरक्षण समाप्त होता जायेगा। उच्चतम् न्यायालय के न्यायाधीशों के भिन्न-भिन्न समय पर दिये गये अभिमत और कर्पूरी ठाकुर द्वारा निर्गत आरक्षण नीति पूर्णतः न्यायसंगत और सामाजिक समरसता के लिए उचित है।

❖❖❖

आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को आरक्षण[1]

राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक रूप से पिछड़ों को भी आरक्षण होना चाहिए। आजादी के तुरंत बाद तो जातिगत आधार पर आरक्षण का औचित्य बनता था, क्योंकि तब अनेक समुदायों के पिछड़ेपन का मुख्य कारण उनकी जाति थी, लेकिन अब हालात बदल चुके हैं। आज की आवश्यकता यह है कि जो भी आर्थिक रूप से पिछड़े हैं उनके उत्थान के लिए विशेष उपाय किए जाएं। वे चाहे किसी भी जाति, वर्ग, समुदाय या क्षेत्र के हों। आर्थिक आधार पर आरक्षण सभी निर्धनों-पिछड़ों के लिए हितकारी तो होगा ही, वह समाज में किसी प्रकार का द्वेष भी पैदा नहीं करेगा।

संविधान ने आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के आरक्षण की मनाही कभी नहीं की है, और न ही माननीय उच्चतम न्यायालय ने ही चित्रलेखा मामला में फैसला पारित करने के समय से ही अपने नियमनों में मनाही की है। माननीय उच्चतम न्यायालय के यह दलील अस्वीकृत करते हुए कहा कि जाति ही एक मात्र या शक्तिशाली लक्षण पिछड़ापन का हो सकती है या पिछड़े वर्गों का वर्गीकरण जातियों पर ही पूर्णत: आधारित नहीं हो सकता, करोड़ों भारतीयों को यह बल मिला है कि भारतीय संविधान की धारा-1 के अनुसार भारत के राज्यों का ही एक संघ (यूनियन) रहेगा न कि कुछ की इच्छा के अनुसार जातियों का संघ (फेडरेशन) हो जायेगा।

माननीय मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली पीठ ने आर्थिक रूप से पिछड़ों की शिकायत पर ध्यान दिया है। माननीय न्यायाधीश मसायत और माननीय न्यायाधीश ठक्कर के कथनानुसार, ''यदि मलाईदार परत को वहिष्कृत करना पड़ता ही है, तो आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को अंतर्निहित भी करना हैं इससे सामाजिक संतुलन होगा और यह संविधान के उद्देश्यों का सत्यपरक अर्थ भी होगा। माननीय मुख्य न्यायाधीश का नियमन है-''पिछड़े वर्गों का निर्धारण पूर्णत: जाति पर नहीं हो सकता। गरीबी, सामाजिक पिछड़ापन, आर्थिक पिछड़ापन- ये सब पिछड़ेपन के निर्धारण के लिये अनिवार्य लक्षण हैं।''

1962 के 28 सितम्बर को माननीय न्यायाधीश गजेन्द्र गदकर द्वारा 'मिस्टर बालाजी बनाम मैसूर राज्य' मामला में स्पष्ट नियमन दिया गया है-''नागरिकों के वे वर्ग जो बुरी तरह निर्धन हैं, स्वत: सामाजिक रूप में पिछड़े हो जाते हैं, वे समाज में किसी स्तर का आनन्द नहीं ले पाते और इसलिये इन्हें पीछे की जगह बैठने से ही तृप्त रहना पड़ता है।'' 2008 के 10 अप्रैल को माननीय न्यायाधीश के॰जी॰ बालकृष्णन उन्हीं की (गजेन्द्र गदकर) निर्णय को दोहराने लगते हैं, जब यह कहते हैं,-''सभी ब्राह्मण उच्च स्तरीय प्रतिष्ठित नियोजन में संलग्न नहीं हैं और न ये सब बहुत धनी ही हैं। यह भी हो सकता है कि कुछ ब्राह्मण निम्न जाति के सदस्यों के नौकर हों या यह भी हो सकता है कि किन्हीं धनी ब्राह्मण के निजी नौकर कोई गरीब ब्राह्मण हों।'' सामाजिक पिछड़ेपन की यह विनिर्मिति, गरीबी के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन का एक बड़ा प्रतिरक्षात्मक

---

1 07 नवम्बर, 2017

लक्षण तैयार कर देती है जिससे बिना संविधान संशोधन के ही 'आरक्षण' समेत स्वीकृत चालू कार्यक्रमों के लाभों को हासिल करने का मार्ग आर्थिक रूप से पिछड़ों के लिये पक्का हो जाता है।

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग अयोग के अध्यक्ष श्री भी॰ ईश्वरैया ने अपनी राय व्यक्त करते हुए कहा कि सवर्णों को भी आरक्षण की सीमा में लाना चाहिये। उन्होंने उच्चतम न्यायालय के निर्णय को उचित कहा था जिसमें गरीब सवर्णों को भी आरक्षण के दायरे में लाना उचित ठहराया था। समय-समय पर समीक्षा कर इन तथ्यों के आलोक में पहले के आयोग पर विचार करने का समय आ गया है।

❖❖❖

सवर्णों को 10 प्रतिशत आरक्षण[1]

लोकसभा द्वारा आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर सरकारी सेवाओं में सवर्णो को 10 प्रतिशत आरक्षण दिये जाने की घोषणा 1962 के 28 सितम्बर को माननीय न्यायाधीश गजेन्द्र गडकर द्वारा 'मिस्टर बालाजी बनाम मैसूर' मामले में स्पष्ट नियमन के अनुकूल है जिसमें कहा गया है कि नागरिकों का यह वर्ग जो पूरी तरह निर्धन है स्वत: सामाजिक रूप से पिछड़े हो जाते हैं और वे समाज में सभी स्तरों का आनन्द नहीं ले पाते हैं।

2008 की 10 अप्रैल को माननीय न्यायाधीश के. जी. बालकृष्णन ने उन्हीं के निर्णय को दोहराते हुए कहा था कि सामाजिक पिछड़ेपन की विनिर्मिति गरीबी के साथ-साथ सामाजिक आर्थिक पिछड़ेपन का एक प्रतिरक्षात्मक क्षेत्र तैयार कर देती है, जिससे आर्थिक रूप से पिछड़ों के लिए आरक्षण स्वाभाविक हो जाता है। माननीय मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली पीठ ने आर्थिक रूप से पिछड़ों की शिकायत पर ध्यान दिया। माननीय न्यायाधीश का नियमन है– 'पिछड़े वर्गो का निर्धारण पूर्णत: जाति पर नहीं हो सकता। गरीबी, समाजिक पिछड़ापन, आर्थिक पिछड़ापन ये सब पिछड़ेपन के निर्धारण के लिए अनिवार्य लक्षण हैं। माननीय मुख्य न्यायाधीश बालकृष्णन ने गरीबी और आर्थिक पिछड़ेपन पर आधारित वर्गीकरण को अनुज्ञापित करते हुए सामाजिक संतुलन का कार्य किया है, जो संतुलन इंदिरा सहनी मामले में दिये गये माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के विपरीत बहुत लम्बे समय तक भटक गया था। आरक्षण से वंचित सवर्ण जातियों को आर्थिक आधार पर नौकरी में 10 प्रतिशत आरक्षण देना पूर्णत: संवैधानिक और न्यायसंगत है। आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गो को अन्तर्निहित भी करना होगा। इससे सामाजिक संतुलन होगा और यह संविधान के उद्देश्यों का सत्यपरक अर्थ भी होगा। केन्द्र सरकार का यह निर्णय सामाजिक समरसता और मजबूत लोकतंत्र की दृष्टि से आवश्यक है। केन्द्र सरकार के फैसले से राष्ट्रीय स्तर पर और राज्य स्तर पर लागू कर आरक्षण विवाद को पूर्णत: समाप्त किया गया।

एनसीबीसी के पूर्व अध्यक्ष के ही विचारों के साथ अन्य बहुमूल्य विचारों तथा गतिविधियों, जिनका सीधा संबंध राजनीतिक दलों और शासन से भी है, को भी उद्धृत किया। ''नौकरी में गरीब सवर्णों तक आरक्षण के विस्तार के लिए उठी आवाजों के बीच राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग ने कहा है कि यह आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को ओबीसी में सम्मिलित करने के लिए तैयार है, चूंकि जाति की तरह पेशा भी पिछड़ेपन का चिह्न लगता है।

एनसीबीसी के पूर्व अध्यक्ष न्यायाधीश श्री वी. ईश्वरैया ने कहा कि सर्वोच्च न्यायालय ने मण्डल कमीशन पर इन्दिरा सहनी वाले फैसले में अपना मंतव्य दिया था कि सरकार को पिछड़े वर्गों की पहचान के लिए जाति के अतिरिक्त सिद्धांतों/प्रमाणों पर भी विचार करना चाहिए।

1 07 जनवरी, 2019

उन्होंने कहा कि पेशा–सह–आय एक ऐसा विकल्प हो सकता है। ईश्वरैया ने कहा कि सवर्ण/उच्च जातियों के लिए मण्डलोत्तर वाद–विवाद में आरक्षण एक हृदय–वेदना का मुद्दा रहता आ रहा है और इसके पक्षधर यह कहते रहे हैं कि मण्डल द्वारा उल्लिखित वर्गों तक ही इसकी (आरक्षण की) स्वीकृति की क्रिया को सीमित रखना उस 'ईबीसी' के प्रति अन्याय सूचक है जो ईबीसी वैसी ही समान कठिनाइयाँ भोगते हैं जैसी ओबीसी। उनका तर्क है कि मलाईदार परत सुखी–सम्पन्न 'ओबीसी' को भी आरक्षण के लिए अधिकृत करती है, जबकि आर्थिक साधनहीन उच्च/सवर्ण जातियाँ खुली कोटि की प्रतियोगिता में सफल होने में असमर्थ हैं। हाल में तो पार्टी–लाइन से अलग होकर भी राजनीतिक वर्ग ने गरीब सवर्ण जातियों के लिए आरक्षण की वकालत शुरू कर दी।

❖❖❖

बिहार सरकार द्वारा सरकारी सेवाओं में महिलाओं के लिए 35 प्रतिशत आरक्षण के निर्णय का स्वागत[1]

महिला सशक्तीकरण एवं महिला भागीदारी के संबंध में यह महत्वपूर्ण निर्णय है। हालांकि पंचायतों में पहले ही 50 प्रतिशत एवं पुलिस नौकरी में 35 प्रतिशत आरक्षण सुनिश्चित किया जा चुका है। नये निर्णय से सरकारी सेवाओं में सभी पदों पर सामान्य वर्ग की महिलाओं के लिए कुछ हद तक आरक्षण का प्रावधान किया गया है परन्तु बिहार की शैक्षणिक परिस्थिति एवं विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सभी स्तर के शिक्षकों के अभाव में बिहार के अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अत्यंत पिछड़ा वर्ग की बालिकाओं को शिक्षित कराना कठिन है। आरक्षण के बावजूद अध्यापकों के अभाव और संसाधनों के सभी स्तर पर कमी के कारण सरकारी स्कूलों से निकलने वाले बच्चियों का भविष्य अनिश्चित है। आर्थिक कमजोरी और शैक्षणिक अव्यवस्था के कारण गरीब परिवार के बच्चियों को शिक्षित कराना और उन्हें मुकाम तक पहुँचाना कठिन है।

बिहार सरकार ने सरकारी सेवाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण किया है। बिहार सरकार का यह बड़ा दायित्व है कि बालिका शिक्षा को बढ़ावा देना, बच्चियों का बीच में शिक्षा छोड़ देने जैसी समस्याओं को दूर करने के उपायों पर भी काम करना आवश्यक है। सरकारी स्कूलों में पढ़ाई की बेहतर सुविधा मुहैया कराना आवश्यक है। संसद में महिलाओं के लिए आरक्षण के मुद्दे पर लम्बे समय से चले आ रहे गतिरोध के बावजूद बिहार सरकार का फैसला राष्ट्र के लिए एक मिसाल बन सकता है। सामान्य वर्ग की महिलाओं की पढ़ाई–लिखाई के मामले में बिहार आगे है परन्तु अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अतिपिछड़ा वर्ग की महिलाओं में शिक्षा का स्तर अत्यंत ही न्यूनतम और असंतोषजनक है। वास्तविक रूप में सामाजिक न्याय, महिला सशक्तीकरण करना है तो केवल साइकिल, पुस्तक और पोशाक लड़कियों को देने से ही महिला सशक्तीकरण के उद्देश्य की प्राप्ति संभव नहीं है।

❖❖❖

1 21 जनवरी, 2016

महिलाओं के लिए आरक्षण[1]

भारतीय जनता पार्टी ने 2014 के लोक सभा चुनाव में जारी घोषणा पत्र में कहा था कि भाजपा लोक सभा में बहुमत में आने के बाद संविधान संशोधन के जरिये महिलाओं के लिए लोक सभा एवं विधान सभा में 33 प्रतिशत आरक्षण के लिए समर्पित है।

भारतीय संविधान के विभिन्न प्रावधानों में स्त्री–पुरूष की समानता है। परन्तु विस्मयकारी है कि महिलाओं की आधी आबादी रहने के बावजूद भी इनकी उपस्थिति लोक सभा एवं विधान सभा में जनसंख्या के अनुपात में बहुत ही कम है। वर्षों से महिलाओं के विभिन्न संगठनों एवं विभिन्न राजनीतिक दलों ने इनके प्रतिनिधित्व के लिए संघर्ष कर रही हैं।

महिलाओं के लिए आरक्षण का विधेयक 1996 में लोक सभा में प्रस्तुत किया गया, किन्तु पारित नहीं हो सका जबकि यह विधेयक राज्य सभा में पारित हो चुका था। अब इसे लोक सभा में पारित किया जाना है। उस समय कुछ राजनीतिक दलों ने लोक सभा में इस विधेयक को पारित होने देने में गैर संवैधानिक आचरण से इसे पारित नहीं होने दिया जबकि उस समय भी लोक सभा में बहुमत इस विधेयक के पक्ष में था। महिलाओं के लिए लोक सभा एवं विधान सभा में 33 प्रतिशत स्थान सुरक्षित कराने वाले संविधान संशोधन विधेयक को पारित होना चाहिए। लोक सभा की मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस पार्टी की नेता श्रीमती सोनिया गांधी इस विधेयक के पक्ष में प्रधानमंत्री श्री मोदी से पारित कराने की अपील कर चुकी है।

महिला पुरुषों के समान ही सक्षम एवं सुशिक्षित बनना चाहती है। उन्नत राष्ट्र की कल्पना तभी यर्थाथ का रूप धारण कर सकती है जब महिलाएं भी सशक्त होकर राष्ट्र को सशक्त बनाए। आज की आवश्यकता है कि महिलाओं को प्रोत्साहित किया जाए। इसमें संदेह नहीं कि किसी भी समाज में यदि महिलायें उन्नत हो जाती हैं तो उनके अन्य पक्ष स्वतः सबल होने लगते हैं।

❖❖❖

1 22 सितम्बर, 2017

महिला आरक्षण बिल[1]

सभी राजनीतिक दलों से अपील है कि महिला आरक्षण बिल संसद के दोनों सदनों से प्राथमिकता के आधार पर पास कराने की इच्छाशक्ति दिखाएँ ताकि आधी आबादी को भी संसद में उपस्थिति सुनिश्चित की जा सके। महिला आरक्षण संविधान में 85वां संशोधन विधेयक है। इसके तहत लोकसभा और राज्य विधान सभाओं में महिलाओं के लिए 33 फीसदी सीटों पर आरक्षण का प्रावधान हैं। इसी 33 फीसदी में से फिर एक तिहाई सीटें अनूसूचित जाति और जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित की जानी है।

महिला संगठनों और महिला सांसदों के भरपूर दबाव के बावजूद इस विधेयक को लोकसभा के हर सत्र में ठंड़े बस्ते में डाल दिया जाता रहा है। जनता से किये अपने वायदे की वजह से कुछ पार्टियाँ इसका समर्थन करती हैं, लेकिन खुद इन पार्टियों के सदस्यों के भीतर इस बिल पर आम राय नहीं बन पाती। पिछड़े वर्ग की महिलाओं को आरक्षण की माँग उठाने वाली पार्टियों ने लोकसभा में हर बार इस बिल को पेश होने से रोकने की कोशिश की है। महिला आरक्षण विधेयक का विरोध करने वाली राजनीतिक पार्टियाँ अपने पक्ष में कई तरह की दलीलें देती हैं। उनका कहना है कि पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं को भी राजनीति में हिस्सेदारी करनी चाहिए, लेकिन राजनीतिक विश्लेषक इस विरोध के पीछे कुछ अलग ही कारण बताते हैं। ज्यादातर पुरुष सांसदों को लगता है कि अगर उनकी सीट महिलाओं के लिए आरक्षित हो गई तो वे शायद फिर कभी लोकसभा के सदस्य नहीं बन पाएँगे। छोटी पार्टियों को लगता है कि बारी–बारी से सीटें आरक्षित करने पर उनका जनाधार हाथ से निकल जायेगा। कुछ सामाजिक संगठन ये तर्क देते हैं कि इतनी बड़ी तादाद में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने से राजनीतिक दलों के लिए इतनी बड़ी संख्या में महिला उम्मीदवार ढूँढ़ पाना मुश्किल हो जायेगा। संविधान विशेषज्ञों का मानना है कि पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यकों के लिए जनप्रतिनिधि व्यवस्था में आरक्षण का प्रावधान नहीं किया गया है। बहरहाल इन तमाम अड़चनों के कारण महिला आरक्षण विधेयक एक सत्र से दूसरे सत्र और एक लोकसभा से दूसरी लोकसभा तक टलता जा रहा था। हर चुनाव में यह एक बड़ा मुद्दा बनता है, हर लोकसभा में इसे लाने की और फिर इसे पास करवाने की बात की जाती है, फिर भी ये विधेयक लटका हुआ है।

राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम होने का कारण ही महिला आरक्षण बिल 20 साल से लटका हुआ था। ये बिल 1996 में पहली बार पेश हुआ था और 2010 में राज्यसभा से पास हो गया था लेकिन लोकसभा से अभी तक पास नहीं होना दुर्भाग्यपूर्ण है। अब जबकि 17वीं लोकसभा का गठन हो चुका है तो ऐसी आशा और अपेक्षा की जानी चाहिये कि यह बिल दोनों सदनों से पास होकर आधी आबादी की संसद में उपस्थिति सुनिश्चित करेगी।

❖❖❖

1 12 जून, 2019

भूमि का भूमिहीन दलितो के बीच बाँटा जाना[1]

पटना जिले के दानापुर अनुमंडल के अन्तर्गत बिहटा प्रखंड में 103 दलित आबंटियों को बेदखल कर दिये जाने की घटना बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। 1975-76 में मेरे मुख्यमंत्रित्वकाल में बिहटा प्रखंड में 103 दलितों के बीच भूमि सुधार कानून के अन्तर्गत अर्जित की गई 200 एकड़ भूमि बांटी गई थी। उन आबंटी दलित भूधारियों को सरकार द्वारा प्राप्त करायी गई जमीन पर बलशाली भूपतियों ने दखल नहीं होने दिया। मेरे अथक प्रयास और सरकार के पास पिछले 12 वर्षों से की गई अपील बिल्कुल बे-असर रही है।

बिहार सरकार की अनेक घोषणाओं के बावजूद सभी जातियों के भू-धारियों द्वारा 80 के दशक में भू-हदबंदी कानून के अन्तर्गत अर्जित अवशेष भूमि जो दलित एवं अत्यन्त पिछड़ी जातियों के बीच वितरित की गई, उस जमीन से उन्हें बड़े पैमाने पर बेदखल कर दिया गया है। अनेक मामलों में तो उन्हें वितरित भूमि पर कब्जा ही नहीं होने दिया गया है। इस तरह पिछले वर्षों के शासन में गरीबी निवारण एवं सामजिक न्याय के लुभावने नारे के बाद भी भूमिहीन आबंटियों को बांटी गई भूमि पर कब्जा नहीं दिलाया जाना सरकार की वैचारिक एवं प्रशासनिक इच्छाशक्ति की स्थिति का स्पष्ट उदाहरण है।

भूमि सुधार के अन्तर्गत आबंटियों के बीच बड़े पैमाने पर बेदखली और दखल नहीं होने देने के मामलों का शीघ्र पंजीकरण कराया जाए और अविलंब उनकी सुनवाई हो। अब तक किसी स्तर पर ऐसा नहीं किये जाने के कारण दलितों के बीच असंतोष और आक्रोश उत्पन्न हो गया है। दलितों और कमजोर वर्ग की यह सबसे बड़ी कमी और कमजोरी है कि इनकी उपेक्षा करते हुए ही आज का प्रशासन चलाया जा रहा है।

आज इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता कि जब तक दलितों और पिछड़ों को भू-हदबंदी से प्राप्त अर्जित जमीन, गैर-मजरूआ सरकारी जमीन और भूदान में प्राप्त जमीन का वितरण करके उन जमीनों पर लाभान्वितों का दखल-कब्जा नहीं कराया जायेगा तब तक इन वर्गों को सामाजिक न्याय एवं समानता प्राप्त नहीं हो सकेगी।

सरकार का यह अहम् दायित्व होता है कि वह पटना जिले के दानापुर अनुमंडल में बिहटा प्रखंड के 100 से अधिक दलितों को आबंटित जमीन पर तुरंत दखल दिलाने के लिए प्रशासन को आदेश दे साथ ही राज्य में भूमि सुधार कार्यक्रमों को तेजी से चलाते हुए इस बात पर खासतौर से ध्यान दे कि जहां कहीं भी आबंटित जमीन पर भूमिहीनों को बेदखल कर दिया गया है या दखल होने ही नहीं दिया गया है, उन मामलों का शीघ्र पंजीकरण करा कर दखल दिलाने की प्रभावकारी कार्रवाई हो।

❖❖❖

---

1 17 जनवरी, 2003

विचाराधीन कैदियों की स्थिति[1]

देश की जेलों में दो-तिहाई विचाराधीन कैदी हैं। यानी आज की तारीख में कुल विचाराधीन कैदियों की संख्या 2.87 लाख है। इनमें 71 प्रतिशत तो वे हैं जो मामूली अपराधों जैसे पाकेटमारी, शरारत या छोटी-मोटी चोरी के जुर्म में सालों से कैद है। दिलचस्प बात यह है कि जिन अपराधों में ये जेल लाये गये हैं, उसकी सजा की अवधि से कहीं ज्यादा वक्त उन्होंने जेलों में बिता दिया है। कइयों के मामले तो सालों बाद अदालत में अभी तक खुले ही नहीं हैं, न ही उनकी सुनवाई ही पूरी हो पायी है। ऐसे कैदियों की संख्या भी कम नहीं जो दस-पंद्रह सालों से जेलों में कैद हैं एवं जिनके मामले कोर्ट में लंबित पड़े हैं।

उच्चतम न्यायालय ने बहुत पहले 1979 ई० में ही बताया था कि नजरबंद कैदियों पर तेजी से विचार किया जाना संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। उसने इस तथ्य को भी उजागर किया है कि मजिस्ट्रेटों का यह कर्त्तव्य होता है कि वे अभियुक्तों को वाकिफ कराएं कि उन्हें कारागृह में भेजे जाने के पहले जमानत पाने का अधिकार है। उच्चतम न्यायालय ने बहुत आगे बढ़कर यह भी सुझाव दिया था कि जमानत की रकम उतनी ही रखी जानी चाहिए जो अभियुक्त की वित्तीय स्थिति के अनुकूल हो और उसके फरार होने की संभावनाओं को देखते हुए उपयुक्त मालूम पड़े। इसमें अपराध के स्वरूप को आधार नहीं बनाया जाना चाहिए। न्यायालय ने इससे आगे जाकर यह भी विहित किया कि अनुच्छेद 21 की दृष्टि से निःशुल्क कानूनी सहायता उचित एवं तर्कसंगत प्रक्रिया है। किन्तु, इन सुझावों की अवहेलना के आसार खुलेआम नजर आते हैं। नतीजा है कि अभियुक्तों को उतनी अवधि से कहीं अधिक दिनों तक जेल में बंद रहना पड़ता है जितना उन्हें किसी खास अपराध के लिए जेल-यातना सहनी पड़ती।

स्पष्ट है कि जेल के कैदियों के सामने जितने प्रकार की समस्याएँ हैं उनके बारे में लोगों की समझदारी में कमी नहीं है और न न्यायालय की ओर से दिए जाने वाले निर्देशों का अभाव है। जब तक कारागारों में वर्त्तमान स्थिति में बदलाव नहीं आता और विचाराधीन कैदियों की संख्या कम नहीं होती, तब तक किसी भी सुधार की आशा नहीं की जा सकती है। निम्न स्तर के न्यायालयों को अद्यतन सूचना नहीं दिये जाने के कारण भी अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित होती हैं। इस बात का भी खासतौर पर ध्यान रखना चाहिये कि मानवाधिकार के क्षेत्र में जितने तरह के कानूनी विचारों का विवेचन किया गया है और अनेक न्यायाधीशों के निर्णयों से जो नये-नये कानून उद्भूत हुए हैं, उन्हें अमल में लाकर वांछित उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है।

गत वर्ष विचाराधीन कैदियों के मामले शीघ्र निपटाने की सुप्रीम कोर्ट की चेतावनी ने विचाराधीन कैदियों के भीतर उम्मीद की एक लौ जगाई थी। कोर्ट ने राज्यों और केन्द्र शासित

---

[1] 14 फरवरी, 2003

प्रदेशों से स्पष्ट रूप से कहा था कि विचाराधीन कैदियों के मामले को निपटाने में किसी तरह की देरी को किसी भी कीमत पर बर्दास्त नहीं किया जायगा।

विचाराधीन कैदियों की दुर्दशा देखने पर अनुभव होता है कि अधिकतर विचाराधीन कैदियों को पुलिस-प्रशासन ने षड्यंत्र के तहत फंसाकर उन्हें बीबी-बच्चों से अलग कर अमानवीय जीवन जीने के लिए मजबूर कर दिया है। हजारों कैदियों की न्यायालय में पेशी नहीं हो पाती है, और न ट्रायल हो पाता है। विचाराधीन कैदियों में अधिकांश की माली हालत इतनी खराब है कि सुप्रीम कोर्ट क्या अनुमंडल और जिला सत्र न्यायालय में भी अपनी पैरवी के लिए एक मामूली वकील की फीस चुकाना उनके लिये मुश्किल होता है। सुप्रीम कोर्ट ने 1996 में ऐसे विचाराधीन कैदियों की मदद करनी चाही थी, जिनके मुकदमे एक साल से ज्यादा समय से लंबित थे। उसने निचली अदालतों को आदेश दिया था कि जो कैदी दस माह से अधिक समय जेल में बिता चुके हैं और अधिकतम सात साल की सजा पाने वाले अपराध के जो बंदी हैं उन्हें जमानत पर रिहा कर दिया जाए। सुप्रीम कोर्ट का यह भी आदेश था कि ऐसे मामलों को तुरंत खत्म कर दें जिनमें अपराधी को एक साल से कम की सजा होने का प्रावधान है। लेकिन सुप्रीम कोर्ट की ये कवायदें भी नक्कारखाने में तूती की आवाज बन कर रह गयी और विचाराधीन कैदियों की स्थिति आज भी जस की तस बनी हुई है।

❖❖❖

किसानों की विवशता[1]

पश्चिम चम्पारण, पूर्वी चम्पारण, मुजफ्फरपुर एवं दरभंगा जिलों में गन्ना उत्पादक एवं धान और गेहूँ उत्पादक किसानों के समक्ष यह विचित्र समस्या उपस्थित हो गई है कि उनकी उपज के लागत मूल्य और अन्य जरूरतों पर केन्द्र और राज्य सरकार कोई स्थायी समाधान निकालने की चेष्टा नहीं कर रही है। फलस्वरूप किसानों के लिए खेती अलाभकर साबित हो रही है।

गन्ना उत्पादकों को प्रति क्विंटल विशेष सहायता राज्य सरकार दे। साथ ही धान उत्पादक किसानों को घोषित क्रय-मूल्य की जगह 250 रुपये प्रति क्विंटल की कीमत पर धान बेचने की विवशता समाप्त कराये। खेती की लागत की अधिकता के कारण कृषि-कार्य खर्चीला होता जा रहा है और किसान महसूस करते हैं कि खेती के बजाय अन्यत्र निवेश किया जाना श्रेयस्कर है। इस सोच से कृषि उत्पादन और भारत के आर्थिक ढांचे पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। सरकार चीनी मिल मालिकों के दबाव के समक्ष झुकती हुई दिख रही है। राज्य सरकार अगर सख्त होती तो सरकार और मिल मालिकों के बीच कोई फार्मूला निकाल सकती थी। पर ऐसा नहीं किया गया और मिल मालिकों को उच्चतम न्यायालय के समक्ष जाने का अवसर दे दिया गया। गन्ना मूल्य निर्धारण नहीं होने और गन्ना मूल्य का भुगतान नहीं होने से किसानों का संकट लगातार बढ़ता गया है।

बिहार के लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि 33 चीनी मिल में से केवल 10 चीनी मिल ही चालू अवस्था में हैं। राज्य सरकार की स्वामित्ववाली 15 चीनी मिल स्थायी तौर पर बंद कर दी गयी हैं। झारखंड राज्य बनने के बाद शेष बिहार के पास जो सिर्फ 3 प्रतिशत उद्योग बचे हैं उनमें चीनी उद्योग से ही बिहार का भविष्य जुड़ा हुआ है। अंग्रेजों ने 28 चीनी मिल बिहार में स्थापित की थी। पहले बिहार राज्य देश में उत्पादित चीनी का 25 प्रतिशत उत्पादन करता था जो आज घटकर 4 प्रतिशत हो गया है। ऐसी अवस्था में चीनी मिलों का आधुनिकीकरण और विकास आवश्यक है। इसके लिये गन्ना उत्पादकों को प्रोत्साहित करना भी विशेष महत्वपूर्ण है। महाराष्ट्र और हरियाणा की तर्ज पर बिहार के गन्ना उत्पादकों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से गन्ने का मूल्य उत्पादन लागत की दृष्टि से सुनिश्चित किया जाना चाहिये।

सरकार की नीतियों के कारण किसानों की कमर टूट गई है। कृषि उत्पादन का आयात बढ़ने से किसानों को लागत मूल्य नहीं मिल रहा है। अत: वे निराश हो गये हैं। केन्द्र सरकार की यह नीति अन्तर्राष्ट्रीय संस्था और बहुर्राष्ट्रीय कंपनी के तर्ज पर चल रही है जिसके द्वारा उद्योग और व्यापार सहित विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को चौपट करने की अंतर्राष्ट्रीय साजिश हो रही है। इसका निराकरण किया जाना आवश्यक है।

❖❖❖

1 3 फरवरी, 2003

बे-रोजगार आवेदकों से शुल्क क्यों?[1]

बिहार में बेरोजगारों की आर्थिक दुरवस्था को देखते हुए कहना है कि लोक सेवा आयोग अथवा सरकार द्वारा नियुक्ति के लिए बेरोजगार आवेदकों से आवेदन के लिए किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाए। मेरी सरकार ने ऐसी व्यवस्था की थी, जिसे बाद की सरकार ने समाप्त कर दिया।

बिहार में बेरोजगारी एक भयंकर समस्या है। रोजगार वाला व्यक्ति जहां समाज में उत्पादन वृद्धि में योगदान करता है वहीं बेरोजगार विवशता में अपराधों की ओर प्रेरित हो जाते हैं। बेरोजगारी का सबसे बुरा पक्ष सामाजिक है। बेरोजगार निराशा में अपराधी बन जाता है। बेरोजगारों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। विशेषकर बिहार में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़ी है। गांवों में रोजगार की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है।

अतः राज्य सरकार को चाहिए कि (1) वह बिहार के पढ़े लिखे नवयुवकों और ग्रामीण क्षेत्र के बेरोजगारों के नियोजन के लिए राजकीय सेवा में 1.50 लाख प्राथमिक शिक्षक, 15 हजार माध्यमिक शिक्षक, 8 हजार विश्वविद्यालय शिक्षक के रिक्त पदों, और विभिन्न विभागों में 14 वर्ष से रिक्त पड़े 1.50 लाख पदों को शीघ्र भरने की कारगर व्यवस्था करे। प्राथमिक शिक्षकों की नियुक्ति में 15 प्रतिशत उर्दू शिक्षकों, 5 प्रतिशत मैथिली शिक्षकों एवं 10 प्रतिशत संस्कृत शिक्षकों के लिए आरक्षण किया जाएं तथा इन नियुक्तियों में प्रशिक्षित व्यक्तियों को ही प्राथमिकता दी जाए। (2) देश में सर्वप्रथम बिहार में मेरी सरकार ने 1980 में शिक्षित बेरोजगारों के लिए सांकेतिक भत्ता लागू किया था। उसे इन 14 वर्षों में राजद सरकार ने बंद कर दिया है। बेरोजगारों के बीच विस्फोट की स्थिति को देखते हुए उसे पुनः चालू किया जाए और उन्हें 500 रु० प्रतिमाह बेरोजगारी भत्ता देने की व्यवस्था शीघ्र से शीघ्र की जाए। (3) रोजगार के पर्याप्त अवसरों के सृजन के लिए यह आवश्यक है कि कृषि और ग्रामीण क्षेत्र में विशेष ध्यान दिया जाए। इससे न केवल ग्रामीण क्षेत्रों को सम्पन्नता प्रदान करने में सहायता मिलेगी, बल्कि गांवों से शहरों की ओर पलायन की जो प्रवृत्ति बढ़ती चली जा रही है उसे भी थामने में मदद मिलेगी।

बेरोजगारी की समस्या से निपटने के लिए एक ओर जहाँ यह आवश्यक है कि कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था से जुड़े क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर पूँजी निवेश किया जाए वहीं दूसरी ओर यह भी जरूरी है कि निर्माण उद्योग को नए आयाम दिए जाएं। निर्माण उद्योग एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें बड़े पैमाने पर व्यापक परियोजनाएँ शुरू होने से अन्य अनेक उद्योगों के फलने-फूलने का भी मार्ग प्रशस्त होगा। (4) शिक्षित बेरोजगारों को आत्म नियोजन के लिए आसान शर्तों पर ऋण एवं अनुदान उपलब्ध कराया जाए। (5) बिहार के पढ़े-लिखे नवयुवक जब बिहार से बाहर सरकारी

---

1 11 फरवरी, 2004

नौकरी की तलाश में दूसरे प्रदेशों में जाते हैं, तो उनको परीक्षा में बैठने नहीं दिया जाता है।

हाल के दिनों में ऐसी घटनाएं घटी हैं, जिनमें बिहारी नवयुवकों को प्रताड़ित किया गया है और उन्हें लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार से वंचित कर दिया गया। केन्द्र सरकार या राज्य सरकार इस समस्या के समाधान की दिशा में कोई ठोस कार्यक्रम नहीं बना पाती हैं। युवकों को सही दिशानिर्देश नहीं दिया जा रहा है।

हमारे संविधान में प्रावधान है कि देश के किसी भी राज्य में सरकारी नौकरी पाने का अधिकार सभी को है। यह संविधान का मूलभूत अधिकार है। इसमें अड़चनें पैदा करना संविधान की अवहेलना है। अतः राज्य सरकार को देश के भिन्न-भिन्न राज्यों में कार्यरत बिहारियों के हितों का संरक्षण एवं बिहार से पलायन कर रहे लोगों के लिए रोजगार की व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिए।

❖❖❖

खाद्य सुरक्षा विधेयक[1]

भारत में कुपोषण एवं गरीबी एक बड़ी चुनौती है, जिसे खत्म करने के लिए केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा लम्बे जद्दोजहद और तमाम मतभेदों के बाद खाद्य सुरक्षा विधेयक को मंजूरी देने और उसे इसी संसद सत्र में पारित कराने का निर्णय स्वागतयोग्य है। सबके लिए अह्म बात है कि इस विधेयक में पहली बार यह माना गया है कि भोजन प्राप्त करना हर नागरिक का संवैधानिक अधिकार है। इस विधेयक के तहद 67 प्रतिशत आबादी को सस्ती दरों पर अनाज मुहैया कराने का प्रावधान किया जा रहा है।

खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना वर्ष 1947 से ही राष्ट्रीय लक्ष्य रहा है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने इस लक्ष्य की चर्चा यह कहकर की थी कि और सभी इंतजार कर सकते हैं, लेकिन खेती नहीं। खाद्य सुरक्षा अब आर्थिक और सामाजिक रूप से संतुलित आहार प्राप्त कर सकने, पेयजल की उपलब्धता, पर्यावरण की सफाई और प्रारंभिक स्वास्थ्यचर्या के रूप में परिभाषित की जाती है। दुर्भाग्य की बात है कि अनेक सरकारी योजनाओं के बावजूद हमारे देश में व्यापक रूप से कुपोषण फैला है। बच्चे और महिलाएं इससे सबसे ज्यादा प्रभावित होती हैं। हमने उद्योगों और आर्थिक विकास दर के मामले में चाहे जितनी भी प्रगति कर ली हो, लेकिन भूख मिटाने और कुपोषण के मामले में हमारी ख्याति अच्छी नहीं है। पिछले दशक में आधारभूत मानवीय आवश्यकताओं पर जोर होता था, जो अब अधिकारों पर आ गया है। इस प्रकार से अब संसद द्वारा पारित कानूनों के जरिये हमें शिक्षा, सूचना और रोजगार क्षेत्रों में अधिकार मिले हुए हैं। अब राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक पारित किया जा रहा है, जिसके जरिये हर भारतीय नागरिक को भोजन पाने का अधिकार मिल जायेगा।

केन्द्र सरकार कुपोषण एवं गरीबी की चुनौती से निपटने के लिए खाद्य सुरक्षा कानून पारित करा रही है। इस कानून से हर नागरिक कानूनी रूप से भोजन पाने का हकदार होगा। गाँवों में 75 फीसदी और शहरों में 50 फीसदी आबादी इस कानून से लाभान्वित होगी। इस विधेयक को इस सत्र में संसद से मंजूरी मिल जाएगी। इस बिल के लागू होने के बाद देश में करीब 32 करोड़ लोगों को एक वक्त भूखे पेट नहीं सोना पड़ेगा। खाद्य सुरक्षा कानून के जरिये सरकार ने 2015 तक देश में भुखमरी खत्म करने का लक्ष्य रखा है। उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 21 जिसमें ''जीने का अधिकार मौलिक अधिकार है'' उसको परिभाषित करते हुए अनेक अवसरों पर कहा है कि जीने का अधिकार का अर्थ है–'भोजन युक्त जीवन,' 'स्वास्थ्य युक्त जीवन,' आवास, 'शिक्षा और कपड़ा युक्त जीवन'' सरकार को सबको भोजन, सबको शिक्षा और सबको स्वास्थ्य एवं आवास सुनिश्चित कराना है। इस दिशा में खाद्य सुरक्षा विधेयक एक महत्वपूर्ण निर्णय है। परंतु इसका सफल कार्यान्वयन जन वितरण प्रणाली पर निर्भर करता है। इस अधिनियम से राज्य सरकार का दायित्व बढ़ गया है।

❖❖❖

1 20 मार्च, 2013

बुनकरों की हो मद्द[1]

आजादी के आंदोलन में गाँधी जी ने खादी बुनाई को स्वदेशी और स्वावलंबन का सबसे सशक्त माध्यम मानते हुए इसे आजादी का प्रतीक घोषित किया और इसमें उन्हें जन समुदाय का व्यापक समर्थन मिला तो आज इन कताई-बुनाई करने वालों की दुर्दशा हमें धिक्कारती है।

यह बड़ी विचित्र स्थिति है, एक ओर तो सरकारें समाज के निचले तबके के सामाजिक-आर्थिक उत्थान के लिए रोजगाार की बड़ी-बड़ी नीतियाँ बनातीं हैं, राशियाँ आबंटित होती हैं, ढांचे खड़े होते हैं, फिर भी अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता है। वहीं बुनकरों का क्षेत्र ऐसा है जो पूर्णकालिक पारिवारिक व्यवसाय है और अनुकूल नीतियों एवं सामान्य सहयोग से यह अपने पैरों पर आसानी से खड़ा हो सकता है, पर इस पर गंभीरता से विचार भी नहीं किया जाता है। आंकड़ों के अनुसार करीब डेढ़ करोड़ लोगों को इससे रोजगार मिलता है।

अधिकतर बुनकर अनुसूचित जाति, जनजाति, अति पिछड़े वर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदाय के हैं। इसलिए सामाजिक न्याय के सिद्धांत के तहत भी इनकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए थी। सबसे बड़ी बात कि कम लागत में कताई-बुनाई भारत के न जाने कितने ओर लोगो को स्वावलंबी बना सकती है, खर्च में कमी ला सकती है, ठीक से विपणन हो तो सरकार के खजाने में राजस्व बढ़ा सकती है और निर्यात से विदेशी मुद्रा भंडार में महत्वपूर्ण अंशदान कर सकती है।

यह देश का दुर्भाग्य है कि बुनकरों के लिए अपने एवं अपने परिवार का जीवन यापन तक कठिन हो गया है। ऐसा नहीं है कि बुनकरों की स्थिति सुधारने के लिए योजनाएं नहीं बनीं। वर्कशेड कम हाउसिंग के प्रशिक्षण प्रकल्प, क्लस्टर, डेवलपमेंट, वीवर, कंप्रिहेंसिव वेलफेयर, इन्क्लूसिव ऑफ हेल्थ, मिलग्रेट प्राइम स्कीम, मार्केटिंग एण्ड स्पोंटस प्रमोशन, स्ट्रेंथेनिंग ऑफ वीवर सर्विस सेंटर जैसे और कई नाम आ जाएँगे। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि ये सारी योजनाएं बुनकरों की दुर्दशा दूर करने में असफल है। जाहिर है इन सबों की समीक्षा कर नए सिरे से बुनकरों के लिए समग्र नीतियाँ लेकर आने की आवश्यकता है। कुछ बातें साफ हैं मसलन इन्हें काम नहीं मिलता और मिलता है तो पारिश्रमिक पर्याप्त नहीं। स्वरोजगार के लिए पूँजी नहीं। इन्होंने जो कुछ बुना-बनाया उनकी सरकारी खरीद का भुगतान समय पर नहीं होता। जिस अनुपात में उत्पादन लागत बढ़ा उस अनुपात में मूल्य नहीं बढ़े और कर्ज का बोझ आदि। अगर इनकी समस्याओं के सार रूप में इन बिन्दुओं पर ही विचार हो तो रास्ता निकल सकता है। साफ है कि इन्हें नियमित काम मिले, उचित पारिश्रमिक मिले, चाहे तो रियायती दर पर आसान कर्ज मिल जाए, काम के अनुकूल वातावरण मिले, सरकारी खरीद मूल्य लागत एवं खर्च के अनुरूप बढ़े, इनके सिर से कर्ज का बोझ समाप्त किया जाए।

बिहार राज्य में बुनकरों की संख्या विशेषकर मधुबनी, भागलपुर, नालंदा, सिवान आदि

1 25 जून, 2017

जिलों में हजारों वर्कर आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहे हैं क्योंकि हेन्डलूम बोर्ड, हेन्डलूम कॉँरपोरेशन एवं स्पीनिंग मील में कार्यरत हेन्डलूम समितियाँ पूर्णतः निष्क्रिय हैं। नव स्थापित पण्डौल, सिवान और भागलपुर पूर्णतः रुग्ण अथवा बंद हैं। बुनकरों को नई तकनीक, नये डिजाइन, नये किस्म के कपड़े आदि के संबंध में प्रशिक्षण नहीं दिया जा रहा है। बिहार के लाखों बुनकर परिवार कर्ज से दबे हुए हैं। उनकी स्थिति पर तत्काल विचार करना आवश्यक है।

❖❖❖

अल्पसंख्यकों की न हो अवहेलना
अल्पसंख्यकों के साथ न्याय नहीं[1]

पिछले दशकों में देश के राजनीतिक दलों ने अल्पसंख्यकों के साथ न्याय नहीं किया है। क्षेत्रीय दलों ने उन्हें बराबर भरोसा दिलाया कि वे उनकी भलाई को अहमियत देने के पक्षधर हैं किन्तु व्यावहारिक तौर पर देखने में यह आता है कि उनका राजनीतिक इरादा पक्का नहीं था जिसके चलते उन्होंने अल्पसंख्यकों की न तो अल्पकालिक समस्या का समाधान किया और न दीर्घकालिक समस्या का। ऐसे दल अल्पसंख्यकों को महज वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करते रहे।

दुनिया तीसरी सहस्राब्दी में डिग रख चुकी है, लेकिन भारत के अल्पसंख्यकों के हालात में बदलाव नहीं आया। हालांकि मुसलमान अपनी आबादी के ख्याल से देश में दूसरे नम्बर पर हैं फिर भी उन्हें जिंदगी के किसी महकमे में अव्वल जगह नहीं मिली। वे दूसरों के पीछे-पीछे चलते रहे हैं। आज ये तालीम और माली हालात के मामले में इस कदर पिछड़े हुए हैं कि समाज में उन्हें कोई ऊँचा स्थान नहीं मिल रहा है। उच्च शिक्षा का महकमा हो या किसी सरकारी अथवा प्राइवेट क्षेत्र में नौकरी का मामला हो अथवा कृषि, व्यापार और उद्योग का दायरा हो, अल्पसंख्यकों की मौजूदगी उनमें कम दिखायी पड़ती है। पार्लियामेंट या राज्यों के विधान मंडल में भी उनके प्रतिनिधि कम रहते हैं साथ ही प्रशासन में, न्यायिक सेवा में अथवा तालीम की दुनिया में उन्हें आबादी के हिसाब से ओहदे नहीं मिले हैं। अल्पसंख्यकों ने देश की खिदमत में देखने-दिखाने लायक काम किये हैं फिर भी वे समाज में अलग-थलग पड़े हुए हैं। देश के बंटवारे के समय से उन्होंने ढेर मुसीबतें झेलीं, धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक व्यवस्था बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी फिर भी उन्हें जान-माल की हिफाजत नहीं मिल पायी। वे महसूस करते रहे हैं कि उन्हें समाज आदर नहीं देता है, सियासत में उन्हें पूरी जगह नहीं दी गयी है, उन्हें वाजिब हक से वंचित रखा गया है और वे एक ऐसी दुनिया में जी रहे हैं जहाँ उनके साथ भेदभाव बरता जा रहा है। लोग उनपर यकीन नहीं करते बल्कि उन्हें शक की नजर से देखते हैं।

संविधान बनाते समय मुसलमानों के लिए आरक्षण का सवाल उठाये जाने पर उन्हें जिस तरह का भरोसा दिलाया गया था कि बहुसंख्यकों से उन्हें उचित व्यवहार मिलेगा, उसे अभी तक पूरा नहीं किया गया। उन्हें विधान मंडल एवं संसद में सही अंश में प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। मुसलमान इसे एक राष्ट्रीय समस्या मान रहे हैं। आज सभी सेकुलर पार्टियों को मिल-बैठकर गहराई से विचार करने की जरूरत है। इस समय जरूरत है कि पार्टी का भेदभाव भुलाकर सेकुलर पार्टियां और राजनीति से जुड़े मुसलमान नेता ऐसी कारवाई करें कि मुसलमानों के मन में जो भावना उठ रही है कि इस देश में उन्हें अलग-थलग माना जा रहा है, वह दूर हो और वे देश की

1 11 फरवरी, 2002

तरक्की में अपनी राजनीतिक ताकत लगा सकें। जरूरत इस बात की है कि समय-समय पर जो कमीशन, कमिटी, पैनेल एवं बोर्ड गठित किये जाते हैं उनमें राज्य सरकार अपने विवेक से मुसल. मानों को भी अच्छी तादाद में रखे जिससे उनकी आबादी की झलक मिले। जनसंचार माध्यमों में भी उनकी बहाली की जाए। केन्द्र सरकार को चाहिए कि वह मुसलमानों की समस्याओं को देखने-समझने और सुझाव देने के लिए पार्लियामेंट की एक कमिटी उसी तर्ज पर मुसलमानों के लिए गठित करे जैसी अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए गठित है। यह कमिटी मुसलमानों के वाजिब हितों की हिफाजत करेगी, उनकी जान-माल की रक्षा के लिये किये गये उपायों की छान-बीन करेगी और यह भी देखेगी कि सरकार द्वारा किए गए खर्चों से मिलने वाले सभी क्षेत्रों के लाभ मुसलमानों को भी समान रूप मे मिले। आज संविधान संशोधन की बातें बार-बार उठायी जाती हैं, इस स्थिति में मुसलमानों को सतर्क रहना है कि उसका जो बुनियादी स्वरूप है उसमें फेर-बदल नहीं किया जाए। इसके लिए उन्हें पूरी मुस्तैदी के साथ चुनावों में सेकुलर पार्टी के उम्मीदवार के पक्ष में अधिक से अधिक वोट डालने का प्रयास करना चाहिए। सरकार का भी यह कर्त्तव्य होता है कि वह देखे कि जनता के लिए जो कल्याणकारी और विकास योजनाएं चलायी जा रही हैं जिनसे आदमी की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्त्ति होने वाली हो उनमें मुसलमानों के प्रति भेद भाव नहीं बरते जायें। गरीबी उन्नमूलन कार्य के लिए आबंटित धन में अल्पसंख्यकों के लिए निर्धारित 20 प्रतिशत राशि सुरक्षित रखी जाए और गरीब अल्पसंख्यकों के लिए नौकरी एवं नामांकन में आरक्षण सुनिश्चित हो।

अयोध्या को एक गैर-जिम्मेदाराना उकसावे का मुद्दा बनाया जाना दुर्भाग्यपूर्ण है। ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी गयी है कि दोनों समुदायों में समझौते की बातचीत नहीं चलायी जा सकती है। न्यायिक प्रक्रिया द्वारा इस समस्या का समाधान तो निकाला जा सकता है।

मेरे मुख्यमंत्रित्व काल में बिहार के अल्पसंख्यकों के आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक सशक्तीकरण के लिए महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये थे और उन्हें कार्यान्वित किया गया था। इसके अन्तर्गत उर्दू को द्वितीय सरकारी भाषा का दर्जा दिया गया। उर्दू एकेडमी की स्थापना की गयी। प्राथमिक विद्यालयों में उर्दू शिक्षक की नियुक्ति सुनिश्चित की गयी। अल्पसंख्यक विद्यालयों एवं महाविद्यालयों और मदरसों के शिक्षकों को राजकीय शिक्षकों के समान वेतन प्रोन्नति भत्ता एवं सुविधा राजकीय कोष से सुनिश्चित कराने का निर्णय लिया गया था। सभी नियुक्ति संबंधी आयोगों में अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व दिलाने और सामुदायिक दंगों के लिए विशेष अदालत गठित कर दोषी को सजा दिलाने के बारे में भी निर्णय किये गये। अल्पसंख्यक आयोग एवं आत्म नियोजन के लिए अल्पसंख्यक वित्त आयोग का गठन सर्वप्रथम बिहार में किया जाना भी एक महत्वपूर्ण निर्णय है। ये तमाम निर्णय ऐसे हैं जो अन्य राज्यों में अभी तक संभव नहीं हो पाये हैं।

❖❖❖

अल्पसंख्यकों की अवहेलना[1]

पूर्व की सरकार ने बिहार सैन्य पुलिस के अधीन दंगा-निरोधी बटालियन की स्थापना की थी, जिसे राजद सरकार ने तोड़ दिया। इस बटालियन में 50 प्रतिशत मुसलमानों का प्रतिनिधित्व था फिर भी इसे बरकरार नहीं रखा गया। यदि राष्ट्रीय जनता दल की दिलचस्पी सचमुच अल्पसंख्यकों की बेहतरी में है तो पहले संयुक्त बिहार में अनुसूचित जनजाति के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण का जो कोटा रखा गया था, उसे अब अल्पसंख्यकों के नाम में क्यों नहीं अंतरित कर दे रही है? उर्दू को दूसरी राजभाषा का दर्जा दिए जाने की भी कोई सार्थकता नहीं हो पायी क्योंकि उसे लागू करने की कार्रवाई में शिथिलता दिखायी गयी और नये उर्दू अनुवादकों की बहाली नहीं की गयी। पूर्व की सरकार ने निर्णय किया था कि अल्पसंख्यक महाविद्यालयों के कर्मचारियों को सरकारी महाविद्यालयों के कर्मचारियों के समान सुविधाएं दी जायेंगी और उन्हें पेंशन तथा अन्य सेवा-निवृत्ति लाभ उपलब्ध कराये जायेंगे किन्तु इन बातों को बिल्कुल भुला दिया गया।

अल्पसंख्यकों के केवल तीन महाविद्यालय थे जिनमें से एक था गया का मिर्जा गालिब महाविद्यालय। किन्तु राजद सरकार ने इन तीनों महाविद्यालयों की समस्याएं दूर करने के उपाय नहीं किए तो उससे क्या ज्यादा उम्मीदें रखी जा सकती हैं? राज्य अल्पसंख्यक वित्त निगम दम तोड़ रहा है और उसे बचाने का कोई प्रयास नहीं हो रहा है। इस बात का गम है कि इस निगम को 15 करोड़ रुपयों की आरंभिक पूंजी देकर बहुत भरोसे के साथ खड़ा किया था पर राजद सरकार ने उसे कामयाब नहीं होने दिया।

सरकार अल्पसंख्यकों के लिए घड़ियाली आँसू बहा रही है। प्रमाण स्पष्ट हैं-

(1)मौलाना मजहरूल हक अरबी फारसी विश्वविद्यालय 1986 ई० के उद्घाटन के बाद आज तक हवा में तैर रहा है।

(2)15 हजार प्राथमिक उर्दू शिक्षकों की बहाली की घोषणा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

(3)बार-बार सरकारी घोषणा के बावजूद हर थाना में उर्दू जानकार दारोगा की बहाली अधर में है।

(4)छोटे-छोटे दैनिक, साप्ताहिक उर्दू समाचार पत्रों का विज्ञापन बंद कर दिया गया जिससे हजारों कर्मचारी भूखे मर रहे हैं।

(5)बिहार विधान परिषद की राजभाषा समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट ''उर्दू भाषा की प्रगति के लिए प्रौद्योगिक प्राथमिकताएँ'' 1995 में प्रस्तुत की गयी। वह भी राज्य सरकार के ठंडे बस्ते की नजर हो गया।

(6)उर्दू अकादमी का 10 लाख का अनुदान 15-15 माह के बाद मिलता है। जिससे उर्दू

---

14 सितम्बर, 2002

का कोई विकास नहीं हो रहा है। उर्दू अकादमी की किसी भी बैठक में मुख्यमंत्री उपस्थित नहीं हुए, जबकि मुख्यमंत्री उर्दू अकादमी के अध्यक्ष होते हैं।

(7) गवर्नमेंट उर्दू लाइब्रेरी का अनुदान कई वर्षों से बंद है।

(8) हाई स्कूल के खाली उर्दू इकाई पर वर्षों से बहाली नहीं हो रही है। अब तक राज्य में 543 खाली उर्दू यूनिट हैं।

(9) बिहार राज्य अल्पसंख्यक वित्त निगम में राज्य सरकार ने 7 वर्षों से अपना हिस्सा नहीं दिया है। बिहार राज्य में अभी भी जो कर्ज मिल रहा है वह केन्द्रीय अल्पसंख्यक वित्त निगम की ओर से मिल रहा है।

(10) उर्दू परामर्शछात्री समिति का गठन कई वर्षों से नहीं हुआ है।

(11) उर्दू निदेशालय का बजट सिर्फ दिखावा मात्र है।

(12) मदरसों और अल्पसंख्यक विद्यालयों के शिक्षकों को सरकारी स्कूल के बराबर का दर्जा मंत्री परिषद की बैठक में पास हुआ मगर उसे इस सरकार ने रद्दी की टोकरी में डाल दिया।

(13) इमामगंज और डुमरिया के मासूम मुसलमानों को आज तक मुआवजा नहीं मिला।

(14) सी०बी०एस०ई० पाठ्यक्रम में उर्दू को अनिवार्य विषय के तौर पर शामिल नहीं किया जा रहा है।

(15) आम विद्यालयों के शिक्षकों को बिहार में 151 प्रतिशत डी० ए० मिलता है जबकि अल्पसंख्यक विद्यालयों और मदरसों को सिर्फ 70 प्रतिशत की भीख दी जाती है और यह भी दो-दो साल नहीं दी जाती है।

(16) बिहार स्कूल सर्विस कमीशन के द्वारा राज्य के हाई स्कूलों में उर्दू शिक्षकों की बहाली के लिए चयनित 398 उम्मीदवारों की सूची पर शिक्षा विभाग की रोक।

(17) अल्पसंख्यक आयोग का गठन भी संविधान के अनुरूप नहीं।

(18) बी०पी०एस०सी० में एक भी अल्पसंख्यक सदस्य नहीं हैं।

❖❖❖

अल्पसंख्यकों की दशा[1]

मानव संसाधन विकास की दिशा में वास्तविक उपलब्धि तभी संभव हो सकती है जब विकास की किरणें दलित, जनजाति, अति पिछड़े और अल्पसंख्यकों के आंगन में फैले। इस दिशा में अब तक किया गया प्रयास अपर्याप्त लगता है। हरिजन, आदिवासी और पिछड़ों को कुछ हद तक संवैधानिक सुरक्षा प्राप्त है किन्तु, अति पिछड़ों और अल्पसंख्यकों के लिए भी अलग से सरकारी सुरक्षा की आवश्यकता है। सभी दृष्टिकोण से अति पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक और पिछड़े अल्पसंख्यक आज समाज का सबसे असहाय अंग बने हुये हैं। उनका सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक विकास अपेक्षित स्तर तक नहीं हो पाया है।

अल्पसंख्यक और पिछड़े अल्पसंख्यकों की दशा-अवस्था की एक झांकी गोपाल सिंह माइनॉरिटि रिपोर्ट, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण एवं कार्यान्वयन की 43वीं रिपोर्ट और नयी शिक्षा नीति 1996 की रिपोर्ट में दिये गये विवरणों से मिलती है। इन रिपोर्टों के आधार पर अल्पसंख्यकों के मामले में फैली विषमताओं को मिटाने को प्राथमिकता देते हुए राज्य सरकार:- (1) विकास योजना राशि का 20 प्रतिशत पिछड़े अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षित करे, (2) ग्रामीण अल्पसंख्यकों को रोजगार चलाने में जो कठिनाइयाँ आती हैं उनका सर्वेक्षण कराकर निदान किया जाए, (3) बिहार में मदरसा, उर्दू स्कूल के शिक्षकों को सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों के समान वेतन-भत्ते की सुविधा और नियमित भुगतान सुनिश्चित किया जाए, (4) राज्य के पुलिस बल में अल्पसंख्यकों की समुचित मात्रा में बहाली की जाए, (5) दंगा विरोधी पुलिस जत्था सृजित कर उसमें भी उनकी नियुक्ति का प्रावधान किया जाए, (6) कब्रगाहों की घेराबंदी सख्ती से की जाए, (7) प्रधानमंत्री के पन्द्रह सूत्री कार्यक्रमों का कारगर ढंग से कार्यान्वयन हेतु निकाय का गठन किया जाए, (8) शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े मुसलमानों की आबादी वाले क्षेत्र में सघन कार्यक्रम चलाया जाए, (9) मुसलमान की घनी आबादी वाले क्षेत्र में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा को आधुनिक बनाया जाए, (10) अल्पसंख्यक वित्त एवं विकास निगम को अधिक पूंजी दिलाकर उनसे अल्पसंख्यकों को ज्यादा लाभ दिलाने के उपाय किए जाएं, (11) रेलवे, बैंक और लोक उपक्रमों में बहाली की परीक्षा के लिए अल्पसंख्यकों के प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की जाए, (12) समेकित ग्रामीण विकास योजना, रोजगार योजना, प्रधानमंत्री रोजगार योजना को अमल में लाते समय मुसलमान आवेदकों पर ध्यान दिया जाए, (13) विभिन्न कोटि की नियुक्तियों के लिए गठित चयन बोर्ड और पैनेलों के हर स्तर पर मुसलमानों को प्रतिनिधित्व दिलाने के उपाय किये जाएं, (14) राज्य के मान्यता प्राप्त गैर सरकारी अल्पसंख्यक प्राथमिक/मध्य/माध्यमिक विद्यालयों, प्रस्वीकृत संस्कृत विद्यालयों एवं प्रस्वीकृत मदरसों के शिक्षक/शिक्षकेत्तर कर्मचारियों को सरकारी शिक्षक शिक्षकेत्तर कर्मचारियों की तरह वेतन, भत्ता एवं अन्य वित्तीय सुविधायें प्रदान की जाएं, (15)

1 6 मार्च, 2003

कब्रगाह के लिए प्रत्येक विधायक एवं सांसद अपने स्थानीय विकास कोष से प्रत्येक प्रखंड को प्रतिवर्ष 5 लाख रु० आबंटित करे, (16) उर्दू अकादमी को एक करोड़ अनुदान प्रतिवर्ष भुगतान किया जाए, (17) राज्य के सभी प्रखंडों में उर्दू अनुवादक की बहाली एवं एक-एक टाइपराइटर की व्यवस्था की जाए, (18) सरकारी सेवा में अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की जाए, क्योंकि संविधान समीक्षा आयोग ने अल्पसंख्यकों के लिए सरकारी सेवा में आरक्षण संवैधानिक करार दिया है, (19) मौलाना मजहरूल हक अरबी फारसी विश्वविद्यालय को अन्य विश्वविद्यालय की भांति संचालित एवं प्रबंधन किया जाए, (20) वक्फबोर्ड को प्रतिवर्ष एक करोड़ राशि का भुगतान उसके समुचित संचालन के लिए किया जाए, (21) भागलपुर दंगा से प्रभावित 250 परिवार एवं उग्रवाद से प्रभावित गया जिले के अल्पसंख्यकों को प्रत्येक मौत के लिए एक-एक लाख रु० का शीघ्र भुगतान किया जाए एवं (22) उर्दू विकास निदेशालय को प्रभावकारी किया जाए।

❖❖❖

दलित मुसलमानों को सुविधा[1]

हर सामाजिक चिन्तक को इस बात के लिए अफसोस होता है कि पिछले 56 वर्षों में मुसलमानों की आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की स्थिति बहुत ही दयनीय बनी हुई है। मुसलमानों की हालत अल्प विकसित दलितों और आदिवासियों से भी गई–गुजरी है।

भारत के अधिकतर मुसलमान वे हैं जो स्थानीय हिन्दुओं से मजहब बदलकर मुसलमान बने हैं। ऐसे मजहब बदलने वाले अधिकतर लोग दलित और आदिवासी वर्ग के ही थे जिन्हें सामाजिक असमानता और शोषण का शिकार बनना पड़ा था।

लेकिन उनके मजहब बदलने के बाद भी कोई ऐसा सामाजिक सुधार का काम नही किया जा सका, जिसके चलते उनकी आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक स्थिति पहले जैसे ही बनी हुई है, हालाँकि मुसलमानों ने भी इस देश पर 700–800 वर्षों तक शासन चलाया।

1935 ई० में जब भारत का संविधान बनाया जा रहा था, तब देश के दलितों को उपर उठाने की क्रान्तिकारी कारवाई पर गंभीरता से विचार किया जा रहा था और उसमें उन लोगों को खासतौर पर तरजीह देने की बात सोची जा रही थी जो समाज में सबसे अधिक उपेक्षित माने जाते थे। इस बात को ध्यान में रखते हुए ऐसे वर्गों को अनुच्छेद 341 के अंतर्गत अनुसूचित जाति (अभी दलित) घोषित किया गया और उनके लिए मुफ्त आवास, मुफ्त आरंभिक शिक्षा, आर्थिक समर्थन तथा सरकारी सेवा में आरक्षण की व्यवस्था की गई। इतना ही नहीं ऐसे लोगों के लिए अलग थाना, अलग न्यायालय और राजनीतिक स्तर पर आरक्षण आदि की सुविधाएँ भी दी गई, ताकि उनका समग्र विकास हो सके। शुरू में सभी मजहब के दलितों को ये सुविधाएँ प्राप्त हो रही थीं, किन्तु 1950 ई० में आकर जब संविधान का अंतिम रूप कायम हुआ तब मजहबी बंधन इस अनुच्छेद में लगाये गये और इसके लिए जो आदेश राष्ट्रपति के स्तर से निर्गत हुआ उसमें बताया गया कि अनुसूचित जाति का सदस्य होने के लिए यह आवश्यक होगा कि वह हिन्दू धर्म को मानने वाला अवश्य हो। इस स्थिति में अन्य मजहब के दलितों को उन सुविधाओं से वंचित कर दिया गया जो उनके लिए बहुत ही जरूरी थी। आज जो मुसलमान पिछड़े और दलित की हालत में उन दलितों से पीछे पड़ रहे हैं जो हिन्दू धर्म के मानने वाले हैं, उसका मूल कारण यही है। इसका कारण जो भी हो और इस सब के लिए जो भी दोषी हो इतना तो अवश्य है कि मुसलमानों के साथ 1950 ई० से ही नाइंसाफी बरती जा रही है।

भारत धर्मनिरपेक्ष देश है और अनुच्छेद 15 (1) यह भरोसा दिलाता है कि राज्य द्वारा किसी भी नागरिक के प्रति धर्म, जाति, वंश, लिंग और जन्म स्थान के नाम पर कोई भेदभाव

1 26 नवम्बर, 2004

नहीं किया जाएगा। किन्तु इस तरह के प्रावधान के होते हुए भी अनुच्छेद 341 में साफतौर पर भेदभाव किया गया है, जो अत्यन्त ही दुखद बात है। यह सचमुच ही दुख के साथ कहना पड़ता है कि मुसलमानों में धोबी, नट-बक्खो, बंजारा, हलखोर, लालबेगी, भाँट, जोगी, फक़ीर, पासी, मोची, खटिक, जोलहा, लहेरी, पमरिया आदि मुस्लिम समाज के ऐसे सामाजिक समुदाय हैं जो शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के मामले में उसी स्तर के हैं जिस स्तर के हिन्दू समाज के समान ढंग के काम करने वाले लोग होते हैं और उनके सर्वांगिण विकास के लिए उन्हें भी वैसी ही सुविधाएँ मिलनी चाहिए, जो समानान्तर हिन्दू समुदाय को प्राप्त हैं। ऐसा नहीं होने पर वे लोग महज बीड़ी बनाने वाले, रिक्शा खींचने वाले, होटल में नौकर, मजदूर, भंगी, बुनकर, दर्जी, ताड़ी बिक्रेता और घुमक्कड़ के रूप में भटकते रहेंगे तथा उनमें गरीबी और निरक्षरता क्रमशः बढ़ती ही जाएगी।

इसके बारे में अनुच्छेद 341 की कंडिका 4 में यह बताया गया है कि जब कोई मुसलमान बना हुआ हिन्दू फिर हिन्दुत्व को स्वीकार कर ले तो उसे अनुसूचित जाति के सदस्य की हैसियत पुनः प्राप्त हो जाएगी। यह कंडिका तो मजहबी आजादी के अधिकार (अनुच्छेद 25) के बिल्कुल विरुद्ध है। जो भी हो दलित मुसलमान भी भारतीय ही है। यह समस्या केवल मुसलमान समाज के लिए नहीं है। सभी भारतीयों को इस पर सोचना चाहिए कि समान कोटि के लोगों के साथ मजहब के नाम पर भेदभाव क्यों किया जा रहा है?

1950 के राष्ट्रपति के आदेश में एक और संशोधन किया जाए। दो संशोधन तो पहले ही किये जा चुके हैं जिनके द्वारा सिखों को (1956 में) और बौद्धों को (1990 में) उसमें जोड़ा गया था और उसके आधार पर अभी सिख एवं बौद्ध हिन्दुओं के समान ही आरक्षण का लाभ उठा रहे हैं। केवल मुसलमान और ईसाई को ही छोड़ दिया गया है। अतः मुसलमानों को भी राष्ट्रपति के उस आदेश में सम्मिलित कर लिया जाए, ताकि उन्हें भी अनुसूचित जाति की सुविधाएँ प्राप्त हो सके।

❖❖❖

अल्पसंख्यकों के लिए योजनाएँ[1]

सेन्टर फॉर इक्विटी स्टडीज और सेंटर फॉर बजट एंड गवर्नमेंट एकाउंटेविलिटी ने अपने एक सर्वे में कहा है कि अल्पसंख्यकों के लिए लायी गयी तमाम योजनाएं पूरी तरह से फेल हो चुकी हैं। जिन योजनाओं की बुनियाद पर केन्द्र सरकार ने अल्पसंख्यकों का विकास कर उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने की बात कही थी, उसमें वे आज पूरी तरह से नाकाम हो चुकी है। अल्पसंख्यक मामलों में मंत्रालय के अंदर दृढ़ इच्छाशक्ति की कमी के कारण अल्पसंख्यकों से संबंधित सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मसलों को हल नहीं किया जा सका। 2006 में गठित इस मंत्रालय को कई सालों से ज्यादा हो गये हैं, लेकिन अब भी उसके कामकाज में कोई बदलाव नजर नहीं आ रहा है। अल्पसंख्यकों के लिए आबंटित फंड में से सीमित फंड का खर्च भी सरकारी विभागों ने नहीं किया। यही कारण है कि अल्पसंख्यकों को सरकार की योजनाओं का कोई लाभ नहीं मिला। अगर सभी राज्यों में इस फंड को सही तरीके से खर्च किया जाता, तो अल्पसंख्यकों की तस्वीर कुछ और ही होती। अल्पसंख्यकों के लिए बनाये गये 15 सूत्रीय कार्यक्रमों का कार्यक्षेत्र बहुत सीमित रहा है, जिससे समावेशी विकास का लक्ष्य भी बहुत सीमित हो गया है। सर्व शिक्षा अभियान और समेकित बाल विकास जैसे विकासोन्मुखी कार्यक्रमों को 15 सूत्रीय कार्यक्रमों में शामिल नहीं किया गया है, जिससे अल्पसंख्यकों के बच्चों की शिक्षा के स्तर में कोई वृद्धि नहीं हो सकी। राज्य सरकारों की अल्पसंख्यक कल्याण योजनाओं की क्षमता बहुत कम है। इसके क्रियान्वयन में बहुत कमियां हैं, जिससे कि विकास कार्यक्रम बाधित होते रहे हैं।

वर्तमान में अगर आंकड़ों पर नजर डालें, तो हम पायेंगे कि दलितों की विकास दर मुसलमानों से कहीं बेहतर है। दलितों में बदलाव की दर 5 प्रतिशत है, जबकि मुसलमानों में यह दर 1 प्रतिशत से भी नीचे महज 0.6 प्रतिशत है। नीतिगत कदमों से मुस्लिमों की कठिनाइयों को आवश्यक रूप से दूर किया जाए। इन्हें उन सभी योजनाओं में सम्मिलित करने हेतु प्राथमिकता दी जाए जिन योजनाओं का उद्देश्य आम नागरिकों के लिये अवसरों का विस्तार करना है- चाहे वह शिक्षा-क्षेत्र हो, रोजगार-क्षेत्र हो या अन्य। जस्टिस सच्चर ने अपनी रिपोर्ट नवम्बर, 2006 में सरकार को सौंपी थी, लेकिन अभी तक उनकी सिफारिशों पर कोई कार्यात्मक प्रतिक्रिया नहीं दी गयी। सच्चर कमिटी ने कहा है कि भारत में तमाम विकासोन्मुख योजनाओं के बावजूद भी मुसलमानों के विकास की दर बहुत धीमी थी, वहीं दूसरे अल्पसंख्यक समुदायों की वृद्धि दर मुसलमानों की अपेक्षा बहुत अधिक थी। सच्चर की रिपोर्ट को कई साल से ज्यादा होने को आये, लेकिन आज तक सरकार ने कुछ भी नहीं किया है।

❖❖❖

1 27 अप्रैल,2012

मुसलमानों के लिए आरक्षण[1]

आरक्षण की व्यवस्था पूरे विश्व में केवल भारत में है। यहाँ संविधान में यह व्यवस्था की गयी थी कि यदि कोई समुदाय या जाति विकास में पिछड़ जाता है तो उसे आरक्षण देकर सबके बराबर खड़ा किया जायेगा। यहाँ के हिन्दू दलित समुदाय व पिछड़े वर्गों को इसी आधार पर आरक्षण दिया गया। लेकिन, जो दलित व पिछड़ा अपना धर्म बदलकर मुसलमान हो गया उसे आरक्षण नहीं मिलेगा। मंडल कमीशन रिपोर्ट को जब लागू किया गया तब यह मांग उठी थी कि इसमें मुसलमानों को भी आरक्षण दिया जाए, लेकिन तब कह दिया गया कि पिछड़े वर्ग आरक्षण में वे मुस्लिम जातियाँ भी शामिल हैं जो पिछड़े वर्ग में आती हैं। कोई फायदा मुसलमानों को हासिल नहीं हुआ, क्योंकि असल वजह थी सरकारी मशीनरी में मुसलमानों के प्रति उदासीनता। इस उदासीनता की वजह से मुसलमानों को उनकी वाजिब हिस्सेदारी नहीं मिल पायी। सच्चर एवं रंगनाथ मिश्र आयोग ने मुसलमानों का प्रतिनिधित्व सरकारी सेवा में उनकी आबादी का 4 प्रतिशत से अधिक नहीं होने पर विस्मय प्रकट करते हुए उनके लिए पिछड़े वर्गों की तरह सरकारी सेवाओं में आरक्षण की अनुशंसा की है। राजनीति से ऊपर उठकर मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं नियोजनपरक बढ़त हेतु विशेष प्रयत्न करना होगा। अभी मुसलमान अपने को राष्ट्र की मुख्यधारा से अलग-थलग समझते हैं।

जस्टिस सच्चर की रिपोर्ट आने के बाद यह बात साबित हो गयी कि मुसलमानों के हालात दलितों से बदतर हैं और रंगनाथ मिश्र आयोग ने बाकायदा मुसलमानों को आरक्षण देने की सिफारिश कर दी। इसके पीछे भी यही तर्क था कि आरक्षण समाज में पिछड़ जाने वाले तबके को सबके बराबर खड़ा करने के लिए है इसलिए मुसलमानों के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था करनी चाहिये।

सचमुच किसी भी समाज के विकसित होने का एक अनिवार्य मापदंड समान अवसर का अधिकार होता है। समान अधिकार का तात्पर्य जीवन के सभी क्षेत्रों, शिक्षा, रोजगार, कला, संस्कृति और राजनीति में नागरिकों के साथ जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा और लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं होने को सुनिश्चित करना होता है। लेकिन बड़ी चतुराई से यहाँ मुसलमानों को भी जातिगत आधार पर तोड़ दिया गया है। इसमें कुछ मुसलमान नेता ही आगे-आगे रहे जिन्हें मुसलमानों को जातिगत आधार पर तोड़ने से अपनी राजनीति को मदद मिल रही है।

मुसलमानों की एकता को खंडित करने का जो प्रयास किया गया है, उसका नतीजा यह हुआ कि पिछड़े वर्ग से ताल्लुक रखने वाले मुसलमान नेताओं ने अलग से पिछड़े वर्ग के आरक्षण में ही मुसलमानों को आरक्षण दिये जाने की मांग रख दी। इससे मुसलमानों का आरक्षण मुद्दा

---

1 3 जून, 2013

कमजोर पड़ गया है।

आरक्षण रोजी रोटी से जुड़ा मसला है और हर हालत में मुसलमानों को आरक्षण मिलना चाहिये। यह विस्मयकारी है कि सरकारें अल्पसंख्यकों के नाम पर आरक्षण देती भी हैं तो अदालत इस पर रोक लगा देती है। इसकी वजह यही है कि सरकार अदालत में यह नहीं समझा पाती है कि अल्पसंख्यकों की हालत खराब है, क्योंकि अल्पसंख्यक समुदाय में सिख, जैन, पारसी, इसाई आदि भी शामिल हैं जो आर्थिक रूप से पिछड़े हुए नहीं हैं इसलिए अदालत अल्पसंख्यक आरक्षण को गैर संवैधानिक कहकर खत्म कर देती है। यदि सरकार मुसलमानों के नाम पर आरक्षण दे तो अदालत में यह साबित करना आसान हो जायेगा कि मुसलमानों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है और इन्हें आरक्षण दिया जाना न्यायोचित है। सच्चर आयोग व रंगनाथ मिश्र आयोग अपनी रिपोर्ट में यह बात कह चुके हैं। इसी आधार पर केरल, कर्नाटक व तमिलनाडु मुसलमानों को आरक्षण देने में सफल रहे।

यदि मुसलमानों को आरक्षण और अन्य सुविधाएं देकर साथ नहीं लगाया गया तो शायद स्थिति और भयावह हो जाए। अब समाधान यही है कि पूरा मुस्लिम समुदाय और धर्मनिरपेक्ष विधारधारा के दल और लोग साथ मिलकर सरकार पर दबाव बनाये और संसद में संशोधन के माध्यम से ही इसका हल निकलवाये।

❖❖❖

अल्पसंख्यक समूह की अनदेखी[1]

आज भी 52 प्रतिशत से अधिक मुसलमान गरीबी रेखा से नीचे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हैण्ड्जू और एजुकेशन द्वारा एकत्रित किए गए सर्वेक्षण के अनुसार मात्र 29 प्रतिशत मुस्लिम महिलाएँ ही शिक्षित है। केवल 4 प्रतिशत मुसलमान हाई स्कूल कर पाते हैं। विश्वविद्यालय स्तर पर तो दुर्दशा देखते ही बनती है। प्राथमिक पाठशाला के प्रत्येक 100 छात्रों में से केवल 1.6 प्रतिशत ही स्नातक की डिग्री प्राप्त कर पाते हैं। इसी प्रकार से केवल 4.4 प्रतिशत मुसलमान सरकारी नौकरियों में है। मात्र 3.7 से 5 प्रतिशत ही सरकार से अपना कोई कार्य शुरू करने के लिए मदद पाते हैं। यह सूची बहुत दयनीय है।

देश में समय-समय पर गृह मंत्रालय, योजना आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग द्वारा उच्च अधिकार प्राप्त कमिटी से जाँच कराये जाने के बाद मिली रिपोर्टों से अल्पसंख्यकों के बारे में चिन्ताजनक स्थिति बतायी गयी है और कुछ क्षेत्रों में उन्हें बहुत ही पिछड़ा माना गया है। पिछले 65 वर्षों में मर्दों की साक्षरता में 3 गुणा और औरतों की साक्षरता में पाँच गुणा बढ़ोतरी हुई है लेकिन अल्पसंख्यक राष्ट्रीय औसत से 10 प्रतिशत पीछे बताये गये हैं। औरतों के मामले में तो यह कमी ज्यादा हैं। स्कूलों में नाम लिखाने वाले बच्चों का औसत अभी 62 फीसदी हो पाया है जो दूसरे समुदाय से 16 फीसदी कम है। गरीबी के कारण प्राइमरी स्कूलों या सेकेंडरी स्कूलों में दाखिला लेनेवाले बच्चों में से लगभग 40 फीसदी पढ़ना छोड़ देते हैं। बच्चों के गार्जियन भी उनकी पढ़ाई पर जोर नहीं देते क्योंकि वे मानते हैं कि उनके लिए नौकरी पाने की अच्छी संभावना नहीं है, इसलिए उन्हें जो भी काम मिल जाता है उसी में वे पढ़ना-लिखना छोड़कर लग जाते हैं। स्व-रोजगार के लिए उन्हें बैंक से ऋण कम ही मिलता है।

जहाँ तक शहरों की बात है तो अधिसंख्यक मुसलमान झुग्गी-झोपड़ियों में रहते हैं, जहाँ बुनियादी सुविधाओं तक का सर्वथा अभाव है, जो अपेक्षाकृत संपन्न हैं, वे भी 'घेरो' में रहते हैं। लोकतंत्र मूल रुप से एक अनुपातिक प्रतिनिधिक शासन व्यवस्था है। समाज में विभिन्न तबकों की जनसंख्या के लिहाज से जीवन के हर क्षेत्र में उनका प्रतिनिधित्व लोकतंत्र की मांग है। लोकतंत्र एक प्रतिनिधिक व्यवस्था के साथ-साथ आम सहमति पर आधारित व्यवस्था भी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आम सहमति वास्तव में तभी कायम हो सकती है, जब समाज के सभी तबकों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाए। लोकतंत्र में वास्तविक प्रतिनिधित्व से ज्यादा महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रतिनिधित्व होता है।

80 के दशक की सरकार में अल्पसंख्यकों के आर्थिक, शैक्षणिक और सामाजिक उन्नयन के लिये जितने भी निर्णय हुए और वे सभी तत्परता से कार्यान्वित किये गये। उन सभी निर्णयों को पिछले दशकों की सरकारों ने ठंडे बस्ते में डाल दिया है। उदाहरण स्वरूप 1980 में उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा दिया गया। सभी प्रखण्डों में उर्दू अनुवादक एवं उर्दू टाइपिस्ट की नियुक्तियाँ हुई। उर्दू टाईपराइटर खरीदे गये। मुख्यालय में राजभाषा विभाग में उर्दू द्वितीय राजभाषा

1 14 अक्टूबर, 2015

के लिये अलग से निदेशालय स्थापित किये गये। परन्तु यह अत्यंत विस्मयकारी और दुखद है कि नये अनुवादक और टाइपिस्ट की नियुक्तियाँ नहीं हुई। यहाँ तक कि सेवानिवृत्त हुए कर्मचारियों की जगह भी नियुक्तियाँ नहीं हुई। राजभाषा के उर्दू निदेशालय में पूर्णकालिक निदेशक नहीं रहे। उर्दू अकादमी का निदेशक को प्रभार दिया गया है। इन वर्षों में नये जिले प्रखण्ड सृजित हुए किन्तु उनमें उर्दू अनुवादक और उर्दू टाईपिस्ट पदों का सृजन नहीं हुआ। राज्य के 1127 मदरसों का पूर्ण वित्तीय भार राज्य सरकार ने दिसम्बर, 1980 एवं फरवरी, 1980 के निर्णय के अंतर्गत लिया। यह भी आदेश हुआ कि वहाँ के शिक्षकों को सरकारी कर्मचारियों की तरह वेतनमान, भत्ता एवं अन्य सुविधाएं उपलब्ध करायी गयी। यह भी निर्णय हुआ कि भविष्य में जब भी सरकारी कर्मचारियों के वेतनमान एवं भत्तों में संशोधन होगा तो वह स्वत: मदरसों के शिक्षकों को भी उपलब्ध होगा। परन्तु पिछले 25 वर्षों में मदरसों की कठिनाइयाँ एवं विसंगतियाँ इस संबंध में लगातार बनी रही हैं।

2003 में केन्द्र की भाजपा सरकार ने प्रत्येक मदरसे के लिये तीन नये शिक्षक के पद–गणित, विज्ञान और भूगोल के लिए स्वीकृत किये जिसका वेतन का पूर्ण वित्तीय भार केन्द्र सरकार ने वहन करने का निर्णय लिया। किन्तु 2003 के बाद 1127 मदरसों में केवल ऐसे 80 शिक्षकों की नियुक्तियाँ हुई। उनका वेतन भुगतान भी केन्द्र सरकार से बिहार सरकार नहीं करा सकी। मदरसों में विज्ञान एवं कम्प्यूटर के लिये 50 लाख रुपये प्रत्येक मदरसे की आन्तरिक अधिसंरचना हेतु स्वीकृति हुई उसके बावजूद भी बिहार सरकार वह राशि प्राप्त नहीं करा सकी।

80 के दशक में ही मदरसे की डिग्री एवं डिप्लोमा को विश्वविद्यालय की डिग्री और डिप्लोमा की समकक्षता दी गयी। बिहार लोक सेवा आयोग के अधीन नियुक्ति की परीक्षाओं में मदरसा डिग्री को समकक्षता दी गयी। 89 के अंत में 2995 मदरसों को मान्यता मेरी सरकार ने दी थी। लेकिन बाद की सरकारों ने इन 2995 मदरसों को मान्यता नहीं दी।

मदरसों का आधुनिकीकरण समय का तकाजा है, क्योंकि वहाँ केवल मुसलमानों के गरीब बच्चे पढ़ते हैं। 90 के पहले की सरकार के निर्णय के आलोक में भी बिहार में इन 25 वर्षों में मदरसों का आधुनिकीकरण नहीं हुआ है। यह सच्चाई है कि मदरसों में गरीब बच्चे पढ़ते हैं और सुखी सम्पन्न बच्चे आधुनिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। सिर्फ गरीब मुसलमान ही मदरसा की शिक्षा लेते हैं।

विश्वविद्यालय महाविद्यालय में उर्दू एवं परसियन शिक्षकों की नियुक्ति अनिवार्य की गयी। माध्यमिक विद्यालय की मान्यता के लिये उर्दू शिक्षकों की नियुक्ति अनिवार्य की गयी। 80 के दशक तक उर्दू के अतिरिक्त अन्य विषय की किताबें बिहार टेक्स्ट बुक कॉरपोरेशन की ओर से छपाई जाती थी। 90 के बाद बिहार टेक्स्ट बुक कॉरपोरेशन ने छपाई को बंद कर दिया। 80 के दशक में उर्दू अकादमी को वार्षिक 1 करोड़ रूपया अनुदान दिया गया। इस राशि में कोई वृद्धि नहीं हुई है। कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय के तर्ज पर पटना में मौलाना मजहरूल हक अरबी–फारसी विश्वविद्यालय की स्थापना मेरी सरकार ने की। उस विश्वविद्यालय के साथ स्थापित अन्य विश्वविद्यालयों को जमीन, मकान एवं अन्य सुविधा दी गयी, परन्तु इस विश्वविद्यालय को अभी तक विश्वविद्यालय का स्वरूप नहीं मिल पाया है।

❖❖❖

अल्पसंख्यक समुदाय संवैधानिक अधिकारों से वंचित[1]

केन्द्र एवं राज्य की सभी सरकारों ने अल्पसंख्यक समुदाय के पिछड़ेपन को बढ़ाने में अपनी भूमिका निभायी है। राजनीतिक दलों ने उन्हें अपने वोट बैंक के रूप में तो इस्तेमाल किया लेकिन उनके कल्याण के बजाय शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से उनकी कमर तोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मुसलमानों ने जिन दलों को अपने वोटों से सत्ता तक पहुँचाया उन्होंने भी केवल सांत्वना देने और हरे उद्यान दिखाने के अलावा कुछ नहीं किया। वे जीवन के हर क्षेत्र में पीछे होते चले गये, यहाँ तक कि उनकी स्थिति अनुसूचित जातियों और जनजातियों से भी बदतर हो गयी।

देश के अल्पसंख्यक विशेषकर मुसलमानों के संबंध में सच्चर कमिटी की रिपोर्ट एक ऐसा आईना है जिसमें हर व्यक्ति अपनी तस्वीर साफ देख सकता है। इस रिपोर्ट ने साबित कर दिया कि देश की एक बड़ी आबादी अपने ही देश में कैसे सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक रूप से हाशिये पर पहुँचा दी गयी। सच्चर कमिटी ने दुखती रग पर हाथ रखा है उसमें विभिन्न राज्यों के बारे में जो आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं उनके हिसाब से देश में कई राज्यों में मुसलमान अनुसूचित जाति एवं जनजाति के मासिक आय-व्यय के मुकाबले नीचे हैं।

जहाँ तक सरकारी नौकरी का सवाल है, सच्चर कमिटी की रिपोर्ट आंखें खोलने वाली है। मुसलमानों की पं॰ बंगाल में आबादी 25.7 प्रतिशत है। नौकरियों मे उनका हिस्सा 4.2 प्रतिशत है। केरल में 24.7 प्रतिशत की आबादी में उनका हिस्सा 10.4 प्रतिशत है। असम में 13.9 प्रतिशत की आबादी में 1.2 प्रतिशत है। बिहार में 16.5 प्रतिशत आबादी में 4.4 प्रतिशत है। कमोबेश यही आंकड़े अन्य राज्यों के हैं। जहाँ तक शिक्षा स्तर में उनकी भागीदारी कम होने का सवाल है, इस तथ्य को एक सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता कि गरीबी के कारण उनके बच्चे आधुनिक शिक्षा और तकनीकी शिक्षा से वंचित हैं। उन्हें जीविका के कारण मदरसों में भेजा जाता है। सच्चर ने मदरसों को आधुनिक शिक्षा के लिये सुधार की जरूरत पर जोर दिया है। इसमें कोई शक नहीं कि शहर की मुसलमान-आबादी की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र के मुसलमान अधिक गरीब और पिछड़े हैं। बैंकों से कर्ज मिलने में परेशानी से ये स्वरोजगार में भी पिछड़ रहे हैं।

सच्चर एवं रंगनाथ समिति के बाद केन्द्र सरकार द्वारा गठित प्रो॰ अमिताभ कुण्डू समिति नाम की एक सरकारी समिति ने ही सामाजिक-आर्थिक (मुस्लिमों की) स्थिति का मूल्यांकन किया और परामर्श दिया कि नियोजकों को लक्षित कर भेदभाव विरोधी कानून बनाया जाए जिससे मुस्लिम समुदाय और देश के शेष वासियों के बीच बढ़ रहे अंतर का सामना किया जा सके। प्रतिवेदन (रपट) में कहा गया है कि मुस्लिम समुदाय के लिए अनेक चलायी जा रही

1 31 अक्टूबर, 2015

कल्याणकारी योजनाओं के बावजूद, उनमें कोई जमीनी बड़े परिवर्तन को सरकार लाने में असफल रही है। सच्चर की तरह ही इस कुण्डू समिति ने भी अपने अध्ययन की पूरी अवधि 2004–2005 से 2011–2012 तक की। बंगाल (पश्चिम) एवं बिहार की पहचान सबसे बुरे अभिकर्ता के रूप में की है। समिति के अनुसार इन राज्यों में मुस्लिमों का नियोजन में पीछे और व्यावहारिक शिक्षा में तलहटी में चलते रहना चालू है।

मुसलमानों के लिए रोजगार के अवसर नहीं के बराबर हैं और न उनके सामने कोई कारोबार या व्यापार चलाने का रास्ता दिखाई पड़ता है। इन सब कारणों से वे इतने पिछड़ चुके हैं कि जब तक उनके आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा संबंधी पिछड़ेपन को तुरंत दूर करने के उपाय काफी तेजी से नहीं किए जायेंगे तो वे देश की प्रगति में भागीदारी करने योग्य नहीं बन सकते हैं।

❖❖❖

मुसलमानों की समस्याओं में वृद्धि[1]

देश में मुस्लिम, अन्य धार्मिक समुदायों की तुलना में अधिक गरीब और निरक्षर है। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र की नौकरियों में उसकी संख्या कम है। इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि आबादी के लिहाज से हिन्दुओं के बाद मुसलमान दूसरे नम्बर पर हैं। उन्हें देश की मुख्यधारा में लाना बेहद जरूरी है। भारत में मुस्लिम आबादी 16 करोड़ के बीच आंकी गई है। यह हकीकत है कि इतनी बड़ी आबादी को नजरअंदाज कर कोई भी देश तरक्की नहीं कर सकता। सच्चर कमिटी ने इसी सवाल पर दुखती रग पर हाथ रखा है। उसने विभिन्न राज्यों के बारे में जो आंकड़े दिए हैं, उनके हिसाब से देश के अधिसंख्य राज्यों में मुसलमान अनुसूचित जाति/जनजाति के मासिक आय–व्यय के मुकाबले नीचे हैं। जहाँ तक सरकारी नौकरी का सवाल है, सच्चर कमिटी की रिपोर्ट आँख खोलने वाली है।

40 वर्ष पूर्व न कहीं मुस्लिम आतंकवाद था और न कहीं कट्टरपंथी या बहावी धारा का प्रभाव था और न मुस्लिम कौम उस प्रकार आंकी जाती थी। आज उसे बदनाम किया जा रहा है। एक समय था मुस्लिम समाज इसलिए नहीं जाना जाता था कि इस्लाम से जुड़ा हुआ था। पाँचों वक्त नमाज पढ़ता था, रोजे रखता था, दान करता था बल्कि इसलिए जाना जाता था क्योंकि समाज सेवा और दूसरे के कष्ट को स्वयं अपना कष्ट समझता था। उसके निवारण में लग जाता था। आज भी ऐसे मुसलमान हैं परन्तु उनकी पूछ नहीं है। आजादी के बाद जिस प्रकार से मुस्लिम समुदाय का ग्राफ तेजी से नीचे गिरा है वैसा पहले नही हुआ था। इस्लाम का अर्थ है– 'सबमिशन' अर्थात स्वंय को सौंप देना। सेवा होता है, शांति होता है मगर सामने वाला तो उसी पर विश्वास करेगा जो उसके आगे घटित होगा। हम जब भी चाहते हैं एक बेगुनाह की जान लेना तो वह वैसा ही है जैसा कि पूरे इंसानियत की जान लेना। सच्चाई यही है कि दया इस्लाम का मुख्य उसूल है। केवल मुसलमान का ही नहीं बल्कि पूरे आलम विश्व का, यानि वह हमारे रसूल हजरत रहमत तुरबीन आलमी है। लोग आज इसे केवल आज के परिदृश्य में जवानी जमा खर्च समझेंगे। आज बड़ी समस्या यह हो गयी है कि हजरत मोहम्मद को मानते हैं मगर उनकी बात नहीं मानते हैं।

भारतीय मुसलमानों का अपना एक शानदार इतिहास रहा है। उन्होंने न केवल धरती पर सदियों तक सरकार बल्कि न्याय और सहिष्णुता के बेहतरीन उदाहरण की भी स्थापना की। अंग्रेजों ने शासन मुसलमानों से छींनी तो स्वाभाविक रूप से वह मुसलमानों के दुश्मन बन गए और उन्हें ही विशेष रूप से निशाना बनाया। फिर जब देश के विभाजन की त्रासदी के साथ स्वतंत्रता का सूर्य उदय हुआ तो खुशहाल मुसलमानों का एक बड़ा तबका देश छोड़ने पर मजबूर हो गया। इस तरह आबादी का अनुपात घट गया और जो मुसलमान यहां रह गए वह विभिन्न परिस्थितियों का शिकार हो गये। रही सही कसर बाद की सरकारों ने पूरी कर दी। देश के संविधान में उन्हें जो

1 07 मार्च, 2017

अधिकार दिये गये हैं उन्हें उनसे वंचित रखा गया और दंगों के अंतहीन सिलसिले ने उन्हें उभरने और पनपने का मौका ही नहीं दिया। फिर राजनीतिक इस्तेमाल और खुद मिल्लत के नादान दोस्तों ने उन्हें भावनात्मक मुद्दों में इस तरह उलझाये रखा कि उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन करने का अवसर ही नसीब नहीं हुआ।

तथ्य यह है कि आजादी के बाद मुसलमानों की समस्याओं में वृद्धि ही होती गई। सभी सरकारों ने उनके पिछड़ेपन को बढ़ाने में अपनी भूमिका निभाई। राजनीतिक दलों ने उन्हें अपने वोट बैंक के रूप में तो इस्तेमाल किया लेकिन उनके कल्याण के बजाय शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से उनकी कमर तोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ीं मुसलमानों ने जिन दलों को अपने वोटों से सत्ता तक पहुंचाया उन्होंने भी केवल सांत्वना देने और हरे उद्यान बनाने के अलावा कुछ नहीं किया। उनके प्रति संवैधानिक दायित्व निभाना तो दूर एक सोची समझी साजिश के तहत लगातार असुरक्षा और मनोवैज्ञानिक दबाव में रखकर पिछड़े बनाने की कोशिश की गई कि वह जीवन के हर क्षेत्र में पीछे होते चले गये यहाँ तक कि उनकी स्थिति अनुसूचित जातियों और जनजातियों से भी बदतर हो गई। उनके अंदर महसूस हार ने इस तरह घर कर लिया कि वह अपनी और अपनी पीढ़ियों के भविष्य से निराश नजर आने लगे। गरीबी, अशिक्षा, गंदगी, बीमारी, बेरोजगारी, हीन भावना और निराशा मुसलमानों की पहचान बन गई।

आजादी के बाद से आज तक जिस तरह जानबूझकर मुसलमानों को उनके संवैधानिक अधिकारों से वंचित रखने की कोशिश की गई है उसमें उनका पिछड़ापन कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह एक तथ्य है जिससे सभी परिचित हैं। सच्चर कमिटी की रिपोर्ट आने से पहले भी मुसलमानों की स्थिति की समीक्षा के लिए समिति गठन की गई और उन्होंने भी मुसलमानों को पिछड़ा बताया। अलबत्ता सच्चर कमिटी ने बहुत बारीकी के साथ मुसलमानों की सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक स्थिति की समीक्षा की और आंकड़ों की रोशनी में उनकी सही स्थिति स्पष्ट कर दी। इससे एक ओर जहां मुसलमानों के वोट पर सत्ता हासिल करने वाली सरकारों की कलई खुल गई वहीं दूसरी ओर मुस्लिम समाज, इसके उलमा, मिली और सामाजिक संगठनों को भी अपने समय का पता चल गया। सच्चर कमिटी रिपोर्ट ने साबित कर दिया कि देश की एक बड़ी आबादी अपने ही देश मे कैसे सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक रूप से हाशिये पर पहुँचा दी गई। साथ ही कैसे न्याय और समानता से वंचित किया गया।

बिहार की स्थिति भी देश की सामान्य स्थिति से अलग नहीं है। सरकार और प्रशासन के स्तर पर बिहार के मुसलमानों के साथ ईमानदारी का सबूत पेश नहीं किया गया। सरकारें बदली लेकिन मुसलमानों के हालात नहीं बदले। सभी सरकारें और सभी राजनीतिक दल अपने वोट अपनी झोलियों में डालकर अपना पलड़ा भारी करती रहीं लेकिन रियायतें व हितों को केवल अपने लोगों के लिए सुरक्षित रखा। आज भी एक बड़ी आबादी ऐसी है जो साफ पानी, भोजन और शिक्षा से वंचित है तथा पशुओं से बदतर जीवन बीता रही है। आबादी साठ साल पहले जहां थी आज भी वहीं हैं राज्य के जिन जिलों में मुस्लिम जनसंख्या अधिक है वह जिले आर्थिक दृष्टि से भी पिछड़े हैं और वहां कोई औद्योगिक और वाणिज्यिक केन्द्र नहीं है, स्वास्थ्य केन्द्र या तो

नहीं है या बहुत कम है।

उर्दू राज्य के मुसलमानों की मातृभाषा है और राज्य की दूसरी अधिकारिक भाषा भी। लेकिन शिक्षा के लिए सह भाषाई सूत्र का पालन नहीं हो रहा है और अगर प्रक्रिया हो रही है तो गलत रूप में। शिक्षा के प्रारंभिक, माध्यमिक और उच्च तीनों स्तरों पर उर्दू शिक्षक बहुत कम है। इब्तदाई और माध्यमिक स्तर पर तो उर्दू शिक्षकों के स्थान पर अन्य विषयों के शिक्षक बहाल हैं। जहां कहीं भी उर्दू शिक्षक बहाल हैं भी तो वह उर्दू छात्रों को पढ़ाएं तो क्या पढ़ाए क्योंकि उर्दू की पाठ्य पुस्तकें न समय पर प्रकाशित होती है और न उपलब्ध हैं। सभी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में उर्दू शिक्षकों की सीटें खाली हैं या सिरे से हैं ही नहीं। सरकारी कार्यालयों में कहने को तो उर्दू अनुवादक बहाल हैं लेकिन उनसे अन्य कार्य लिए जाते हैं। अल्पसंख्यकों को न्याय दिलाने और मुख्यधारा में लाने की बात तो बड़े जोर-शोर से की जाती है लेकिन इसके लिए व्यावहारिक उपाय नहीं किये जाते हैं।

❖❖❖

एक हाथ में कुरान और दूसरे में कम्प्यूटर[1]

लोक सभा चुनाव अभियान में प्रधानमंत्री ने वायदा किया था कि मुसलमान लड़कों के एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में कम्प्यूटर रहेगा। देश में अल्पसंख्यकों की आबादी 16.6 फीसदी है। इसलिए यह सचमुच गौर करने की बात है कि आजादी के 70 साल बीतने के बाद भी आबादी के इतने बड़े हिस्से की भागीदारी राष्ट्र की भलाई से जुड़े कामों में उतने से भी कम क्यों हो गई? उन्हें शिक्षण संस्थानों में, सरकारी सेवाओं में, बैंक के क्षेत्र में, प्राइवेट कारोबार में कितनी कम नौकरी मिली और पार्लियामेंट तथा राज्य विधान मंडल में कितनी कम हिस्सेदारी मिली। जिन राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय स्तर के सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं की सरकार से संरक्षण मिलता है और तरह-तरह की सहायता भी मिलती है उनमें अल्पसंख्यकों का कम प्रतिनिधित्व है। उन्हें शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक एवं रोजगार में समानता लाने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा पर सबसे अधिक बल देना होगा और शिक्षा पर बड़े पैमाने पर व्यय करना पड़ेगा। भारत सरकार ने मदरसों और मकतबों जैसी पारम्परिक संस्थानों के लिए एक योजना शुरू की है, जिसका उद्देश्य इन संस्थानों को अपने पाठ्यक्रम को आधुनिक बनाने के लिए प्रोत्साहित करना है। इन संस्थानों को विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान, हिन्दी और अंग्रेजी की कक्षायें शुरू करने के लिए वित्तीय सहायता दी जायेगी। योजना से इन संस्थानों के छात्रों को राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के समकक्ष शिक्षा हासिल करने में मदद मिलेगी। यह योजना, शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े अल्पसंख्यकों के विकास के लिए विभिन्न सिफारिशों को मद्देनजर रखते हुए तैयार की गई है तथा यह पूर्णतया स्वैच्छिक है।

केन्द्र सरकार ने मदरसों में एनसीईआरटी की किताबें पढ़ाये जाने का निर्णय लेकर यह साबित किया कि उसे तथाकथित सेक्युलर सरकारों के मुकाबले मुस्लिम छात्रों के भविष्य की कहीं अधिक चिन्ता है। इस निर्णय के तहत मदरसा छात्रों को गणित और विज्ञान पढ़ना भी अनिवार्य होगा। सरकार का इरादा मदरसों को आधुनिक और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करके मदरसा छात्रों को अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने का है। यह ऐसा निर्णय है जो मूलतः सिर्फ मुस्लिम समाज के बच्चों के लिए ही लाभदायक साबित होगा। उनके हित की चिन्ता इसलिए की जानी चाहिए, क्योंकि वे आधुनिकीकरण की दौड़ में बहुत पीछे रह गये हैं। सरकार का यह कदम इसलिए उल्लेखनीय है, क्योंकि पिछले कई वर्षों से मदरसों में शिक्षित छात्रों को आधुनिक कौशल से लैस करने की माँग की जा रही थी ताकि वे नौकरी के बाजार में अपनी जगह सुरक्षित कर सकें। इस माँग और जरूरत के बाद भी पिछली किसी सरकार का ध्यान इस ओर नहीं गया, जबकि वे खुद को मुस्लिम हितैषी बताते नहीं थकती थीं। अब भारत सरकार ने विज्ञान, गणित, सामाजिक विषयों के शिक्षकों के लिए अलग वेतन का विशेष अनुदान देने का निर्णय लिया है।

देश में हजारों मुस्लिम बच्चे मदरसों में पढ़ते हैं। कई मदरसों से उन्हें डिग्री भी प्राप्त होती है, लेकिन जब वे अपना कामकाजी जीवन शुरू करने की कोशिश करते हैं तो उन्हें समझ आता

1 29 नवम्बर, 2017

है कि वास्तविक जीवन की स्थितियों का सामना करने के लिए मदरसा शिक्षा पूरी तरह सक्षम नहीं है। इस कारण वे अपने आपको उपेक्षित महसूस करते हैं। इनमें से कुछ छात्र मदरसा शिक्षा पूरी करने के बाद अंग्रेजी, कम्प्यूटर आदि सीखने का प्रयास करते हैं, परन्तु मदरसा शिक्षा पूरी करने के बाद अंग्रेजी शिक्षा में जाने की प्रक्रिया समय बर्बाद करती है। धार्मिक शिक्षा और आधुनिक शिक्षा जब एक ही स्थान पर उपलब्ध करायी जाती है, तो छात्र अपना समय बचाने में सफल होंगे। नि:संदेह धार्मिक शिक्षा की एक महत्ता है, लेकिन उसकी एक सीमा है। आज के युग में केवल धार्मिक शिक्षा व्यक्तित्व के विकास में सहायक नहीं बनती।

विश्व भर में मुस्लिम चरमपंथ की वृद्धि का एक कारण वैज्ञानिक शिक्षा की कमी है। हम आज विज्ञान के दौर में जी रहे हैं। युवा मुसलमानों के लिए आधुनिक शिक्षा से लैस होना इसलिए भी जरूरी हो गया है ताकि वे स्वयं को धार्मिक कट्टरवाद से बचा पायें। मदरसा शिक्षा के मामले में केन्द्र सरकार के फैसले के बावजूद यह एक तथ्य है कि ठोस नतीजे तभी मिलेंगे जब मदरसों में एनसीईआरटी की किताबों को पढ़ाने वाले कुशल अध्यापकों की नियुक्ति भी की जायेगी। बेहतर होगा कि सभी राज्य सरकारें अपने प्रदेशों के मदरसों में अंग्रेजी और विज्ञान तथा सामाजिक विषयों की पढ़ाई अनिवार्य करें। चूंकि इस मामले में पहले ही देर हो चुकी है इसलिए और देर नहीं की जानी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि मुस्लिम समाज आधुनिक शिक्षा को अपनाने के लिए आगे बढ़े और सरकारों का सहयोग भी करे।

❖❖❖

मुस्लिमों को समान आर्थिक अवसर[1]

समान आर्थिक अवसर देश के मुस्लिमों को उपलब्ध कराये जाए। विभिन्न जन कल्याणकारी योजनाओं से मुस्लिम समुदायों में भी विश्वास जगा है, लेकिन अभी भी निम्नलिखित कार्यों को प्राथमिकता के साथ करने की आवश्यकता है। जिन इलाकों में मुसलमानों की आबादी अधिक है उनमें विशेष तकनीकी शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा संस्थाएं खोली और चलायी जाएं। इस समुदाय के जो छात्र मेधावी हों उनके लिए उच्च व्यावसायिक संस्थाओं में उचित अनुपात में स्थान आरक्षित किए जाएं। अल्पसंख्यकों की शिक्षा-संस्थाओं को पूरी सुरक्षा दी जाए। मुसलमानों को आर्थिक पिछड़ेपन से बाहर निकालने के लिए अल्पसंख्यक वित्त निगम की पूँजी बढ़ायी जाए और उसकी कार्य पद्धति ऐसी बनायी जाए कि उसका फायदा मिलना निश्चित हो जाए। अन्य योजनाएं जैसे आई॰आर॰डी॰पी॰, मनरेगा रोजगार योजना और प्रधानमंत्री रोजगार योजनाओं का संचालन प्रशासन द्वारा इस रूप में किया जाए कि अल्पसंख्यकों को भी उससे लाभ मिले। सरकार द्वारा चलाये जा रहे कारोबार में अल्पसंख्यक उद्यमियों को कोटा, परमिट और आबंटन में आनुपातिक हिस्सा दिलाने में न्याय किया जाए। वक्फ की जायदाद के प्रबंधन और प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त बनाया जाए और जहाँ-तहाँ वक्फ की जायदाद का अतिक्रमण किया गया है उसे हटाया जाए।

आजादी के 72 साल से भी अधिक समय बीत गया। दुनिया तीसरी सहस्राब्दी में पाँव रख चुकी है लेकिन भारत के अल्पसंख्यकों के हालात में बदलाव नहीं आया। हालांकि मुसलमान अपनी आबादी के ख्याल से देश में दूसरे नम्बर पर हैं, फिर भी उन्हें जिन्दगी के किसी महकमे में अव्वल जगह नहीं मिली बल्कि वे दूसरों के पीछे-पीछे चलते रहे हैं। आज ये तालीम और माली हालात के मामले में पिछड़े हुए हैं और यही कारण है कि समाज में उन्हें ऊँचा स्थान नहीं मिल रहा है। चाहे उच्च शिक्षा का महकमा हो या किसी सरकारी अथवा प्राइवेट क्षेत्र में नौकरी का मामला हो अथवा कृषि, व्यापार और उद्योग हो, अल्पसंख्यकों की मौजूदगी उनमें कम दिखायी पड़ती है। पार्लियामेंट या राज्यों के विधान मण्डल में भी इनके प्रतिनिधि कम रहते हैं और प्रशासन में, न्याय की सेवा में अथवा तालीम की दुनियाँ में इन्हें आबादी के हिसाब से ओहदे नहीं मिले हैं।

अल्पसंख्यकों को अपनी कमजोरियाँ दूर करने के लिए सबसे पहले शिक्षा पर बल देना चाहिए। हर बच्चे को अच्छी से अच्छी प्राइमरी शिक्षा देने की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके आगे बच्चे की रुझान जिस तरह की तालीम की ओर हो उसमें ही आगे बढ़ने दिया जाए। हर क्षेत्र में और हर स्तर पर ध्यान रखा जाए कि शिक्षा ऊँचे स्तर की हो और वह ऐसी दिशा में बढ़े कि उसके बल पर तुरंत रोजगार मिल जाए। आज अल्पसंख्यक मुसलमानों की जीवन-दशा जितनी दर्दनाक है और जिस तरह की गरीबी से वे गुजर रहे हैं उस पर तुरंत ध्यान दिया जाना लाजिमी है। उनके आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बंधी पिछड़ेपन को तुरंत दूर करने के उपाय काफी तेजी से नहीं किए जाएंगे तब तक वे देश की तरक्की के प्रयासों में महत्वपूर्ण भागीदारी करने योग्य नहीं बन सकते हैं।

❖❖❖

1 11 जुलाई, 2019

अल्पसंख्यकों का विकास[1]

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने 600 करोड़ रुपये की एक योजना चालू की है जिसका मकसद अल्पसंख्यक मुस्लिम समुदाय में साक्षरता की उच्च दर हासिल करना है। सबका साथ और सबका विकास के मंत्र के साथ अगले पाँच वर्षों में प्री-मैट्रिक, पोस्ट मैट्रिक एवं मेरिट कम-मीन्स आदि योजनाओं के जरिये देश के पाँच करोड़ अल्पसंख्यक विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने का निर्णय एक सराहनीय पहल है। सरकार की ऐसी योजना है कि अल्पसंख्यक वर्ग की ड्रॉप आउट लड़कियों को देश के प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थानों में ब्रिज कोर्स करा कर उन्हें शिक्षा और रोजगार से जोड़ा जायेगा। मदरसा भी मुख्यधारा की शिक्षा हिन्दी, अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, कंम्प्यूटर आदि दे सके यह व्यवस्था की जायेगी ताकि समावेशी सशक्तिकरण और मजबूत हो। मौलाना आजाद तालीम-ए-बालीगान योजना का मकसद 15 वर्ष और इससे अधिक आयु की 1 करोड़ आबादी को साक्षर बनाना, 2.5 लाख लोगों को प्राथमिक शिक्षा देना और लगभग 3 लाख लोगों को कौशल विकास कार्यक्रम के तहत लाना है। इसके अलावा इस कार्यक्रम के तहत 5 हजार से अधिक मुस्लिम आबादी वाले गाँवों में विशेष रूप से महिलाओं के लिए अतिरिक्त 1 हजार वयस्क शिक्षा केन्द्र खोलने का भी प्रस्ताव है। यह योजना 11 राज्यों के 61 मुस्लिम बहुल भारत के जिलों में लागू की जायेगी।

देश के मदरसों को धीरे-धीरे शिक्षा की मुख्यधारा में जोड़ा जा रहा है। उसकी पहली कड़ी में मदरसे में मुख्य विषयों को पढ़ाने के लिए केन्द्र सरकार ने शिक्षक मुहैया कराने और पूर्ण वित्त पोषण करने का फैसला लिया है। 12,000 मदरसों में गणित एवं अन्य विज्ञान विषयों, कम्प्यूटर के शिक्षकों को उपलब्ध कराने के निर्णय को मदरसों ने स्वीकार कर लिया है।

सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही तीन तलाक को असंवैधानिक कहा था। भारत के मुस्लिम समुदाय के लोगों के लिए उनकी अपनी सामाजिक नागरिक संहिता है जबकि हमारे कानून या भारतीय दंड सहिता सभी धर्मों को मानने वालों पर एक समान लागू होती है। जहाँ तक बहुसंख्यक हिन्दू समुदाय का प्रश्न है, उसका विधान हिन्दू कोड के अंतर्गत आता है। इसके अंतर्गत आनेवाली त्रुटियों को कानून बनाकर खत्म किया जा चुका है जो सदियों से चली आ रही थी जैसे सती-प्रथा, बाल-विवाह को जुर्म मानते हुए सजा निर्धारित की जा चुकी है। यह विधेयक लागू होने से देश की मुस्लिम महिलाओं को न्याय एवं संरक्षण मिलेगा। यह अपराध संज्ञेय है और इसमें पुलिस सीधे गिरफ्तार कर सकती है, बशर्ते पीड़ित महिला स्वयं शिकायत करे। साथ ही खून या शादी के रिश्ते वाले सदस्यों को भी मामला दर्ज कराने का अधिकार होगा लेकिन कोई अनजान या पड़ोसी मामला दर्ज नहीं करा सकता। यह (अध्यादेश) विधेयक महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए लाया गया है। कानून में समझौते के विकल्प को भी रखा गया है।

1 19 जून, 2019

एक सर्वेक्षण के अनुसार अभी केवल 4 प्रतिशत मुसलमान हाई स्कूल पास कर पाते हैं। विश्वविद्यालय स्तर पर तो दुर्दशा देखते ही बनती है। प्राथमिक पाठशाला के प्रत्येक 100 छात्रों में से केवल 1.6 प्रतिशत ही स्नातक की डिग्री प्राप्त कर पाते हैं। इसी प्रकार से केवल 4.4 प्रतिशत मुसलमान सरकारी नौकरियों में हैं। मात्र 3.7 से 5 प्रतिशत ही सरकार से अपना कोई कार्य शुरू करने के लिए मदद पाते हैं। यह सूची बहुत दयनीय है।

❖❖❖

उर्दू से दूरी[1]

गाँधी जी ने भी कहा था कि सभ्यता का दावा करनेवाले किसी भी राष्ट्र की कसौटी यही है कि उसने अल्पसंख्यकों के साथ किस तरह का आचरण या व्यवहार बनाकर रखा है। देश के लोग वस्तुत: कितने स्वतंत्र हैं इसकी परख इस एक बात से भी होती है कि अल्पसंख्यक समुदाय के लोग देश में अपने को कितना सुरक्षित समझते हैं। इस पृष्ठभूमि में आकलन करने पर हम पाते हैं कि भारत के संविधान निर्माताओं के मन में अल्पसंख्यकों के अधिकार का सवाल गहराई से जुड़ा हुआ था और उन्होंने अल्पसंख्यक समुदाय को सही मायने में सुरक्षा पहुँचाने के लिए गंभीरता से चिंतन किया था।

पिछले दशकों में देश के राजनीतिक दलों ने अल्पसंख्यकों के साथ न्याय नहीं किया है। क्षेत्रीय दलों ने उन्हें बराबर भरोसा दिलाया कि वे उनकी भलाई को बराबर अहमियत देने के पक्षधर हैं किन्तु व्यावहारिक तौर पर देखने में यह आता है कि उनमें पक्की राजनीतिक इच्छा की कमी रही जिसके चलते वे अल्पसंख्यकों की न तो अल्पकालिक समस्या का समाधान कर सके और न ही दीर्घकालिक समस्या का। विभिन्न राजनीतिक दल अल्पसंख्यकों को महज वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करते रहे। उनकी सामाजिक, आर्थिक और शिक्षा सम्बंधी तरक्की के लिए कोई ठोस निर्णय नहीं किए।

भारत में मुस्लिम आबादी 16 करोड़ के बीच आंकी गई है। यह हकीकत है कि इतनी बड़ी आबादी को नजरअंदाज कर कोई भी देश तरक्की नहीं कर सकता। उनकी स्थिति कैसे सुधरेगी, इस पर न केवल सरकार के स्तर पर गौर किया जाना चाहिए बल्कि देश के समाजशास्त्री और बुद्धिजीवियों को भी विचार करना होगा। जहाँ तक शिक्षा स्तर में उनकी भागीदारी कम होने का सवाल है, इस तथ्य को सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता कि गरीबी के कारण उनके बच्चे आधुनिक शिक्षा और तकनीकी शिक्षा से वंचित हैं और उन्हें दीनी तालीम के लिए मदरसों में भेज दिया जाता है। मदरसों को आधुनिक शिक्षा के लिए सुधार की जरूरत पर जोर दिया गया है। इसमें कोई शक नहीं कि शहर की मुस्लिम आबादी की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र के मुसलमान इस पेशे में आगे हैं लेकिन बैंकों से कर्ज मिलने में परेशानी की वजह से वे स्वरोजगार में भी पिछड़ रहे हैं।

आज अल्पसंख्यक मुसलमानों की जीवन-दशा जितनी दर्दनाक है और जिस तरह की गरीबी से वे गुजर रहे हैं उस पर तुरंत ध्यान दिया जाना लाजिमी है। मुसलमानों के लिए रोजगार के अवसर नहीं के बराबर हैं और न उनके सामने कोई कारोबार या व्यापार चलाने का रास्ता दिखाई पड़ता है। इन सब कारणों से वे इतने पिछड़ चुके हैं कि जब तक उनके आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बंधी पिछड़ेपन को तुरंत दूर करने के उपाय काफी तेजी से नहीं किए जाएंगे तब तक वे देश की उन्नति, शान्ति और प्रगति के लिए किए जा रहे महान प्रयासों में महत्वपूर्ण भागीदारी करने योग्य नहीं बन सकते हैं। ❖❖❖

---

1 05 फरवरी, 2017

मदरसे की शिक्षा[1]

सरकार ने मदरसों की शिक्षा को मुख्यधारा में शामिल करने का निर्णय लिया है। देश के मदरसों को धीरे-धीरे शिक्षा की मुख्यधारा में जोड़ा जा रहा है। उसकी पहली कड़ी में मदरसे में मुख्य विषयों को पढ़ाने के लिए केन्द्र सरकार ने शिक्षक मुहैया कराने और पूर्ण वित्त पोषण करने का फैसला लिया है। मदरसा शिक्षा व्यवस्था को मुख्यधारा से जोड़ने के लिए सरकार ने मध्याह्न भोजन उपलब्ध कराने का भी निर्णय लिया है। इसके अलावा व्यावसायिक शिक्षा दिलाने के लिए 2018 तक पाँच उच्चस्तरीय शिक्षण संस्थानों की स्थापना की जाएगी। सरकार का मुख्य उद्देश्य अल्पसंख्यकों को मुख्यधारा में जोड़ना है, जिससे वे रोजगार प्राप्त कर सकें और उनके जीवन स्तर में सुधार लाया जा सके। मदरसों ने भी सरकार के प्रस्तावों को स्वीकार कर साबित किया है कि वे अब शिक्षा के माध्यम से जुड़कर ही रोजगार पाना चाहते हैं। सरकार व्यावसायिक शिक्षा का द्वार गरीब मुसलमान के लिए खोलना चाहती है। इसी लक्ष्य को पूरा करने के लिए पाँच बड़े आधुनिक शिक्षा केन्द्र बनाये जाने वाले हैं उन संस्थानों में अल्पसंख्यक छात्राओं के लिए 40 प्रतिशत सीट आरक्षित रहेगी सरकार जोर-शोर से तकनीकी शिक्षा उपलब्ध कराना चाहती है जो एक सराहनीय पहल है।

देश के मुसलमान सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में दलित से भी बदतर हालत में हैं। यदि जल्द ही इनकी समस्याओं को दूर नहीं किया गया, तो हमारा देश विकसित देश नहीं बन पायेगा। मुस्लिम अल्पसंख्यकों के विकास के लिए एमएसडीपी यानी मल्टी-सेक्टोरल डेवलपमेंट प्रोग्राम बहुक्षेत्रीय विकास कार्यक्रम के तहत पूरे देश में ऐसे अल्पसंख्यक जिलों को चुना गया था जिसमें 20 प्रतिशत से ज्यादा मुसलमान रहते हैं। एमएसडीपी आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार के अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय द्वारा यह कार्यक्रम संचालित किया जाता है। अल्पसंख्यकों के सर्वांगीण विकास के लिए 20 राज्यों के 90 ऐसे जिलों की पहचान की गयी, जहाँ उनकी बुनियादी जरूरतों को पूरा किये बिना उनका विकास सुनिश्चित हो पाना मुश्किल है। केन्द्र ने राज्यों को पैसों का आबंटन भी किया, लेकिन अभी तक उन राज्यों ने आधे से भी कम खर्च किया है। बिहार भी मुस्लिम बहुल राज्य है। उसे 523.20 करोड़ मिले थे, लेकिन महज 28.12 प्रतिशत रकम ही खर्च हो पायी।

❖❖❖

1 04 मई, 2017

मदरसों का आधुनिकीकरण[1]

भारत सरकार ने 600 करोड़ रुपये की एक योजना चालू की है जिसका मकसद अल्पसंख्यक मुस्लिम समुदाय में साक्षरता की उच्च दर हासिल करना है। मौलाना आजाद तालीम-ए-बालीगान योजना का मकसद 15 वर्ष और इससे अधिक आयु की 1 करोड़ आबादी को साक्षर बनाना, 2.5 लाख लोगों को प्राथमिक शिक्षा देना और लगभग 3 लाख लोगों को कौशल विकास कार्यक्रम के तहत लाना है। इसके अलावा इस कार्यक्रम के तहत 5 हजार से अधिक मुस्लिम आबादी वाले गाँवों में विशेष रूप से महिलाओं के लिए अतिरिक्त 1 हजार वयस्क शिक्षा केन्द्र खोलने का भी प्रस्ताव है। यह योजना 11 राज्यों के 61 मुस्लिम बहुल भारत के जिलों में लागू की जायेगी।

देश के मदरसों को धीरे-धीरे शिक्षा की मुख्यधारा में जोड़ा जा रहा है। उसकी पहली कड़ी में मदरसे में मुख्य विषयों को पढ़ाने के लिए केन्द्र सरकार ने शिक्षक मुहैया कराने और पूर्ण वित्त पोषण करने का फैसला लिया है।

देश में समय-समय पर गृह मंत्रालय, योजना आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग द्वारा उच्च अधिकार प्राप्त कमिटी से जाँच कराये जाने के बाद मिली रिपोर्टों से अल्पसंख्यकों के बारे में चिन्ताजनक स्थिति बतायी गयी है और कुछ क्षेत्रों में उन्हें बहुत ही पिछड़ा माना गया है। गरीबी के कारण प्राइमरी स्कूलों या सेकेंडरी स्कूलों में दाखिला लेने वाले बच्चों में से लगभग 40 फीसदी पढ़ना छोड़ देते हैं। बच्चों के गार्जियन भी उनकी पढ़ाई पर जोर नहीं देते क्योंकि वे मानते हैं कि उनके लिए नौकरी पाने की अच्छी संभावना नहीं है, इसलिए उन्हें जो भी काम मिल जाता है उसी में वे पढ़ना-लिखना छोड़कर लग जाते हैं। स्व-रोजगार के लिए उन्हें बैंक से ऋण कम ही मिलता है। जहाँ तक शहरों की बात है तो अधिसंख्य मुसलमान झुग्गी-झोपड़ियों में रहते हैं, जहाँ बुनियादी सुविधाओं तक का सर्वथा अभाव है।

राज्य के 1127 मदरसों का पूर्ण वित्तीय भार राज्य सरकार ने दिसम्बर, 1980 एवं फरवरी, 1980 के निर्णय के अंतर्गत लिया। यह भी आदेश हुआ कि वहाँ के शिक्षकों को सरकारी कर्मचारियों की तरह वेतनमान, भत्ता एवं अन्य सुविधाएं उपलब्ध करायी जाएगी। 2003 में स्व॰ अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने प्रत्येक मदरसे के लिए तीन नये शिक्षक के पद- गणित, विज्ञान एवं भूगोल के लिए स्वीकृत किया जिसके वेतन का पूर्ण वित्तीय भार केन्द्र सरकार ने वहन करने का निर्णय लिया, किन्तु वह निर्णय बिहार सरकार कार्यान्वित नहीं करा सकी।

❖❖❖

1 26 सितम्बर, 2018

गुजरात के दंगों की जाँच[1]

गुजरात के दंगों की न्याययिक जाँच तथा राज्य प्रशासन और पुलिस की संदिग्ध भूमिका की छानबीन की जाए क्योंकि राज्य सरकार का रवैया अत्यन्त संदिग्ध, गैर संवेदनशील और पक्षपातपूर्ण महसूस किया जा रहा है। दंगों के दोषियों को वही दंड दिया जाए जो आतंकवादियों को दिया जाता है, क्योंकि ये घटनाएँ आतंकवाद का ही एक रूप है। साबरमती ट्रेन के निर्दोष यात्रियों को जिन्दा जलाने की शर्मनाक घटना से लेकर पूरे गुजरात में पुलिस की मौजूदगी में लूटपाट और इन्सानों के खून से होली खेलने की दिल दहला देने वाली घटनाओं ने सिद्ध कर दिया है कि राज्य सरकार स्थिति से निपटने में नाकाम रही है। इसकी स्वतंत्र जाँच ही सच्चाई पर से पर्दा उठा सकेगी।

गोधरा की जघन्यता के जवाब में आयोजित बंद के नाम पर अहमदाबाद और गुजरात के अन्य दर्जनों शहरों और पचासों कस्बों में जैसी सांप्रदायिक विभीषिका सामने आयी है, उससे पिछले दशकों की सांप्रदायिक हिंसा के बदतरीन विस्फोटों की याद बरबस ताजा हो गयी है। गोधरा में जो कुछ हुआ उसे जघन्य तो कहा ही जायेगा लेकिन उसकी प्रतिक्रिया के नाम पर गुजरात भर में जो हुआ और होने दिया गया, वह हर लिहाज से अक्षम्य है। यह सिर्फ इसलिए अक्षम्य नहीं है कि गोधरा की घटना के मुकाबले कई गुणा ज्यादा जानें, खासकर औरतों और बच्चों की जानें अहमदाबाद और गुजरात के अन्य अनेक नगरों की सांप्रदायिक हिंसा में गयीं। यह अक्षम्य सिर्फ इसलिए भी नहीं है कि गोधरा की घटना के विपरीत हिंसा और आगजनी की ये वारदातें किसी एक स्थान या एक नगर तक सीमित न होकर लगभग पूरे राज्य में हो रही थीं।

महात्मा गांधी के जन्म से सबंधित गुजरात में ऐसी घटना की कल्पना नहीं की जा सकती थी। किन्तु, यह सोची-समझी साजिश के चलते घटित हुई हैं जिसका सूत्रधार धार्मिक कट्टरपंथियों और आपराधिक गिरोहों को माना जा सकता है। जब पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ ने कट्टरपंथी मदरसों पर पाबंदी लगा दी है तो भारत सरकार को भी देश में विश्व हिन्दू परिषद एवं अन्य कट्टरपंथी धार्मिक संगठनों पर पाबंदी लगाने में नहीं हिचकना चाहिए।

भारतीय जनता पार्टी को विश्व हिन्दू परिषद् और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से अपना संबंध बनाये रखने पर गंभीरता से विचार करना पड़ेगा क्योंकि इस समय देश में उसकी घोर भर्त्सना की जा रही है। दस लाख कार सेवकों को अयोध्या में बुलाकर विश्व हिन्दू परिषद द्वारा मंदिर निर्माण प्रारंभ कराना उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को खुली चुनौती है। धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक समाज में किसी को भी धर्म के नाम पर कानून को अपने हाथ में लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती। अभी जैसी स्थिति बन आयी है उसमें केन्द्र की भाजपा सरकार को साबित करना होगा कि उसमें न केवल कानून पालन कराने की शक्ति है, बल्कि वह धार्मिक कट्टरपंथियों को संविधान

1 5 मार्च, 2002

के साथ खिलवाड़ करने की इजाजत नहीं दे सकती। अभी जब भारत आतंकवाद से जूझ रहा है तो ऐसे समय में विश्व हिन्दू परिषद् जैसे कट्टरपंथी संगठनों को आन्तरिक सुरक्षा के लिए खतरा उत्पन्न करने की इजाजत नहीं दी जा सकती।

वर्त्तमान स्थिति में सरकार और राजनीतिक दलों का यह कर्त्तव्य होता है कि मंदिर–मस्जिद से उत्पन्न उकसावा देने वाले तत्वों से राष्ट्र को न केवल बचाया जाए बल्कि उनके विरुद्ध तीव्र विरोध भी प्रकट किया जाए। भारतीय राज–व्यवस्था को बचाने के लिए राजनीतिज्ञों, बुद्धिजीवियों और चिन्तकों को आगे आने की सख्त जरूरत है।

❖❖❖

नानावती की अध्यक्षता में जाँच आयोग[1]

जब साम्प्रदायिक दंगों से सर्वाधिक प्रभावित चार जिलों में नानावती आयोग अभी तक जाँच या गवाहियों का काम शुरू ही नहीं कर पाया है तो फिर अपेक्षाकृत शान्त क्षेत्रों की जाँच के आधार पर ही पुलिस–प्रशासन को क्लीन चिट देने की जल्दबाजी क्यों ?

आयोग की इस जल्दबाजी भरी क्लीन चिट को अगर गुजरात दंगों की ही जांच करने वाले सिटीजंस ट्रिब्यूनल की रिपोर्ट के आईने में देखें तो यह लीपापोती की ही कोशिश ज्यादा नजर आती है। सिटीजंस ट्रिब्यूनल ने प्रभावित लोगों तथा सरकारी अधिकारियों की गवाहियों के आधार पर जो जांच रिपोर्ट जारी की है, उसमें न सिर्फ शासन के स्तर पर लापरवाही की ओर इशारा किया गया है, बल्कि गोधरा के बाद हुए दंगों के लिए जिम्मेदार लोगों को नामजद भी किया गया है। गोधरा कांड के बाद भड़के साम्प्रदायिक दंगों का सबसे भयावह रूप अहमदाबाद, बडोदरा, भरूच और नर्मदा में ही नजर आया था। स्थितियों की गंभीरता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि साम्प्रदायिक तनाव के कारण इन जिलों में जाँच–सुनवाई का अपना काम भी आयोग को स्थगित करना पड़ा। अब यह काम 15 जुलाई से किया जाना है।

पिछले वर्ष 27 फरवरी को गोधरा में अयोध्या से लौटती ट्रेन की बोगियों में आग लगाकर लोगों को जिन्दा जला देने की घटना और उसके बाद प्रतिक्रिया स्वरूप गुजरात के कई हिस्सों में भड़क उठे साम्प्रदायिक दंगों की जाँच के लिए ही न्यायमूर्ति नानावती की अध्यक्षता में दो सदस्यीय आयोग का गठन किया गया था। इसमें दो राय नहीं कि नानावती आयोग ने इस दौरान गुजरात के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर जाँच की है और प्रभावितों समेत विभिन्न पक्षों को सुना भी है। बकौल आयोग, अभी तक की जाँच और गवाहियों के दौरान ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिला, जिससे दंगों के दौरान पुलिस–प्रशासन के स्तर पर किसी तरह की लापरवाही का संकेत मिलता हो। पर सर्वाधिक दंगा प्रभावित जिलों में अहमदाबाद, बड़ोदरा, भरूच व नर्मदा में जांच–सुनवाई का कार्य किये बिना ही आयोग ने अधूरी जांच के आधार पर जिस तरह पुलिस–प्रशासन को क्लीन चिट जारी कर दी है, उससे आयोग की विश्वसनीयता अवश्य संदेह के दायरे में आ गयी है। हजार से अधिक निर्दोष महिला, बच्चे एवं पुरुष की निर्मम हत्या और हजारों करोड़ की सम्पत्ति की बर्बादी के लिए जिम्मेवार लोगों को अभी तक दण्डित नहीं किया जाना और शासन द्वारा दोषियों को संरक्षण दिया जाना और देश में प्रभावित परिवारों को मुआवजा और पुनर्वास नहीं देना सामाजिक समरसता और साम्प्रदायिक सद्भावना बनाए रखने के लिए खतरनाक संदेश देते हैं।

सिटीजंस ट्रिब्यूनल के अलावा भी गुजरात दंगों की बाबत जांच–टिप्पणी करने वाले अधिकांश संगठनों ने पुलिस–प्रशासन पर सवालिया निशान लगाया था। बेशक किसी भी निष्पक्ष जाँच के लिए जरूरी है कि ऐसी टिप्पणियों–निष्कर्षों से अप्रभावित ही रहा जाए, पर नानावती

1 3 जून 2003

आयोग ने जिस तरह अधूरी जाँच के आधार पर ही पुलिस–प्रशासन को क्लीन चिट दे दी है, वह आयोग की भूमिका और मंशा पर ही संदेह पैदा करती है। बहुत संभव है कि अहमदाबाद, बडोदरा, भरूच और नर्मदा में जाँच–सुनवाई के बाद भी न्यायमूर्ति नानावती इसी निष्कर्ष पर पहुँचे, पर अपनी संदेहास्पद जल्दबाजी से उन्होंने अपनी विश्वसनीयता पर ही सवालिया निशान लगा लिया है। गुजरात दंगों की जांच में अधूरी जाँच के आधार पर ही राज्य सरकार और पुलिस–प्रशासन को क्लीन चिट देने की जल्दबाजी है। 1984 के सिख विरोधी दंगों की जाँच की रिपोर्ट यही न्यायमूर्ति नानावती अभी तक नहीं दे पाये हैं। जाँच आयोगों की जाँच रिपोर्टों की विश्वसनीयता अनिवार्य होगी क्योंकि ऐसे दूसरे आयोग भी जाँच में सत्य की खोज को ही अपना लक्ष्य बनाएं तथा जाँच के बीच ही इस तरह क्लीन चिट बांटने और मीडिया–मोह की प्रवृत्ति से बचें।

राज्य का यह प्राथमिक और अनिवार्य दायित्व है कि वह अपनी जनता के जीवन, आजादी, समानता तथा सम्मान के अधिकारों की रक्षा करे। इसके अतिरिक्त राज्य का दायित्व यह भी है कि वह सुनिश्चित करे कि इन अधिकारों का प्रत्यक्ष रूप से अथवा प्रेरणा देकर अथवा लापरवाही के कारण उल्लंघन न हो। यह मानव अधिकार न्यायशस्त्र का स्पष्ट और उभरता सिद्धांत है कि सरकार अपने अभिकर्त्ताओं के कार्य के लिए ही नहीं, अपितु उन गैर सरकारी लोगों के कार्य के लिए भी जिम्मेदार है जो उसके अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी किसी भी निष्क्रियता के लिए भी वह जिम्मेदार है जिसकी वजह से मानव अधिकारों का उल्लंघन हुआ हो या जो इस प्रकार उल्लंघन के कार्य में सहायक बनी हो।

गुजरात की जनता की आजादी, समानता तथा सम्मान की रक्षा कर पाने में राज्य सरकार का कितना दायित्व है, इसको आंकने के लिए खुद घटना क्रम को ही आधार माना जाना चाहिए। तदनुसार आयोग को जांच करनी चाहिये। आयोग को इन अधिकारों की रक्षा के लिए सरकार से उत्तर प्राप्त करना चाहिये। यदि राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में सफाई पेश नहीं की जाती, तो इसका यही अर्थ निकाला जायेगा कि इस घटनाक्रम के लिए सरकार जिम्मेदार है। नानावती आयोग को इन्हीं तथ्यों के आधार पर जांच करनी चाहिये।

❖❖❖

लिब्रहान आयोग[1]

अल्पसंख्यकों को सुरक्षा देना किसी भी सभ्य और जागरूक राष्ट्र की पहली पहचान है। गांधीजी ने भी कहा था कि सभ्यता का दावा करनेवाले किसी भी राष्ट्र की कसौटी यही है कि उसने अल्पसंख्यकों के साथ किस तरह का आचरण या व्यवहार बनाकर रखा है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता पर बाबरी मस्जिद का विध्वंस बदनुमा धब्बा है, जिसका दाग आसानी से धोया नहीं जा सकता।

लिब्रहान अयोध्या जाँच आयोग की रिपोर्ट में कहा गया है कि :– यह घटना आकस्मिक नहीं बल्कि सुनियोजित थी; न्यायमूर्ति लिब्रहान ने उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री कल्याण सिंह की भूमिका का भी उल्लेख किया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि श्री कल्याण सिंह को यह पता था कि अयोध्या में 6 दिसम्बर, 1992 को क्या होने वाला है, फिर भी उन्होंने प्रशासन को कार्रवाई करने से रोक दिया था। आयोग ने केन्द्र की तत्कालीन नरसिंह राव सरकार को निर्दोष बताया है, लेकिन उनकी धीमी तैयारी के लिए आलोचना भी की है। रिपोर्ट में बाबरी एक्शन कमिटी की खामियों को भी इंगित किया गया है। इस रिपोर्ट को अंतिम रूप देने में आयोग को 17 वर्ष लगे और 48 बार उसका कार्यकाल बढ़ाया गया। इससे इसकी प्रासंगिकता पर सवाल उठाना स्वाभाविक है किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि आगे की कार्रवाई न की जाए। सरकार ने अपनी कार्रवाई रिपोर्ट में दोषियों के विरुद्ध कदम उठाने की बात कही है।

लिब्रहान आयोग की रपट भारतीय इतिहास की एक असाधारण घटना के कारणों पर आधारित है। उस समय हिन्दू सांप्रदायिकता अपने चरम पर थी। उसने धर्मनिरपेक्ष भारत के ताने–बाने को हिला कर रख दिया था। धर्म और जाति का दुरुपयोग रोकने के लिए कानून और उसे लागू करने के लिए प्राधिकरण बनाना, राष्ट्रीय एकता परिषद् को कानूनी मान्यता देना, विवादित मुद्दों के हल के लिए राष्ट्रीय आयोग बनाना और पुलिस व्यवस्था में सुधार, यह सब ऐसे सुझाव हैं जिन पर तुरंत कार्रवाई की जा सकती है। उन्हें लागू करने में राज्य और केन्द्र सरकार को अधिकारों की सैद्धांतिक और तमाम तरह की व्यावहारिक दिक्कतें हो सकती है, परंतु लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता को बचाये रखना आवश्यक है। लिब्रहान आयोग ने अपनी सिफारिशों में कहा है कि धर्म का राजनीति में इस्तेमाल से गवर्नेंस प्रभावित होता है। इसलिए राजनीति में नैतिकता व शुचिता लाने की आवश्यकता है। राजनीति में धर्म, जाति, क्षेत्रीयता आदि का इस्तेमाल एक खतरनाक परंपरा है।

❖❖❖

1 1 दिसम्बर, 2009

रंगनाथ मिश्र आयोग की रिपोर्ट[1]

केन्द्र सरकार द्वारा भाषा और धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक मसले के समाधान के लिये गठित न्यायाधीश रंगनाथ मिश्र आयोग रिपोर्ट के इसी संसद सत्र में सदन के पटल पर प्रस्तुत करने की घोषणा का स्वागत करता हूँ। मुसलमानों को मुख्य धारा में शामिल करने के लिए एवं उन्हें शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक एवं रोजगार में समानता लाने के उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा पर सबसे अधिक बल देना होगा और शिक्षा पर बड़े पैमाने पर व्यय करना पड़ेगा। मुसलमान बहुल जिलों एवं राज्यों में आवासीय विद्यालय एवं महाविद्यालय की स्थापना को प्राथमिकता देनी होगी। राजनीति से उपर उठकर मुसलमानों के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं नियोजन में बढ़त स्थापित करने का प्रयत्न करना होगा।

मुसलमान राष्ट्रीय मुख्य धारा से अलग-थलग हैं जबकि देश में मुसलमानों की संख्या 16 करोड़ से अधिक है। 16 करोड़ मुसलमानों को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं नियोजन के मामले में पीछे रखते हुए देश का विकास नहीं हो सकता और भारत समृद्ध राष्ट्र नहीं बन सकता। यह स्थिति तथ्यों पर आधारित है कि देश में बहुसंख्यक मुसलमानों की स्थिति सभी स्तरों पर पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति एवं जनजाति की तरह है। इसलिए किसी प्रकार के भेदभावपूर्ण व्यवहार से मुसलमानों के बीच समानता नहीं लायी जा सकती। रंगनाथ मिश्र आयोग ने मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं नियोजन स्थिति का सही विवरण प्रस्तुत किया है जिसे इनकार नहीं किया जा सकता।

आयोग द्वारा अनुशंसित बिन्दुओं पर सरकार कार्रवाई करे। पिछड़े वर्ग की पहचान में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के बीच कोई भेदभाव न रखा जाए। अल्पसंख्यकों के सभी वर्गों, सेक्शन और ग्रुपों के साथ पिछड़ा वर्ग जैसा व्यवहार किया जाए। अल्पसंख्यकों के उन तमाम सामाजिक और पेशेवर ग्रुपों के साथ वही किया जाए जो अनुसूचित जाति के ऐसे लोगों के साथ किया जाता है। बिना किसी देरी के संविधान के अनुच्छेद 30 के तहत अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों के तमाम पहलुओं पर आधारित एक ठोस साफ कानून बनाया जाए जिसके द्वारा उसके वास्तविक आदेशों का पालन किया जाए। सभी गैर अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं में कम से कम 15 प्रतिशत सीटें कानून द्वारा अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित कर दी जाए। अल्पसंख्यक वर्ग के जो उम्मीदवार दूसरों से मुकाबला कर सकते हैं और स्वयं अपनी मेरिट पर दाखिला पा सकते हैं उनको इन 15 प्रतिशत आरक्षित सीटों में शामिल नहीं किया जाना चाहिए। सरकार को मदरसा मॉडरनाइजेशन योजना पर कार्रवाई कर उन्हें मजबूत करना चाहिये और ज्यादा फंड उपलब्ध कराएं ताकि वह जरूरी साजो-सामान उपलब्ध हो। सभी सरकारी योजनाओं, ग्रामीण रोजगार जेनरेशन प्रोग्राम, प्रधानमंत्री की रोजगार योजना और ग्रामीण रोजगार योजना आदि में 15 प्रतिशत भाग अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित किया जाए, जिसमें से 10 प्रतिशत मुसलमानों के लिए और 5 प्रतिशत दूसरे अल्पसंख्यकों के लिए हो। ❖❖❖

1 14 दिसम्बर, 2009

भागलपुर साम्प्रदायिक दंगा[1]

2006 में भागलपुर साम्प्रदायिक दंगे की दूसरी जाँच के लिये न्यायमूर्ति श्री एन॰पी॰ सिंह की एक सदस्यीय न्यायिक जाँच आयोग इस उद्देश्य से गठित की गई कि राष्ट्रीय जनता दल के शासनकाल में भागलपुर दंगा के लिये जिम्मेवार लोगों को सजा नहीं दिलायी जा सकी थी और दंगे में मारे गये परिवार के लोगों को स्थानीय मुआवजे नहीं दिये गये। उनकी सम्पत्तियों का पुनर्वास नहीं हो सका था, अनेक मुसलमानों की भूमि छीने जाने की वापसी नहीं करायी जा सकी थी। मुख्य रूप से दंगों के जिम्मेवार लोगों के विरुद्ध मामले का त्वरित निष्पादन कर प्रभावित परिवारों को मुआवजा, पुनर्वास दिलाना था। राष्ट्रीय जनता दल की सरकार ने दोषियों को दण्डित कराने में शिथिलता बरती और प्रभावित परिवारों का पुनर्वास नहीं करा सकी। इन्हीं कारणों से दूसरे न्यायिक आयोग का गठन किया गया।

देश में अभी तक एक ही घटना, एक ही प्रकार के भ्रष्टाचार के मामले के लिये दो-दो आयोग गठित नहीं किये गये हैं। बिहार में उदाहरण है कि दो आयोग एक ही मामले के लिये गठित किए गए। विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि दिसम्बर, 1989 में न्यायाधीश श्री रामानन्दन की अध्यक्षता में एक सदस्यीय न्यायिक जाँच की व्यवस्था की गयी और जब श्री लालू प्रसाद मुख्यमंत्री बने तो उन्होंने दो सदस्यों को आयोग में जोड़ दिया। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इस आयोग के सदस्यों ने अपनी रिपोर्ट अलग-अलग सौंपी। ऐसा अभी तक देश में कभी नहीं हुआ है कि एक ही जाँच आयोग के दो-दो प्रतिवेदन सौंपे जाएँ। यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि श्री लालू प्रसाद की सरकार को संभवत: रामानन्दन प्रसाद की अध्यक्षता वाले आयोग पर या तो भरोसा नहीं था अथवा दो नये सदस्यों को जोड़कर जाँच को प्रभावित करना चाहते थे। रामानन्दन प्रसाद के प्रतिवेदन को तत्कालीन लोक सभा के सदस्य के रूप में 29 दिसम्बर, 1989 को लोक सभा में उनके द्वारा दिये गये भाषण में बड़ी ही गम्भीरता से उद्धृत किया गया है। उस भाषण में श्री लालू प्रसाद ने कहा था कि ''मैं कहना चाहता हूँ कि भागलपुर में मुस्लिम अपराधियों के दो गुट हैं-सुल्तान और अन्सारी और भागलपुर दंगा/दंगे इन्हीं के द्वारा शुरू किये गये। भागलपुर के एस॰पी॰ पर बम फेंका गया और कई पुलिस जवान जख्मी हुए। रामशिला पूजन के अवसर पर बम फेंके गये और अभी तक ये दोनों अपराधी गिरफ्तार नहीं किये गये।'' यह बयान (ऊपर) उनके द्वारा घटना के दो माह बाद दिया गया और उन्होंने बिहार के एक प्रसिद्ध और जिम्मेवार नेता होते हुए कहे ऐसी स्थिति में कोई भी निश्चय ही उम्मीद कर सकता है, जिम्मेवारी की पूर्ण समझदारी के साथ सभी तथ्यों को संग्रहीत करने के बाद ही यह बयान दिया गया होगा।

भागलपुर साम्प्रदायिक दंगा बड़ा ही व्यापक विध्वंसकारी साम्प्रदायिक दंगा के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित रहा। संभवत: इसी साम्प्रदायिक दंगा के कारण तात्कालिक प्रधानमंत्री श्री

1 07 अगस्त, 2015

राजीव गांधी की पराजय लोकसभा में हुई थी। जाँच प्रतिवेदन में सुझाये गये सुझावों और तथ्यों को तत्कालीन जनता दल सरकार ने गंभीरता से नहीं लिया। वहाँ के मुसलमानों की हत्यायें और सम्पतियों की लूट के विरुद्ध कार्रवाई और पुनर्वास कार्यक्रम जो चलाये जाने चाहिये थे वह नहीं चलाये गये। पीड़ित परिवारों को मुआवजे से वंचित रखा गया, जबकि भागलपुर जाँच आयोग ने उन परिवारों को अनुकम्पा राशि के लिये अनुशंसा की थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री वी॰पी॰ सिंह ने प्रधानमंत्री राहत कोष से अलग सहायता दी थी। लेकिन बिहार की तत्कालीन सरकार उस दंगे के प्रति उदासीन बनी रही। संभवतः इसी पृष्ठभूमि में जनता दल (यू॰)की सरकार ने मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार के निर्देश पर न्यायपूर्त्ति श्री एन॰पी॰ सिंह की अध्यक्षता में दोबारा दंगा जाँच आयोग इस उद्देश्य से गठित किया था कि अपराधियों के विरुद्ध त्वरित कार्रवाई हो और प्रभावित परिवारों का पुनर्वास हो। 9 वर्षों के बाद आयोग ने अभी हाल में रिपोर्ट समर्पित की है, जबकि इस आयोग का कार्यकाल छः महीने निर्धारित था। इस आयोग पर सरकार ने 11 करोड़ रुपये व्यय किये हैं और आयोग ने 9 वर्षों में चार बार ही भागलपुर का दौरा किया। ऐसी भी सूचना है कि आयोग के समक्ष पुनर्वास क्षतिपूर्ति और अनुदान के लिये 15 हजार से अधिक आवेदन इस आयोग को सौंपे गये। विश्वस्त सूत्रों से यह जानकारी मिलती रही कि आयोग ने न तो प्रभावित परिवारों के 15 हजार आवेदन पर कोई कार्रवाई ही की और न ही प्रतिवेदन में सरकार के समक्ष प्रभावित परिवारों की अनुशंसा ही की। सूचना है इस साम्प्रदायिक दंगे में मुसलमानों के जमीन पर मध्यवर्गीय पिछड़ों ने जबरन कब्जा कर लिया और सांकेतिक मूल्य देकर जमीन की रजिस्ट्री करवा ली। ऐसे परिवारों के जमीन वापसी के संबंध में इस आयोग ने कोई अनुशंसा नहीं की। आयोग की अनुशंसा पर केवल कुछ ही परिवारों को सरकार ने पेंशन स्वीकृत की और इस बीच भारत सरकार ने 1984 के सिख दंगे में मारे गये परिवारों को क्षतिपूर्ति अनुदान स्वीकृत की। वहीं भागलपुर के दंगा पीड़ितों के लिये क्षतिपूर्ति उपलब्ध नहीं करवायी गयी। यह भी उल्लेखनीय है कि आयोग ने दंगा संबंधी अपराधी मामलों को साक्ष्य के अभाव में बंद कर दिया। उन मामलों को पुनः खुलवाने के लिये आयोग के निर्देशों पर न्यायिक कार्यों में मंजूर नहीं किया जो अपराधिक मामले दंगाइयों के विरुद्ध चल रहे थे, वह यथावत रहे। दोषियों को दण्डित किया जाए उन मामलों के संचालन में गतिशीलता लाने की दिशा में भी आयोग ने कोई प्रभावकारी अनुशंसा न की और न किसी प्रकार की निर्वहनता का पालन किया। भागलपुर दंगा के प्रभावित बुनकरों की और छोटे उद्योगों की जो क्षति हुई उसकी भरपायी पहले श्री लालू-राबड़ी देवी की सरकार न कर पायी और न श्री नीतीश कुमार सरकार ने की। किसी सरकार ने प्रभावकारी उपयोगी कार्रवाई नहीं की। भागलपुर साम्प्रदायिक दंगा एक राजनीतिक मुद्दा बना रहा इसका राजनीतिक लाभ उठाया गया।

❖❖❖

असहिष्णुता के बहाने एक बड़ी साजिश[1]

देश मे हर किसी को विचारों की अभिव्यक्ति और स्वतंत्रता अगर मिली हुई है तो यह हमारे संविधान के तहत मौलिक अधिकार की वजह से है। पिछले कुछ समय से लोकतंत्र के सबसे बड़े मंदिर में दादरी की घटनाओं को लेकर अचानक असहिष्णुता का माहौल जंगल की आग की तरह खड़ा कर दिया गया, इसे क्या कहेंगे? बुद्धिजीवी होने के आवरण तले लेखक, साहित्यकार और अन्य कलाकार अचानक यह अनुभव करने लगे कि देश में असहिष्णुता है तो इसका क्या अर्थ निकाला जाए? इतना हीं नहीं इस कड़ी में अगर इतिहासकार और वैज्ञानिक भी शामिल होने लग जाएँ तो फिर समझ लिया जाना चाहिये कि यह किसी ना किसी साजिश का हिस्सा है।

अचानक राष्ट्र में स्तरीय पुरस्कार और सम्मान को लौटाने का सिलसिला शुरू हो जाता है और ये सभी लोग यह कहते हैं कि देश मे असहिष्णुता का माहौल बन रहा है तो बात समझ लेनी चाहिए कि ये लोग यकीनन किसी ना किसी को टारगेट कर रहे हैं साहित्य अकदमी से पुरस्कार प्राप्त करने वाले लेखकों ने यह आरोप लगाकर अपने पुरस्कार वापस कर दिये हैं कि मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद असहिष्णुता का वातावरण पैदा हो गया है और साथ में यह भी कहा कि साम्प्रदायिकता और कट्टरवादिता बढ़ रही है। इन लेखकों का यह भी दावा है कि पिछले महीनों में 3 लेखकों, विचारकों की निर्मम हत्या की गयी है। इस घटनाक्रम के साथ हाल ही में दादरी के समीप हुई अखलाक की हत्या को भी इन लेखकों ने जोड़ दिया है। लेखकों द्वारा मोदी सरकार के खिलाफ यह दुष्प्रचार किया जा रहा है कि इनके शासनकाल में असिहष्णुता और कट्टरवाद बढ़ा है। इस तरह का आरोप साफ निराधार है।

हैरानी की बात है कि पिछले पांच दशकों में देश में साम्प्रदायिक दंगे हुये जिसमें हजारों लोग मारे गये, दलितों का उत्पीड़न किया गया उनकी सामूहिक हत्याएं हुई मगर तब इनमें से एक भी लेखक ने इन घटनाओं के खिलाफ विरोध प्रकट कर अपना पुरस्कार वापस क्यों नहीं किया? दादरी की दुखद घटना को उछालकर खुद को महिमामंडित करने का प्रयास क्यों कर रहा है? अगर अखलाक की जगह कोई रामचन्द्र या दलजीत सिंह होता तो इन साहित्यकारों की प्रतिक्रिया क्या यही होती? जहां तक कालवुर्गी की हत्या का संबंध है उनकी हत्या दुखद है मगर क्या यह सच नहीं है कि कथित चिंतक ने खुलेआम शिवलिंग पर खड़े होकर पेशाब करने की घोषणा की थी? इस तरह से उन्होंने करोड़ों शिव भक्तों की धार्मिक भावना पर क्या कुठाराघात नहीं किया था? असहिष्णुता बनावटी है और देश के माहौल को खराब करने वाला है। सहिष्णुता देश की आत्मा है और उसे संकट में डालकर सियासी सगूफा देश की आत्मा पर हमला है। सहिष्णुता और सौहार्द्र उसकी ताकत है। सहनशीलता और सहिष्णुता के मुद्दे पर जिस प्रकार की बौद्धिक खेमेबाजी

---

1 07 नवम्बर, 2015

की जा रही है वह किसी भी तरह न तो उचित है और ना ही संवैधानिक रूप से न्यायोचित है।

भारत की विविधता और मतभिन्नता व बहुलता का समान रूप से पूरे सहिष्णु भाव से आदर किया जाना चहिए मगर यह कैसे संभव है कि केवल बिचारो के पक्ष को ही अंतिम सत्य मानने और दिखाने वाले लोग बौद्धिक स्तर पर माफिया कि तरह काम करने लगे और राजनीतिक रूप से पराजित होने के बाद इसे अपना अस्त्र बनाकर भारत की सरकार और इसके प्रधानमंत्री को कटघरे में खड़ा करने की जी तोड़ कोशिश करें।

देश तो संविधान से ही चलता है और विभिन्न राज्यों में होने वाली आपराधिक घटनाओं से प्रधानमंत्री का सीधा सम्बन्ध नहीं होता है। चाहे दादारी कांड हो या कालबुर्गी की कर्नाटक में की गयी हत्या हो या कोई अन्य घटना हो पहले उस राज्य का मुख्यमंत्री ही जवाबदेह होता है। बिना शक दादरी में जिस प्रकार अखलाक की हत्या शक की बिनह पर की गयी वह जघन्य अपराध होता मगर इसके बाद उसके ही गांव के सभी हिन्दू-मुसलमान लोगों ने मिल जुलकर अपने गांव की मुस्लिम बेटियों का विवाह किया। इससे क्या भय का वातावरण बना?

❖❖❖

तीन-तलाक कानून[1]

एक ही साथ तीन-तलाक को लोकसभा में आपराधिक श्रेणी में लाने संबंधी विधेयक का स्वागत है। यह विधेयक विगत अगस्त महीने में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गैर-इस्लामी (गैर संवैधानिक) घोषित किया गया है। भारत के मुस्लिम समुदाय में लोगों के लिए उनकी अपनी सामाजिक नागरिक संहिता है जबकि हमारे कानून या भारतीय दंड सहिता सभी धर्मो को मानने वालों पर एक समान होती है। जहाँ तक बहुसंख्यक हिन्दू समुदाय का प्रश्न है, उसका विधान हिन्दू कोड के अंतर्गत आता है। इसके अंतर्गत आने वाली त्रुटियों को कानून बनाकर खत्म किया जा चुका है जो सदियों से चली आ रही थी। दहेज-प्रथा खत्म करने के लिए और घरेलू हिंसा को रोकने के लिए भी कानून बनाया गया है। ये सभी कानून एक की कानून के दायरे में आते हैं। लेकिन बाल-विवाह मुस्लिम समुदाय के अंतर्गत नहीं आता है। यहाँ पर उनका अपना कानून (शरियत) में आता है।

भारत के संप्रदाय विशेष को केन्द्र में रखकर भी बहुत सारे कानून बने हैं। अत: मुसलमानों के संबंध मे भी ऐसा किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद-5 एवं 6 में उल्लेखित आदिवासी वर्गो को छोड़कर भारत की विविधता का अंदाजा इसी से समझ सकते हैं किन्तु आपराधिक मामले में सभी वर्गों को बराबर रखा गया है। तीन-तलाक का मामला खालिस तौर पर घर की चहारदीवारी में किया गया कृत्य होता है जिसकी वजह से एक मुस्लिम औरत रातोरात बदल जाती है। उसे अपने पति का घर छोड़ने को मजबूर कर दिया जाता है। अत: निश्चत रूप से यह सामाजिक कुरीति है जो मुस्लिम समुदाय में सैंकड़ो सालों से चली आ रही है और कानून (शरियत) भी नहीं है। इसे रोकने के लिए सरकार कानून बना रही है, उसके तहत सबसे ज्यादा सुरक्षा महिलाओं को देना आवश्यक है। वह इसलिए ताकि उनकी शादी न टूटे, क्योंकि तीन-तलाक को सर्वोच्च न्यायालय ने खत्म कर दिया है। यह एक ऐसी सामाजिक कुरीति है जो वर्षो से मुसलमान समाज में चली आ रही है। सरकार का यह प्रयास सराहनीय है। उसकी मंशा मुस्लिम औरतों को सम्मान दिलाने की है। जमीन पर कानून के लागू हो जाने से निश्चित तौर पर मुस्लिम औरतों को सम्मान एवं सुरक्षा मिलेगी, परन्तु हकीकत में इस कानून से कितना लाभ मिलेगा यह तो वक्त ही बतायेगा। इससे कम से कम मुस्लिम मर्दों में डर तो पैदा होगा।

प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि देश के नेता किसी पार्टी के नहीं होते बल्कि पूरे कौम के होते हैं। पं. नेहरू ने 1952 में पहले आम चुनाव में पूरे भारत में हिन्दू कोड बिल को चुनावी मुद्दा बनाया था, उस पर लोगों का वोट मांगा था। जब संविधान सभा में बाबा साहब अम्बेडकर द्वारा बनाये गये कानून को नहीं मानने से बाबा साहब दुखी हुए थे तो पं. नेहरू जी ने उनकी निराशा को लोगों के बीच में उम्मीद में बदला। 1956 में इस बिल को पारित कराया गया। इस बिल में हिन्दू महिलाओं को संपत्ति का अधिकार, विधवा-विवाह और तलाक जैसे प्रावधानों

1 29 दिसम्बर, 2017

को मुसलमानों के कुरान से लिया था। अतः मुसलमानों को भी हिन्दू समाज की अच्छी परम्पराओं को मानने के लिए घबराना नहीं चाहिए। बहु-पत्नी प्रथा को अलविदा कहकर समय के साथ आगे बढ़ना चाहिए। दहेज की त्रुटियों और बाल-विवाह पर रोक के लिए ही कानून बनाये गये हैं।

इन कानूनों ने हिन्दुओं के बीच बुरी प्रथाओं को रोकने का काम किया। इसी से हिन्दू समाज जागरूक हुआ। इसी प्रकार के जागरूकता की जरूरत तीन-तलाक को खत्म करने के मामले में भी होनी चाहिए। अच्छा होगा इस मामले में राजनीतिक नेताओं के साथ ही धार्मिक नेतागण भी सकारात्मक भूमिका निभाने का प्रयत्न करें। मुस्लिम समाज को उन महिलाओं से सबक लेनी चाहिए जिन्होंने तलाक की परेशानियों को झेलकर भी अपने हक की लड़ाई लड़ी हैं।

❖❖❖

शिक्षा की न हो अनदेखी
अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा[1]

6 वर्ष से 14 वर्ष आयु वाले बच्चों के लिए अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा की गारंटी करने वाला कानून (आरटीई) आज सम्पूर्ण राज्य में लागू हो चुका है। परंतु इसे व्यवहार्य रूप में लाने में राज्य सरकारों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

राज्य सरकारें अपने बच्चों को 'शिक्षा की गारंटी' देने के कितने करीब या दूर हैं, इस बात की परख चार बुनियादी सवालों पर की जा सकती है- क्या सभी बच्चों का स्कूल में दाखिला हो सकता है? क्या सभी स्कूल आरटीई के वांछित मानकों पर खड़े हैं? क्या सभी स्कूल शिक्षा के अधिकार की गारंटी करने में सक्षम हैं? और क्या इन स्कूलों में बच्चे सचमुच संतोषजनक ढंग से सीख रहे हैं?

आरटीई कानून इस बात की गारंटी नहीं करता। आरटीई कानून की मूल भावना है कि सभी बच्चे अच्छी और असरदार शिक्षा पाएं। इसके बाद भी अगर बच्चे स्कूल में सीख नहीं रहे हैं तो यह कानून निरर्थक है। संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 एवं 21 के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष के बच्चों को समानता एवं प्रतिष्ठापूर्वक जीने के अधिकार के अंतर्गत राज्य का यह दायित्व बनता है कि सभी नगारिकों को शिक्षित, स्वस्थ एवं प्रतिष्ठापूर्वक जीने का अधिकार उपलब्ध हो क्योंकि शिक्षा के अधिकार का इन सभी संवैधानिक प्रावधानों के आलोकों में आकलन किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 14, 15, 16 एवं 21 समानता का अधिकार सभी नागरिकों को सुनिश्चित करता है। सरकार तथा न्यायपालिका वास्तविक समानता सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेवार है। केवल शाब्दिक समानता के लिए नहीं। सरकार ने शिक्षा से वंचित समूह को शिक्षित करने के लिए ही इस प्रकार के अधिनियम को लागू किया है। जीने का अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत सुनिश्चित है जिसमें बहुत परिवर्तन हुए हैं। उस अधिनियम के अंतर्गत अब शिक्षा एवं स्वास्थ्य अधिकार सम्मिलित माना जाता है। शिक्षा के अधिकार को राज्य के निदेशक तत्व के अंतर्गत देखा जाना चाहिए। समानता का अधिकार निश्चित रूप से जीवन के अधिकार के साथ जुड़ा हुआ है। निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित करने का अर्थ नागरिकों को गौरवपूर्ण जीवन प्रदान करना है। इस अवधारणा के अंतर्गत निजी स्वामित्व एवं प्रबंधन वाले विद्यालयों में वंचित समूह के 25 प्रतिशत बच्चों का नामांकन किये जाने का प्रावधान बंधनकारी है।

समाज का विशिष्ट वर्ग बेहतर शिक्षा पर केवल अपना अधिकार बनाये रखने के लिए सभी प्रकार के प्रयास कर रहा है। इस काम में तथाकथित संभ्रांत वर्ग के लिए आरक्षित समझे जाने वाले स्कूलों में गरीब एवं मध्यम वर्ग के लोगों के बच्चों का प्रवेश निषेध माना जाता है। यह कैसी

1 21 फरवरी, 2011

शिक्षा नीति है? शिक्षा पर सभी लोगों का समान अधिकार उनका मूलभूत अधिकार है। केन्द्र ने शिक्षा को 6 वर्ष से 14 वर्ष तक अनिवार्य शिक्षा बना दिया है मगर इसके लिए सरकारी स्कूलों की ही व्यवस्था है। खुले बाजार की अर्थव्यवस्था की हमने जिस अमरीका से सीख ली है उस देश में शिक्षा का अधिकार भी समाज के हर वर्ग के लिए खुला हुआ है और हर बच्चे को हक है कि वह अपने निकटतम पड़ोसी स्कूल में दाखिला ले सकता है। साथ ही हर स्कूल का शिक्षा स्तर हाई स्कूल तक एक समान होता है और सभी में एक समान सुविधाएं होती हैं मगर, भारत में सरकारी स्कूल और निजी स्कूलों के शिक्षा स्तर में जमीन–आसमान का अंतर है। गरीब बच्चों के लिए सरकारी स्कूल और उच्च वर्ग के बच्चों के लिए निजी स्कूल है। जिस प्रकार शिक्षा का बाजारीकरण हुआ है उसने शिक्षा के क्षेत्र को उद्योग में बदल दिया है। शिक्षा के व्यापारीकरण का सीधा अर्थ है जन्म से ही ऊँच–नीच का भाव पैदा हो जाये और गरीब के बच्चों को केवल चपरासी या चतुर्थ श्रेणी की नौकरी के लिए तैयार किया जाये।

❖❖❖

राज्य में उच्च शिक्षा की स्थिति[1]

बिहार में प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में ह्रास और अराजकता, विभिन्न प्रकार के अधिनियमों की लगातार अनदेखी और उपेक्षा से शिक्षा की गुणवत्ता ही लगातार क्षीण नहीं हो रही है बल्कि सम्पूर्ण शिक्षा क्षेत्र में एक अराजकता जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है। राज्य सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित प्रक्रियाओं की मार्गदर्शिका की लगातार अनदेखी की जा रही है।

बगैर किसी गहन अध्ययन और वैकल्पिक व्यवस्था किये हुए अन्तर विश्वविद्यालय आयोग, विश्वविद्यालय सेवा आयोग, महाविद्यालय सेवा आयोग, विद्यालय शिक्षा सेवा बोर्ड आदि संस्थाओं को विघटित करके उनके स्थान पर कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं की जिसके फलस्वरूप विभिन्न विश्वविद्यालयों के बीच समन्वय एवं एकरूपता में गिरावट जारी है। विश्वविद्यालय सेवा आयोग और महाविद्यालय सेवा आयोग को विघटित किये जाने के फलस्वरूप विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में 10 वर्षों से अधिक समय से विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति नहीं हुई है, जिसके परिणामस्वरूप विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में 8 हजार से अधिक रिक्तियाँ लगातार बनी रही हैं। सेवानिवृत्त हो रहे शिक्षकों की जगह पर भी नियुक्तियाँ नहीं हो रही हैं। परिणामस्वरूप विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में कक्षायें नहीं चल रही हैं। छात्र-छात्रायें महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में उपस्थित नहीं हो रहे हैं।

पिछले 10 वर्षों से विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में शिक्षकों की प्रोन्नति रुकी हुई है, जिसका कुप्रभाव विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के अध्ययन, अध्ययापन और शोध पर पड़ रहा है। परीक्षाओं में कदाचार और अनियमितता के कारण बिहार से बाहर बिहार के उत्कृष्ट छात्रों का नामांकन नहीं हो पा रहा है। विद्यालय सेवा आयोग के विघटित होने के कारण प्राथमिक, मध्य एवं माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की नियुक्तियाँ नियमित रूप से नहीं होने के कारण पूर्णतया संविदा के आधार पर औपबंधिक शिक्षकों की नियुक्तियाँ नियोजित शिक्षकों के रूप में की गयी हैं। उन्हें एक निश्चित राशि वेतन के रूप में दी जाती है, जो राजकीयकृत विद्यालयों के शिक्षकों के वेतनमान से अत्यधिक कम है। इसके विरोध में 3 लाख से अधिक शिक्षक लगातार हड़ताल पर रहे हैं और विद्यालयों का पठन-पाठन पूर्णरूपेण ठप्प है जिसका सीधा प्रभाव गरीब, अत्यंत पिछड़े और दलित वर्गों के छात्रों पर पड़ रहा है।

बिहार में 1990 से लगातार शिक्षा की गुणवत्ता क्रमश: अधोगति प्राप्त करती रही है। राष्ट्रीय मानक एवं दिशा निर्देश के विरुद्ध बिहार में लगातार उच्च शिक्षा की उपेक्षा की जा रही है। केन्द्र सरकार एवं यू॰जी॰सी॰ द्वारा जारी दिशा निर्देशों की अनदेखी से उच्च शिक्षा की गुणवत्ता राष्ट्रीय

1 11 जून, 2015

औसत से नीचे गिरती जा रही है। शिक्षा का द्रुत विकास तो हुआ है, पर इसी क्रम में गुणवत्ता और स्तरीयता की अल्पता भी उत्पन्न हुई है जिस कारण से मानव संसाधन की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। गुणवत्ता, प्रभाव एवं प्रासंगिकता ऐसे महत्वपूर्ण तत्त्व हैं, जिनके माध्यम से शिक्षा की कामयाबी को मापा जाता है। यू॰जी॰सी॰ के द्वारा आयोजित एक सर्वेक्षण से यह प्रकाश में आया है कि बिहार में लगभग सभी सूचकों पर-यथा निकाय के स्तर, पुस्तकालयीय सुविधायें, संगणक (कम्प्यूटर) की उपलब्धता, शिक्षक-छात्र का अनुपात आदि पर शिक्षा प्रबंधन को यथाशीघ्र समुन्नत करना अत्यावश्यक है।

बिहार राज्य के विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में लगातार हो रहे गुणात्मक ह्रास, विश्वविद्यालय की बिगड़ती हुई प्रशासनिक शैक्षणिक एवं वित्तीय स्थिति विस्मयकारी है। बिहार राज्य के विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में 1996 से लगातार आठ हजार से अधिक व्याख्याता, उपाचार्य (रीडर) विश्वविद्यालय आचार्य एवं प्राचार्यों के पद रिक्त पड़े हैं। कालबद्ध प्रोन्नति और मेधा आधारित प्रोन्नति 1996 से बंद है। वरीय और योग्य शिक्षकों में असंतोष व्याप्त है। रिक्त पदों पर नियुक्ति नहीं होने के कारण महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षण कार्य, शोध कार्य पूर्ण रूप से बाधित हैं।

❖❖❖

शिक्षा के प्रति उदासीनता[1]

बिहार के लिए यह अत्यंत ही विस्मयकारी और दुर्भाग्यपूर्ण है कि बिहार सरकार की निष्क्रियता एवं शिक्षा के प्रति पिछले दशकों से लगातार उपेक्षापूर्ण नीति के कारण प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा में पूर्णतः अराजकता व्याप्त है। शिक्षा राज्य का मौलिक दायित्व है ताकि प्रत्येक भारतीय को वर्ग, वर्ण, जाति–रंग सामाजिक–आर्थिक स्तरों से निरपेक्ष होकर गुणवत्तापूर्ण उच्च स्तरीय शिक्षा की संस्था तक पहुँचाया जाए। अनिवार्य शिक्षा अधिकार कानून लागू होने के बाद नामांकन की दर में तो बढ़ोतरी हुई है, पर पढ़ाई–लिखाई का स्तर बेहद सोचनीय है।

स्वयंसेवी संस्था 'प्रथम' के ताजा सर्वेक्षण के मुताबिक 5वीं कक्षा में पढ़ने वाले 50 फीसदी से ज्यादा बच्चे दूसरी कक्षा की किताबें भी नहीं पढ़ पाते। दो तिहाई बच्चों के लिए गणित सिरदर्द से कम नहीं है और वे साधारण जोड़–घटाव या गुणा–भाग के प्रश्नों को भी हल नहीं कर पाते। इनमें अधिकांश बच्चे दलित एवं अत्यंत पिछड़ी जाति समूह के हैं। बिहार में पिछले कुछ सालों में स्कूल से बाहर रह जाने वाले बच्चों की संख्या में गिरावट आई है। निश्चय ही यह एक सकारात्मक बदलाव है।

परन्तु अधबीच में पढ़ाई छोड़ने वालों की संख्या अभी भी 77 प्रतिशत बनी हुई है। इसमें दलित और अत्यंत पिछड़ी जातियों के लड़के–लड़कियों की संख्या अधिकतम है। अभी भी सारे प्रयत्नों के बाद भी बिहार में दलित केवल 37 प्रतिशत साक्षर हैं। लेकिन केवल स्कूल के रजिस्टर में ज्यादा बच्चों के नाम दर्ज होने से कोई फायदा नहीं हो रहा है। दरअसल, राज्य की शैक्षणिक तस्वीर सुधारने के लिए जो योजनाएं लागू की गयीं, उसका मकसद व्यवहार में साक्षरता का प्रतिशत बढ़ाने तक सीमित रहा। इससे स्कूलों में नामांकन की दर में तो इजाफा हुआ, लेकिन बच्चों की प्रगति का प्रश्न गौण हो गया, बल्कि सीखने की उनकी गति और धीमी हो गयी।

एक तरफ, अमीर बच्चों के लिए सारी सुविधाओं से लैस अंग्रेजी माध्यम वाले निजी विद्यालय हैं। इनमें पढ़ने वाले बच्चों की पूरी पढ़ाई रोजगार की वैश्विक प्रकृति के अनुकूल होती है। वहीं गरीब बच्चों को साधनविहीन सरकारी विद्यालयों के हवाले कर दिया गया है, जहाँ बहुत सारे अप्रशिक्षित और कम वेतन वाले शिक्षक हैं, जो विपरीत परिस्थितियों में जैसे–तैसे शिक्षण कर्म का निर्वहन करते हैं। इन स्कूलों में पढ़ने वाले ज्यादातर बच्चे साधनहीनता और शैक्षणिक वातावरण के अभाव में स्कूल छोड़कर चले जाते हैं, जो बचते हैं उनमें दसवीं कक्षा के बाद पढ़ाई की इच्छाशक्ति नहीं रह जाती है। इसके बाद भी कुछ बच्चे बच गये तो वे प्रतियोगिता के इस वातावरण में निजी विद्यालयों के बच्चों के सामने टिक नहीं पाते हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन की

---

1 24 अक्टूबर, 2015

विरासत के रूप में बिहार में 396 बुनियादी विद्यालय हैं। इन विद्यालयों में शिक्षण लगभग शून्य पर जा चुका है।

बिहार सरकार और बिहार राज्य के विश्वविद्यालयों ने विभिन्न प्रकार के अधिनियमों की लगातार अनदेखी और उपेक्षा जारी रखी है, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता क्षीण होती जा रही है और सम्पूर्ण शैक्षणिक क्षेत्र में एक अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। राज्य सरकार और विश्वविद्यालय दोनों विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित प्रक्रियाओं और मार्गदर्शिका की अनदेखी कर रहे हैं। शिक्षा के प्रति बिहार सरकार की उदासीनता और गैर जिम्मेदाराना रवैये के प्रमाण का ही यह साक्ष्य है कि 2006 में बगैर किसी गहन अध्ययन और बगैर वैकल्पिक व्यवस्था किये हुए अन्तर्विश्वविद्यालय आयोग को विघटित कर दिया गया। फलस्वरूप राज्य के विश्वविद्यालयों में समन्वय एवं एकरूपता क्षीण होती गयी। पूर्व में विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति के लिये विश्वविद्यालय सेवा आयोग और सम्बद्ध महाविद्यालयों के शिक्षकों की नियुक्ति के लिए महाविद्यालय सेवा आयोग कार्य कर रहे थे। इन दोनों आयोगों को भी बगैर वैकल्पिक व्यवस्था के विघटित कर दिया गया। प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की नियुक्ति के लिए विद्यालय सेवा बोर्ड कार्य कर रही थी, इस बोर्ड को भी विघटित कर दिया गया।

प्राथमिक, मध्य एवं माध्यमिक विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में रिक्त पड़े 4 लाख से अधिक रिक्त पदों पर अगर नियुक्तियाँ की गयी होती तो इनमें से आधे 2 लाख पद दलित एवं पिछड़े वर्गों के अभ्यर्थियों को प्राप्त होते।

❖❖❖

समान शिक्षा[1]

महात्मा फुले ने 1856 में उद्घोष किया था कि विद्या पाने का अधिकार सबको है। उन्होंने शिक्षा के महत्व के बारे में कहा–''विद्या के बिना समझदारी नहीं आती। समझदारी के बिना नैतिकता नहीं आती। नैतिकता के बिना विकास नहीं आता। विकास के बिना धन नहीं आता और निर्धनता ने ही इन लोगों को बर्बाद कर दिया है।'' डॉ॰ अम्बेडकर ने कहा था–''शिक्षा वह महानतम लाभ है जिसके लिए पिछड़े तबकों को लड़ना चाहिए। हम भौतिक लाभों को भले ही ठुकरा दें मगर शिक्षा के फायदों को हासिल करने के अधिकार और मौकों को नहीं छोड़ सकते। पिछड़े तबके समझते हैं कि शिक्षा के बिना उनका अस्तित्व सुरक्षित नहीं है।'' नेल्सन मंडेला ने इसलिये कहा था कि– "शिक्षा सबसे बड़ा ताकतवर हथियार है, जिसका इस्तेमाल आप दुनिया बदलने के लिए कर सकते हैं।"

बिहार में विद्यालय स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा की व्यवस्था को देखते हुए मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार ने 2006 में ही प्रोफेसर श्री मुचकुन्द दूबे की अध्यक्षता में समान शिक्षा बहाल करने के उद्देश्य से समान स्कूल प्रणाली आयोग गठित किया था। उस आयोग ने एक साल के भीतर सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी थी जिसमें कहा गया था कि राज्य में तत्काल डेढ़ लाख से अधिक स्कूलों की जरूरत है, जिसमें 80 हजार प्राथमिक, 31 हजार माध्यमिक और 20 हजार उच्च विद्यालय की स्थापना करने की अनुशंसा आयोग ने की थी। उस अनुशंसा का कार्यान्वयन नहीं हुआ जबकि उस समय समान शिक्षा प्रणाली लागू करने की जरूरत थी। आयोग ने कहा था कि वर्तमान में 2 करोड़ 22 लाख से ज्यादा बच्चों को समान शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। राज्य के स्कूलों से बाहर के छात्रों को शिक्षा प्रदान करने हेतु रचनात्मक ढंग से सोचना ही होगा। शिक्षा के अधिकार (आर॰टी॰ई॰) कानून के पारित होने के 9 वर्षों के बाद बिहार आसानी से दावा नहीं कर सकता है कि इस राज्य के प्राथमिक विद्यालयों ने 96 प्रतिशत नामांकन सफलता हासिल की है। दुर्भाग्यवश यह बात राज्य संचालित स्कूलों में सभी स्तरों पर प्रथम वर्गीय छात्रों के बारे में नहीं कही जा सकती; कई वर्षों में अनेक रिपोर्टों ने कहा है कि सरकारी स्कूलों में छात्र वर्गानुसार समुचित सीखने के स्तरों पर नहीं पहुँच रहे हैं।

देश में एक ओर सम्पन्न व प्रबुद्ध नगरीय मध्यम वर्ग तथा उच्च वर्ग के लिए चमचमाते केन्द्रीय विद्यालय, पब्लिक स्कूल, बोरिंग रोड स्कूल व नवोदय विद्यालय हैं, तो दूसरी ओर छोटे शहरों, गाँवों और कस्बों के वे सरकारी स्कूल या अनुदानित निजी स्कूल हैं, जहाँ सभी व्यवस्थाएं ठप हैं और इसकी जिम्मेवारी कोई नहीं लेना चाहता। अगर राज्य सरकार शिक्षा अधिकारी, शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक अपनी जिम्मेवारी से बचते रहेंगे, तो सकूली शिक्षा को लगातार रसातल में जाने से भला कौन रोक पायेगा? केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय तथा दिल्ली के सरकारी

[1] 11 जून, 2017

स्कूलों का परीक्षाफल सदैव प्रशंसनीय रहा है। दिल्ली के सरकारी स्कूलों का वर्ष 2017 का पास प्रतिशत निजी स्कूलों के 90 प्रतिशत से ज्यादा रहा। क्या बिहार के सरकारी स्कूलों और शत–प्रतिशत अनुदानित स्कूलों से ऐसे नतीजों व जवाबदेही की अपेक्षा नहीं की जा सकती?

हमारी स्कूली शिक्षा की तीन बड़ी चुनौतियाँ हैं, आम जनता के बड़े वर्गों को स्कूली शिक्षा का अवसर न मिलना, स्कूली शिक्षा में व्याप्त असमानता और अच्छी क्वालिटी की स्कूली शिक्षा सबको न मिलना। देश में मोटे तौर पर तीन तरह के स्कूल हैं, सरकारी स्कूल, सरकारी सहायता प्राप्त निजी स्कूल और गैर सरकारी सहायता प्राप्त निजी स्कूल 10 वर्ष पहले 46 प्रतिशत बच्चे सरकारी स्कूलों में, 28 प्रतिशत सहायता प्राप्त स्कूलों में और 26 प्रतिशत निजी स्कूलों में पढ़ते थे। पिछले दशक में सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों का प्रतिशत कम हुआ है और निजी स्कूलों में पढ़ने वाले का प्रतिशत बढ़ा है।

स्कूली शिक्षा में गुणात्मक सुधार सिर्फ सांगठनिक परिवर्तनों से नहीं होगा। हिन्दी भाषी और अन्य राज्यों में स्कूली शिक्षा में भारी वित्तीय निवेश की जरूरत है, ताकि जरूरी बुनियादी आधुनिक सुविधाएँ हर स्कूल को उपलब्ध हो। सूचना प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रयोग द्वारा पठन–पाठन की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार किये जा सकते हैं। शिक्षकों व विद्यार्थियों को लैपटॉप, टैबलेट देकर उस पारंपरिक शिक्षण प्रणाली को तिलांजली दी जा सकती है, जो बच्चों को रटटू तोता बनाती है। यह प्रौद्योगिकी महंगी जरूर है, किन्तु इन राज्यों के बच्चों को अन्य राज्यों के बच्चों के समकक्ष बनाने के लिए जरूरी है। साथ ही सामूहिक नकल के अभिशाप से मुक्ति के लिए शिक्षकों की शिक्षा व प्रशिक्षण में बदलाव की जरूरत हैं। वर्तमान वार्षिक परीक्षा प्रणाली में सूचना प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से परीक्षा में बदलाव होगा जिससे सामूहिक नकल की आशंकाएँ न्यूनतम हो जायेगी।

❖❖❖

शिक्षा का विकास[1]

शिक्षा के विकास के लिए बिहार में नई पहल की आवश्यकता है। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक को हर तरह से मजबूत करना होगा। शिक्षकों को मजबूत करने का अभिप्राय गुणवत्ता से है और गुणवत्ता की लक्ष्य प्राप्ति तभी संभव है, जब हमारे विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं शिक्षक गुणवत्ता से पूर्ण हों, कर्मठ हों और अपने छात्रों के प्रति समर्पित हों। सरकार के तंत्र से शिक्षकों को नियमित रूप से वेतन एवं पेंशन का भुगतान हो। इस समय विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षकों को न नियमित रूप से वेतन न पेंशन का भुगतान होता है और न ही कालबद्ध प्रोन्नति नियमित रूप से दी जा रही है। ऐसा लगता है कि वेतनमान सेवा शर्त्तों में शिक्षक के साथ न्याय नहीं हो रहा है। इसमें तत्काल सुधार की आवश्यकता है। इस समय बिहार की ऐसी अवस्था है कि जहाँ के अभिभावक जमीन जायदाद बेचकर अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। सामर्थ्यवान अभिभावक अपने बच्चों को बिहार से बाहर भेज देते हैं। इसलिए बिहार का अधिकाधिक धन बिहार से बाहर चला जाता है। यह भी अत्यंत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि बिहार में अन्तर विश्वविद्यालय बोर्ड, विश्वविद्यालय सेवा आयोग तथा विद्यालय सेवा आयोग वर्ष 2006 से विघटित है। इसके परिणामस्वरूप विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में 9 हजार से अधिक शिक्षकों की रिक्तियाँ हैं। 25 वर्षों से कालबद्ध प्रोन्नति अवरूद्ध है। शिक्षकों के अभाव में न शिक्षण होता है और न ही परीक्षायें नियमित तथा कदाचार मुक्त ही हो पाती है। हाल में 2008 में सरकार ने वित्त रहित नीति में संशोधन करते हुए प्राप्तांक के आधार पर महाविद्यालयों को शिक्षकों के लिए अनुदान दिया है। प्राप्तांक पर आधारित अनुदान की व्यवस्था से बड़े पैमाने पर परीक्षाओं में कदाचार और अनुदान की लूट हो रही है। शिक्षक एवं प्रबंधन के बीच गुणवत्ता और शिक्षा गुम सी हो गई है। विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में शिक्षण माहौल बिगड़ता गया है और शिक्षकों में असंतोष व्याप्त है।

13 दिसम्बर, 1989 को मंत्रिपरिषद् द्वारा वित्त रहित शिक्षा नीति को समाप्त कर वित्त सहित शिक्षा नीति के अनुसार महाविद्यालयों को तीन श्रेणियों में विभक्त उत्कृष्ट महाविद्यालयों का अंगीभूतीकरण करने का निर्णय लिया जाए, दूसरी श्रेणी के महाविद्यालयों को घाटा अनुदान एवं तृतीय श्रेणी के महाविद्यालयों को अनुदान प्राप्त महाविद्यालय घोषित किया जाए। इसके अतिरिक्त अन्य महाविद्यालयों को अव्यवहार्य घोषित करते हुए बंद करने अथवा आर्थिक अनुदान का निर्णय लिया जा सकता है। राज्य के वैसे सभी महाविद्यालयों जिनकी पात्रता, उपयोगिता एवं व्यवहार्यता को स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने 2 एफ० के अंतर्गत पंजीकृत किया है उन्हें अंगीभूत महाविद्यालयों का दर्जा दिया जा सकता है। दूसरा, अन्य सभी डिग्री एवं इन्टर महाविद्यालयों को मान्यता देते समय राज्य सरकार ने जिन पदों की स्वीकृति वित्त रहित दी थी उन सभी सृजित पदों का वित्तीय भार राज्य सरकार वहन कर सकती है। तीसरा, इन दोनों श्रेणियों

1 25 फरवरी, 2017

के अतिरिक्त अन्य इन्टर एवं डिग्री महाविद्यालयों में कार्यरत योग्य शिक्षकों एवं कर्मचारियों की सेवा +2 माध्यमिक विद्यालयों में पदों के साथ औपचारिक रूप से स्थानान्तरित की जा सकती है, क्योंकि +2 कक्षाओं की पढ़ाई जिन माध्यमिक विद्यालयों में प्रारंभ की गयी है वहाँ योग्य शिक्षकों का अभाव है। इन पहलुओं पर गंभीरता से विचार कर निर्णय लेने से राज्य सरकार को अतिरिक्त वित्तीय भार का वहन नहीं करना पड़ेगा। डिग्री एवं इन्टर के अतिरिक्त शिक्षकों की सेवा +2 में देने से ग्रामीण क्षेत्र में समाज के पिछड़े एवं दलित समूहों में शिक्षा से वंचित लोगों को एक सुव्यवस्थित गुणात्मक शिक्षा प्राप्त करने का उपयुक्त अवसर मिलेगा। उपर्युक्त सुझावों के कार्यान्वयन में होने वाले वित्तीय बोझ का एक बड़ा हिस्सा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्राप्त कराया जा सकता है।

❖❖❖

बिहार में नहीं बदली है शिक्षा की सूरत[1]

सरकार शिक्षा क्षेत्र में सुधार और विकास का लाख दावा करे किंतु प्राथमिक विद्यालयों का हाल यथावत है। छात्र विद्यालय जाते हैं और शिक्षक भी आते हैं लेकिन पढ़ाई लिखाई उतनी होती नहीं है जितनी होनी चाहिए। सरकार को भी खुद यह मानने के लिए बाध्य होना पड़ा है।

सरकार ने यूनिसेफ की मदद से सत्ताइस जिलों के चुने हुए प्राथमिक विद्यालयों में सर्वेक्षण कराया है। सर्वेक्षण के बाद तैयार रिपोर्ट के अनुसार कक्षा पाँच के 85 फीसद छात्र को तीन अंकों की संख्या को दो अंकों से भाग देना नहीं आता। कक्षा चार के 28 प्रतिशत छात्र गद्यांश नहीं पढ़ सकते। इसी कक्षा के 88 प्रतिशत छात्र संयुक्त शब्दों को नहीं लिख पाते। कक्षा दो के 58.5 प्रतिशत और कक्षा एक के 21.1 प्रतिशत छात्र अपना पाठ नहीं पढ़ सकतें हैं। मात्र 10.8 प्रतिशत छात्र अक्षर पढ़ सकते हैं। रिपोर्ट के हवाले से जानकार बताते हैं कि कक्षा दो के 90 प्रतिशत छात्र उन शब्दों को सुनकर नहीं लिख सकते जो बिना मात्रा के हो। इसी कक्षा के 82 प्रतिशत छात्र साधारण वाक्य को देखकर नहीं लिख सकते। 83 प्रतिशत छात्र चार अक्षरों के शब्दों को ठीक से नहीं पढ़ सकते।

रिपोर्ट से खुलासा हुआ है कि एक से पाँच कक्षा तक के छात्रों की कमोबेश एक जैसी स्थिति है। रिपोर्ट के मुताबिक 89 प्रतिशत विद्यालयों में समय सारणी का पालन नहीं होता। समय के अनुसार तय कार्यक्रम पूरे नहीं किये जाते। 65 प्रतिशत शिक्षक ब्लैकबोर्ड का प्रयोग नहीं करते। 96 प्रतिशत विद्यालयों में तो पढ़ाई-लिखाई का सामान ही नहीं है। प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति पर हमेशा सरकार की ओर से चिंता जताई जाती रही है लेकिन सुधार के लिए कारगर कदम नहीं उठाए गए।

वैश्वीकरण के बदलते दौर में मानव संसाधन की महत्ता बढ़ गयी है। युवा शक्ति मानव संसाधन का सबसे बड़ा और सक्षम स्रोत है। युवाओं के भविष्य पर ही प्रांत और देश के विकास का दारोमदार है। सूबे के नौ विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की बेहद कमी है। शिक्षकों के 35 प्रतिशत पद खाली पड़े हैं। प्रांत के सबसे बेहतर और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान रखने वाले पटना विश्वविद्यालय में 50 प्रतिशत से अधिक पद खाली हैं। शिक्षकों की कमी का व्यापक असर पठन-पाठन पर पड़ रहा है, जिसके कारण छात्रों को गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा नहीं मिल पा रही है। नौ विश्वविद्यालय और उनके अधीन करीब ढ़ाई सौ महाविद्यालय अधिकांश शिक्षकों की कमी से जुझ रहे हैं। संस्थानों के विकास में जमीन की कमी बड़ी बाधा बनी हुई है। पटना विश्वविद्यालय को केन्द्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा नहीं मिलने में यह कमी बड़ी वजह है।

अधिकांश कॉलेजों में प्रयोगशालाओं और पुस्तकालयों की स्थिति काफी दयनीय है। प्रयोग का काम प्राय: ठप्प है। कई कॉलेजों में तो प्रयोगशाला का वजूद ही नहीं है। कुशल शिक्षकों एवं

1 18 जुलाई, 2017

संसाधनों के अभाव में विश्वविद्यालय और कॉलेज शोधपरक शिक्षा उपलब्ध कराने में विफल है। विश्वविद्यालय का महत्व उच्च शिक्षा की डिग्री देने तक रह गया है। इसका असर शिक्षा के निचले पायदान पर पड़ रहा है, क्योंकि प्रांत को हर साल हजारों की संख्या में पढ़ाने वाले मिल रहे हैं, लेकिन कुशल शिक्षक नहीं मिल रहे हैं।

जनसंख्या के हिसाब से सूबे में विश्वविद्यालयों व कॉलेजो की संख्या बहुत कम है। आज की तारीख में भी कतिपय स्थानों में आगमन की समुचित सुविधा नहीं है। इसके चलते पढ़ने की इच्छा के बावजूद लड़कियां कॉलेजों में दाखिला नहीं ले पातीं हैं। शिक्षा ग्रहण करने का मकसद सिर्फ नौकरी प्राप्त करना नहीं होता बल्कि देश और प्रांत के विकास में योगदान देना भी होता है। बिहार के युवाओं में सामाजिक चेतना की थोड़ी कमी है। वे देश प्रांत और समाज के बारे में बहुत कम सोचते हैं आत्म केन्द्रित विकास से प्रांत का भला नहीं हो सकता है। इसलिए युवाओं को सामाजिक चेतना का बोध कराने के लिए जागरूकता अभियान चलाने की जरूरत है।

❖❖❖

शिक्षा होगी समृद्धि की आधारशिला[1]

प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक को हर तरह से मजबूत करना होगा, तभी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति संभव है। उन्नत शिक्षा ही समृद्ध बिहार का आधार स्तंभ होगा।

किसी भी राज्य व समाज के विकास का आधार मानव संसाधन होता है और यह शिक्षा पर आधारित होता है। बिहार का 2020 में विकास का सपना तभी पूरा होगा, जब आधारभूत परिवर्तन के लिए बेहतर प्रयास होगा। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आज की स्थिति दयनीय है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि अधिकतर छात्र, जिनके माता-पिता सबल हैं, वे दूसरे राज्यों के शिक्षण संस्थानों में जाकर शिक्षा ग्रहण करना पसंद करते हैं। शिक्षा के लिए दूसरे राज्यों में जाना और इस राज्य में आना राष्ट्रीय एकता के विकास में एक सकारात्मक कदम है। लेकिन, संस्थानों की खस्ताहाली की वजह से छात्रों को बाहर जाना पड़े, यह दुखद है।

वर्तमान स्थिति के कारणों की समीक्षा की जाये, तो एक नहीं, इसके अनेक कारण हैं। शिक्षा के विकास के लिए नयी पहल की भी आवश्यकता है। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक को हर तरह से मजबूत करना होगा। शिक्षा को मजबूत करने से अभिप्राय गुणवत्ता से है और गुणवत्ता के लक्ष्य की प्राप्ति तभी संभव है, जब हमारे शिक्षक भी उच्च गुणवत्ता से पूर्ण हों, कर्मठ हों और अपने विद्यार्थियों के प्रति समर्पित हों। सरकारी तंत्र के शिक्षकों का वेतनमान भी पहले की तुलना में बढ़ा है। अब यह शिकायत नहीं की जा सकती कि वेतनमान या अन्य सेवा शर्तों में शिक्षकों के साथ अन्याय हुआ है। हो सकता है कि कुछ वर्गों में कमी हो, लेकिन इसमें सुधार किया जा सकता है।

मेरा यह मानना है कि अधिकतर शिक्षक योग्य हैं और उन्हें नियमानुसार प्रोत्साहित कर उनकी योग्यता का भरपूर लाभ छात्रों तक पहुँचाया जा सकता है। इसके लिए सशक्त व्यवस्था की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए जिलाधिकारी के मुख्य कार्यों में प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के कार्यों को प्रमुखता के साथ जोड़ा जाये। उसी प्रकार महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में प्रभावी व्यवस्था बनाने की जिम्मेवारी प्राचार्य व कुलपति को दी जानी चाहिए। इन संस्थानों को नजरअंदाज कर हम आगे नहीं बढ़ सकते। यदि हम गतिमान तरीके से योजना बनाकर आगे बढ़ते हैं, तो यहाँ के संस्थान दिल्ली विश्वविद्यालय, जेएनयू व हैदराबाद विश्वविद्यालय की तरह मुकाम पा सकेंगे।

बिहार ही ऐसा प्रदेश है, जहाँ के अभिभावक जमीन-जायदाद बेच कर अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। यह किसी सभ्य समाज का नैतिक दायित्व बनता है कि जो संस्थाएं दयनीय स्थिति में हैं, उनमें सुधार किया जाये। साथ ही पाठ्यक्रमों में बदलाव की भी आवश्यकता है। बदलते हुए माहौल में 50 वर्ष पुराने पाठ्यक्रम नहीं रह सकते। राज्य में आईआईटी जैसे संस्थानों

1 4 जून, 2018

की स्थापना की गयी है। केन्द्रीय विश्वविद्यालय भी बिहार को मिल गया है। विश्वविद्यालय की मुख्य शाखा के अलावा भी अन्य शहरों में इसके केन्द्र स्थापित किये जायें, ताकि ज्यादा-से-ज्यादा छात्रों को इसका लाभ मिल सके।

प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा में पूर्णत: अराजकता व्याप्त है। बिहार में प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में ह्रास और अराजकता विभिन्न प्रकार के अधिनियमों की लगातार अनदेखी और उपेक्षा से शिक्षा की गुणवत्ता ही लगातार क्षीण नहीं हो रही है, बल्कि सम्पूर्ण शिक्षा क्षेत्र में एक अराजकता जैसी स्थिति भी उत्पन्न हो गयी है। हमारे राज्य में शिक्षण एवं शिक्षा की गुणवत्ता बहुत कमजोर है। यह परीक्षाफल राज्य के लिए गंभीर चिन्ता का विषय है। बिहार के राजनीतिक दलों ने शिक्षा को कभी बड़ा मुद्दा नहीं बनाया है। प्राय: सभी सरकारों ने 25 वर्षों में शिक्षा की उपेक्षा की है और अंतत: उसे 'व्यापारियों' के हवाले कर दिया है। क्या वे शिक्षा के महत्त्व से परिचित नहीं हैं? शिक्षा में पारदर्शिता, सहभागिता और जवाबदेही जैसे प्रावधानों को शामिल करना आवश्यक है। शिक्षा को जनोन्मुखी बनाने की आवश्यकता है। राज्य सरकार शिक्षा में सुधार के लिए प्रतिबद्धता जता तो रही है पर शिक्षण संस्थानों में अध्यापकों की भारी कमी से शिक्षण कार्य बुरी तरह से प्रभावित है।

❖❖❖

उच्च शिक्षा दलित एवं गरीब पिछड़ी जाति की पहुँच से बाहर[1]

इन दिनों देश में जहाँ प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के प्रयास तेज हो रहे हैं, वहीं तकनीकी समेत उच्च शिक्षा समाज के गरीब और दलित तबके की पहुँच से बाहर होती जा रही है। इसका एक सबसे बड़ा कारण उसका अत्यधिक महंगा हो जाना और शिक्षा ऋण के लिए व्यय के नाम पर दी जाने वाली बैंकिंग सुविधा क्रेडिट कार्ड का एक खास वर्ग तक सिमट जाना है। हालांकि उच्च शिक्षा के महंगे होने के मुद्दे पर काफी बहस हो चुकी है और उससे निपटने के लिए कई विशेषज्ञों ने शिक्षा ऋण की सुविधा का लाभ उठाने का उपाय सुझाया है। लेकिन यदि हम राज्य के दूर दराज के ग्रामीण क्षेत्रों की वास्तविकता पर नजर डालें तो पता चलता है कि कर्ज लेकर पढ़ाई करने की स्थिति इतनी आसान नहीं है, जितनी कि कहने-सुनने में लगती है। शिक्षा ऋण क्रेडिट कार्ड की यह हकीकत एक-दो उदाहरणों तक सीमित नहीं है।

अगर गहराई से अध्ययन किया जाए तो राज्य के सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे कई उदाहरण मिल जाएंगे, जहाँ अनेक प्रतिभावान दलित युवक-युवतियाँ आर्थिक तंगहाली के चलते ऊँची और अच्छी पढ़ाई के अपने सपने पूरे नहीं कर पाते। शिक्षा ऋण का जिस तरह प्रचार-प्रसार किया जा रहा है, वास्तविक धरातल पर उसके लाभ से राज्य के गाँवों में रहने वाले दलित और गरीब तबके के लोग पूरी तरह वंचित है। आरक्षण के जरिये दलित, आदिवासी और पिछड़े समुदायों के छात्रों को शिक्षा और विकास के अवसर उपलब्ध कराने के प्रावधानों के बावजूद दिनोंदिन महंगी होती तकनीकी समेत उच्च शिक्षा उनकी पहुँच से बाहर होती जा रही है। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि राज्य के दलित तबके के ज्यादातर लोग आर्थिक रूप से कमजोर हैं। शिक्षा का उनकी आर्थिक स्थिति से सीधा संबंध है। बल्कि सच्चाई तो यह है कि स्कूली स्तर पर बीच में ही पढ़ाई छोड़ने के चलते इस समुदाय के बच्चे बड़ी तादाद में शिक्षा से बाहर हो जाते हैं। कुछ बच्चे अगर आगे की पढ़ाई कर पाते हैं और उनका उच्च शिक्षा के तकनीकी संस्थानों में प्रवेश हो भी जाता है तो वहाँ का शिक्षण शुल्क उनकी क्षमता से बाहर होता है।

राज्य में दलित समुदाय की आबादी साढ़े सोलह फीसद है, लेकिन इनके पास कुल कृषि भूमि का नाममात्र हिस्सा है। उनकी इस आर्थिक दशा की रोशनी में अगर हम दलित समुदाय के बीच शिक्षा की स्थिति को देखें तो पाते हैं कि राज्य में जहाँ प्राथमिक शिक्षा पाने वाले दलित समुदाय के बच्चों की संख्या 2 करोड़ हैं, वहीं उच्च माध्यमिक कक्षा तक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या 11 लाख तक सिमट जाती है। इंजीनियरिंग और मेडिकल की पढ़ाई करने वाले दलित समुदाय के छात्रों की संख्या तो और भी कम है। इस तरह आरक्षण के प्रावधानों के बावजूद उच्च शिक्षा तक उनकी पहुँच सीमित है। उच्च शिक्षण संस्थाओं के शुल्क में बढ़ोतरी के समय यह तर्क दिया जा रहा था कि गरीब बच्चों को शिक्षा ऋण के जरिये बैंकों से मदद मिलेगी, जिससे आर्थिक अभाव के चलते न पढ़ पाने की स्थिति नहीं आयेगी। लेकिन उनमें दलित और गरीब ग्रामीण इलाकों के विद्यार्थियों को उसका वास्तविक लाभ नहीं मिल रहा है। इस तबके के ज्यादातर विद्यार्थी गाँवों में रहते हैं और उनके पास कोई सम्पत्ति नहीं है।

❖❖❖

1 13 जून,2017

नई शिक्षा नीति में प्राथमिकताएं[1]

अभी तक सरकार द्वारा अपनायी जाने वाली प्राथमिक शिक्षा नीति दोषपूर्ण है जिसका कारण यह है कि नीति वास्तविकता पर आधारित न होकर आदर्शवादिता पर आधारित है।

शिक्षा का प्रशासन दोषपूर्ण है:- (1) शिक्षा में पाठ्यक्रम संबंधी समस्या है। आज के पाठ्यक्रम संकीर्ण, कठोर, अरुचिकर एवं एक-मार्गीय है। (2) शिक्षा में कुछ प्राकृतिक कठिनाइयाँ हैं, जैसे गाँवों का छोटा होना और दूर-दूर होना। इससे हर गाँव में प्राथमिक विद्यालय नहीं खोले जा सकते हैं। (3) शिक्षा की सबसे व्यापक समस्या धन का अभाव है। सरकार अन्य देश की तुलना में शिक्षा में (प्राथमिक शिक्षा) कम व्यय करती है। (4) प्राथमिक शिक्षा में प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव है। (5) पर्याप्त संख्या में विद्यालयों का न होना है। (6) शिक्षा के क्षेत्र में अपव्यय और अवरोधन संबंधी समस्या है। (7) शिक्षा में प्रेरणा का अभाव पाया जाता है। समाधान:-(1) सरकार की शिक्षा नीति को वास्तविकता पर आधारित बनाना चाहिए वरना लक्ष्य से विमुख हो जाएंगे। (2) सरकार को शिक्षा के प्रशासन पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। (3) शिक्षा के क्षेत्र के गलत पाठ्यक्रम को सुधारा जाए। विभिन्न आयोगों के सुझावों पर विचार किया जाना चाहिए। (4) शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली कठिनाइयों का निवारण उपयुक्त ढंग से किया जाना चाहिए। (5) सरकार को शिक्षा के लिए पर्याप्त बजट का प्रावधान करना चाहिए। (6) अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिससे योग्य अध्यापकों की पूर्ति की जा सके। (7) पर्याप्त विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए।

वर्तमान शिक्षा क्षेत्र में सरकार द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों की भरमार है। आवश्यकता है इनके क्रियान्वयन की। यदि कार्यक्रमों का क्रियान्वयन उचित ढंग से किया जाए तो प्राथमिक शिक्षा की तस्वीर आने वाले दिनों में कुछ और होगी। अत: इस मामले में अभी से जागरूकता लानी होगी तभी प्राथमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण का सपना पूरा हो जायेगा।

सभी के लिए गुणवत्तापरक शिक्षा राष्ट्र के समक्ष एक साहसिक कार्यभार है। संविधान के प्राक्कथन में और मौलिक अधिकारों से सम्बद्ध भाग में ही अंकित है कि समानतापूर्वक जीने का अधिकार और सामाजिक न्याय के साथ जीने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को है। सरकार चाहती है कि ज्यादा से ज्यादा लोग उच्च एवं तकनीकी शिक्षा हासिल करें। इससे उनके लिए देश में ही नहीं विदेशों में भी रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। शिक्षा की बेहतर व्यवस्था के जरिये रोजगार के क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए प्रचुर संभावनाएं हैं।

उच्च शिक्षा तंत्र में ज्यादा स्वायत्तता, स्वतंत्रता और लचीलेपन की जरूरत है। उच्च शिक्षा सृजनात्मक, उपयोगी, असरदार और प्रासंगिक होनी चाहिये। देश में समुचित सुविधाएं और संस्थाएं पर्याप्त नहीं है, इसलिये बड़ी संख्या में प्रखर बुद्धि के युवक विभिन्न विधाओं में,

---

1 04 नवम्बर, 2017

विशेषकर सूचना प्रौद्योगिकी में, इंजीनियरिंग एवं उच्च शिक्षा में ज्ञान राज्य के बाहर से प्राप्त करते हैं। आज यह जबरदस्त भावना हो गयी है कि विश्वविद्यालयों और कॉलेजों से उच्च स्नातकोत्तर उत्तीर्ण की कुशलता जॉब मार्केट की अपेक्षाओं से मेल नहीं खाती हैं, ये प्राप्त शिक्षा (डिग्री) के अनुपात में कर्तव्य पर खरे नहीं उतरते हैं। एक ओर तो हम शिक्षित बेरोजगारों की इतनी बड़ी संख्या नहीं चाहते और दूसरी ओर हमारे पास जो कार्य (जॉब) हैं उनके लिये अनुकूल उम्मीदवार उपलब्ध नहीं हैं।

हमारे जैसे विकासशील देश में नियोजन की दृष्टि से अयोग्य स्नातक बेकारी की समस्या से भी बड़ी समस्या प्रस्तुत कर देते हैं। यह आज के स्पर्धा भरे वातावरण की मांग है। उच्च शिक्षा की उत्कृष्टतर गुणवत्ता/अर्थात् राष्ट्रीय एवं विश्व बाजार में केवल वे ही संस्थायें प्रतियोगिता में आने की स्थिति में होंगी जो निरंतर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करें। इस समय इसकी आवश्यकता है कि शैक्षणिक क्षेत्र में अन्य विषयों के अतिरिक्त निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार-विमर्श कर एक ठोस कार्य योजना प्रस्तुत की जाए:- (1) आधुनिकीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में उच्च शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास। (2) ग्रामीण भारत के संदर्भ में उच्च शिक्षा के विकास में विश्वविद्यालय की भूमिका। (3) उच्च शिक्षा के बदलते परिदृश्य में शिक्षकों की भूमिका और कर्तव्यशीलता। (4) देश में कॉलेज और विश्वविद्यालय प्रशासन के उद्‌भव, विकास और निर्माण (5) आधुनिकीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण एवं तकनीकी विकास के युग में ग्रामीण भारत के मद्देनजर ग्रामीण कॉलेज की राष्ट्र निर्माण में भूमिका।

❖❖❖

शिक्षा में असमानता[1]

शिक्षा में समानता लाने के लिए नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत पिछड़े एवं दलित वर्ग को प्राथमिकता देकर संवैधानिक दायित्वों का केन्द्र और राज्य सरकार निर्वहन करे। शिक्षा समता लाने का सबसे बड़ा उपकरण है और समाज के सभी वर्गों के लिए उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा को सुनिश्चित कर हम विकास को अधिक से अधिक समग्र बना सकते हैं। एक बड़े लक्ष्य की नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत इस पर अधिकाधिक जोर दिया जाना आवश्यक होगा।

सर्वशिक्षा अभियान के माध्यम से देश ने इस दिशा में एक अच्छी शुरुआत की है। अब राष्ट्र को अपना ध्यान शिक्षकों के बेहतर प्रशिक्षण एवं उनकी जिम्मेदारियों के निर्धारण के जरिये शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने पर केन्द्रित करना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा से परे जाकर हमें माध्यमिक शिक्षा, वैकल्पिक शिक्षा एवं कौशल को भी मजबूत बनाना होगा। इसके लिये केन्द्र एवं राज्य सरकारों को अच्छी-खासी मात्रा में संसाधनों का निवेश करना होगा। ''दिल्ली स्कूल ऑफ इकौनोमिक्स'' और 'इन्डियन सोसल इन्स्टीच्यूट्'' के सर्वेक्षण ने यह निर्दिष्ट किया कि 80 प्रतिशत ने शिक्षा के महत्व को सशक्तीकरण के माध्यम के रूप में माना है। वस्तुतः इन बच्चों के पास पर्याप्त समय बचता है; किन्तु, स्कूलों, शिक्षकों और मूलभूत खर्चों की अनुपलब्धता के कारण ये बच्चे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। घटिया आधारभूत संरचना दूसरा बड़ा भयावह कारण है। प्राथमिक स्तर पर ही शिक्षा के अधिकार को नकारने का परिणाम इन बच्चों के लिये छूट गये या खो गये अवसरों में ही तो होता है-उच्चतर शिक्षा में आरक्षण के बावजूद। इन सीमान्तक समूहों पर गौर से ध्यान देने की इसलिये आवश्यकता है कि शिक्षा की पहुँच, उपलब्धता और निरंतरता सुनिश्चित की जा सके।

'बिजनेस वीक' द्वारा प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय स्तर पर छात्रों के पढ़ाई छोड़ घर बैठ जाने की दर पर हाल में प्रकाशित रिपोर्ट चौंकाने वाली रही। इसकी चौंकाने वाली स्थिति तो यह है कि पहले वर्ग में नामांकन कराने वाले हर दो बच्चों में से एक बच्चा विद्यालय में आठवाँ वर्ष पूरा करने के पहले ही पढ़ाई छोड़ देता है। अन्य पचास प्रतिशत बच्चे अगले दो वर्ष में पढ़ाई छोड़ बैठते हैं। अतः सर्वप्रथम संविधान के प्रावधान के अंतर्गत 6-14 वर्ष के बच्चों के लिये निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त धन आबंटित हो। शिक्षा के सभी स्तरों पर इन समूहों के छात्रों को पर्याप्त आर्थिक सहायता दी जाए। इन समूहों में गुणात्मक शिक्षा के लिये विशेष व्यवस्था को प्राथमिकता दी जाए। इतना ही नहीं, उच्च विद्यालय स्तर से आगे पढ़ाई जारी रखने वाले छात्रों में से केवल एक तिहाई छात्र ही डिग्री प्राप्त कर पाते हैं। ऐसी स्थिति की उम्मीद कभी नहीं की गई थी। यह एक स्तंभित करने वाला तथ्य है जो इतना स्मरण करने से ही स्पष्ट हो जाता है कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एवं अत्यंत पिछड़ी जाति के बहुसंख्यक परिवार, जिनकी आबादी 37 करोड़ से अधिक है उनमें से अधिकतर बटाईदार या कृषि-मजदूर

1 30 दिसम्बर, 2018

एवं अन्य असंगठित क्षेत्र में कार्यरत गरीबी रेखा से नीचे बसर करनेवाले परिवार के लोगों का है, उन्हें इन आरक्षणों से कोई लाभ मिलता नहीं है। वे उच्च विद्यालय से आगे कभी बढ़ ही नहीं पाते।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय की रिपोर्ट, जो ''शिक्षा की चुनौती: नीति विषयक स्थिति पर प्रस्तुत हुई है उसके अनुसार 60 प्रतिशत बच्चे श्रेणी-1 और 5 के बीच पढ़ाई छोड़ बैठते हैं। प्रथम श्रेणी में नामांकन करानेवाले 100 बच्चों में से केवल 23 बच्चे सातवाँ वर्ग तक पहुँच पाते हैं। अभी पढ़ाई छोड़ बैठ जाने वाले छात्रों की संख्या क्रमश: वर्ग 1 और 5 के बीच तथा 5 और 7 के बीच घटकर 41.34 प्रतिशत और 58.61 प्रतिशत पर पहुँच गई। बात ऐसी नहीं है कि इस दिशा में सुधार लाने के लिए प्रयास नहीं किये गये हैं। सुधार हुये भी हैं किन्तु गति बहुत धीमी रही है। कक्षा छः में प्रवेश के समय बच्चों की औसत उम्र बारह वर्ष होती है और यही वह अवस्था होती है जब बच्चा मजदूरी करने लायक हो जाता है या घर पर ही बकरी या अन्य जानवरों की देखभाल करता है। उनमें 49.06 प्रतिशत दलित एवं 32.69 प्रतिशत आदिवासी भूमिहीन कृषि मजदूर हैं। जाहिर है जिन्हें दो-जून का पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता, वे महंगाई के इस दौर में अपने बच्चों की शिक्षा का भार वहन नहीं कर सकते।

संविधान में पर्याप्त प्रावधानों और अन्य कानूनों के बावजूद यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं अत्यन्त पिछड़े वर्गों के प्रति विषमता एवं सामाजिक तौर पर अन्याय का क्रम जारी है। गहन परीक्षण के उपरांत पाया गया है कि जो जातियाँ प्रभावशाली तथा बहुसंख्यक थीं उन्होंने धीरे-धीरे सेवा में नियोजन और शिक्षा के क्षेत्र तक सभी निर्धारित सुविधाएँ अपने तक सीमित करने में सफलता हासिल कर ली। नतीजा है कि इससे संबंधित वर्ग की जो जातियाँ लाभ से वंचित रह गई हैं उनके बीच वर्तमान व्यवस्था के चलते असमानता बढ़ती गई है। आरक्षण का लाभ वास्तविक लोगों को नहीं मिल पा रहा है और जब नहीं मिल पा रहा है तो आरक्षण का क्या औचित्य बनता है? हमारा ढांचा इस रूप में विकसित हुआ है कि समाज के कमजोर तबके के लिए आगे बढ़ने का रास्ता नहीं है। अगर हमारा संविधान समानता के अधिकार को मानता है तो उसे इस तरह के भेदभाव करने का हक नहीं है। लेकिन समाज में कई तरह के पूर्वाग्रह काम करते हैं और इसके शिकार कमजोर वर्ग के लोग अधिक होते हैं।

❖❖❖

शिक्षा पर जीडीपी का 06 प्रतिशत व्यय[1]

1966 में ही कोठारी आयोग ने अनुशंसा की थी जीडीपी का 06 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया जाना चाहिए जो अभी तक किसी पार्टी ने इच्छाशक्ति के साथ कार्यान्वित नहीं किया। आयोग ने समान शिक्षा लागू करने की अनुशंसा की थी, जबकि वास्तविकता यह है कि आज भी उच्च शिक्षा पर जीडीपी का मात्र 0.34 प्रतिशत खर्च किया जा रहा है। आंकड़े यह बताते हैं कि जीडीपी के अनुपात में उच्च शिक्षा पर बजट लगातार घटता जा रहा है। इस समय राज्य और केन्द्र सरकार शिक्षा पर 3.49 प्रतिशत ही खर्च कर पा रही है। जिसके परिणाम स्वरूप भारत की शिक्षा प्रणाली में विश्वस्तरीय सुधार नहीं हो पाया है।

आज भी भारत में तकनीकी प्रावैधिकी मेडिकल तथा अन्य संस्थानों में शोध कार्य का स्तर विश्व स्तर पर सबसे नीचे माना जाता है। भारत की किसी सरकार द्वारा विश्व स्तरीय शिक्षा में भारत की प्रमुखता की दावेदारी स्थापित नहीं हो पायी है। शिक्षा प्रणाली में अनेक त्रुटियाँ एवं कमजोरियाँ व्याप्त हैं। विश्वस्तरीय शिक्षा की गुणवत्ता नहीं होने के बावजूद भी अब तक नई शिक्षा नीति नहीं बन पाई है, जो शिक्षा और साक्षरता के क्षेत्र के लिए एक खतरनाक पहलू है।

शहर और गाँव के मध्य साक्षरता दर में आज भी 22 प्रतिशत का अंतर बना हुआ है। दलित एवं वंचित वर्गों में शिक्षा नहीं पहुँच पायी है। 65 प्रतिशत आदिवासी और 54 प्रतिशत दलित अब भी निरक्षरता के अंधकार में जीने के लिए अभिशप्त हैं। दुखद पहलू है कि इन समुदायों के साक्षरों में भी 7वीं कक्षा से आगे की पढ़ाई करने वाले नगण्य हैं। उसी तरह महिला साक्षरता दर बहुत ही धीमी गति से बढ़ रही है। शहर हो या गाँव सभी जगह महिला साक्षरता के प्रति उदासीनता व्याप्त है। यह हर नागरिक के लिए निश्चय ही चिन्ता का विषय है।

हाल में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने प्रधानमंत्री को रिपोर्ट सौंपी है। वह शिक्षा और युवा वर्गों के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझावों को समेटने के बावजूद कई ऐसे सवाल पैदा करती है, जो आनेवाले समय को सुखद बनाने के बजाय जटिल और तकलीफ देह बनायेगी। आजादी के 70 साल बाद भी देश में विश्वविद्यालय जाने वाले आयु वर्ग की कुल जनसंख्या के सिर्फ 7 प्रतिशत छात्रों को ही दाखिला मिल पाता है, जिससे देश में शिक्षा का विस्तार न सिर्फ थम सा गया है बल्कि उसका स्तर भी गिरता जा रहा है। उच्च शिक्षा से जुड़े विभिन्न संस्थाओं द्वारा बार-बार चेतावनी दी जा रही है कि विश्वविद्यालयों और उच्च शैक्षणिक संस्थानों की संख्या में बढ़ोतरी कम की गई और उनकी गुणवत्ता में सुधार नहीं किया गया है तो अर्थव्यवस्था की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए देश में कुशल और प्रशिक्षित प्रोफेशनलों की कमी हो जायेगी। शिक्षा प्रणाली का न केवल बाहरी रूप बदलना चाहिये बल्कि उसके कटेन्ट और सरोकार में भी व्यापक परिवर्तन आना चाहिये। भारत ने अपने ही बच्चों के साथ पर्याप्त भेदभाव किया है। आज पूरे देश में बहुस्तरीय

1 03 अप्रैल, 2019

शिक्षा व्यवस्था कायम है। बच्चे के परिवार की जो सामाजिक–आर्थिक हैसियत होती है, उसे शिक्षा भी उसी स्तर की मिल रही है।

अभी तक सामाजिक न्याय एवं समान शिक्षा प्रणाली की घोषणा लागू नहीं होना अत्यन्त ही विस्मयकारी है। फिर शिक्षा की भाषा और गुणवत्ता, स्कूल की प्रकृति सब मिलकर बच्चे का भविष्य तय कर देते हैं, जिसमें बच्चों को मिलने वाले रोजगार की प्रकृति और चरित्र भी शामिल है। सरकार ने शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया है, लेकिन इस कानून के तहत शिक्षा व्यवस्था में बढ़ती विषमता, भेदभाव और बाजारीकरण की प्रवृत्ति पर रोक लगाने की कोई व्यवस्था नहीं की गई है।

आज एक ओर देश के तमाम हिस्सों में सरकारी स्कूल व्यवस्था व सार्वजनिक उच्च शिक्षा संस्थानों को शिक्षा के बाजार को खड़ा करने के लिए सुनियोजित ढंग से बदहाली व बंदी के रास्ते पर धकेला जा रहा है, वहीं दूसरी ओर, निजी संस्थानों के संदर्भ में पहुँच, समानता गुणवत्ता और सामाजिक न्याय को लेकर जनसामान्य का अनुभव घोर असंतोष व हताशा पैदा कर रहा है। दलित–आदिवासी शिक्षा की स्थिति भयावह है।

❖❖❖

सरकारी स्कूलों की हालत[1]

एक रिपोर्ट में कहा गया है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले 8वीं के 71.2 फीसद बच्चे दूसरी कक्षा का पाठ भी ठीक से नहीं पढ़ पाते। महज 72 फीसद 8वीं की छात्राएं दूसरी का पाठ पढ़ पाती है। असर की रिपोर्ट में बिहार के सभी जिलों के ग्रामीण स्कूलों को सर्वेक्षण की परिधि में रखा गया है। रिपोर्ट के अनुसार 14 से 16 वर्ष के बच्चों के सर्वे में यह पाया गया कि 65.9 फीसद लड़के ही भाग के सवाल का हल निकाल सकते हैं, जबकि 54.3 फीसद लड़कियाँ भाग करने में सक्षम हैं। समाज के कमजोर वर्गों के उन बच्चों के बारे में भी सोचना चाहिए जो अल्पपोषित हैं और उनमें से कुछ प्रतिशत ही 14 वर्ष तक की अपनी शिक्षा पूरी कर पाते हैं जबकि अब शिक्षा प्रत्येक भारतीय बच्चों का मौलिक अधिकार है। अनिवार्य शिक्षा अधिकार कानून लागू होने के बाद नामांकन की दर में तो खासी बढ़ोतरी हुई है, पर पढ़ाई–लिखाई का स्तर बेहद सोचनीय है। देश में 0–14 आयु वर्ग के कुल 36 करोड़ बच्चे थे जो पूरी आबादी के 35.3 प्रतिशत् हैं। 5–14 आयु वर्ग में ये बच्चे 25.10 करोड़ थे (पूरी आबादी का 24.6 प्रतिशत्) इन्हीं बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का कानून बनकर आया है। भारत सरकार के अद्यतन आंकड़ों के अनुसार 18.78 करोड़ बच्चे 13 लाख स्कूलों में पढ़ रहे हैं तथा इन्हें पढ़ाने में लगभग 58.16 लाख अध्यापक कार्यरत हैं। 80.51 प्रतिशत सरकारी तथा 19.49 प्रतिशत निजी प्रबंधन द्वारा संचालित किये जा रहे हैं। वर्ष 2018 तक की रपट के अनुसार कक्षा 1 से 5 तक के नामांकन में 72.13 प्रतिशत सरकारी विद्यालयों में तथा 27.87 प्रतिशत निजी विद्यालयों में था। 6 से 8 तक के बच्चों का नामांकन सरकारी विद्यालयों में 63.10 प्रतिशत रहा तथा निजी विद्यालयों में 36.90 प्रतिशत हो गया अर्थात् हमारे सरकारी विद्यालयों से बच्चे निजी अपर प्राइमरी विद्यालयों में ज्यादा हो गये। 1 से 8 तक कुल बच्चे सरकारी विद्यालयों में 69.51 प्रतिशत तथा निजी विद्यालयों में 30.42 प्रतिशत नामांकित हुए हैं।

सरकारी विद्यालयों में धीरे–धीरे नामांकन का घटता अनुपात तथा निजी विद्यालयों में बढ़ता अनुपात एक चेतावनी के रूप में उभरकर सामने आया है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के ताजा आंकड़े बताते हैं कि पिछले तीन वर्षों में बच्चों की कमी के कारण देश में लगभग 21 हजार सरकारी स्कूल बंद हो गये हैं। ऐसा इसलिए भी हुआ है कि काफी अभिभावक अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों से निकालकर निजी विद्यालयों में डाल रहे हैं। इसका कारण चाहे जो भी हो हम सबको इस पर गंभीरता से चिंतन करना चाहिये। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि मौजूदा शिक्षा कानून भारत में सदियों से चली आ रही सामन्ती, वर्ण भेद, शोषक व्यवस्था का ही पोषक है। सदियों से अमीरों के लिए अलग और गरीबों के लिए अलग–अलग शिक्षा व्यवस्था बनाकर रखी गयी है। ऐसा इसलिए किया गया है कि समाज में व्याप्त गैर बराबरी ''हजूर और मजूर'' के बीच अंतर बना रहे तथा समाज में बराबरी की स्थिति न आने पाये।

1 16 जनवरी, 2019

देश की आधी से अधिक आबादी गाँवों, बस्तियों और सुदूर क्षेत्रों में रहती है और यहाँ तक सरकार की नीतियों और प्रयासों की पहुँच नाम मात्र ही है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एन॰सी॰ई॰आर॰टी॰) द्वारा कराये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार देश भर की केवल 50 प्रतिशत बस्तियों में प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध हैं जिनमें ज्यादातर बुनियादी सुविधाओं के अभाव के कारण केवल नाम के विद्यालय हैं। लगभग एक तिहाई विद्यालय मात्र एक अध्यापक के सहारे ही चल रहे हैं। प्राथमिक शिक्षा की सर्वसुलभता के मार्ग में कुछ सामाजिक और आर्थिक बाधाएं भी हैं, जिनके चलते भी सरकारी प्रयास विफल हो जाते हैं। मुख्यतः ग्रामीण अंचलों में विद्यालय छोड़ने (ड्राप आउट) की समस्या के कारण शिक्षा का वांछित विस्तार नहीं हो पाता है। विभिन्न कारणों से देश में 39.37 प्रतिशत बच्चे प्राथमिक स्तर पर ही विद्यालय छोड़ देते हैं। एक अध्ययन के अनुसार 34 प्रतिशत परिवार कपड़ों, पुस्तकों और अन्य चीजों के जुगाड़ की आर्थिक अक्षमता को बच्चों को विद्यालय न भेजने का कारण समझते हैं। परिवार की आय बढ़ाने के लिए बच्चों के बाहर काम करने की जरूरत भी बच्चों के स्कूल न जाने का एक प्रमुख कारण है।

❖❖❖

संस्कृत विद्यालयों के प्रति दुर्भावना[1]

संस्कृत भाषा भारत की संस्कृति के मूल में रही है और उस भाषा के बिना भारत की कल्पना नहीं की जा सकती। संस्कृत भाषा एवं उसके साहित्य की प्रचुरता एवं विशालता को देश–विदेश के विद्वानों ने स्वीकार किया है। किन्तु यह बड़ा ही दुर्भाग्पूर्ण और विस्मयकारी है कि बिहार सरकार ने अपनी सोच की विकृति, नापसंदगी और भेदभावमूलक नीति के कारण 1956 के पूर्व स्थायी रूप से प्रस्वीकृत 86 संस्कृत विद्यालयों की मान्यता समाप्त करने संबंधी निर्णय लिया जिससे संस्कृत के अनुरागियों को ही नहीं, बल्कि आम लोगों को भी गहरा धक्का लगा है।

दिसम्बर 1989 में उक्त 86 विद्यालयों सहित 429 संस्कृत विद्यालयों का राजकीयकरण किया गया था। अत: उनकी प्रस्वीकृति वापस लेते समय विभिन्न स्थितियों पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए था। खासकर 86 विद्यालयों की प्रस्वीकृति वापस करने संबंधी निर्णय को अवैध और नियम विरोधी इसलिए भी मानना है कि संस्कृत बोर्ड और सरकार उन विद्यालयों की प्रस्वीकृति समाप्त नहीं कर सकती जिन्हें बोर्ड की स्थापना के पहले स्वीकृति दी जा चुकी थी। संस्कृत बोर्ड उन विद्यालयों की ही प्रस्वीकृति, मान्यता और अवधि–विस्तार वापस लेने के लिए प्राधिकृत है जिनकी मान्यता बोर्ड ने दी है। उसे बोर्ड की स्थापना से पहले के विद्यालयों की प्रस्वीकृति वापस लेने का अधिकार नहीं है।

संस्कृत बोर्ड के अधिनियम 1981 अनुच्छेद 25 के उपखंड (4) में यह स्पष्ट है कि संस्कृत बोर्ड किसी विद्यालय की मान्यता उसकी मान्यता–अवधि समाप्त होने पर ही वापस ले सकती है। अभी विद्यालयों की प्रस्वीकृति या मान्यता समाप्त करने के आदेश में सरकार की ओर से कहा गया है कि वे विद्यालय प्रस्वीकृति की शर्त्तों को पूरा नहीं करते। किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रस्वीकृति की शर्त्तें नये विद्यालयों की मान्यता के लिए निर्धारित की गयी हैं। उन शर्त्तों को 1956 के पूर्व अथवा बोर्ड की स्थापना से पहले प्रस्वीकृत विद्यालयों पर नहीं लादा जा सकता है।

सरकार ने जिन विद्यालयों की प्रस्वीकृति वापस लेने का आदेश अभी निकाला है वह पटना उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध है, क्योंकि 1995 में जब राज्य सरकार ने उन विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों एवं अन्य कर्मियों का वेतन रोक दिया था तो उस समय उच्चतम न्यायालय ने सरकार को स्पष्ट आदेश दिया था कि वैसे विद्यालयों में नियुक्त शिक्षकों एवं शिक्षाकर्मियों को तुरंत भुगतान किया जाए। इस आदेश के विरुद्ध राज्य सरकार ने दिसम्बर, 2001 में उच्चतम न्यायालय में पुनर्विचार याचिका दायर की, जिसे भी उच्चतम न्यायालय ने खारिज कर दिया। उक्त आदेश के बावजूद संस्कृत विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों और शिक्षाकर्मियों का भुगतान तो नहीं किया गया, उलटे उनके प्रति दुर्भावना से ग्रस्त होकर सरकार ने

1 22 अगस्त, 2002

विद्यालय की मान्यता ही समाप्त कर दी है।

जहाँ सरकार को सहृदयता और मानवीयता तथा संस्कृत के गौरवपूर्ण राष्ट्रीय महत्व को देखते हुए संस्कृत विद्यालयों के शिक्षकों और कर्मियों को सारी सुविधाएँ अनुमान्य करानी थी, वहाँ विद्यालयों की मान्यता रद्द कर सरकार ने संस्कृत भाषा और गौरवमयी परंपरा को अपमानित करने का कार्य किया है। अभी जैसी परिस्थिति बना दी गयी है, उसके अनुसार सरकार बार-बार गरीब शिक्षकों एवं शिक्षाकर्मियों को न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए बाध्य और परेशान कर रही है।

सरकार को चाहिए कि वह संस्कृत शिक्षा की रक्षा करते हुए संस्कृत विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों और कर्मियों के हित में विद्यालयों की मान्यता बरकरार रखे और उन्हें सभी आवश्यक भुगतान शीघ्र करे। गरीब शिक्षकों को बार-बार न्यायालय तक दौड़ने या हताशा में जीवन लीला समाप्त करने की परिस्थिति नहीं बनने दे।

❖❖❖

मौलाना मजहरूल हक अरबी फारसी विश्वविद्यालय[1]

अभी तक मौलाना मजहरूल हक विश्वविद्यालय को आधुनिक विश्वविद्यालय का ढाँचा एवं स्वरूप नहीं दिया जा सका है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना 1990 की जनवरी में अधिनियम पारित कर मेरे शासनकाल में की गई। पिछले शासनकालों में अल्पसंख्यक एवं उर्दू संबंधित कार्यों को लगातार शिथिल रखा गया। यह बड़ा ही समीचीन एवं न्यायोचित लगता है कि अभी तक संचिकाओं में ही कैद इस विश्वविद्यालय को सरजमीन पर अन्य विश्वविद्यालयों की समकक्षता दी जाए। मौलाना मजहरूल हक अरबी एवं फारसी विश्वविद्यालय को आधुनिक विश्वविद्यालय का स्वरूप देने के साथ-साथ और भी उपयोगी बनाने की दृष्टि से सभी मदरसों, अल्पसंख्यक महाविद्यालयों, सभी अल्पसंख्यक तकनीकी, मेडिकल एवं व्यावसायिक महाविद्यालयों तथा अध्ययन-अध्यापन से संबंधित शैक्षणिक संस्थाओं को भी इस विश्वविद्यालय के अधीन कर दिया जाए। यह विश्वविद्यालय सुदूरवर्ती शिक्षा प्रणाली का भी आरंभ करे। इस विश्वविद्यालय के अंतर्गत सभी मदरसों के अधीन इन्टर, डिग्री एवं स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई शिक्षण-प्रशिक्षण की संस्था की मान्यता के साथ-साथ अधीक्षण-निरीक्षण, परीक्षा शोध एवं अन्वेषण इस विश्वविद्यालय के अंतर्गत लाया जाए। इस विश्वविद्यालय के अंतर्गत मान्यता प्राप्त महाविद्यालयों में एक स्व-पोषित कम्प्यूटर विभाग खोला जाए। आनर्स विषय की पाठचर्या वही रहे जो संघ लोक सेवा आयोग की मुख्य परीक्षा के लिए निर्धारित की गई है।

यह भी आवश्यक है कि स्नातक पाठचर्या का तीसरा विषय कोई व्यावसायिक पाठचर्या हो जिसमें सम्मिलित शैक्षणिक प्रशिक्षण, प्रबंध, लेखा, आदि। इस प्रयोजन के लिए छात्रों से विशेष शुल्क (फीस) लिया जा सकता है। यह भी आवश्यक है कि इस विश्वविद्यालय की वाणिज्य शाखा हिन्दुस्तानी भाषा की पाठचर्या को रोमन अक्षर में चलाया जाए। अरबी और फारसी भाषाओं के अध्यापन का जहाँ तक प्रश्न है, जिन मदरसों में स्नातक स्तर की पढ़ाई की जाती है उन्हें मौलाना मजहरुल हक विश्वविद्यालय के क्षेत्राधिकार में स्थानान्तरित कर दिया जाए। परन्तु शर्त यह हो कि उनका पुनर्गठन अल्पसंख्यक महाविद्यालय के रूप में किया जायेगा। डिग्री कक्षाओं को माध्यमिक कक्षाओं से अलग कर दिया जाए। ऐसे महाविद्यालयों में अरबी और फारसी विषय की स्पोकेन पाठचर्या भी चलायी जाए।

❖❖❖

1 12 फरवरी, 2008

कुलपतियों की नियुक्ति[1]

कुलाधिपति द्वारा बिहार राज्य के विश्वविद्यालयों में कुलपतियों की नियुक्ति पर विस्मय और आपत्ति है। भारत के संविधान में राज्यों में एक ही सरकार का प्रावधान है और सत्ता के दो केन्द्र न संवैधानिक और न ही लोकतंत्र के लिए स्वस्थ कहा जा सकता है। जनता द्वारा सरकार निर्वाचित की जाती है, जो विधान सभा के प्रति सम्पूर्ण रूप से उत्तरदायी होती है। मुख्यमंत्री ही विधान मण्डल और जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। राज भवन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है और न ही उनके कार्यों की किसी स्तर पर औपचारिक रूप से समीक्षा या चर्चा की जाती है। लोकतंत्र में सरकारी कार्यों की समीक्षा अथवा आलोचना करने की स्वस्थ परंपरा कही जाती है। इसलिए संविधान में कार्यपालिका की शक्तियाँ औपचारिक रूप से राज भवन में निहित मानी जाती है परंतु राज्यपाल को सभी कार्यों का निर्वहन मंत्रिपरिषद् की सलाह पर ही करना पड़ता है। मंत्रिपरिषद् जो मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करती है उसका परामर्श बंधनकारी है।

राज भवन द्वारा विश्वविद्यालयों के संबंध में और कुलपति एवं प्रतिकुलपति के संबंध में जो निर्णय राज्य सरकार के परामर्श के बगैर लिये जा रहे हैं वे निश्चित रूप से संवैधानिक रूप से अनुचित तो हैं हीं, साथ ही प्रशासनिक दृष्टि से भी अव्यावहारिक है। सरकार, कुलाधिपति और विधान मंडल के बीच समन्वय बनाये रखने के लिए ही विश्वविद्यालय अधिनियम में यह प्रावधान है कि कुलपति एवं प्रतिकुलपति की नियुक्ति राज्य सरकार के परामर्श से ही की जायेगी। राज्य सरकार की उपेक्षा अथवा अनदेखी करके स्वतंत्र रूप से कुलपति अथवा प्रतिकुलपति की नियुक्ति होगी तो विश्वविद्यालय प्रशासन पर सरकार का न नियंत्रण अधीक्षण संभव हो सकेगा, जो लोकतंत्र में संभव नहीं हो सकता क्योंकि विश्वविद्यालय के पूरे व्यय के लिये राज्य सरकार विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी है। राज्य सरकार का नियंत्रण नहीं होने के कारण बिहार के विश्वविद्यालयों की अवस्था लगातार अस्त-व्यस्त और अराजक होती गयी है। राज भवन और सरकार के बीच टकराहट-तनाव का सीधा प्रभाव बिहार के विश्वविद्यालयी शिक्षा पर पड़ रहा है।

❖❖❖

---

1 12 फरवरी, 2013

निजी विश्वविद्यालयों में गरीब एवं पिछड़े छात्र-छात्राओं के हितों का संरक्षण[1]

ज्ञान आयोग की अनुशंसा के आलोक में बिहार सरकार ने निजी विश्वविद्यालयों की स्थापना के लिए विधेयक विधान मंडल से पारित कराकर राज्यपाल की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया है। इस विधेयक पर राज्यपाल अपनी सहमति देते हुए राज्य सरकार को निर्देश दें कि इन स्थापित होने वाले विश्वविद्यालयों को यह हिदायत दी जाए कि इन विश्वविद्यालयों की स्थापना मुनाफाखोरी के लिए नहीं होगी। उन्हें पढ़ाई के लिए एक बेहतर माहौल बनाने के साथ-साथ अच्छे शिक्षकों को भी बहाल करना होगा। निजी विश्वविद्यालयों को अपनी एक चौथाई सीटें कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए भी आरक्षित रखनी चाहिये। इन संस्थानों में 5 फीसदी सीटें कमजोर वर्ग से ताल्लुक रखने वाले मेधावी बच्चों के लिए हों, जिनसे किसी प्रकार का शिक्षण शुल्क नहीं लिया जाए। साथ ही बाकी 20 फीसदी सीटों पर कमजोर वर्ग के बच्चों को रियायतें मिले।

गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा की बेहतर व्यवस्था के जरिये रोजगार क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए प्रचुर संभावनाएं हैं। उच्च शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा तंत्र में ज्यादा स्वायत्तता, स्वतंत्रता और लचीलेपन की जरूरत है। उच्च शिक्षा सृजनात्मक, उपयोगी, असरदार और प्रासंगिक होनी चाहिए। वास्तव में, जिन वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, प्रबंधक एवं तकनीकी प्रशिक्षित लोगों की दरकार है वह नयी विधाओं में है और इस समय राज्य सरकार अपनी आवश्यकता के अनुसार इंजीनियर, प्रबंधक एवं तकनीकी प्रशिक्षित लोग तैयार नहीं कर पा रही है। राज्य में समुचित सुविधाएं और संस्थाएं पर्याप्त नहीं हैं, इसलिये बड़ी संख्या में प्रखर बुद्धि युवा विभिन्न विधाओं, विशेषकर सूचना प्रौद्योगिकी में, इंजीनियरिंग में उच्च शिक्षा राज्य के बाहर में प्राप्त करते हैं।

यू॰जी॰सी॰ के द्वारा आयोजित एक सर्वेक्षण से यह प्रकाश में आया है कि लगभग सभी सूचकों पर यथा निकाय के स्तर, पुस्तकालयीय सुविधायें, संगणक (कम्प्यूटर) की उपलब्धता, शिक्षक-छात्र का अनुपात आदि- उच्च शिक्षा को यथाशीघ्र समुन्नत करना अत्यावश्यक है। आज के स्पर्धा भरे वातावरण की मांग है उच्च शिक्षा की उत्कृष्टतर गुणवत्ता राष्ट्रीय एवं विश्व-बाजार में केवल वे ही संस्थायें प्रतियोगिता में आने की स्थिति में होंगी जो निरंतर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करें।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता संबर्धित करने हेतु किसी विश्वविद्यालय एवं स्वायत्त संस्थानों को वृहत् धनराशि की जरूरत होती है। शैक्षिक और भौतिक आधारभूत संरचना यथा कक्षाओं और प्रयोगशालाओं, पुस्तक भंडार को अद्यतन करना, पुस्तकालय में पत्रिका, संदर्भ सामग्री और शिक्षकों-शिक्षकेतर कर्मचारियों के वेतन-भुगतान आदि की गुणवत्ता संबर्धित करने हेतु हमें

---

1 25 अप्रैल, 2013

धनराशि की जरूरत है। विश्वविद्यालय, सरकार एवं अन्य स्रोतों द्वारा किये गये व्यय की उपयोगिता उच्च स्तरीय गुणवत्ता के परिणामस्वरूप नहीं सिद्ध करे अपितु एक ऐसे तंत्र को विकसित करना है जो उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को निरंतर आकलित और संधारित करता रहे।

चिंता की बात यह है कि राज्य में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का विस्तार न सिर्फ ठहर-सा गया है, बल्कि जो है उसका स्तर भी गिरता जा रहा है। इस संदर्भ में योजना आयोग की यह चेतावनी गौरतलब है कि अगर विश्वविद्यालयों और उच्च शैक्षणिक संस्थानों की गुणवत्ता में सुधार नहीं किया गया, तो तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था की जरूरतों को पूरा करने के लिए राज्य में कुशल और प्रशिक्षित प्रोफेशनलों की भारी कमी हो जायेगी। इसका राज्य के आर्थिक विकास पर बुरा असर पड़ सकता है, क्योंकि अर्थव्यवस्था के विकास में ज्ञान की भूमिका दिन-पर-दिन महत्वपूर्ण होती जा रही है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने उच्च शिक्षा के विस्तार, उसकी गुणवत्ता और उसमें सभी वर्गों के प्रवेश के लिए सिफारिशें की हैं। आयोग ने देश में उच्च शिक्षा के निजीकरण और खासकर विदेशी विश्वविद्यालयों के लिए सैद्धांतिक व व्यावहारिक अनुशंसा की है। वे ऐसी सिफारिशें हैं, जिन पर अमल किया जाए, तो उच्च शिक्षा का चेहरा बदल सकता है। जनसंख्या के 15 प्रतिशत् छात्रों को उच्च शिक्षा में दाखिल करने का लक्ष्य हासिल करना है, तो विश्वविद्यालयों की कुल संख्या बढ़ानी होगी।

❖❖❖

सरकारी प्राथमिक विद्यालयों का बंद होना[1]

किसी भी राष्ट्र के विकास और समृद्धि के लिए सबसे जरूरी तत्व शिक्षा है। शिक्षा राज्य का मौलिक दायित्व है ताकि प्रत्येक भारतीय को वर्ग, वर्ण, जाति-रंग सामाजिक-आर्थिक स्तरों से निरपेक्ष होकर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सबों को पहुँचाया जाए।

क्रेमर-मुरलीधरन समिति ने अपने अध्ययन में सरकारी स्कूलों में शिक्षकों की गैरहाजिरी और शिक्षण-कार्य में दिलचस्पी नहीं लेने को इसका बड़ा कारण माना था। पर इस अवरोध को दूर करने की कोशिश नहीं की गई। देश भर के स्कूल शिक्षकों की कमी से जूझ रहे हैं। बहुत-से स्कूलों में शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात शैक्षिक मानदंडों या शिक्षाविदों की सिफारिशों के अनुरूप नहीं है। दूसरे, कई राज्यों में अनुबंध आधारित भर्त्ती अभियान के तहत जिन्हें बतौर शिक्षक नियुक्त किया गया, उनके लिए न्यूनतम प्रशिक्षण भी जरूरी नहीं समझा गया। शिक्षामित्र और पैरा-टीचर यानी अर्द्ध-शिक्षकों के रूप में अप्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्तियाँ की गईं। यह इसलिए कि बहुत कम पैसे में शिक्षकों की जरूरत पूरी की जा सके। एक मुद्दा यह भी है कि पाठ्यक्रम और शिक्षण की विधियाँ बच्चों के लिए सहज रूप से बोधगम्य हों। अपेक्षित शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात और शिक्षकों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के अलावा जरूरत इस बात की भी है कि बच्चों के लिए अधिक बोधगम्य पाठ्यक्रम तैयार किये जाएं।

भारत सरकार के अपने अद्यतन आंकड़ों के अनुसार 18.78 करोड़ बच्चे 13 लाख स्कूलों में पढ़ रहे हैं तथा इन्हें पढ़ाने में लगभग 58.16 लाख अध्यापक कार्यरत हैं। 80.51 प्रतिशत् सरकारी तथा 19.49 प्रतिशत् निजी प्रबंधन द्वारा संचालित किये जा रहे हैं। एक रपट के अनुसार कक्षा 1 से 5 तक के नामांकन में 72.13 प्रतिशत् सरकारी विद्यालयों में तथा 27.87 प्रतिशत् निजी विद्यालयों में थे। कक्षा 6 से 8 तक के बच्चों का नामांकन सरकारी विद्यालयों में 63.10 प्रतिशत् रहा तथा निजी विद्यालयों में 36.90 प्रतिशत् हो गया अर्थात् हमारे सरकारी विद्यालयों से बच्चे निजी अपर प्राइमरी विद्यालयों में ज्यादा गये। कक्षा 1 से 8 तक कुल बच्चे सरकारी विद्यालयों में 69.51 प्रतिशत् तथा निजी विद्यालयों में 30.42 प्रतिशत् नामांकित हुए हैं। यह सरकारी विद्यालयों में धीरे-धीरे नामांकन का घटता अनुपात तथा निजी विद्यालयों में बढ़ता अनुपात एक चेतावनी के रूप में उभरकर सामने आया है।

❖❖❖

---

1 8 जून, 2013

शिक्षकों की मांग[1]

शिक्षा समता लाने का सबसे बड़ा उपकरण है और समाज के सभी वर्गों के लिए उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा को सुनिश्चित कर हम विकास को अधिक से अधिक समग्र बना सकते हैं। एक बड़े लक्ष्य के रूप में 12वीं योजना में इस पर अधिकाधिक जोर दिया गया है। सर्वशिक्षा अभियान के माध्यम से देश ने इस दिशा में एक अच्छी शुरुआत की है। अब राष्ट्र को अपना ध्यान शिक्षकों के बेहतर प्रशिक्षण एवं उनकी जिम्मेदारियों के निर्धारण के जरिये शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने पर केन्द्रित करना चाहिए। किसी भी राष्ट्र के विकास और समृद्धि के लिए सबसे जरूरी तत्व शिक्षा है।

भारत 2020 तक एक विकसित राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में है। परन्तु अभी हमारे देश में ऐसे 30 करोड़ 50 लाख लोग हैं जिन्हें साक्षर बनने की जरूरत है और ऐसे बहुत लोग हैं जिन्हे उभरते हुए आधुनिक भारत और विश्व के अनुकूल रोजगार योग्य कौशल प्राप्त करना है। इसके अलावा हमें समाज के कमजोर वर्गों के उन बच्चों के बारे में सोचना चाहिए जो अल्प पोषित हैं और उनमें से कुछ प्रतिशत ही 8 वर्ष तक की अपनी शिक्षा पूरी कर पाते हैं जबकि अब शिक्षा प्रत्येक भारतीय बच्चे का मौलिक अधिकार है। संविधान लागू हुए 67 वर्ष से अधिक हो गये परंतु उपलब्ध सूचना के अनुसार अनुसूचित जाति में मात्र 37.41 प्रतिशत एवं जनजाति में मात्र 29.30 प्रतिशत साक्षरता है।

जाहिर है, भारतीय गणतंत्र संचालकों ने संविधान की भावना का अपमान किया है। अपमान की वह प्रक्रिया अभी जारी है जिस दलित-आदिवासी ने सफलता प्राप्त की, उसकी कुंजी शिक्षा है। शिक्षा राज्य का मौलिक दायित्व है ताकि प्रत्येक भारतीय वर्ग, वर्ण, जाति रंग सामाजिक आर्थिक स्तरों से निरपेक्ष होकर गुणवत्तापूर्ण उच्च स्तरीय शिक्षा की संस्था तक सबों को पहुँचाया जाए। शिक्षा और साक्षरता के क्षेत्र में एक खतरनाक पहलू यह सामने आया है कि शहर और गांव के मध्य साक्षरता दर में आज भी 22 प्रतिशत का अंतर बना हुआ है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश के संदर्भ में यह भयानक अंतर है। दलित-वंचित-पिछड़े समुदाय के बहुत बड़े हिस्से की शिक्षा तक पहँच नही बन पाई है। 65 प्रतिशत आदिवासी और 54 प्रतिशत दलित अब भी निरक्षता के अंधकार में जीने के लिए अभिशप्त हैं। इसका दुखद पहलू यह है कि इन समुदायों के साक्षरों में भी सातवीं कक्षा से आगे की पढ़ाई करने वालों की संख्या नगण्य है।

सरकार से निम्न समस्याओं के निवारण के लिए यथाशीघ्र निर्णय लेने की अपील की है:- पुरानी पेंशन योजना को लागू करने, शिक्षकों को उनके जिला एवं नजदीकी प्रखंडो में पदस्थापित किये जाने, मध्याह्न भोजन योजना से शिक्षकों को मुक्त किये जाने, नियोजित शिक्षकों को तत्काल नियमित किये जाने, नियोजित शिक्षकों को भी जिला संवर्ग में लाये जाने तथा सभी तरह के अशैक्षणिक कार्यों से शिक्षकों को मुक्त किया जाए।

❖❖❖

1 01 मार्च, 2015

सहायक प्राचार्यों की नियुक्ति नहीं होना[1]

बिहार के लिए यह अत्यंत ही विस्मयकारी और दुर्भाग्यपूर्ण है कि बिहार सरकार की निष्क्रियता एवं शिक्षा के प्रति पिछले 25 वर्षों से लगातार उपेक्षापूर्ण नीति के कारण प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा में पूर्णतः अराजकता व्याप्त है। उसका अद्यतन प्रमाण है कि पिछले 15 वर्षों से लगातार बिहार के विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में 3342 सहायक प्राचार्यों की रिक्तियाँ बनी रहीं हैं अब जिन पर नियुक्ति के लिए बिहार लोक सेवा आयोग को भर्त्ती की प्रक्रिया प्रारंभ करनी है।

पहले उसकी नियुक्ति के लिये विश्वविद्यालय सेवा आयोग और महाविद्यालय सेवा आयोग गठित थे। इन्हें 2006 में बिना वैकल्पिक व्यवस्था किये विघटित कर दिया गया। 2013 में बिहार लोक सेवा आयोग के माध्यम से नियुक्ति करने का सरकार ने निर्णय लिया। लोक सेवा आयोग की ओर से विज्ञापन जारी हुआ और विज्ञापन के बाद 80 हजार से अधिक अभ्यर्थियों ने आवेदन दाखिल किये। परन्तु, यह निश्चय ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि सहायक प्राचार्यों की नियुक्ति के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने जो अर्हता निर्धारित की, उसके अंतर्गत 2009 में जारी पी०एच–डी० के लिए जो प्रावधान था, उसका पालन बिहार सरकार और विश्वविद्यालयों ने नहीं कराया है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का मापदण्ड है कि 2009 के नियम के अंतर्गत पी०एचडी० प्राप्त व्यक्ति अथवा नेट उत्तीर्ण छात्र ही शिक्षक पद के लिए आवेदक हो सकते हैं। अद्यतन सूचना उच्चतम न्यायालय के निर्देशानुसार यह प्राप्त हुई है कि 2009 के विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित नियम के अनुसार जिन्होंने पी०एचडी० प्राप्त नहीं की है वे इस पद के उम्मीदवार नहीं बन सकते हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के इस नियम का अनुपालन कराने का उत्तरदायित्व बिहार सरकार का था, जिसने अपनी निष्क्रियता और शिथिलता से बिहार राज्य के विश्वविद्यालयों में इस नियम का अनुपालन नहीं कराया है। बिहार सरकार की उत्तरदायित्वहीनता और निष्क्रियता के कारण बिहार लोक सेवा आयोग द्वारा विज्ञापित सहायक प्राचार्यों के पद के लिए जो 80 हजार से अधिक आवेदन प्राप्त हुए हैं उनमें 40 हजार से अधिक बिहार राज्य के आवेदक पद के लिए उपयुक्त नहीं माने गये हैं। इसलिए अब बिहार लोक सेवा आयोग 2009 के रेगूलेशन के तहत पी०एचडी० नहीं करने वालों को अन्तर्वीक्षा में शामिल नहीं करेगा। ऐसे 40 हजार से अधिक बिहार राज्य के विश्वविद्यालयों में पी०एचडी० प्राप्त अभ्यर्थी हैं। ये अयोग्य बताये जा रहे हैं।

बिहार सरकार की लापरवाही और कर्त्तव्यहीनता के कारण ही बिहार के ऐसे 40 हजार आवेदक नियुक्ति से वंचित किये जा रहे हैं। यह प्रकरण बिहार सरकार की निष्क्रियता को प्रमाणित करता है। बिहार में प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा के प्रति बिहार

1 20 जून, 2015

सरकार उदासीन और निष्क्रिय है। शिक्षा क्षेत्र में ह्रास और अराजकता निरंतर बढ़ती गयी है। बिहार सरकार और बिहार राज्य के विश्वविद्यालयों ने विभिन्न प्रकार के अधिनियमों की लगातार अनदेखी और उपेक्षा जारी रखी है, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता क्षीण होती जा रही है और सम्पूर्ण शैक्षणिक क्षेत्र में एक अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। राज्य सरकार और विश्वविद्यालय दोनों विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित प्रक्रियाओं और मार्गदर्शिका की अनदेखी कर रहे हैं।

❖❖❖

शिक्षकों के अभाव में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा संभव नहीं[1]

शिक्षकों के अभाव में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा संभव नहीं हो सकती विभिन्न रिपोर्टो का उल्लेख करते हुए कहा है कि शिक्षा का अधिकार कानून लागू करने पर सर्व शिक्षा अभियान के तहत देश में गुणवत्तापूर्ण स्कूली शिक्षा मुहैया कराना बड़ी चुनौती बनी हुई है। शिक्षकों के पाँच लाख पदों का रिक्त होना, आधारभूत संरचना की भारी कमी, बच्चों का बीच में ही पढ़ाई छोड़ देना जैसी बड़ी बाधा बनी हुई हैं। यूनिसेफ इंडिया के प्रतिनिधि लुई जार्ज आर्सेनाल्ट का कहना है कि भारत में 80 लाख बच्चे स्कूली शिक्षा के दायरे से बाहर हैं। शिक्षा की गुणवत्ता सबसे बड़ी चुनौती बनी हुई है। भारत में शिक्षा की गुणवत्ता के विषय से तब तक नहीं निपटा जा सकता जब तक सभी को स्कूली शिक्षा के दायरे में नहीं लाया जाता। देश में स्कूलों में बच्चों के दाखिले लेने की दर बढ़ी है और वह 98 प्रतिशत हो गई है लेकिन बीच में ही पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों की दर 49 प्रतिशत है जो चिंता का विषय है। इस सब के अलावा कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत सीटे आरक्षित करना, अशक्त बच्चों के पढ़ाई के अवसर, शिक्षकों के रिक्त पदों को भरना, आधारभूत सुविधा मुहैया कराने के साथ गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा जैसे विषय अभी भी चुनौती बने हुए हैं।

सर्वशिक्षा अभियान (एसएसए) के तहत देश के विभिन्न प्रदेशों में शिक्षकों के 19.84 लाख रिक्त पदों को भरने के लक्ष्य में से अब तक 14.34 लाख पदों को ही भरा जा सका अर्थात करीब साढ़े पाँच लाख पदों को अभी भरा जाना शेष है। बिहार में 50 प्रतिशत हासिल किया जा सका, जबकि गुजरात में 53 प्रतिशत, दिल्ली में 54 प्रतिशत, झारखंड में 67 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश में 69 प्रतिशत कार्य पूरा किया जा सका है। आरटी फोरम की रिपोर्ट के अनुसार, नई कक्षाओं का निर्माण किया गया है लेकिन स्कूलों में पढ़ने वाले 59.67 प्रतिशत बच्चों के समक्ष छात्र शिक्षक अनुपात की समस्या है। शिकायत निपटारा तंत्र की स्थिति भी काफी खराब बनी हुई है। रिपोर्ट के अनुसार, आरटीआई अधिनियम में कहा गया है कि देश के सभी शिक्षकों को साल 2015 तक प्रशिक्षित किया जाना चाहिए था, वही हकीकत यह भी है कि भारत में 6.6 लाख अप्रशिक्षित शिक्षक हैं और साढ़े पाँच लाख पद रिक्त हैं। सूचना के अधिकार (आरटीआई) कानून के तहत मानव संसाधन विकास मंत्रालय से प्राप्त जानकारी के अनुसार, आरटीआई लागू होने पर देश भर में कुल खर्च एवं लाभार्थियों की संख्या पर गौर करें तब यह राशि प्रति छात्र 2384 रुपए थी जो प्रति छात्र 2861 रुपए हो गई। स्कूली शिक्षा एवं साक्षरता विभाग से प्राप्त जानकारी के अनुसार, आरटीआई के मद में देश भर में 37.24 हजार करोड़ रुपए उपलब्ध कराये गए जिसमें से 31.35 हजार करोड़ रुपए खर्च हुए। इस अवधि में आरटीआई के लाभार्थियों की संख्या 13 करोड़ 89 हजार 841 थी। आरटीआई के मद में 42.43 हजार करोड़ रुपए उपलब्ध कराए गए जबकि 37.83 करोड़ रूपए खर्च किये गये। आरटीआई के मद में देश भर में 47.96

1 06 जनवरी, 2019

हजार करोड़ रुपए उपलब्ध कराये गये जिसमें से 44.08 हजार करोड़ रूपए खर्च हुए। एक रिपोर्ट के मुताबिक केवल 8 प्रतिशत बच्चों ने ही 6 से 14 वर्ष के बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा देने का अधिकार (आरटीई) के मापदंडों को पूरा किया है जबकि इसे लागू करने की सीमा करीब एक वर्ष पहले समाप्त हो गयी। देश के अनेक क्षेत्रों में उच्च शिक्षा की स्थिति अभी भी गंभीर बनी हुई है। कई दशकों से उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम संशोधित नहीं किये जाने का जिक्र करते हुए संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) के अध्यक्ष ने कहा था कि देश में विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों को नियमित रूप से उन्नत बनाने की जरूरत है। कई विश्वविद्यालयों में एक या दो दशकों से पाठ्यक्रमों को संशोधित नहीं किया गया गया है और उन्हें बदलते समय के अनुरूप बनाया जाना चाहिए। शिक्षा से संबंधित योजनाओं एवं बजट में अशक्त बच्चों की परिभाषा को पूरी तरह से स्पष्ट किये जाने की जरूरत है। कई बार परिभाषा स्पष्ट नहीं होने से लाभार्थियों को उपयुक्त लाभ नहीं मिल पाता है। अशक्त बच्चों के सम्बन्ध में शिक्षकों को प्रशिक्षित करने एवं उन्हें बच्चों की जरूरतों के बारे में जागरूक बनाया जाना और अभिभावकों को भी स्कूलों में ऐसे बच्चों (अशक्त) के लिए संख्या के अनुपात में सीट आरक्षित होने के प्रावधान करने की जरूरत है। समग्र शिक्षा अभियान के माध्यम से स्कूलों की हालत सुधारने के साथ ही उन्हें अधिक जवाबदेह बनाने का प्रयास आवश्यक है।

❖❖❖

विश्वस्तरीय विश्वविद्यालय[1]

विश्वस्तरीय 500 विश्वविद्यालयों की सूची में भारत के किसी भी विश्वविद्यालय का नाम सम्मिलित नहीं किये जाने के कारण विश्वस्तरीय प्रतिस्पर्धा में भारत के छात्र और छात्राएं वंचित होते रहे हैं। इसी कमी को पूरा करने के उद्देश्य से 20 विश्वविद्यालयों की घोषणा में पटना विश्वविद्यालय, जिसने शताब्दी वर्ष पूरा किया है, साथ ही जिसका गौरवपूर्ण इतिहास और परंपरा रही है, उसे सूची में सम्मिलित करने की घोषणा सराहनीय है।

यह भी विचारणीय है कि आज के भारत में जितने भी ज्ञान-विज्ञान व प्रावैद्यिकी विश्वविद्यालय हैं उनमें दलित आदिवासी एवं पिछड़े वर्गों के छात्र-छात्राओं का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर है। इसलिए ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में भारत में ये वर्ग पीछे होते जा रहे हैं। इन वर्गों की आबादी के अनुपात में प्रतिनिधित्व नगण्य है। नये विश्वविद्यालय बनाने की योजना और धन आबंटन के समय यह विचार करना चाहिए कि इन वर्गों का प्रतिनिधित्व कैसे बढ़े? वर्तमान समय में इन वर्गों का प्रतिनिधित्व केवल सांकेतिक है। केन्द्रीय विश्वविद्यालय में पद जो दलित एवं आदिवासियों के लिए आरक्षित हैं और अन्य विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में इनके लिए आरक्षण है उनमें से अभी तक 70,000 से अधिक पद रिक्त हैं। दलित एवं आदिवासी की जब तक शिक्षण कार्य में नियुक्ति नहीं होगी तब तक उच्च शिक्षा में इन वर्गों का सामान्य औद्योगिक एवं प्रावैधिकी शिक्षा में रिक्तियाँ बनी रहेगी।

देश के सभी विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में आरक्षित पदों पर नियुक्ति कराने का एक अभियान चलना चाहिए। नई शिक्षा नीति विज्ञान प्रावैधिकी विभिन्न प्रकार की तकनीकी शिक्षा विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व सृजित करने के लिए नई नीति बनानी होगी। दलितों और आदिवासियों के नवयुवकों को भागीदारी नहीं मिल रही है, क्योंकि जो नई नौकरियाँ सृजित हो रही हैं, वे तकनीकी संरचना, सूचना एवं प्रौद्योगिक क्षेत्रों में ही हो रही हैं। इन क्षेत्रों में दलितों, आदिवासी एवं अत्यंत पिछड़े वर्गों के दलितों को प्रशिक्षित नहीं किया जा रहा है।

उच्च शिक्षा से ही किसी राष्ट्र का वास्तविक विकास संभव हो पाता है, क्योंकि शिक्षा से ही राष्ट्र को अच्छे इंजीनियर, डॉक्टर, व्यवसायी, अधिवक्ता, लेखा विशेषज्ञ, प्रोफेसर तथा सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित कुशल तकनीकी कर्मियों की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है। परन्तु इन क्षेत्रों में इन वर्गों के छात्रों का प्रवेश नहीं हो पाता है क्योंकि उच्च शिक्षा में आरक्षित पदों पर रिक्तियां रहने के कारण दलित आदिवासी समाज अभी तक राष्ट्र की मुख्य धारा में सम्मिलित होने से वंचित है।

बिहार में विश्वविद्यालय में शिक्षकों के पदों के लिए 1976 में दलित आदिवासियों के लिये आरक्षण नीति लागू की गई। यू॰जी॰सी॰ ने 1993 में सभी विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में दलित आदिवासी आरक्षण लागू किया, परन्तु देश में सभी विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में अभी तक इन वर्गों को आरक्षण का लाभ नहीं मिला है।

❖❖❖

1 15 अक्टूबर, 2017

शिक्षा की गुणवत्ता में हो सुधार[1]

करीब 35 साल पहले कोठारी कमीशन ने शिक्षा पर जीडीपी का छह प्रतिशत खर्च करने का सुझाव दिया था, लेकिन आज भी यह खर्च तीन-साढ़े तीन प्रतिशत ही है। उच्च शिक्षा पर इससे भी कम, जीडीपी का सिर्फ 1.22 प्रतिशत खर्च होता है। अगर हम अपनी राष्ट्रीय आय के सौ रुपये में से उच्च शिक्षा पर सिर्फ 1 रुपये 22 पैसे खर्च करें, तो कैसे संभव है कि हमारे बच्चे अच्छी उच्च शिक्षा ग्रहण कर पायेंगे? इस नीति को बदले बिना हम अपने अधिकतर बच्चों को उच्च शिक्षा नहीं दे पा रहे हैं। हमारे देश में 18 से 24 वर्ष आयुवर्ग में सिर्फ 23 प्रतिशत बच्चे ही उच्च शिक्षण संस्थानों में पढ़ पा रहे हैं, जबकि बाकियों के लिए यहाँ तक पहुँचना मुश्किल है। ऐसे में जरूरी हो जाता है कि सरकार शिक्षा को लेकर वित्तीय समर्थन बढ़ाये, ताकि ज्यादा से ज्यादा बच्चों को उच्च शिक्षा मुहैया करायी जा सके। साथ ही, अच्छी सुविधाओं वाले संस्थानों का निर्माण किया जा सके। सरकार जबकि शिक्षा पर 7-8 प्रतिशत और उच्च शिक्षा पर जब तक 3 प्रतिशत खर्च नहीं करेगी, तब तक अपने देश में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा के बारे में सोचना बेईमानी है। हमारे देश में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा अभी राजनीतिक पार्टियों के एजेन्डे में नहीं आ पायी है। देश को अंतर्राष्ट्रीय मानकों वाली शिक्षा व्यवस्था बनानी होगी।

उपलब्ध सूचना के अनुसार अनुसूचित जाति में मात्र 37.41 प्रतिशत एवं जनजाति में मात्र 29.60 प्रतिशत साक्षर हैं। यह संविधान की भावना का अपमान है। अपमान की वह प्रक्रिया अभी जारी है; जिस दलित-आदिवासी ने सफलता प्राप्त की उसकी कुंजी शिक्षा है। दलित-आदिवासी शिक्षा की स्थिति कितनी भयावह है, वह निम्न आंकड़ों से साबित हो जाती है। कक्षा 1 से 5 के बीच, कुल 2 करोड़ 88 लाख दलित-आदिवासी बच्चे अध्ययनरत हैं। पर, इसी वर्ष हाई स्कूल में इनकी संख्या मात्र 35 लाख है, यानी प्राइमरी और हाई स्कूल के बच्चों में 2 करोड़ 53 लाख का अंतर। दलित-आदिवासी बच्चों के 'ड्राप आउट' पर मानव संसाधन मंत्रालय ने कई अध्ययन करवाये हैं तथा विभिन्न राज्य सरकारों ने कई कोशिशें की हैं, पर सब असफल रही हैं। अध्ययनों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि 'ड्राप आउट' करने वाले बच्चों की अधिकांश संख्या भूमिहीन कृषि मजदूरों की है या गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले दलित-आदिवासी परिवारों की। सरकारें भूमिहीन कृषि मजदूरों को भूमि देने के लिए तैयार नहीं है तथा दलित-आदिवासी समाज में व्याप्त घोर गरीबी को समाप्त करने के लिए तैयार नहीं है। ऐसी स्थिति में मात्र एक उपाय बचता है कि समस्त दलित-आदिवासी भूमिहीन कृषि मजदूरों एवं गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले दलित-आदिवासी बच्चों के माता-पिता को मुआवजा दिया जाए ताकि वे अपने बच्चों को स्कूल भेज सकें। तकनीकी विकास के इस युग में गुणवत्ताविहीन शिक्षा मजाक बनकर रह जायेगी। सबों के लिए गुणवत्तापरक शिक्षा राष्ट्र के समक्ष एक साहसिक कार्यभार है।

शिक्षा को वास्तव में बेहतर बनाने के लिए राष्ट्रव्यापी बदलाव की जरूरत है। शिक्षा का

1 10 मार्च, 2019

महत्व और उसकी जरूरत असंदिग्ध है, लेकिन उस पर जितना ध्यान दिया जाना चाहिये और जितने संसाधन उसमें लगने चाहिये, उतने नहीं दिये जाते। इससे शिक्षा में तरह–तरह की गड़बड़ियाँ और घोटालों की गुंजाइश होती है। सबसे बड़ी जरूरत यह है कि शिक्षा में सार्वजनिक निवेश बढ़ाया जाए। कई जानकार कहते हैं कि सार्वजनिक शिक्षा और स्वास्थ्य में निवेश को भारत में विकास का मुख्य आधार बनाया जाए। हमारे देश में इन क्षेत्रों की उपेक्षा से गंभीर परिस्थितियाँ पैदा हो रही हैं। शिक्षा में सार्वजनिक निवेश बढ़ेगा और उस पर ध्यान दिया जायेगा, तो आने वाली पीढ़ियाँ काबिल, हुनरमंद और सचमुच पढ़ी–लिखी होंगी। वरना हमारा परीक्षा तंत्र लगातार घोटालों और धांधलियों का शिकार होता रहेगा।

❖❖❖

शोध में हो गुणवत्ता[1]

उच्च शिक्षा में गुणवत्ता बनाये रखने के लिए शोध में भी गुणवत्ता एवं संख्या में विस्तार एवं प्रतिबद्धता के साथ ध्यान केन्द्रित करना चाहिए ताकि शिक्षा का विस्तार संभव हो सके। आज नव उदारीकरण के दौर में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में चुनौतियाँ कम नहीं हैं। बाजार के दबाव में छात्र, शिक्षक और हमारे शैक्षिक ढाँचे को इससे जूझना पड़ रहा है। जब तक उपर्युक्त पहलुओं पर गहराई से विचार कर कोई सकारात्मक कदम नहीं उठाया जायेगा तब तक देश के उच्च शिक्षण संस्थाओं में शोध की दशा में न तो सुधार होगा और न ही समाज के लिए वह पूर्णतः उपयोगी सिद्ध होगा।

अभी तक देखने में आया है कि नीति निर्धारक इसके लिए कभी छात्रों को जिम्मेदार ठहराते रहे हैं तो कभी शिक्षकों को। जबकि इन परिस्थितियों में आवश्यक हो जाता है कि छात्र, शिक्षक और हमारे नीति निर्धारक सभी साथ बैठकर विचार करें कि इसमें सुधार के लिए क्या कुछ किया जा सकता है? इसके लिये कौन से उपाय कारगर होंगे? देश के शिक्षक और छात्र दोनों को इस बात का भरोसा दिलाना आवश्यक है कि उनकी योग्यता का पूरा सम्मान होगा। देश में योग्य उम्मीदवारों को ही नौकरी और पदोन्नति मिलेगी। इसके लिए सरकार को जल्द से जल्द कारगर उपाय करने चाहिए, ताकि ईमानदारी से काम करने वाले छात्रों और शिक्षकों का मनोबल बढ़े और वे समाजोपयोगी नए-नए विषयों पर अध्ययन- अध्यापन और शोध के लिए प्रेरित हों।

भारत में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना का मूल उद्देश्य उच्च शैक्षिक संस्थानों में ऐसे अध्ययन-अध्यापन और अनुसंधान को बढ़ावा देना है जो समाज और देश की प्रगति में सहायक हो सके। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के तमाम प्रयासों के बावजूद उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में कोई सुधार नहीं हो रहा है, जबकि राधाकृष्ण आयोग, कोठारी समिति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग, यशपाल समिति, उच्च शिक्षा और अनुसंधान विधेयक, उच्च शिक्षा सशक्तीकरण विनिमय एजेंसी आदि के माध्यमों से वे अपनी मंशा जाहिर कर चुके हैं। भारत में इस समय 47 केन्द्रीय विश्वविद्यालय और 738 राज्यस्तरीय विश्वविद्यालय हैं। इन सबके बावजूद 16 फीसद छात्र ही उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों की दहलीज तक पहुँच पाते हैं। भारत जैसे किसी भी विकासशील देश के लिए यह गंभीर चिन्ता का विषय है। उच्च शिक्षा समाज के लिए तभी बेहतर हो सकती है जब इससे निकलकर आने वाले अनुसंधान समाज और देश के लिए लाभप्रद हो सकें। आज सरकार विश्वविद्यालयी शोध को शिक्षकों की पदोन्नति से जोड़ने का प्रयास कर रही है जो शोध के महत्व को बतलाने के साथ ही किसी न किसी रूप में शिक्षकों पर नकेल कसने का प्रयास भी है। जब भी इस यक्ष प्रश्न पर विचार होता है तो यह सवाल उठना लाजिमी हो जाता है कि क्या शिक्षण संस्थाओं के नीति निर्धारकों में दूरदर्शिता का पूरी तरह अभाव है या ऐसे लोग किसी वर्ग विशेष को लाभ पहुँचाने का काम कर रहे हैं।

1 16 मार्च, 2019_

बाबा साहब डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर ने कहा था कि शिक्षा का उद्देश्य भी सामाजिक परिवर्तन होना चाहिए। शिक्षित होने के बाद संगठित होना चाहिए तभी वंचित समाज को लाभ मिलेगा। डॉ॰ अम्बेडकर का सूत्र था कि संघर्ष करो। किसी भी व्यवस्था में परिवर्तन का रास्ता संघर्ष ही हो सकता है। लेकिन संघर्ष की दिशा सही होनी चाहिए। शिक्षित व्यक्ति ही किसी संघर्ष को सही दिशा दे सकते हैं। यही कारण है कि अम्बेडकर संघर्ष को शिक्षा के साथ जोड़ते हैं। अम्बेडकर का मानना था कि शिक्षा की व्यवस्था करते समय, नियम बनाते समय सम्पन्न वर्ग के छात्रों और वंचित वर्ग के छात्रों के लिए एक जैसे नियम व व्यवस्था निश्चित नहीं की जा सकती। वंचित वर्ग के छात्रों को उनकी सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए उदार व्यवस्था प्रदान करनी होगी।

❖❖❖

राजपथ के मुद्दे

संसदीय प्रणाली के प्रति जनसाधारण में बढ़ती अनास्था[1]

आज भारतीय संसद में ऐसी घटना घटी है जो सम्पूर्ण लोकतंत्र के लिये शर्मनाक है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भारत को शर्मसार करने वाली घटना से अलोकतांत्रिक हिंसा वाले लोगों को यह कहने में बल मिला है कि लोकतंत्र निहित स्वार्थ वालों की प्रशासनिक प्रणाली है जो भारतीय लोक संसद में घटित हो रही हैं। पूर्व में चारू मजूमदार और कानू सन्याल जैसे लोगों ने नक्सली आन्दोलन प्रारंभ किया था उनके ऐसे विचार भी माओवादियों नक्सलियों को बल प्रदान कर रहे हैं कि संसदीय प्रणाली में गरीबों की नहीं चलती है और यह अत्यंत मुट्ठी भर करोड़पतियों और अरबपतियों के हाथों में सीमित होती गयी है, जहाँ गरीबों की आवाज, गरीबों की पीड़ा नहीं सुनी जाती है। केवल राजनीतिक अल्पकालिक निहित स्वार्थ की पूर्ति के लिये संसदीय प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा है, जो संसद के सदस्यों से परिलक्षित होता है। दोनों सदनों के सदस्यों में अरबपतियों/खरबपतियों का बहुमत है और वैसे लोग लोकतंत्र का विरोध अपने स्वार्थ के लिये करते हैं। गरीब उपेक्षित की वेदना–पीड़ा को उजागर नहीं होने दिया जाता है और समाधान करने में उनकी दिलचस्पी नहीं होती है। छह दशक पुरानी भारतीय संसद अपनी परंपरा और अपने उत्तरदायित्वों को लेकर गंभीर नहीं है, इसका प्रमाण संसद के कई सत्रों के हश्र को देखकर होता है।

मामला भ्रष्टाचार का हो या फिर कोई महत्त्वपूर्ण बिल पास कराने का, संसद को पूरी तरह ठप्प कर देना राजनीतिक दलों का प्रिय प्रतिरोधी अस्त्र बन गया है। इस प्रतिरोध के दबाव में लोकप्रिय सरकारों की जवाबदेही का ग्राफ तो ऊपर नहीं उठ पाता है। बहस और संवाद की लोकतांत्रिक प्रक्रिया पर कुठाराघात हो रहा है। सरकार को ठप्प करना आसान होता जा रहा है। दरअसल सांसद और जनता के बीच दूरियाँ इतनी बढ़ गयी हैं कि लोग सांसद को लोकप्रिय नेता नहीं मानते। लोकप्रियता संसद में पहुँचने का गौण मापदंड है जबकि मुख्य मापदंड तो धनबल और बाहुबल ही बनता जा रहा है। विखंडित राजनीति ने इसे आसान बना दिया है। दुर्भाग्य है कि सभी राजनीतिक पार्टियाँ, खासकर कांग्रेस और भाजपा, तात्कालिक राजनीतिक स्वार्थों से ऊपर नहीं उठ पा रही हैं। घोटाला हुआ हो या न हुआ हो, यदि अनियमितता भी हुई है तो सरकार से सवाल पूछने का हक जनता और उसके प्रतिनिधियों को है। संसदीय प्रणाली में उन सवालों के जवाब देने के लिए सत्तारूढ़ दल बाध्य है। यह उनकी मर्जी या नैतिकता पर निर्भर नहीं है, जिसको भी सरकार बनाने का मौका मिला है उसके मुखिया यानी प्रधानमंत्री और उनके मंत्रियों का संवैधानिक दायित्व है कि वह संसद में जवाब दें। इस संवैधानिक दायित्व से कोई भाग नहीं सकता।

आजादी की 50वीं वर्षगांठ पर 1997 में संसदीय दल के सभी नेताओं ने संसद की

1 31 जुलाई, 2015

कार्यवाही सुचारु रूप से चलाने के लिए कुछ बुनियादी ऊसूल बनाये थे। इसमें सदस्यों का सदन के वेल में न आना भी शामिल था। आज उस रजामंदी के 18 साल होने को आये लेकिन संसद में लगातार संगठित हंगामे बार-बार होने वाली समस्या है। संसदीय लोकतंत्र में संसद देश के लिए नीति निर्माण की शीर्ष इकाई है तो इसकी कार्यवाही जितने क्षण बाधित होगी, मुल्क की तकदीर उतनी ही क्षतिग्रस्त होगी। इसलिए संसदीय प्रणाली के समर्थक दुनिया के सभी गंभीर विश्लेषकों ने अपने सारे तर्क संसद की निर्धारित कार्यवाही के हर हाल में सुचारु रूप से संचालित होने के पक्ष में ही दिये हैं। सत्ताधारी मुख्य दल और मुख्य विपक्षी दोनों मुख्य राजनीतिक दलों से भरोसा उठने का ही नतीजा है कि तमाम नौजवान माओवाद या अन्य हिंसक रास्तों पर चलने के लिए अग्रसर हैं। इसलिए जरूरी है कि कांग्रेस और भाजपा दोनों बातचीत को प्राथमिकता दें। संसदीय प्रणाली में जिन्हें सत्ता में बैठने का हक नहीं मिलता, उन्हें बहुमत वाली गठबंधन सरकार के प्रधानमंत्री एवं मंत्रियों से इस्तीफा मांगने का अधिकार नहीं है। अगर उन्हें लगता है कि उनका पक्ष सही है तो संसद में अविश्वास प्रस्ताव ला सकते हैं। शालीन विपक्ष का कर्त्तव्य बनता है कि वह संसद में जाकर आक्रामक रूप से अपनी बात रखे और बहस करे ताकि देश की जनता यह जाने कि आखिर मुद्दे क्या हैं? मुख्य विपक्षी दल लोकतांत्रिक कर्त्तव्यों से क्यों भागते हैं? उसे लोकतंत्र में अनास्था क्यों हो रही है? हर मुद्दे पर विपक्ष एवं सत्ताधारी दलों का लगातार आचरण चिंता की बात है। सत्ता एवं विपक्ष का यह तरीका देर सबेर लोकतंत्र की जड़ों को कमजोर करने का काम करेगा। उसे राजनीतिक पूर्वाग्रह से बचना चाहिए।

बेहतर हो कि भाजपा और कांग्रेस मिलकर सदन की कार्यवाही देर तक चलाने का संकल्प लें, तभी संसदीय लोकतंत्र बचेगा। संसद से कोई ऊपर नहीं और न ही संसद का कोई विकल्प है। सदन एवं बाहर बैठे लोगों के मांगने से अगर भारत जैसे बड़े लोकतांत्रिक देश का प्रधानमंत्री एवं मंत्री इस्तीफा देने लगे तो पूरी प्रणाली ध्वस्त हो जाएगी। सवाल प्रशासनिक पारदर्शिता का है, भारत के मूल लोकतांत्रिक ढांचे को विकृत करने का नहीं। मुद्दा लोकतंत्र को अधिकाधिक जवाबदेह बनाने का है, इसमें कहीं भी कोई विसंगति नहीं है। राजनीतिक दल आपस में बैठकर यह फैसला करें कि किस प्रकार राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा करते हुए लोकतांत्रिक प्रणाली को और मजबूत बनाने में भ्रष्टाचार के विरुद्ध सर्वानुमति बनायी जाए।

❖❖❖

लोकतंत्र में विचारधारा[1]

विचारधारा ही दल का प्राण होता है, लेकिन यहाँ भाजपा, माकपा और भाकपा के अलावा बांकी दलों की कोई विचारधारा नहीं है। स्वाधीनता पूर्व की कांग्रेस कमोवेश राष्ट्रवादी थी, इसमें अन्य विचारधाराओं के लोग भी थे, लेकिन सत्ता में आकर वह सत्तावादी हो गयी। दल अलोकतंत्री हो गया।

जनता पार्टी जे॰पी॰ आंदोलन की कोख से पैदा हुई। उसके केन्द्र में विचारविहीनता और विचार–द्वन्द्विता बनी रही है। जनता परिवार के नेताओं के अनुसार नये दल का उद्देश्य श्री नरेन्द्र मोदी और भाजपा से केवल लड़ना है। यहाँ कोई विचारधारा नहीं है। राष्ट्रवाद को प्रभावित करने की कोई महत्वाकांक्षा नहीं। राष्ट्रीय चुनौतियों को लेकर कोई दृष्टिकोण नहीं। वे सभी आज गैर कांग्रेसवाद के लोहिया सूत्र से दूर है। प्रस्तावित नये दल के दर्शन, विचार व सिद्धांत पर कोई बहस नहीं सुनाई पड़ी। बुनियादी सवाल यही है कि कथित नई पार्टी की अर्थनीति क्या होगी? क्या उदारीकरण या सरकार नियंत्रित समाजवादी व्यवस्था? इसकी समाज नीति क्या होगी? सांस्कृतिक राष्ट्रभाव पर नये दल के स्वप्न संकल्प क्या होंगे? आखिरकार विचारविहीन और संकल्पहीन दल बनाने का मतलब क्या है? वैचारिक प्रतिपक्षी दल की जगह खाली है। विचार आधारित दल ही वैकल्पिक राजनीति के दावेदार हो सकते हैं।

जनता दल परिवार के केवल एक होने से देश की राजनीति को और लोकतंत्र को कोई लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि जनता परिवार अनेकों बार एकत्र हुए हैं, बिखरे हैं और टूटे हैं। लोगों में आशा जगाकर अंत में लोगों को इन दलों से निराश ही होना पड़ा है। केवल नैसर्गिक राजनीति से लोकतंत्र को कोई लेना–देना नहीं हो सकता। लोकतंत्र में दलीय आंतरिक लोकतंत्र चाहिये, जो इन दलों में नदारद है। ऐसी राजनीति से देश हित का कोई लेना–देना नहीं। भारत को विचारनिष्ठ एवं ध्येयनिष्ठ दल चाहिये।

❖❖❖

1 25 मई, 2015

लोकतांत्रिक आकांक्षा[1]

21वीं शताब्दी में देश-विदेश में त्वरित परिवर्तनों के दौर में उच्चतर प्रशासनिक सेवाओं को अच्छी सेवा के जरिये गरीब, दलित और कमजोर एवं वंचित वर्गों को संरक्षण प्रदान करना होगा। संविधान और विभिन्न कानूनों में उल्लिखित, भारत के लोकतांत्रिक आग्रहों और जनता की आकांक्षाओं को निष्पक्ष और पारदर्शी ढंग से पूरा करना होगा। संविधान में निहित भावना के अनुरूप गरीबों के अधिकारों की रक्षा करने के साथ-साथ राज्य (सरकार) के बल प्रयोग की शक्तियों को सीमा में ही रखना होगा।

जैसे-जैसे बाजार अर्थव्यवस्था का विस्तार होता जाएगा, संरक्षा-संजाल को विकसित करने की आवश्यकता भी बढ़ती जायेगी। निर्धन महिलाओं, बालिकाओं, अल्पसंख्यकों, जनजातीय समूहों, दलितों (अनुसूचित जातियों) विकलांगों और अन्य असहाय लोगों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत पड़ेगी। राज्य शक्ति के गलत उपयोग के हल के उदाहरण काफी कष्टप्रद हैं। लोक प्रशासन के संवैधानिक और वैधानिक आयाम सरकार की शक्तियाँ, कार्य और जवाबदेही निर्धारित करते हैं।

भारत में प्रशासनिक सेवाओं के विकास में एक बड़ा बदलाव एक ऐसा लोकतांत्रिक संविधान अपनाने से आया, जिसमें कानून का शासन, गारंटीशुदा अधिकार और संसदीय सरकार के विचार समाहित हैं। संविधान में 73वाँ और 74वाँ संशोधन इसी दिशा में आए परिवर्तन को और आगे बढ़ाने का काम करते हैं। संघ और राज्यों के अधीन सेवाओं को संविधान में ही प्रमुखता दी गयी है। प्रशासनिक सेवाओं में भर्ती के लिए वृहद एवं व्यापक अधिकारों वाला स्वायत्त आयोग एक और महत्वपूर्ण पहलू है। इसमें संवैधानिक शासन में इसकी भूमिका प्रतिपादित होती है। मानवाधिकारों, विशेषतः समाज के कमजोर वर्गों के मानवाधिकारों के संरक्षण की सरकार की प्रमुख एजेंसी नौकरशाही ही होती है, क्योंकि उन्हीं पर कानून को लागू करने की जिम्मेदारी होती है। न्यायालय तभी हस्तक्षेप करता है जब कार्यकारिणी (सरकार) कानून के अमल में नाकाम होती है या फिर मनमर्जी से कानून पर अमल कराती है। एक ऐसा संविधान जो धर्म-निरपेक्षता और सामाजिक न्याय का दम भरता है, सरकारों पर भारी जिम्मेदारी डाल देता है, फिर चाहे वह केन्द्र की सरकार हो अथवा राज्य की। इसीलिए संवैधानिक परिप्रेक्ष्य का महत्व है।

❖❖❖

1 20 फरवरी, 2016

राजनीति में कठोर शब्दों का कोई स्थान नहीं[1]

देश की संस्कृति गौरवशाली परंपराओं से जुड़ी हुई है। पिछले कुछ दिनों में विशेषकर बिहार की राजनीति में, कठोर शब्दों का इस्तेमाल बढ़ गया है, जो उदारता विनम्रता और सहनशीलता के विरुद्ध है। लोकतंत्र में, एक प्रगतिशील समाज में आलोचना का अपना स्थान है। परंतु आलोचना मर्यादा की सीमा में होनी चाहिये। देश में महत्वपूर्ण मुद्दों पर बहस में परस्पर विरोधी विचारधाराओं के लिए गुंजाइश है और होनी भी चाहिये। सभी राजनीतिक दलों को इस पर विचार करने की आवश्यकता है।

राजनीतिक दल एक प्रगतिशील सामाजिक नीति के तहत एक नये भारत का निर्माण करे। उनका मकसद देश के विकास का फायदा आम आदमी तक पहुँचाना है। ऐसे कार्यक्रम शुरू किये जाए जिनसे विशेष रूप से समाज के आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े लोगों का कल्याण हो। आज भी गरीबों, अनुसूचित जातियों और जनजातियों, अल्पसंख्यकों, महिलाओं तथा अन्य पिछड़े तबकों की भलाई के लिए दृढ़ संकल्पित होकर काम करने की आवश्यकता है। जरूरत इस बात की है कि जो योजनाएं शुरू की हैं, उन्हें अधिक प्रभावी ढंग से लागू करें, जिससे कि उनमें भ्रष्टाचार और सरकारी धन के दुरुपयोग की गुंजाइश न रहने पाये। धर्मनिरपेक्षता हमारे लोकतंत्र की एक आधारशिला है। सभी धर्मों को बराबर का दर्जा देना और उनका आदर करना हमारे देश और समाज की परंपरा रही है। सदियों से भारत में नये धर्म आते और फलते-फूलते रहे हैं। धर्मनिरपेक्षता हमारी संवैधानिक जिम्मेदारी भी है। सरकार साम्प्रदायिक सद्भाव और शांति बनाये रखने के लिए वचनबद्ध है। साथ ही, अल्पसंख्यकों की सुरक्षा और उनकी खास जरूरतों का ख्याल रखना उनका फर्ज।

❖❖❖

1 30 अगस्त, 2018

आतंकवाद का साया[1]

आज अधिकांश विश्व और विशेषकर भारत दोनों ही एक चुनौती का सामना कर रहे हैं। कोई भी देश आतंकवाद के भयावह साये से बचा नहीं है। आतंकवाद की काली छाया भोलेभाले और नि:हत्थे लोगों को अपना लक्ष्य बना रही है।

शांतिपूर्ण समाज न्याय और वैयक्तिक जवाबदेही दो स्तम्भों पर टिका होता है। आतंकवाद से लिप्त मामलों के संबंध में न्याय की चिंता हमारा मुख्य लक्ष्य रहा है। हमारा विश्वास है कि राज्य का यह पूर्ण अधिकार और वास्तव में कर्तव्य है कि वह आतंकवाद से संघर्ष करे और उस पर काबू पाये। जो सत्ता में हैं, उन्हें यह सुनिश्चित करने पर भरपूर ध्यान रखना चाहिए कि आतंकवाद को खत्म करने के उपाय ऐसे नहीं हों जिनसे मानव अधिकारों का हनन होता हो। हम नये अंतर्राष्ट्रीय माहौल में मानवाधिकारों के संरक्षण की जटिलता से भी जागरूक हैं जो राज्यों को आतंकवाद के विरुद्ध लड़ाई करने के लिए अनेक विशिष्ट उपाय करने और सहयोग करने के लिए बाध्य करता है। आतंकवाद संबंधी अनेक कृत्य जिसमें भारत के अनेक निर्दोष लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया, उसके कारण मामले पर और भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

यह कहना अतिशियोक्ति नहीं होगी कि दुनिया में सबसे ज्यादा लम्बे समय से आतंकवाद का सामना करने वाला देश भारत है जिससे यहाँ की शांति प्रभावित हो रही है। देश के नागरिकों के मानव अधिकारों के संरक्षण के कार्य में भारी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। आतंकवाद का डरावना भूत निर्दोष और असहाय लोगों को अपना शिकार बना रहा है।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि राष्ट्रीय सुरक्षा एवं वैयक्तिक सुरक्षा दोनों परस्पर संगत एवं प्राप्य हैं; न कि प्रतिकूल, जैसा कि सामान्य तौर पर आम आदमी सोचते हैं। हमारा यह पक्का विश्वास है कि आतंकवाद से सख्ती एवं निर्णयात्मक ढंग से निपटा जाना चाहिए। निर्दोष लोगों की हत्या को, जैसाकि हाल ही में मुम्बई में हुए आतंकी हमले द्वारा किया गया है, कभी भी सहन अथवा माफ नहीं किया जा सकता है। भारत जिस आतंकवाद के कुकृत्य का सामना कर रहा है विश्व उसकी तुरंत व जोरदार शब्दों में भर्त्सना करता है। यह दो चीजें दर्शाता है: पहला इस समय बहुत से देश आतंकवाद के संकट से जूझ रहे हैं और दूसरा आतंकवादियों और उनका साथ देने वालों का सभ्य समाज से कोई सरोकार नहीं है। आतंकवाद को रोकने की कार्रवाई करने में सरकार को न तो कानून की अनदेखी करनी चाहिए और न ही सामान्यतया नागरिकों की सिविल आजादी पर पाबंदी लगानी चाहिए।

आज विश्व में भारी असमानताएँ हैं, जिससे मानव अधिकारों का उपभोग एक छलावा हो जाता है। विभिन्न देशों के उन लाखों लोगों के लिए राजनैतिक स्वतंत्रता का कोई महत्व अथवा

1 फरवरी, 2009

अर्थ नहीं होगा जो गरीबी से और इससे उत्पन्न सामाजिक कुरीतियों से त्रस्त हैं और जब तक उनके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकार सुनिश्चित नहीं किये जाते। राष्ट्रीय संस्थानों को आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के अतिक्रमण से उसी पुरजोर तरीके से निपटना चाहिए जिस पुरजोर तरीके से वे नागरिक और राजनैतिक अधिकारों की वकालत करते हैं।

❖❖❖

अतिवाद से मुकाबला[1]

15 अगस्त, 1947 को भारत के पहले प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने अपने प्रसिद्ध सम्बोधन 'नियति से साक्षात्कार' में जन प्रतिनिधियों और सेवियों के समक्ष इन शब्दों में उनके दायित्वों का उल्लेख किया था। 'गरीबी, अज्ञानता और बीमारियों को खत्म करने के लिये एक समृद्ध, लोकतांत्रिक और प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थान की रचना आवश्यक है, जो महिलाओं और पुरुषों के जीवन में न्याय और परिपूर्णता सुनिश्चित करें।'

माओवादी एवं नक्सलवादी सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक संकट हैं और इससे कारगर ढंग से निपटने के लिए, इसके कारणों का पता लगाना आवश्यक है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि संसाधन के वितरण में असमानता, अवसरों की असमानता में बदल जाती है, जो भारत की आर्थिक नीति के घोषित लक्ष्य–समावेशी विकास को ही नकार देती है।

भारतीय संविधान में कमजोर वर्गों के संरक्षण के अनेक प्रावधान हैं। फिर भी इन कमजोर वर्गों का उत्पीड़न जारी है। इसे मुद्दा बनाकर ही नक्सली और माओवादी लोकतंत्र को इन वर्गों के बीच निरर्थक बताते हुए राजनीतिक ढांचे में परिवर्तन का विचार प्रसारित करते हैं। गरीबों को इतना सजग बनाने की जरूरत है कि कोई उनका शोषण न कर सके। गरीबों के अधिकारों का संरक्षण करने की जरूरत है और यह तभी संभव है जब हम उन्हें अपने अधिकारों और दायित्व के बारे में जागरूक करें। शोषण तथा मजदूरी दर को कृत्रिम तरीके से निम्न स्तर पर बनाये रखने की साजिश गैर बराबरी को बढ़ावा देती है। सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों, संसाधन प्राप्त करने के अवसरों का अभाव, खेती का पिछड़ापन, भूमि सुधार का अभाव आदि जिम्मेदार है।

इन विषयों पर राष्ट्रीय स्तरों पर विचार–विमर्श हुआ है। परंतु यह विस्मयकारी है कि इन वर्षों में ऐसी घटनाओं में लगातार वृद्धि होती गई है। सरकार ने इन चिन्हित घटनाओं के कारणों में जिन बिन्दुओं को चिन्हित किया है उन पर कोई प्रभावकारी रणनीत नहीं बनायी गई है और न ही इन घटनाओं को थामने के लिए सकारात्मक, रचनात्मक तथा विकासमूलक कार्यक्रम ही कार्यान्वित किया जा सका है।

यह निर्विवाद है कि आदिवासियों, दलितों में समस्या गंभीर और चिन्तनीय है। गैर बराबरी वाली सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ एक कारण है जिससे देश में अमीरी–गरीबी के बीच के अंतर में अद्भूत वृद्धि होती रही है और अमीरी गरीबी के बीच गैर बराबरी इन वर्षों में लगातार बढ़ती गई है। सामाजिक आर्थिक रूप से असमावेशित तबकों को विकास की प्रक्रिया में शामिल नहीं किया जा सका है। विकास से वंचित समूहों को भागीदारी नहीं दे पाना नक्सली एवं माओवादी आंदोलन का मुख्य कारण हो सकता है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले ग्रामीण आबादी में 47

1 30 जून, 2014

प्रतिशत अनुसूचित जाति एवं 37 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति हैं।

माओवाद एवं नक्सलवाद को उचित नहीं ठहराया जा सकता, तथापि हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि दूर–दराज के क्षेत्रों में बहुत से लोग ऐसी स्थितियों में रहते हैं जहां यह रोग पनप रहा है। लंबे समय तक मानवाधिकारों का लगातार उल्लंघन विवादों, माओवाद एवं नक्सलवाद का मूल कारण है। बड़े पैमाने पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक भेदभाव राज्य के भीतर तथा बाहर विवादों को जन्म देते हैं। इसलिए, ऐसे विवादों को रोकने के लिए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को साकार करना पड़ेगा और इन अधिकारों को महत्व दिया जाना आवश्यक है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों जैसे भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के अधिकारों की लगातार अवहेलना होना माओवाद एवं नक्सलवाद का कारणवाचक कारक है। विवादों, माओवाद एवं नक्सलवाद के समाधान की सटीक रणनीति से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का उपयोग सुनिश्चित करना होगा।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि मानव अधिकार मानव की अनिवार्य महत्ता को पहचान देते हैं। यह भी वास्तविकता है कि माओवाद एवं नक्सलवाद निर्दोष लोगों के मानवाधिकारों की जड़ पर वार करते हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने अतिवाद की समस्याओं के प्रति अधिक सजगता दर्शायी है क्योंकि ये अधिकार आज मानवता के प्रति गंभीर खतरों के रूप में प्रकट हुए हैं। चूंकि ये केवल कानून और व्यवस्था के मुद्दे नहीं हैं और इनके गहरे सर्वव्यापक आर्थिक आयाम और मूल हैं, इसलिए इन गतिविधियों की रोकथाम और इनके नियंत्रण के लिए कानूनों का कारगर ढंग से प्रवर्त्तन और सुशासन अपरिहार्य है। माओवाद एवं नक्सलवाद से निपटने के लिए मानवाधिकारों का संरक्षण और संवर्धन अनिवार्य है।

❖❖❖

आतंकवाद से निपटने के लिए रणनीति[1]

जम्मू-कश्मीर के 'उरी' की घटना मानवाधिकार हनन की सबसे बड़ी और चुनौतीपूर्ण घटना है, जो विश्व की मानवता के संरक्षण के लिए एक बड़ी विश्वस्तरीय चुनौती है। सभी संवैधानिक और वैधिक पद्धति के विरुद्ध जिस तरह से घटनाएं भारत में हो रही हैं जिसके विरुद्ध अभी तक भारत सरकार ने कोई स्थायी विश्वस्तरीय नीति नहीं बनाई है जिसके कारण भारत में जघन्य घटनाएं हो रही हैं उसका नहीं थमना विश्वस्तर पर मानवाधिकार के हनन की दर्दनाक एवं शर्मनाक घटनाएं नहीं रोक पाने की कड़ी में उरी जैसी घटना है।

क्या सीमा पार से घुसपैठियों से बेहद कठिन हालात में लोहा लेते देश की रक्षा में जुटी भारतीय सेना द्वारा उन्हें या आतंकियों को मार गिराना मानवाधिकारों का उल्लंघन है या अंधाधुंध गोलियों से बेगुनाहों की सड़कों पर लाशें बिछा देना मानवाधिकार हनन का मामला है? आतंकियों और समाज-विरोधियों का मारा जाना 'मानवाधिकारों का उल्लंघन' है। एमनेस्टी इंटरनेशनल जैसे संगठन इस कदर खुलकर आतंकियों और समाज-विरोधी लोगों का समर्थन और भारत में बेगुनाहों की हत्याओं पर जानबूझकर चुप्पी क्यों साध लेते हैं? एमनेस्टी इंटरनेशनल वास्तव में मानवीय जीवन को बचाये रखने के लिए लड़ रही है, तो उसे सबसे पहले बेगुनाहों के मारे जाने के खिलाफ लड़ाई लड़नी चाहिये। उसके बाद ही अन्य के हक की बात कहनी चाहिये। क्या बिना किसी वजह आतंकियों और राष्ट्र विरोधी तत्वों के हाथों मार डाले गये बेगुनाहों के मित्र और परिवार नहीं होते? क्या केवल आतंकियों और राष्ट्र विरोधी लोगों के ही परिवार होते हैं? एमनेस्टी इंटरनेशनल जैसे संगठन कैसे इस हकीकत से आँखें मूँदे रह सकते हैं? मानवाधिकार उल्लंघन संबंधी कानून आतंकियों के मार गिराये जाने की स्थिति में ही लागू होते हैं, और देश के बेगुनाह बाशिंदों के मारे जाने पर लागू नहीं ? राष्ट्र विरोधी तत्वों के मारे जाने पर एमनेस्टी जैसे संगठनों को संवैधानिक अधिकारों की चिन्ता सताने लगती है, लेकिन यह चिन्ता आम आदमी की अनदेखी करते हुए नदारद रहती है। बेमिसाल विडम्बना ही तो यह है!

सबसे खतरनाक बात यह हो रही है कि देश में कुछ एनजीओ खासकर एमनेस्टी मानवाधिकारों के उल्लंघन की बाबत गुमराह कर देने वाला माहौल बना रहे हैं। इससे भी ज्यादा सामाजिक ताने-बाने के लिए खतरनाक बात यह है कि ये संगठन मानवाधिकार उल्लंघन के मुद्दों को जिस तरह से उठाते हैं, उससे घृणा घनी से घनी होती जा रही है, और एमनेस्टी जैसे संगठनों पर लगाम नहीं लगाई गई तो जिस सामाजिक ताने-बाने का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत सीना तान कर उल्लेख करता है, उसके छिन्न-भिन्न हो जाने का खतरा है। बेशक, मानवाधिकार उल्लंघन के किसी भी मामला के कानून सम्मत निबटारे को लेकर कोई आपत्ति नहीं उठ सकती, लेकिन मात्र कुछेक मामलों को उठाकर मानवाधिकार उल्लंघन का शोर मचाने की कतई अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

1 20 सितम्बर, 2016

जम्मू-कश्मीर में मानवाधिकारों के उल्लंघन का मसला उठाते हुए पीड़ितों के लिए न्याय के लिए माहौल बनाने का प्रयास किया जा रहा था। मुट्ठी भर संदिग्ध लोग आजादी के बाद से ही मानवाधिकारों के हनन को मुद्दा बनाकर भारत को सांसत में डाल देते रहे हैं। आखिर मानवाधिकार हनन है क्या? क्या कुछ चुनिंदा मानवाधिकारों के हनन का ही मामला है, या समूचे मानवाधिकारों के हनन का होता है? क्या सीमा पार से घुसपैठियों से बेहद कठिन हालात में लोहा लेती देश की रक्षा में जुटी भारतीय सेना द्वारा उन्हें या आतंकियों को मार गिराना मानवाधिकारों का उल्लंघन है, या अंधाधुंध गोलियों से बेगुनाहों की सड़कों पर लाशें बिछा देना मानवाधिकार हनन का मामला है? एमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया की दृष्टि में घुसपैठियों, आतंकियों और समाज-विरोधियों को मारा जाना मानवाधिकारों का उल्लंघन है।

हमारे पास आतंकवाद से निपटने की कोई वैश्विक रणनीति है ही नहीं। राष्ट्र आज सवाल कर रहा है कि आखिर कब तक हमारे जवानों की शहादत होती रहेगी? राष्ट्रीय सुरक्षा का मुद्दा काफी महत्वपूर्ण हो गया है। पाकिस्तान हम से छद्म युद्ध लड़ रहा है। हमें इसे जीतने की तैयारी करनी चाहिए। भारत को मानवाधिकारों का पाठ पढ़ा रहे देश खुद अपने देश में आम लोगों के साथ क्या आचरण कर रहे हैं, यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। जरा सोचिये, जब पूर्वी पाकिस्तान बंगला देश बन सकता है तो पश्चिमी पाकिस्तान पंजाब और सिन्ध क्यों नहीं बन सकता? आतंकवाद भावनात्मक और सैद्धांतिक आग्रहों का विषय नहीं है। आतंकवाद मानवता और राष्ट्रीय सम्प्रभुत्ता के विरुद्ध खूनी जंग है, इस जंग को हम तभी जीत सकते हैं जब दुश्मन को दुश्मन समझते हुए हम उस पर करारा वार करें। इसके लिए हमें इस्राइल से सबक सीखना होगा। भगत सिंह की तरह गरजना होगा और गुलाम कश्मीर को आजाद कराकर सिद्ध करना होगा कि बरसने वाले गरजते नहीं हैं।

❖❖❖

माओवादी हिंसा से निपटने की रणनीति[1]

माओवाद एवं नक्सलवाद सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक संकट हैं और इससे कारगर ढंग से निपटने के लिए, इसके कारणों का पता लगाना आवश्यक है। नक्सलवाद से निपटने की रणनीति तैयार करने के लिए नये तरीके और सुझावों पर मनन जरूरी है। नक्सल के प्रभावों को कम करने के लिए सावधानी पूर्वक जिलों का विश्लेषण और ठिकानों की पहचान कर हमले और बेहतर परिणामों पर विचार किया जाना चाहिए। नक्सल विरोधी रणनीति को पुख्ता करने के लिए हमलों में हताहतों की संख्या में कमी की जानी चाहिए।

नक्सलवादी हमले के बाद सरकार घोषणा करती रही है कि पूरी तरह से माओवादियों को जवाब दिया जाएगा, पर होता कुछ नहीं है। सिर्फ जाँच बैठायी जाती है, लेकिन कोई कार्रवाही नहीं होती। जमीनी स्तर पर काम करने वाले सुरक्षाकर्मी माओवादियों एवं नक्सल विरोधी अभियानों में लगे होने का दावा तो करते हैं पर वास्तव में परिणाम कुछ नहीं निकलता। काम करने वाले सुरक्षा कर्मियों के पास संपर्क का पूरी तरह से आभाव होता है। बड़े पदाधिकारी नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में और दुर्गम इलाकों में जाने से कतराते हैं। बिना किसी सुनियोजित कार्यक्रम और बेहतर प्रौद्योगिकी के बिना कैसे बेहतर काम कर सकते? आवश्यकता है कि सरकार को जमीनी स्तर पर जवानों का जीवन बचाने, कार्य क्षमता बढ़ाने और आधुनिकतम टेक्नोलॉजी मुहैया कराने पर विचार करना चाहिए, न कि देश के हिस्सों में नक्सल विरोधी अभियानों में लगे परेशान जवानों को आँख मूंदकर झोंक देना चाहिए। नक्सल प्रभावित कई टुकड़ियों में आधुनिकता का आभाव है। दुर्गम क्षेत्रों में और भी ज्यादा, ऐसा नहीं है कि इस स्तर पर भी प्रयास नहीं हुए लेकिन नक्सलियों द्वारा कई टावर और संचार व्यवस्था को समय-समय पर नष्ट कर दिया जाता रहा है।

223 जिलों में नक्सली अपनी पैठ बढ़ा चुके हैं। 10 राज्यों में स्थिति गंभीर बनी हुई है और नियंत्रण से बाहर है। कुछ क्षेत्रों में समस्या इतनी बढ़ गयी है जिससे लोकतंत्र खतरे में है। सरकार अपनी नक्सल विरोधी नीतियों में केवल भारी भरकम शब्दों का प्रयोग ही करती रही है। राजनीतिक स्तर पर भी बड़ी-बड़ी बातें हो रही हैं। सरकार यह नहीं समझ रही है कि सुनियोजित रणनीति कैसे बने। इन सभी विषयों पर गंभीरता से विचार करना चाहिए और माओवाद और नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में ऐसे हमलों को रोका जाना चाहिए।

यह सामान्य ज्ञान की बात है कि लंबे समय तक मानवाधिकारों का लगातार उल्लंघन विवादों, माओवाद एवं नक्सलवाद का मूल कारण है। बड़े पैमाने पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक भेदभाव राज्य के भीतर तथा बाहर विवादों को जन्म देते हैं। इसलिए, ऐसे विवादों को रोकने के लिए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को साकार करना पड़ेगा और इन

1 08 मई, 2017

अधिकारों को महत्व दिया जाना आवश्यक है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों जैसे भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के अधिकारों की लगातार अवहेलना होना माओवाद एवं नक्सलवाद का कारणवाचक कारक है। विवादों, माओवाद एवं नक्सलवाद के समाधान की सटीक रणनीति से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का उपयोग सुनिश्चित करना होगा।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि मानव अधिकार मानव की अनिवार्य महत्ता को पहचान देते हैं। यह भी वास्तविकता है कि माओवाद एवं नक्सलवाद निर्दोष लोगों के मानवाधिकारों की जड़ पर वार करते हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने अतिवाद की समस्याओं के प्रति अधिक सजगता दर्शायी है क्योंकि ये अधिकार आज मानवता के प्रति गंभीर खतरों के रूप में प्रकट हुए हैं। चूंकि ये केवल कानून और व्यवस्था के मुद्दे नहीं हैं और इनके गहरे सर्वव्यापक आर्थिक आयाम और मूल हैं, इसलिए इन गतिविधियों की रोकथाम और इनके नियंत्रण के लिए कानूनों का कारगर ढंग से प्रवर्त्तन और सुशासन अपरिहार्य है। माओवाद एवं नक्सलवाद से निपटने के लिए मानवाधिकारों का संरक्षण और संवर्धन अनिवार्य है।

❖❖❖

आतंकवाद निवारण विधेयक (पोटा)[1]

पोटा का सम्पूर्ण राष्ट्र में विरोध होने के बावजूद लोक सभा में पोटा को अधिनियम बनाने संबंधी विधेयक 8 मार्च को प्रस्तुत किया जाना विस्मयकारी एवं दुर्भाग्यपूर्ण है, क्योंकि गुजरात में गोधरा रेलवे स्टेशन पर 58 व्यक्तियों को जिन्दा जलाये जाने एवं उसके बाद गुजरात के विभिन्न भागों में 1000 से अधिक लोगों की हत्या, 400 करोड़ से अधिक मूल्य की सम्पत्ति लूटने और जलाने में लगे लोगों और संगठनों के विरुद्ध पोटा के अंतर्गत कार्रवाई नहीं की गयी। पोटा के विभिन्न प्रावधानों को जिम्मेवार संगठनों और लोगों के विरुद्ध नहीं लगाये जाने से यह स्पष्ट हो गया है कि केन्द्र की भाजपा–गठबंधन सरकार ने आतंकवादियों के नाम पर अपने राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही पोटा को अधिनियम का रूप देने के लिए संसद में पेश किया है। अयोध्या में मंदिर निर्माण के लिए विश्व हिन्दू परिषद् की उग्रतापूर्ण जिद से उत्पन्न परिस्थिति ने ही गोधरा एवं गुजरात की अन्य जगहों में जो जघन्य एवं वीभत्स कार्य किया है उसे आतंकवाद की संज्ञा दी जा सकती है और विश्व हिन्दू परिषद एवं इसमें सम्मिलित अन्य संगठनों को आतंकवादी करार दिया जा सकता है। गुजरात की घटना में पोटा का प्रयोग नहीं किये जाने के आलोक में अब इस अलोकतांत्रिक अधिनियम को पारित कराये जाने का औचित्य नहीं है।

सरकार किसी न किसी बहाने जनविरोधी कानून बनाने के लिए तत्पर दिखती है। केन्द्र सरकार ने टाडा कानून के दुरुपयोग, पुलिस ज्यादती की शिकायतों और मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट पर कोई ध्यान नहीं दिया है। आतंकवाद एक महज बहाना मालूम पड़ता है क्योंकि टाडा बनाते समय उसके पक्ष में आतंकवाद से निपटने की दलीलें दी गयी थीं। परंतु टाडा में पकड़े गये 76000 लोगों में, जिनमें अधिकांश मुसलमान ही थे, से केवल 2 प्रतिशत लोगों के विरुद्ध ही मामला बन सका जिससे आतंकवाद से निपटने की दलील निरर्थक हो जाती है। संशोधित पोटा कानून में भी प्राकृतिक न्याय, संविधान और स्थापित न्यायिक परंपरा को अलग रखा गया है। अभिव्यक्ति या विरोध के सामान्य अधिकार भी छीने जा रहे हैं पुलिस को असीमित अधिकार दिये जा रहे हैं और इन अधिकारों का उपयोग दलितों, मुसलमानों, आदिवासियों, मजदूरों, किसानों एवं सरकार के विरुद्ध उठने वाले विरोध को दबाने के लिए होगा।

शांति व्यवस्था एवं विधि द्वारा स्थापित संस्थाओं का विरोध अपराध माने जाने से देश का लोकतांत्रिक ढांचा ही विनष्ट हो जायेगा और उससे संविधान द्वारा प्रदत्त विरोध का अधिकार ही छिन जायेगा। कोई भी संगठन, मजदूर संगठन या व्यक्ति जनहित के मुद्दे पर यदि आंदोलन करेगा तो उसे शांति और सुव्यवस्था के लिए खतरा या आवश्यक सेवा में बाधक मानकर इस कानून के अंतर्गत अपराध माना जा सकता है। इतना ही नहीं अगर कोई संगठन किसी जनविरोधी कानून या सरकार की किसी नीति को अस्वीकार करे तो उसे सरकार की प्रभुसत्ता पर खतरा माना जा

1 7 मार्च, 2002

सकता है।

संशोधित पोटा ऊपरी तौर पर जैसा दिखाई देता है उसमें सम्मिलित प्रावधान उससे कहीं अधिक खतरनाक है। इसमें पुलिस को सर्वथा निरंकुश बनाने के प्रावधान किये गये हैं। पोटा जनतंत्र के लिए उतना ही खतरनाक है जितना खुद आतंकवाद। आतंकवाद को प्रबल इच्छाशक्ति, प्रशासनिक क्षमता एवं राष्ट्रीय आम सहमति से नियंत्रित करने के अनेक उपाय हो सकते हैं जिन पर व्यापक रूप में विचार किया जा सकता है और उसके लिए आम सहमति के आधार पर कानून बनाया जा सकता है।

❖❖❖

राजनीतिक दलों में इच्छा-शक्ति का अभाव[1]

बिहार में बार-बार होने वाले नरसंहार, अपराध, अपहरण बलात्कार और माफिया का वर्चस्व जहाँ एक ओर यह प्रमाणित करते हैं कि राज्य की कानून-व्यवस्था अपना प्रतीकात्मक महत्व और प्रभाव भी खो चुकी है, वहीं दूसरी ओर यह सुराग भी मिलता है कि सामाजिक, सांप्रदायिक और जातीय तनाव किस वीभत्स मुकाम पर पहुँच गया है। अपहरण, अपराध एवं नरसंहारों के सिलसिले ने बिहार को देश का सबसे उद्वेलित राज्य होने का दर्जा जरूर दिया है, लेकिन ऐसी दुखद घटनाओं जैसी पीड़ा और शोक की लहर उठनी चाहिए, वह बिहार समाज में या बिहार को लेकर देश के अन्य हिस्सों में नहीं उठ पा रही है। शायद इसलिये कि संवेदना के स्तर पर लोग 'इम्यून' होते जा रहे है ! लगता है बिहार को लेकर यह धारणा बलवती होती जा रही है कि यहाँ तो किसी न किसी बहाने आए दिन नरसंहार, अपहरण, हत्या एवं बलात्कार होते ही रहते हैं, इसलिए कितना मातम किया जाए ! जाहिर है कि ऐसी धारणा या अमानवीय संवेदनशून्यता नरसंहारों और अपराधियों से भी ज्यादा घातक है, क्योंकि वह मानवीय त्रासदी पर गुस्सा और क्षोभ पैदा करने के बजाए एक किस्म की उकताहट पैदा करने के काम आ रही है।

बिहार में अपराध एवं हिंसा की घटनाओं में वृद्धि से विकास कार्यों पर सीधा असर पड़ रहा है। प्रदेश की स्थिति ऐसी हो गयी है कि पुलिस और प्रशासन का भय समाप्त हो गया है। पुलिस को अपनी जान की रक्षा के लिए अपराधियों, अपहरणकर्त्ताओ और उग्रवादियों से सांठ-गांठ करनी पड़ रही है। एक प्रकार से पुलिस और प्रशासन के कुछ लोगों ने भय से ग्रसित होकर अपराध एवं उग्रवाद को भीतर ही भीतर सही मान लिया है। अन्य अपराध के मामले में भी यही स्थिति है। अपराधियों के लिए पुलिस प्रशासन कोई मायने नहीं रखता है। पुलिस और प्रशासन का भय तो कमजोर और कानून पसन्द लोगों को सताता है। ऐसे लोगों को ही मामूली बातों पर पुलिस भी तंग करती है। इनको परेशान करने में ही पुलिस अपनी बहादुरी समझती है। यदि अपराधी तत्व किसी को धमकी देता है और उसकी जमीन और मकान पर कब्जा जमा लेता है तो पुलिस उससे मुक्त कराने का अपना दायित्व नहीं मानती है। इसके लिए न्यायालय जाने की सलाह देकर बैठ जाती है। आखिर यही स्थिति रही तो कोई पुलिस और प्रशासन के समीप क्यों जाएगा। इसका नतीजा है कि लोगों ने अपनी जायदाद की सुरक्षा के लिए पुलिस के बजाय किसी बड़े अपराधी तत्व से ही मदद लेना उचित समझ लिया है। प्रदेश की यही स्थिति रही तो थानों में अपराध की घटनाओं की कोई रपट भी लिखाने नहीं जाएगा। विधि-व्यवस्था की बदतर स्थिति से गाँव और शहरों में कोई सुरक्षित नहीं है। इतना ही नहीं, इन दिनों यात्रा भी निरापद नहीं है। प्रदेश में पर्यटन के कई महत्वपूर्ण स्थल हैं, किन्तु बदतर विधि-व्यवस्था के कारण उन स्थलों तक पहुँचने वालों की संख्या घट गयी है। इसके लिए सड़क और रेलमार्ग दोनों असुरक्षित हो गये हैं।

राज्य सरकार का दायित्व बनता है कि वह समय रहते विधि-व्यवस्था की स्थिति में सुधार

---

1 23 जून, 2003

करे क्योंकि विधि-व्यवस्था राज्य का मामला है। इस मामले में केन्द्र सरकार सीधे कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती है। केन्द्रीय अर्द्धसैनिक बल की चाहे जितनी कम्पनियाँ बुलायी जाएं अपराधकर्मों पर काबू नहीं पाया जा सकता है। यह ठीक उसी प्रकार का होगा कि कोई अपनी क्षमता और शक्ति के रहते हुए दूसरों की सहायता की अपेक्षा करे। राज्य सरकार के पास पुलिसकर्मियों की भारी फौज है, जो किसी भी अपराधी तत्व को समूल नष्ट करने के लिए सक्षम है किन्तु सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोगों की नीयत साफ नहीं है। समय रहते सख्त और ईमानदार पदाधिकारियों को समुचित स्थान पर पदस्थापित किया जाए। ऐसी घटनाओं के लिए चौकीदार से आरक्षी एवं अधीक्षक तक को जिम्मेवार बनाकर उनके खिलाफ कारवाई की जाए। खुफिया तंत्र को सक्रिय बनाकर अपराधी तत्वों के खिलाफ सघन अभियान चलाने की जरूरत है।

बिहार में सामूहिक नरसंहार :

बिहार गम्भीर-घृणित अपराध एवं नरसंहार का पर्याय बन गया है। नरसंहार भले नक्सली गुट करें या प्राइवेट सेना अथवा अपराधी गिरोह, अपराध एवं नरसंहार के लिए बस एक बहाना चाहिए। सोशल इंजीनियरिंग, सामाजिक न्याय, वर्ग विभेद को पाटने की कवायद, राजनीतिक वर्चस्व की स्थापना या आपराधिक आतंक फैलाना, कोई भी बहाना हो, बिहार में अपराध एवं नरसंहार सुलभ हैं, यहाँ जानें सस्ती हैं। नरसंहार करने वाले और उनके बहाने भले ही बदलते रहते हों पर एक चीज जो तय है वह यह कि पुलिस-प्रशासन इसे रोकने में हमेशा विफल रहता है और तकरीबन हर बार निर्दोष निरपराध ही नरसंहार का निशाना बनते हैं।

बिहार में विकासहीनता के साथ ही अपराध एवं उग्रवाद बहुत बड़ी समस्या है। इस समस्या के निदान के प्रति यहाँ की सरकार उतनी गंभीर नहीं दिखायी पड़ती है जितनी होनी चाहिये। पुलिस और प्रशासन से बड़ी शक्ति कुछ नहीं होती है और इन सब को मिलाकर सरकार की शक्ति के समक्ष कोई भी व्यक्ति या संगठन टिक नहीं सकता है। इसके विपरीत आज बिहार के विभिन्न जिलों में घट रही घटनाओं का विश्लेषण करने पर ऐसा महसूस होता है कि अपराध एवं उग्रवाद के समक्ष सरकार कमजोर साबित हो रही है। अपराधी एवं उग्रवादी संगठनों का पाँव धीरे-धीरे संपूर्ण बिहार में फैलता जा रहा है। खासकर इनका फैलाव और अड्डा ग्रामीण क्षेत्र हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भी उन स्थानों पर तो मानो उन्हीं की सरकार है जो क्षेत्र पिछड़े हुए हैं और आवागमन का साधन नहीं है। इस मामले में दो बातें उभरकर सामने आयी हैं। पहली तो यह कि सभी वर्ग के लोगों को विकास का लाभ पहुंचाने और गैर बराबरी समाजिक अन्याय समाप्त करने का जो वादा किया गया था, वह पूरा नहीं किया गया और दूसरा यह कि अशिक्षित लोगों की अज्ञानता और उनकी गरीबी का नाजायज लाभ, अपराध एवं हिंसा के रास्ते पर ला खड़ा करने के लिए कुछ संगठनों ने किया, जिनको अपराधी से दूर अतिवामपंथ या उग्रवाद कहा जा रहा है। आखिर अपराध और उग्रवाद ने तो कोई एक दिन में अपना पाँव नहीं फैला दिया। समय रहते इसको क्यों नहीं रोका गया? यह भी विचारणीय बिन्दु है कि जब उग्रवादी संगठन लोगों पर जबरन अपनी विचारधारा को थोप रहे थे और अपराधी गिरोह एवं व्यक्ति को राजनीतिक संरक्षण मिल रहा था, तो सरकार क्या कर रही थी? क्या वह उन लोगों की सुरक्षा में खड़ी थी जो गरीब थे, और अपना हक मांग रहे थे? उधर सामंती तत्व उनको दुत्कार रहे हैं। इस अवस्था में प्रशासन की भूमिका संदिग्ध रहती है।

बिहार में बोट बैंक की जैसी राजनीति की जा रही है उससे अपराध एवं नरसंहारों का

सिलसिला थमने वाला नहीं है। अपराध एवं नरसंहारों को रोकने के लिए जैसी इच्छाशक्ति राज्य सरकार, उसके प्रशासन और उसकी पुलिस के पास होनी चाहिये, वह दिखाई नहीं देती। जब इच्छाशक्ति ही नहीं है तो राजनीति का अपराध जगत से नाता टूटने वाला नहीं है।

बिहार में कानून एवं व्यवस्था की बिगड़ती हुई स्थिति पर संसद में और संसद के बाहर अनेक बार चर्चा हो चुकी है, लेकिन इस चर्चा से बिहार की स्थिति में कहीं कोई सुधार नहीं हुआ। सच तो यह है कि बिहार की स्थिति बिगड़ती ही चली जा रही है। इस राज्य की स्थिति इतनी बिगड़ चुकी है कि यहाँ न कोई उद्योग लग रहे हैं और न ही विकास कार्यक्रम शुरू हो पा रहे हैं। अंततः इसका समाधान बिहार की जनता को ही खोजना होगा।

केन्द्र द्वारा बिहार पर कोई समाधान थोपा नहीं जा सकता। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि राजनीतिक दलों द्वारा आत्ममंथन करने से इंकार किया जा रहा है। लगभग एक वर्ष पहले लग रहा था कि बिहार के राजनीतिक दल अपने राज्य को समस्याओं से उबारने के लिए आत्ममंथन के लिए तैयार हो चुके हैं और वे स्वयं को अपराधी गिरोह एवं माफियावाद से पृथक कर लेंगे, लेकिन जो कुछ पिछले वर्षों में हुआ है और अभी हो रहा है एवं जिस तरह की राजनीति का प्रदर्शन किया जा रहा है, उससे स्पष्ट है कि राज्य के राजनीतिक दल न तो आत्ममंथन के लिए तैयार हैं और न ही अपराधी समूह और माफियावाद का परित्याग करने के लिये।

बिहार में जातीय विग्रह के चलते जातीय संघर्ष अपराध और सामूहिक हत्याऐं दिनोदिन बढ़ती गयी हैं जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में तनाव, अशान्ति, टकराव एवं सामाजिक वैमनस्य फैलता जा रहा है। बिहार के राजनीतिक दलों ने चाहे वे राष्ट्रीय स्तर के हों या राज्य स्तर के, एवं राज्य प्रशासन ने अपनी-अपनी जिम्मेवारी का निर्वहन नहीं किया है। हाल के वर्षों में अपराध, अपहरण के अलावा जितनी भी गंभीर हिंसात्मक घटनाएँ हुई, उनमें राजनीतिक दल घटना स्थल का निरीक्षण, घटना की जाँच की मांग, अनुग्रह अनुदान देने और पीड़ित परिवारों के सदस्य को नौकरी देने की बात करके अपनी-अपनी औपचारिकताएं पूरी कर लेते रहे हैं। किसी भी दल ने यह जानने का प्रयास नहीं किया है कि इन अमानुषिक घटनाओं के पीछे मूल कारण क्या है? उनकी आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का निराकरण कैसे हो सकता है? राज्य सरकार के समक्ष गंभीर चुनौतियां आयीं मगर वह भी संवेदनहीन और अक्षम बनी हुयी है।

जमीन विवाद, मजदूरी विवाद, जातीय विवाद और साम्प्रदायिक विवाद बेरोकटोक चलते रहे हैं, जिनमें निहत्थे व्यवसायी, चिकित्सक, वकील, गरीब, उपेक्षित, दलित, पिछड़े उसके साथ अल्पसंख्यक और गरीब सवर्ण जाति के लोगों की हत्या तथा अपहरण, बलात्कार का सिलसिला जारी है। केन्द्र और राज्य सरकारों में भी ऐसी इच्छाशक्ति नहीं दिख रही है कि इस परिस्थिति पर काबू पाया जा सके।

पूरा बिहार समस्याग्रस्त है। उग्रवादी संगठन अपनी पैठ बढ़ा रहे हैं। भूमिहीन लोगों ने अपनी किस्मत इन उग्रवादी नेताओं के साथ जोड़ ली है। जब आमलोगों को सरकार से इंसाफ नहीं मिलता, न ही सरकार तंत्र उनकी समस्याओं को सुलझाने में समर्थ है, तो वैसी परिस्थिति में वे अपराधी एवं उग्रवादी संगठनों की शरण में जायेंगे ही। दरअसल हिंसा का मूल कारण प्रजातांत्रिक तरीके से भूमि के असमान वितरण को दूर करने की असफलता और प्रजातांत्रिक तरीकों पर से

लोगों के विश्वास का उठ जाना है। वस्तुतः हिंसा एवं अपराध का कारण केवल विधि व्यवस्था की समस्या और सामाजिक-आर्थिक विषमता ही नहीं है, बल्कि राजनीति का अपराधीकरण और अपराध का राजनीतिकरण है।

आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के लिए आधारभूत संरचना का नितांत अभाव है। फलस्वरूप लोग आर्थिक क्रियाकलापों की जगह सामाजिक एवं राजनीतिक क्रियाकलापों में ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। उद्योग के नाम पर अपहरण और अवैध हथियार बनाने के उद्योग फल-फूल रहे हैं।

अन्य राज्यों की तरह बिहार में भी राजनीतिक दल एवं नेता अपना वर्गीय एवं जातीय वर्चस्व बनाये रखना चाहते हैं जो कि अभाव के समुद्र में सुविधाओं की टापू की तरह है। फलस्वरूप अमीरी और गरीबी की दरार दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। अनवरत रूप से चलने वाले ये अपराध एवं हिंसा जातिगत है या वर्गगत? समाज शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाये तो दरअसल बिहार में जाति और वर्ग दोनों सह अस्तित्व बनाए हुए हैं। अतः अधिकांश अपराध एवं हिंसा वर्गगत है पर इसमें जाति की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। बिहार में कृषि जनित हिंसा को दूर करने के लिए भूमि संघर्ष को दूर करने के साथ दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन दोनों तरह की योजनाएँ तैयार करनी होगी। दीर्घकालीन योजना के तहत ग्रामीण सामाजिक संरचना में व्यापक परिवर्तन लाना होगा। इसके लिए संस्थागत मूल्यों में अपेक्षित विचार एवं सिद्धांत द्वारा परिवर्तन लाना आवश्यक होगा। अल्पकालीन योजना में हिंसा, अपराध एवं माफिया प्रभावित क्षेत्र पर ध्यान देना होगा। विकास के कायक्रमों को लागू करने में स्थानीय संगठनों का सहयोग अपेक्षित है। इन भूमि संघर्षों में राजनीतिक दलों की भूमिका संदिग्धपूर्ण है। अतः आम सहमति से सभी राजनीतिक दलों के लिए आम आचार संहिता बनायी जानी चाहिए। सरकार पहल करके सभी दलों की बैठक बुलाकर हिंसा, अपराध एवं अपहरण आदि दूर करने के उपाय को ढूंढ़ सकती है। स्वयंसेवी संगठनों को कार्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए और जमीनी स्तर पर चेतना एवं जागरूकता लाने में इनकी मदद ली जानी चाहिए। सामाजिक-राजनैतिक क्रियाकलापों की जगह आर्थिक क्रियाकलापों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

सामाजिक व आर्थिक असमानताएँ हिंसा का प्रतिरूप हैं। गरीबों, महिलाओं, बच्चों, दलितों, विधवाओं आदि के प्रति राज और समाज की बरकरार उदासीनता हिंसा की महिमा को कायम रखने की राजनीति है। यह राजनीति अमीरों, भूस्वामियों, सामन्तों तथा रूढ़िवादियों की राजनीति है जो समय-समय पर देश, धर्म, संस्कृति, परम्परा आदि की दुहाई देकर भूमिहीन खेत मजदूरों, अशिक्षित, बेरोजगारों, आदिवासियों, दलितों एवं महिलाओं के खिलाफ यथास्थिति कायम रखने के लिए सतत् प्रयत्नशील है। बिहार में स्थिति इतनी भयावह है कि गरीबों-दलितों के बीच राजनीति को लेकर एक अजीब उदासीनता जन्म ले रही है। हिंसा के रास्ते को छोड़कर अहिंसक तरीके से समानता व सम्मान के आन्दोलन को तेज करना होगा।

❖❖❖

दल-बदल कानून[1]

केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा दल-बदल कानून की त्रुटियों को समाप्त कर दल-बदल करने वाले सांसदों और विधायकों की सदस्यता समाप्त करने एवं केन्द्र और राज्य में सांसद और विधानमंडल के सदस्यों की संख्या का 10 प्रतिशत तक ही मंत्रियों की संख्या निर्धारित किये जाने के संबंध में लिये गये निर्णय प्रशंसनीय है।

केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा भारत की राजनीति में आ रही सिद्धांतविहीनता, नीतिविहीनता, नैतिकताविहीनता एवं व्यक्तिगत लाभ के लिए दल-बदल करने की प्रवृत्ति को रोकने एवं राजनीतिक दलों में नीति और सिद्धांत आधारित प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं को सांसद एवं विधान मंडल में सदस्य मनोनीत किये जाने को बढ़ावा दिये जाने के उद्देश्य से संविधान की अनुसूची 10 में संशोधन लाने तथा राज्य एवं केन्द्र के मंत्रिमंडलों में विधान मंडल की सदस्य संख्या का केवल 10 प्रतिशत ही मंत्री बनाये जाने के निर्णय को सभी राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो जिससे सुगमता से केन्द्र सरकार संविधान संशोधन विधेयक उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पारित कराकर भारत की संविधान की उद्देशिका के अनुसार भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष तथा लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाकर समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय उपलब्ध करा सके।

भारतीय राजनीति में दल-बदल अभिशाप बन गया और दल-बदल कानून निरर्थक साबित हुआ। सिद्धांतविहीन नीतिविहीन आधार पर सामूहिक रूप से दल-बदल होता रहा जिसके कारण मंत्रिपरिषद् में शामिल होने वाले मंत्रियों की संख्या पर कोई अंकुश नहीं रहा। राजनीतिक अस्थिरता को बल मिलता रहा और मंत्री की संख्या से राजकोष पर बोझ बढ़ता रहा और प्रशासनिक कामकाज भी बाधित हुआ। इसलिए राष्ट्र के व्यापक हित में राजनीति को नीति एवं सिद्धांत आधारित बनाने के लिए संविधान की अनुसूची 10 के खण्ड-3 को विलोपित करें जिसके अंतर्गत एक तिहाई सदस्यों को दल से अलग होकर दल विभाजन की संज्ञा दी गई, जिसमें उनकी सदस्यता बचाने का प्रावधान था। अब उस अंश के विलोपित होने से कोई भी व्यक्ति दलीय आदेश का उल्लंघन करने से सदस्यता के लिए अयोग्य करार दिया जायेगा।

मंत्रिपरिषद सदस्यों की संख्या सदन की कुल संख्या का 10 प्रतिशत रखने की अनुशंसा 60 के दशक में प्रशासनिक सुधार आयोग ने श्री मोरारजी देसाई और श्री हनुमनतैया की अध्यक्षता में की थी। उस आयोग की अनुशंसा केवल प्रधानमंत्री तथा मुख्यमंत्री को निर्देश के रूप में उनके आचार संहिता में सम्मिलित है। वह अनुशंसा अभी तक निष्प्रभावी रही। मंत्रिपरिषद सदस्य बनने के लालच में दल-बदल करने वालों पर इस सीमा से अंकुश लगेगा। संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिए गठित आयोग ने भी मंत्रिमंडल के आकार को सीमित करने और दल-बदल

1 25 अप्रैल,2003

कानून की त्रुटियों को समाप्त करने की अनुशंसा की थी।

संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली में दलों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए पार्टी की ओर से जारी ह्विप का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए। प्रस्तावित संशोधन लोकतंत्र में स्वस्थ परम्परा स्थापित करेगी। इसलिए दल-बदल की संभावना को समाप्त करने के उद्देश्य से मंत्रिपरिषद के सदस्यों की संख्या सुनिश्चित करना आवश्यक है। दल-बदल को बढ़ावा एवं प्रश्रय देने में 'मंत्री' बनना बड़ा कारक है, इसलिए उसकी संभावना समाप्त की जा रही है। राज्यों में विशेषकर उत्तर प्रदेश और बिहार से सिर्फ सत्ता बचाए रखने के लिए विशालकाय मंत्रिमंडल की परंपरा चल पड़ी है। दलीय नैतिक आधार टूटने से लोकतांत्रिक व्यवस्था दरअसल में स्वेच्छाचारिता में बदल जाती है। भारत की राजनीतिक मर्यादा को बहाल करने के लिए श्री राजीव गांधी ने संविधान में 10वीं अनुसूची शामिल कर दल बदल पर रोक लगाने की ईमानदारीपूर्वक पहल की थी। उन्होंने वैचारिक भिन्नता को स्वीकार करने के लिए दल में एक तिहाई सदस्यों के समूह को सैद्धांतिक रूप में दल में विभाजन को स्वीकारा था। परन्तु, इस 'विभाजन' का दुरुपयोग होता रहा जिसके कारण सभी बड़े और छोटे दलों ने सत्ता के हित में इस एक तिहाई का उपयोग अपनी सरकार के लिए समय-समय पर करते रहे।

❖❖❖

विधान परिषद के दल विहीन चुनाव[1]

यह सुनिश्चित अभिमत है कि जब देश के उन सभी राज्यों में जहाँ विधान परिषद कार्यरत हैं वहां स्थानीय प्राधिकार और अन्य परिषद निर्वाचन क्षेत्रों से दलीय आधार पर चुनाव होता है तो ऐसी परिस्थिति में बिहार में दल विहीन चुनाव संसदीय लोकतंत्र के लिए अशुभ संकेत हैं।

दल आधारित लोकतंत्र में दल विहीन राजनीति की न कोई गुंजाइश है और न ही संभावना है। दलीय उम्मीदवार से ही अपराधियों, बाहुबलियों एवं धनबलियों को चुनाव से अलग किया जा सकता है।

सांसद और विधान मंडल के चुनाव लगातार दलीय आधार पर ही होते रहे हैं। विधान परिषद चुनाव में जम्मू कश्मीर, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र में स्थानीय प्राधिकार निर्वाचन क्षेत्रों में दलीय आधार पर ही चुनाव होते रहे हैं, जबकि इन राज्यों में भी 73वां संविधान संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत पंचायत राज संस्था कार्यरत है।

इन तथ्यों के आलोक में राष्ट्रीय जनता दल और राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का यह तर्क कि पंचायती राज स्थापित होने के बाद स्थानीय निकाय चुनाव में दलीय आधार पर चुनाव नहीं होना चाहिये, इसे किसी भी कसौटी पर न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। इन दोनों गठबंधनों द्वारा यह तर्क देना कि पंचायती राज संस्था और स्थानीय निकाय से होने वाले चुनाव में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये, का कोई औचित्य नहीं है। संसदीय प्रणाली के लिए यह उपयुक्त नहीं है। लोक सभा चुनाव के पहले इन दोनों गठबंधनों ने अपने-अपने गठबंधन की समरसता में एकजुटता बनाये रखने के लिए ही इस चुनाव से अपने-अपने दलों को अलग रखा है।

यह भी उल्लेखनीय है कि 1952 से 1976 तक विधान परिषद के लिए स्थानीय निकाय के सभी चुनावों में राजनीतिक दलों ने भाग लिया है। बिहार में दल विहीन चुनाव अभी तक हुआ नहीं है। पहली बार राष्ट्रीय जनता दल और मुख्य विपक्षी दल राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन ने चुनाव से अलग रहने का फैसला किया है।

बिहार विधान परिषद् के स्थानीय निकाय क्षेत्र की 24 सीटों के लिए हो रहे चुनाव को गैर दलीय बनाये रखने के लिए राजद नेता श्री लालू प्रसाद ने बड़ी ही चतुराई से राजनीतिक दलों की राजनीतिक सार्थकता समाप्त कराकर अपनी दीर्घकालिक सोच एवं रणनीति का परिचय दिया है। राष्ट्रीय जनता दल, भारतीय जनता पार्टी, समता पार्टी, जनता दल 'यू', लोक जनशक्ति पार्टी एवं कांग्रेस पार्टी सहित दलों द्वारा दलगत आधार पर चुनाव नहीं लड़ने के पीछे अपराधियों को रोकने की मंशा नहीं है, बल्कि अपराधियों एवं बाहुबलियों के समक्ष इन राजनीतिक दलों का आत्म समर्पण है। क्योंकि इन राजनीतिक दलों की नजर आगामी लोक सभा तथा विधान सभा चुनाव पर लगी हुई है। ऐसे दलविहीन चुनाव कराने के निर्णय से सभी राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का मनोबल ध्वस्त हो गया है। वहीं दूसरी ओर धनबली, बाहुबली एवं आपराधिक छवि वाले लोगों का मनोबल बढ़ गया है। इस निर्णय ने स्पष्ट रूप से इन तत्वों को विधान परिषद

1 20 जून, 2003

में पहुँचने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। दलगत आधार पर चुनाव होने से राजनीतिक दल अच्छी छवि का उम्मीदवार दे सकते हैं और राजनीतिक दलों का उम्मीदवार जो भी जीतकर आता, वह लोकतांत्रिक सिद्धांतों, मर्यादाओं के प्रति प्रतिबद्ध होता।

दलविहीन चुनाव कराने के निर्णय से बिहार की राजनीति सिद्धांतहीन, आचारहीन और चरित्र विहीन हो गई है। राजनीतिक दलों में अपराधियों और बाहुबलियों को विधान परिषद तक पहुंचने से रोकने की इच्छाशक्ति नहीं हैं। अपने-अपने दल के अन्दर होने वाले विद्रोह को रोकने के लिए ही राष्ट्रीय जनता दल द्वारा निर्धारित रणनीति के जाल में ये सभी राजनीतिक दल बिना सोचे विचारे फंस गये हैं। अन्य राजनीतिक दलों के नेताओं में इस बात का भय था कि अपने दलों के सम्भावित उम्मीदवारों को टिकट नहीं मिलने की अवस्था में वे नाराज होकर अगले लोक सभा एवं विधान सभा चुनाव में उनके लिये कठिनाई उपस्थित कर सकते है।

राजद ने लोक सभा चुनाव के पूर्व अपनी सरकार के विरुद्ध जनमत नहीं बनने देने के उद्देश्य से ही दलविहीन चुनाव का निर्णय कराया है। यह तर्क दिया है कि विकेन्द्रित लोकतांत्रिक संस्थाओं को दलगत राजनीति से अलग रखने के और स्वशासन के लिए जनता के अधिकार में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप नहीं होने के लिए स्थानीय निकाय के कोटे की विधान परिषद की 24 सीटों पर होनेवाले चुनाव में अलग रहने का फैसला किया है। तर्क है कि स्थानीय निकायों का चुनाव दलगत नहीं था। इसलिए स्थानीय निकाय के कोटे की विधान परिषद की सीटों पर होने वाले चुनाव दलगत नहीं होने चाहिये, परन्तु यह चुनाव पंचायत राज संस्थाओं के लिए नही, बल्कि इस निकाय के मतदाताओं से विधान परिषद के लिए सदस्य निर्वाचित होने के लिए है। जहाँ सभी सदस्य दलीय आधार पर ही भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों से चुनकर आये हैं। विधान सभा और विधान परिषद का गठन पूर्णत: दल आधारित है। जब सभी अन्य निर्वाचन क्षेत्रों से दलीय आधार पर चुनाव हुए हैं तो केवल स्थानीय निकाय का चुनाव दल विहीन क्यों कराने का निर्णय लिया गया है ?

विधान परिषद की 24 सीटों के अन्तर्गत बिहार के सभी 243 विधान सभा क्षेत्र आते हैं। दलीय आधार पर चुनाव कराये जाने से राष्ट्रीय जनता दल के साथ सभी विपक्षी दल राजद गठबंधन के विरुद्ध प्रचार के माध्यम से माहौल बनाने में सफल हो सकते हैं। लोक सभा चुनाव के पूर्व राजद ने अपनी सरकार के विरुद्ध विरोधी दलों को प्रचार करने का मौका नहीं देने के उद्देश्य से ही दल विहीन चुनाव कराने के लिए विधान मंडल के पीठासीन सदस्यों के माध्यम से यह राजनीति खेल खेला है। लोकतंत्र में राजनीतिक दलों के बिना संसद और विधान मंडल का कोई औचित्य और सार्थकता बन ही नहीं सकती। विधान सभा, विधान परिषद दलीय आधार पर गठित है। स्वयं अध्यक्ष और सभापति दलीय आधार पर निर्वाचित हैं तो, ऐसी अवस्था में दल विहीन चुनाव कराये जाने का क्या औचित्य हो सकता है? आवश्यकता तो इस बात की थी कि सभी राजनीतिक दल संयुक्त रूप से बाहुबली एवं आपराधिक छवि वाले उम्मीदवारों को नहीं जीतने देने की स्थिति बनाते जिसमें इन बाहुबलियों पर अंकुश लगाया जा सके। अब जब कि इन राजनीतिक दलों के उम्मीदवार चुनाव में होंगे ही नहीं, तो इन पर रोक कौन लगायेगा। अत: सभी दलों को चुनाव नहीं लड़ने के निर्णय पर पुनर्विचार करना चाहिए।

❖❖❖

धर्मनिरपेक्ष मतों के विभाजन को रोकना आवश्यक[1]

धर्मनिरपेक्ष दलों का यह राष्ट्रीय दायित्व है कि वे सभी पूर्वाग्रह, पसंदगी एवं नापसंदगी को छोड़कर राष्ट्र के व्यापक हित में अपने-अपने स्तर से गैर-भाजपा गठबंधन बनाने में सहयोग करें। कांग्रेस को भी धर्मनिरपेक्ष राजनीति की धुरी बनकर अपनी जिम्मेवारी का निर्वहन करना चाहिए और राजग के विरुद्ध एक सशक्त विकल्प स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा के आधार पर बनाना चाहिए। यह निर्विवाद है कि धर्म और जाति आधारित मतदाता अगले 10-15 वर्षों तक केन्द्र में किसी भी एक राष्ट्रीय दल को पूर्व बहुमत प्राप्त नहीं करने देंगे। अतः मिली जुली सरकार के दौर की वास्तविकता को काँग्रेस सहित सभी धर्मनिरपेक्ष दलों को स्वीकारना होगा और सत्ता की साझेदारी की नई परंपरा विकसित करनी होगी। कांग्रेस अभी तक ऐसी परंपरा विकसित करने की विरोधी रही है। उसने कुछ साल पहले पंचमढ़ी में पारित राजनीतिक प्रस्ताव के तहत किसी भी राजनीतिक दल से गठबंधन का विरोध ही किया था।

आज गुजरात की घटना के बाद देश के 15 करोड़ मुसलमान अपने को असुरक्षित महसूस कर रहे हैं जो बहुसंप्रदाय, बहुभाषायी और बहुजातीय देश के लिए खतरनाक संकेत है। अभी देश के सामने सवाल है कि भाजपा को सत्ता से कैसे हटाया जाए और कैसे गुजरात में किये गये सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के प्रयोग को आगामी चुनाव में हथियार के रूप में इस्तेमाल नहीं करने दिया जाए। इस प्रसंग में यह भी सभी दलों के लिए विचारणीय प्रश्न है कि केन्द्र की राजग सरकार नई आर्थिक नीति के तहत आर्थिक सुधार के द्वितीय चरण को तेजी से लागू कर रही है जिससे ग्रामीण किसान, लघु उद्योग, हथकरघा, बैंक तथा उत्पादन के साधन ठप्प होते जा रहे हैं। बाढ़-सुखाड़ से प्रभावित किसान सरकार की किसान विरोधी नीति से बेबसी की जिन्दगी बिताने के लिए मजबूर हो रहे हैं। विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष एवं विश्व व्यापार संगठन आर्थिक नीतियों का भारतीय हित के विरुद्ध निर्धारण कर रहे हैं। आर्थिक सार्वभौमिकता समाप्त की जा रही है। सरकारी नौकरी में कटौती और निजी क्षेत्रों में नियोजन की संभावना क्षीण होने की वजह से बेरोजगारी बढ़ रही है। राज्य अपनी कल्याणकारी भूमिका से मुँह मोड़ कर शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार आदि से बे-खबर है। श्रम सुधार से संगठित व असंगठित करोड़ों मजदूर, दलित-आदिवासी अपनी जीविका से बेदखल हो रहे हैं। यही उनकी नियति बन चुकी है।

❖❖❖

1 7 जनवरी, 2003

भूमंडलीकरण और साम्प्रदायीकरण[1]

भारत की विभिन्न आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों पर विचार करते हुए आज हमें इस पर गंभीर रूप से चिन्तन करना है कि भूमंडलीकरण और साम्प्रदायीकरण ''एक ही सिक्के के दो पहलू है''। साम्राज्यवादी भूमंडलीय तत्वों द्वारा पहुँचाया गया यह आघात अब भिन्न-भिन्न स्वरूप धारण कर चुका है और अब उन्होंने ''आर्थिक आतंकवाद'' का रास्ता अख्तियार किया है ताकि स्वतंत्र देश उनके मातहत बनकर रहें। ऐसे तत्व विभिन्न देशों के साधन स्रोतों को जानने की लगातार कोशिश कर रहे हैं और इस चेष्टा में लगे हैं कि साम्राज्यवादी अंतर्राष्ट्रीय कंपनियाँ उनके संसाधनों को विनष्ट कर दें ताकि स्थानीय देश अपने अधिकार पाने में असमर्थ रहें।

ताज्जुब की बात यह है कि गरीबी, भूख और बेरोजगारी जैसे महत्वपूर्ण समस्याओं के बदले सरकार ने अपना ध्यान मुख्य रूप से धर्म, जाति और संप्रदाय पर लगा रखा है। ऐसी परिस्थिति में देश की राजनीतिक व्यवस्था चलाने वालों को मुड़कर देखने की जरूरत है, क्योंकि केन्द्र देश की सार्वभौमिकता को भूमंडलीय तत्वों के हवाले कर रही है।

भूमंडलीकरण एक ऐसा प्रयास है कि ''भूमंडलीय अर्थव्यवस्था को एंग्लो-अमेरिकन तत्वों के हक में मोड़ा जा सके।" देशवासी एकजुट होकर ऐसी राजनीतिक परिस्थिति उत्पन्न करें जिससे देश की स्वतंत्रता किसी दूसरे देश के हवाले न कर दी जाए। देश ने सौ वर्षों तक संघर्ष करके आजादी हासिल की है जिस पर आज सांप्रदायिक तत्वों के आचरण से खतरा मडरा रहा है। आज जरूरत है कि हमारा संघर्ष ''त्रिमूर्ति' याने विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के विरुद्ध जारी रहे। साम्राज्यवादी तत्वों द्वारा पहुँचाये गये आघात से देश की रीढ़ टूट गई है क्योंकि उन्होंने अपना नवीनतम अस्त्र, जो विश्व व्यापार संगठन के रूप में है, उसका दुनिया के विरुद्ध प्रयोग कर रहे हैं।

निजीकरण आवश्यक अंग है भूमंडलीकरण का और इसके चलते देश के सशक्त लोक-उपक्रमों को पहले ही ध्वस्त किया जा चुका है जिसके चलते लोग बेरोजगार हुए और कृषि पर इसका ऐसा घातक असर पड़ा कि सैकड़ों किसानों ने आत्महत्या कर ली। आज देश में भूमंडलीकरण की यदि कोई राजनीतिक आवश्यकता है तो वह है कि गरीबों के विरुद्ध धन-सम्पन्न लोगों की जो एक पंक्ति बन रही है, उसके विरुद्ध अभियान चलाया जाए। दुनिया के जिन लोगों ने विनाशकारी शस्त्र एवं साधन इकट्ठे कर लिये हैं वे आज ऐसे लोगों के पीछे पड़े हुए हैं जिनके पास बहुत पुराने पड़े अस्त्र-शस्त्र मौजूद हैं। स्पष्ट है कि ऐसे तत्वों के विरुद्ध संघर्ष चलाना आज की राजनीतिक आवश्यकता बन गई है।

---

1 10 जनवरी, 2003

सरकार की आर्थिक नीतियों के कारण देश बर्बादी और तबाही के द्वार पर खड़ा है। सार्वजनिक क्षेत्र के बेशकीमती उद्यम कौड़ियों के मोल बिक रहे हैं। श्रम कानूनों में संशोधन कर उन्हें मालिकों के हित में मोड़ा जा रहा है। इनके चलते हजारों-हजार कर्मचारी बेरोजगार हो रहे हैं और विनिवेश के जरिये सरकार 78 हजार करोड़ रुपये प्राप्त करने के लिए जिस तरह सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को बेच रही है उसके चलते उन उपक्रमों में आरक्षित वर्ग के आरक्षण को भारी मात्रा में खत्म किया जा रहा है। ये उपक्रम आरक्षित वर्ग के दलित समुदायों और पिछड़ी जातियों को आरक्षण का लाभ उपलब्ध कराने के मजबूत साधन थे जिन पर कठोर आघात पहुँचाया गया है। सरकार की बदली हुई कृषि नीति का असर किसानों पर भी पड़ा है, क्योंकि कृषि उत्पाद का आयात बढ़ने से किसान को अपना लागत मूल्य भी नहीं मिल पा रहा है और वे निराशा में आत्महत्या तक कर रहे हैं। सरकार ने नेहरू की तटस्थ विदेशी नीति त्यागकर भारत को अमेरिकी साम्राज्यवाद का पिछलग्गू बना दिया है। सरकार की विध्वंसकारी आर्थिक नीतियों के विरोध में पिछले वर्षो में विपक्ष संसद के भीतर और बाहर कोई प्रभावकारी भूमिका अदा नहीं कर पाया और न ही राष्ट्रीय स्तर पर कोई जुझारू आंदोलन चला सका।

❖❖❖

उच्चतम न्यायालय द्वारा विधान सभा का विघटन[1]

उच्चतम न्यायालय द्वारा बिहार विधान सभा विघटन संबंधी मामले पर विभिन्न स्रोतों से जो उक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं कि उच्चतम न्यायालय लोकतांत्रिक मर्यादाओं के पालन और उसकी रक्षा के संबंध में विचार करते हुए एक अत्यंत ही ऐतिहासिक निर्णय देने वाला है, जिससे सारी अनिश्चितताएं और भ्रम दूर हो जायेंगे। बोम्मई मामले में उच्चतम न्यायालय के 9 सदस्यीय संविधान पीठ ने कर्नाटक, मेघालय और नागालैण्ड के लिए मापदण्ड (पैरा मीटर) स्थापित किए है। संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन उस पीठ का निर्णय सबके लिए बंधनकारी है और उस निर्णय में जब तक उच्चतम न्यायालय के 9 की जगह 11 सदस्यों की संविधान पीठ द्वारा परिवर्तन या संशोधन नहीं किया जाता है, तब तक बोम्मई मामले संबंधी पूर्व निर्णय ही लागू रहेगा।

उच्चतम न्यायालय ने बोम्बई मामले में अपने महत्वपूर्ण निर्णय में निर्विवाद रूप में बताया था कि यदि राज्य विधान सभा भंग किये जाने संबंधी राष्ट्रपति के प्रख्यापन को न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया जाता है तो राज्य विधान सभा के चुनाव के संबंध में चल रही प्रक्रिया को भी उपयुक्त मामलों में रद्द किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय का बोम्मई मामले में दिया गया सुस्पष्ट मंतव्य विशेष महत्वपूर्ण हो जाता है।

संविधान के अनुच्छेद 329 में इस विषय पर ऐसा कुछ भी उल्लेख नहीं है कि यदि निर्वाचन की प्रक्रिया शुरू कर दी गई है, तो कोई भी न्यायालय उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकेगी। ऐसे स्पष्ट संवैधानिक प्रावधान एवं कर्नाटक और मेघालय सम्बंधी 9 सदस्यीय संविधान पीठ के निर्णय के आलोक में उच्चतम न्यायालय के अधीन प्रस्तुत याचिकाओं के संबंध में उच्चतम न्यायालय राष्ट्रपति के प्रख्यापन को रद्द करने और बिहार विधान सभा को पुनर्जीवित करने के साथ ही राष्ट्रपति के प्रख्यापन की वैधता पर अंतिम फैसला होने तक बिहार विधान सभा चुनाव संबंधी प्रक्रिया को स्थगित करने के लिए पूर्णत: सक्षम है। कर्नाटक और मेघालय के बाद उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह बड़ा ही महत्वपूर्ण और संवेदनशील मामला अभी विचाराधीन है।

एस०आर० बोम्मई बनाम भारतीय संघ के विख्यात मामले में 1994 के अपने निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यदि उसके द्वारा राज्य विधान सभा का विघटन अमान्य कर दिया जाता है तो न केवल मंत्रिपरिषद और राज्य विधान सभा पुन: मान्यता प्राप्त बन जायेगी, बल्कि उपयुक्त मामले में आगे होने वाली विधान सभा चुनाव भी अमान्य हो जायेगा। मंत्रिमंडल और राज्य विधान सभा के पुन:स्थापन तथा नये चुनाव को रद्द किए जाने के मामले को विधान सभा विघटन संबंधी राष्ट्रपति के प्रख्यापन के अमान्यीकरण को स्वाभाविक परिणाम मानते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने बताया कि ऐसा उपाय नहीं किये जाने पर ''उसकी न्यायिक पुनर्विलोकन (ज्यूडिशल रिव्यू) संबंधी शक्ति नगण्य और अर्थविहीन हो जायेंगी।''

---

1 15 सितम्बर, 2005

उच्चतम न्यायालय के बोम्मई मामले में दिये गये निर्णय के आलोक में अनुच्छेद 356 (1) के अधीन किया गया यह प्रख्यापन न्यायिक पुनर्विलोकन या समीक्षा की परिधि से बाहर नहीं है। उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय ऐसे प्रख्यापन को निरस्त कर सकता है, अगर ऐसा प्रतीत हो कि वह दुर्भावनावश और बिल्कुल असंगत आधार पर जारी किया गया है। अब भारत सरकार को उच्चतम न्यायालय के समक्ष वह सामग्री प्रस्तुत करनी होगी, जिसके आधार पर कार्रवाइयाँ की गई हैं। ऐसी स्थिति में वह यदि की गई कार्रवाई को बचाना भी चाहे तो भी न्यायालय द्वारा मांगी गई सामग्री उन्हें प्रस्तुत करना अनिवार्य हो जायेंगी। उच्चतम न्यायालय यह समीक्षा कर सकता है कि जो सामग्री प्रस्तुत की गई है, वह की गई कार्रवाई के लिए उपयुक्त या सुसंगत थी या नहीं। उसी आलोक में 21 अप्रैल, 1989 को कर्नाटक के बारे में किया गया प्रख्यापन और 11 अक्टूबर, 1991 को मेघालय के बारे में किया गया प्रख्यापन गैर संवैधानिक करार दिया गया था।

बिहार के राज्यपाल की जो रिपोर्ट उच्चतम न्यायालय को सौंपी गई है, उस रिपोर्ट से जाहिर होता है कि बिहार के मामले में राज्यपाल की अनुशंसा ने औचित्य के सभी मानदंडों को नजरअंदाज कर दिया है और राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को अनुच्छेद 356 (1) के अधीन प्रख्यापन निर्गत करने का अनुरोध किया जाना अनावश्यक जल्दबाजी में की गई कार्रवाई है, जिसमें द्वेषपूर्ण व्यवहार का स्पष्ट संकेत मिलता है। राज्यपाल की उक्त रिपोर्ट पर राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापन निर्गत किया जाना भी तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए द्वेषपूर्ण भाव का परिचायक है। चूंकि राज्यपाल किसी राज्य की संवैधानिक शासन प्रणाली के सर्वोच्च पदधारक होते हैं, इसलिए उनसे यह उम्मीद की जाती रही है कि वे पूरी दृढ़ता, सावधानी और अपनी सूझबूझ से ही अपना कार्य संचालन करेंगे।

❖❖❖

बिहार में कांग्रेस[1]

कांग्रेस 1995 से लगातार कमजोर होती गई। 1995 के चुनाव के अवसर पर बिहार के तत्कालीन राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति शासन की अनुशंसा को तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री श्री सीताराम केसरी ने तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हा राव पर दबाव देकर लागू नहीं होने दिया। श्री लालू प्रसाद सरकार की बर्खास्तगी नहीं होने के कारण बिहार के मतदाता कांग्रेस के विरूद्ध हो गये।

1989 के लोकसभा के चुनाव में देश में कांग्रेस की शर्मनाक हार के बाद बिहार में सत्ता परिवर्तन हुआ। श्री सत्येन्द्र बाबू की जगह मुझे मुख्यमंत्री बनाया गया। जहाँ बिहार में 1989 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को केवल 20 विधानसभा क्षेत्रों में बढ़त मिली थी वहीं 1990 के चुनाव में मेरे नेतृत्व में 72 सीटों में जीत हुई। राज्य में श्री वी.पी. सिंह की लहर रहने के बावजूद। वहीं 1995 की चुनाव में यह संख्या घटकर 29 हो गई।

1999 में केन्द्र सरकार द्वारा लागू राष्ट्रपति शासन का विरोध कांग्रेस द्वारा करने के कारण बिहार के मतदाताओं की नाराजगी बढ़ी। इसके फलस्वरूप 2000 के चुनाव में कांग्रेस की संख्या घटकर 23 हो गई और राष्ट्रीय जनता दल और कांग्रेस के तालमेल से 2005 के चुनाव में कांग्रेस की संख्या घटकर 9 हो गई।

2004 के लोकसभा चुनाव में बिहार के 40 लोकसभा सीटों में से कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय पार्टी को राजद ने केवल 4 सीटें दी उसमें तीन पर कांग्रेस विजयी हुई। यह भी उल्लेखनीय है कि 1997 के जुलाई में जब जनता दल में टूट हुई श्री शरद यादव के अलग होने पर श्री लालू प्रसाद की सरकार बिहार विधान सभा में अल्पमत में हो गई तो तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष श्री सीताराम केसरी ने कांग्रेस पार्टी का समर्थन राजद के पक्ष में दिलाया। कांग्रेस पार्टी का निर्णय आत्मघाती था। 3 अगस्त, 1997 को श्रीकृष्ण स्मारक सभागार में बिहार कांग्रेस कार्यकर्ताओं की सभा में विरोध का सामूहिक प्रकटीकरण किया गया था। मेरे उस विरोध को तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष ने दल विरोधी आचरण करार देते हुए मुझे छ: वर्षों के लिए कांग्रेस की सदस्यता से निष्कासित कर दिया।

मैंने 1997 के 3 जनवरी को श्री केसरी का संसदीय दल के नेता निर्वाचन में विरोध किया था। इसलिए श्री केसरी ने बिहार प्रदेश कांग्रेस में मेरा आपार समर्थन रहने के बावजूद मेरे समर्थकों को कांग्रेस का डेलिगेट नहीं बनने दिया। यहाँ तक कि मुझको अखिल भारतीय कांग्रेस का सदस्य भी नहीं बनने दिया। मेरे हटने के बाद कांग्रेस लगातार कमजोर होती गई। जहाँ तक 1977 के लोकसभा चुनाव में मेरे नेतृत्व में पराजय का प्रश्न है; यह सर्वविदित है कि 1977 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी समेत उत्तर भारत के सभी राज्यों में कांग्रेस की शर्मनाक हार हुई थी। वहीं 1980 के लोकसभा चुनाव में मेरे नेतृतव में लोकसभा चुनाव में कांग्रेस की जीत हुई।

---

1 24 अक्टूबर, 2007

कांग्रेस के कुछ नेताओं द्वारा यह कहना कि श्री लालू प्रसाद की सरकार का मैंने विरोध नहीं किया और मैंने विधान सभा में विरोधी दल के नेता की हैसियत से सही दायित्व का निर्वहन नहीं किया यह तथ्यों एवं सच्चाई पर आधारित नहीं है। जहाँ तक विधान सभा में अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाने का सवाल है, वस्तुस्थिति यही रही कि 72 सदस्यों वाली पार्टी द्वारा लाये जाने वाले अविश्वास प्रस्ताव का महत्व नहीं था। अगर अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया जाना मिलीभगत थी तो भाजपा ने भी मुख्य विपक्षी दल के रूप में 1995-2000 में भी अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया। अभी केन्द्र में भी मुख्य विपक्षी दल भाजपा ने डॉ॰ मनमोहन सिंह की सरकार के विरूद्ध तीन वर्षों में अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया है। क्या भाजपा बिहार में श्रीमती राबड़ी देवी की सरकार और केन्द्र में संप्रग सरकार के प्रति नरम है?

वस्तुस्थिति यह है कि मेरे विधान सभा में आक्रामक विरोध और प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में मेरे द्वारा राज्य में जद सरकार के विरूद्ध जन आंदोलन लगातार चलाये जाने के कारण ही श्री लालू प्रसाद की सरकार ने लगातार प्रताड़ित किया। ऐसा उन्होंने किसी दूसरे विरोधी दल के नेता के साथ नहीं किया। मेरा 22 नवम्बर, 1990, 8 जुलाई, 1993 एवं 23 मार्च, 1994 का विधान सभा भाषण प्रमाण है।

मेरे विपक्ष के नेता रहने एवं प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष के कार्यकाल में गांधी मैदान में 15 जून, 1992 को जनता दल शासन के विरुद्ध ऐतिहासिक रैली आयोजित हुई और दिसम्बर, 1993 में जनता दल सरकार के विरुद्ध 3 लाख से अधिक कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने गिरफ्तारियाँ दी। मुझे प्रताड़ना दिये जाने का उदाहरण है कि भूमि हदबंदी कानून के अन्तर्गत 1978 में निष्पादित मेरे तथा उनके भाइयों के मामले को राजद सरकार ने सितम्बर, 1990 को पुनः खुलवाया जिसे मैंने पटना उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर निरस्त कराया। दूसरा मामला यह था कि जहाँ राज्य के अन्तर्गत सैकड़ों निजी क्षेत्र की शिक्षण संस्थाएँ चल रही थी वहाँ केवल मेरी अध्यक्षता वाली संस्था पटना स्थित ललित नारायण आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन संस्थान का अधिग्रहण नवम्बर, 1990 में कर लिया। उसी क्रम में मुजफ्फरपुर के ललित नारायण मिश्र कॉलेज ऑफ बिजनेस मैनेजमेंट की स्वायत्ता फरवरी, 1992 को समाप्त कर दी। उक्त निर्णय को राज्यपाल ने जब निरस्त कर दिया तो राज्य सरकार ने जून, 1992 में उसका अधिग्रहण कर लिया। मेरे द्वारा सरकार के उस आदेश को पटना उच्च न्यायालय में चुनौती दिए जाने पर न्यायालय के निर्देश पर सरकार ने अधिग्रहण आदेश को वापस ले लिया। मेरी अध्यक्षता वाली उक्त शैक्षणिक संस्था को 1992 से लगातार वार्षिक अनुदान से वंचित कर रखा।

❖❖❖

किसने बनाया मुख्यमंत्री[1]

श्री लालू प्रसाद और श्री नीतीश कुमार भारतीय जनता पार्टी के प्रत्यक्ष समर्थन से ही मुख्यमंत्री बने। यह स्मरणीय है कि 1990 के विधानसभा चुनाव में जनता दल के केवल 122 सदस्य ही निर्वाचित हुये थे जबकि बहुमत के लिये 165 विधायकों का समर्थन आवश्यक था। यह भी स्मरणीय है कि श्री लालू प्रसाद 6 मार्च 1990 को जनता दल के नेता निर्वाचित हुये। जनता दल के मुख्यमंत्री-पद के लिये तीन उम्मीदवार थे। श्री लालू प्रसाद चौधरी देवी लाल के उम्मीदवार और श्री रामसुन्दर दास प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के उम्मीदवार थे। तीनों में मतों के विभाजन के कारण श्री रघुनाथ झा एवं श्री रामसुन्दर दास से लालू प्रसाद को अधिक मत मिले। इसलिये वे नेता निर्वाचित किये गये परन्तु तत्कालीन राज्यपाल श्री युनुस सलीम श्री लालू प्रसाद को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाने में सहमत नही हो रहे थे। उसका स्पष्ट कारण तो यह था कि जनता दल को विधानसभा में बहुमत नहीं था। वहीं जनता दल के सदस्यों में भी विभाजन था। बहुमत जुटाने के लिये राज्यपाल ने श्री लालू प्रसाद को निर्देशित किया। इस अवस्था में प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने भारतीय जनता पार्टी के 39 सदस्यों का समर्थन दिलाकर बिहार में जनता दल के श्री लालू प्रसाद को मुख्यमंत्री पद पर आसीन कराया। इस तथ्य के आलोक में श्री लालू प्रसाद पूर्णतः भारतीय जनता पार्टी के कारण ही मुख्यमंत्री बने।

श्री लालू प्रसाद ने भारतीय जनता पार्टी का समर्थन प्राप्त करने के लिये एक पृष्ठभूमि उस समय बनायी जब 29 दिसम्बर, 1989 को लोक सभा चुनाव में भागलपुर साम्प्रदायिक दंगे के समय में यह आरोप लगाया कि वहां का दंगा पूर्णतः मुसलमानो ने ही शुरू किया। भारतीय जनता पार्टी का समर्थन प्राप्त करने के कारण भी यह एक तथ्य रहा होगा। अगर श्री लालू प्रसाद फिर से भारतीय जनता पार्टी के लिये दृढ़ होते तो भागलपुर दंगे के प्रभावित परिवारों को क्षतिपूर्ति दिलाने में सक्रिय रहे होते। जहां तक आडवाणी जी के रथ रोकने का प्रश्न है उसका तथ्य यह है कि प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने, जिनका विभेद भारतीय जनता पार्टी से हो रहा था, अपनी व्यक्तिगत छवि बनाने के लिये ही मुख्यमंत्री को रथ रोकने का निर्देश दिया था। इसलिये एक सोची समझी राजनीति के तहत श्री आडवाणी की गिरफ्तारी की गयी।

श्री लालू प्रसाद की धर्म निरपेक्षता और उनके मुस्लिम प्रेम का सबूत यही है कि भागलपुर दंगा जांच के लिये गठित जांच आयोग को स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करने दिया। उन्होंने अपने दो चहेतों को आयोग में सदस्य मनोनीत कर दिया उसके बावजूद भी जांच आयोग ने 29 दिसम्बर, 1989 के भाषण को अहमियत दी है। यह भी उल्लेखनीय है कि श्री लालू प्रसाद एवं श्री नीतीश कुमार के पिछले 25 वर्षो में मुसलमानों की 3000 एकड़ जमीन हिन्दुओं द्वारा जबरन ले लिये

---

1 03 नवम्बर, 2015

जाने के बावजूद उनकी सरकारे उनकी जमीन (मुस्लिमों की) वापस नही करा पायीं और न ही 15000 विस्थापित परिवारों का पुनर्वास ही करा सकी। यह तथ्य श्री नीतीश कुमार द्वारा गठित एन॰पी॰ सिंह रिर्पोट से भी जाहिर होता है।

जहां तक श्री नीतीश कुमार का प्रश्न है श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने उन्हें केन्द्र में मंत्री बनाया। 2000 में मुख्यमंत्री बनाया फिर 2005 तथा 2010 में राष्ट्रीय गठबंधन में भारतीय जनता पार्टी ने उन्हें मुख्यमंत्री बनाया। इस प्रकार यें दोनो महागठबंधन के नेता भारतीय जनता पार्टी की उपज हैं। पूर्णतया निजी स्वार्थ एवं महत्वाकांक्षा के वशीभूत होकर श्री लालू प्रसाद एवं श्री नीतीश कुमार एक साथ राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को विधान सभा चुनाव में चुनौती दे रहे हैं।

❖❖❖

एक पार्टी का संकल्प पत्र[1]

संकल्प पत्र में राष्ट्रवाद की प्रतिबद्धता के साथ सभी किसानों को सालाना 6 हजार, 1 लाख के ऋण पर ब्याज मुक्त के अतिरिक्त सभी सुविधाओं का अलग-अलग कार्यक्रमों के माध्यम से समावेश कर राष्ट्रीय सुरक्षा को सर्वोपरि माना गया है जिसमें आतंकवाद एवं घुसपैठ किसी भी सूरत में बर्दास्त नहीं करने का संकल्प लिया गया है। विभिन्न आंकड़ों का उल्लेख करते हुए और राष्ट्रवाद की प्रतिबद्धता दोहराते हुए श्री नरेन्द्र मोदी सरकार की पांच वर्षों के कार्यकाल में जनहित में किये गये कार्यों और साहसिक निर्णयों से विकास की गति तेज करने तथा दूरगामी विकास की संभावना बढ़ेगी। अगले पांच वर्षों में भारत विश्व की तीसरी शक्ति बन सकती है।

श्री मोदी सरकार का रिपोर्ट कार्ड कह रहा है कि उन्होंने सोशल सेक्टर में तगड़ा काम किया है। इन्फ्रास्ट्रक्चर बेहतर हुई है। 100 प्रतिशत इलाकों में बिजली पहुँची है। 90 प्रतिशत इलाकों में साफ-सफाई बेहतर हुई है। ग्रामीण भारत में 312526 कि॰मी॰ तक डिजिटल कनेक्टीविटी बिछाया गया है। अगले पांच वर्षों में अर्थव्यवस्था की चुनौती तथा विकास की पटरी पर काम करने की स्थिति का प्रयास रहेगा, जिसकी कोशिश लगातार हो रही है। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था परिपक्व होगी उसके साथ जीडीपी भी बेहतर होती जायेगी। हालांकि कृषि में निवेश बढ़ाने की जरूरत है। नई तकनीक और दोहरी सिस्टम की जरूरत है। पिछले पांच वर्षों में कृषि पर विशेष ध्यान रखा गया है जिसकी प्रतिबद्धता संकल्प पत्र से स्पष्ट झलकती है। आजादी के बाद भारत की नीतियाँ ऐसी रही कि कृषि मजदूर शहर की ओर पलायन करते रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन की जरूरत है। प्रधानमंत्री श्री मोदी के कार्यकाल को छोटा कहा जा सकता है। हालांकि इस दौर में गरीबों को जन-धन योजना के माध्यम से बैंकिंग सुविधा से जोड़ा गया जिसके तहत 33 करोड़ 30 लाख खाते खोले गये, प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना के तहत 14 करोड़ लोगों का दुर्घटना बीमा कराया गया तथा स्वास्थ्य के लिए आयुष्मान भारत योजना के जरिये लोगों को लाभ दिया जा रहा है। रोजगार के लिए कौशल विकास और डिजिटल इन्डिया तथा मेक-इन-इण्डिया जैसी योजनाएं लायी गई ताकि कृषि आधारित आय पर निर्भरता कम हो। इसलिए कहा जा सकता है कि पांच सालों में बेहतर कार्य हुए हैं। लोकसभा में श्री मोदी को बेतहर सफलता मिलेगी। उनके कार्यक्रमों के माध्यम से राष्ट्रवाद, अंत्योदय और सुशासन पर जोर दिया जा रहा है।

श्री मोदी सरकार के पिछले 5 साल के दौरान 2017-18 में विदेशी निवेश ने 61 बिलियन डॉलर को पार करते हुए पिछला रिकॉर्ड तोड़ दिया। इस निवेश का एक हिस्सा मौजूदा व्यवसायों को प्राप्त करने के लिए था, न कि नये लोगों को स्थापित करने के लिए था। सन् 2016 में उन बेरोजगार लोगों की दर जो अपनी नौकरी की तलाश नहीं कर रहे थे 17.3 प्रतिशत थी जो जनवरी, 2018 में 7.5 प्रतिशत और दिसम्बर में 9.5 प्रतिशत तक पहुँच गयी। वहीं उन बेरोजगार लोगों की दर जो अपने लिए नौकरी की तलाश कर रहे थे 8.7 प्रतिशत थी जो जनवरी, 2018

1 09 अप्रैल, 2019

में 5 प्रतिशत और दिसम्बर, 2018 में 7.3 प्रतिशत तक पहुँच गयी। गरीबी में गिरावट भी आई है। सन् 2004-05 में ग्रामीण क्षेत्रें में गरीबी दर 41.8 प्रतिशत एवं शहरी क्षेत्रें में 25.7 प्रतिशत थी, जो गिरते-गिरते सन् 2018 से अब तक ग्रामीण क्षेत्र में 4.25 प्रतिशत एवं शहरी क्षेत्र में 3.79 प्रतिशत हो गई है। श्री मोदी सरकार ने बैंकिंग, बिजली, टैक्सेशन एवं व्यापार रैंकिंग समेत कई कार्यों में आसान सुधार लाने के लिए कई कार्य किए। जीएसटी का कार्यान्वयन कर देश की अर्थव्यवस्था में सुधार लाने का बड़ा कदम था। शुरूआती परेशानियों के बाद हाल के महीनों में जीएसटी के माधयम से राजस्व संग्रह स्थिर हो गया। 2017-18 में प्रत्यक्ष कर 2 लाख करोड़ रुपये के ऐतिहासिक आँकड़ों पर पहुँच गया, जो कि पिछले वित्तीय वर्ष की तुलना में 18 प्रतिशत अधिक है। सन 2016-17 में आयकर रिटर्न की संख्या 5.43 करोड़ थी, जबकि साल 2017-18 में यह 6.78 करोड़ हो गयी। बाहरी निवेश को आकर्षित करने में प्रगति हुई है। सन 2016-17 में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का प्रवाह 60 अरब डॉलर से अधिक था। सरकार ने रक्षा और विमानन जैसे संवेदनशील क्षेत्रों सहित कई क्षेत्रों में एफडीआई सीमाओं को लिब्रेलाइज्ड बनाया। श्री मोदी सरकार ने देश में पहली बुलेट ट्रेन लाने के लिए जापान के साथ हाथ मिलाया जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था में 7 प्रतिशत से अधिक की दर से बढ़ोतरी हो रही है जो कि भविष्य के लिए सकारात्मक संदेशों में से एक है। सरकार ने आम लोगों को सीधे प्रभावित करने के लिए मेक इन इण्डिया प्रोग्राम शुरू किया है ताकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ देश में अपनी योजनायें शुरू कर सकें और रोजगार पैदा हो और वे अर्थव्यवस्था में अपना योगदान दे सके। इसके लिए कई देशों ने सम्बन्धित राज्य एवं केन्द्र सरकारों के साथ सौदे पर हस्ताक्षर किये। एक सर्वे के मुताबिक पता चला है कि 81 प्रतिशत लोगों का मानना है कि श्री मोदी सरकार के तहत दुनिया में भारत की छवि और प्रभाव में सुधार हुआ है। सरकार ने पड़ोसी देश पाकिस्तान पर सर्जिकल स्ट्राइक और एयर स्ट्राईक के माध्यम से यह इच्छाशक्ति दिखाई भी है।

❖❖❖

सरकार बनने की संभावना[1]

विभिन्न आँकड़ो के आधार पर मेरी यह सोच है कि मोदी सरकार ने अपने कार्यकाल में जनहित के लिये अनेक कार्य किये जिसकी सराहना की जानी चाहिए। उन्हें पुन: एक बार सत्ता में आना चाहिए। जब 2014 में मोदी सरकार बनी थी उस समय देश के समक्ष अनेक चुनौतियाँ थी। (1) दुनिया के मंच पर फिर भारत को मजबूती के साथ स्थापित करना (2) देश में विदेशी निवेश की संभावना बढ़ाना। (3) भारत की व्यापक सुरक्षा का इंतजाम करना। (4) आर्थिक पिछड़ापन दूर करना और विकास करना।

मोदी सरकार के कार्यकाल में न केवल जीडीपी के बेहतर प्रदर्शन के लिए पिछले आंकड़ों में वृद्धि हुई है, बल्कि घाटे, सब्सिडी, लोन और कीमतों पर भी जोर दिया गया है। इसके अलावा, उन्होंने विदेशी निवेश को काफी आकर्षित किया है, साथ ही उद्योग में निजी घरेलू निवेश को पुनर्जीवित करने के लिए संघर्ष कर यह साबित किया है कि जिन नौकरियों का उन्होंने वादा किया था, उसे उन्होंने पैदा किया है। भ्रष्टाचार और काले धन को बाहर करने के लिए 500 और 1000 के नोट को बंद कर मोदी सरकार ने एक अहम कार्य किया। नोटबंदी के बाद भी विकास दर में कोई कमी नहीं आई। नोटबंदी के बाद भारत सन 2018 में फ्रांस को पीछे छोड़ते हुए 6वीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश बन गया। अनुमान है कि यह सन 2020 में यूके, जो कि पाँचवें स्थान पर है उसकी जगह भी ले सकता है। सन 2000 के बाद से विश्व की अर्थव्यवस्था में भारत की हिस्सेदारी 1.5 प्रतिशत से 3.2 प्रतिशत हो गई। हालांकि इस अवधि में चीन का हिस्सा 3.6 प्रतिशत से बढ़कर 15 प्रतिशत हो गया है। मोदी सरकार के कार्यकाल में जीडीपी का विकास रिकॉर्ड पिछले 5 सालों में 6.7 प्रतिशत रहा है। कहा जाता रहा है कि पहले से अब तक में डॉलर के मुकाबले रुपया में 18 प्रतिशत की गिरावट आई है। राष्ट्रीय आय में कृषि की हिस्सेदारी में गिरावट आई है। सन 2017-18 में कृषि क्षेत्र का जीडीपी में योगदान 15 प्रतिशत गिरा है और आगे भी यह होता जा रहा है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आ रहा यह संकट लॉन्ग टर्म ट्रेंड का एक लक्षण कहा जा रहा है। सन 2012-13 में कुल खर्च में 18.2 प्रतिशत की सब्सिडी में सन 2016-17 में 11.8 प्रतिशत तक की कमी आयी है। राजकोषीय घाटा 1 प्रतिशत से अधिक नीचे आया है। जिससे सन 2013-14 के बाद विश्व स्तर पर कच्चे तेल की कीमतो में कमी आई है।

इसके अलावा, डिजिटल इण्डिया जैसी पहल ने भविष्य के लिए रास्ता तय किया है साथ ही ई-तरीकों का प्रचार किया गया है जिससे 2020 तक सभी गाँवो में ब्रॉडबैंड कनेक्टीविटी शुरू की जा सके। एक सर्वे के मुताबिक पता चला है कि 81 प्रतिशत लोगों का मानना है कि मोदी सरकार के तहत दुनिया में भारत की छवि और प्रभाव में सुधार हुआ है।

❖❖❖

1 16 मई, 2019

चुनाव में राष्ट्रवाद का मुद्दा[1]

इस लोकसभा चुनाव में राष्ट्रवाद का मुद्दा छाया रहा, जिसे चुनाव परिणामों से समझा जा सकता है। प्रधानमंत्री ने राष्ट्रवाद को पुनः मजबूती के साथ जन मानस के पटल पर रखा जिसे लोगों ने स्वीकार करते हुए अभूतपूर्व जनादेश दिया। जातिवादी और वंशवादी मानसिकता को राष्ट्रवाद से जोड़कर भारतीय राजनीति को नई दिशा दी गयी जिसको विपक्षी दलों ने नजर–अंदाज कर दिया और पुरानी जातिवादी राजनीतिक समीकरण बनाते रहे। अब जबकि अपार जनादेश मिला है तो जिम्मेदारियाँ भी बढ़ गयी हैं। प्रधानमंत्री श्री मोदी के सामने तात्कालिक चुनौती यह है कि वे राष्ट्रवाद की इस जीत को जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप पूरा करने के लिये ठोस नीति बनायें।

देश की संस्कृति गौरवशाली परंपराओं से जुड़ी हुई है। इस चुनाव में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के विरुद्ध विपक्षी दलों द्वारा कठोर एवं ओछे शब्दों का इस्तेमाल किया गया, जिसे लोगों ने अपने स्वाभिमान के साथ जोड़कर वोटों के जरिये परिणामों से प्रदर्शित किया। लोकतंत्र में एक प्रगतिशील समाज में आलोचना का अपना स्थान है। परंतु आलोचना मर्यादा की सीमा में होनी चाहिये। देश में महत्वपूर्ण मुद्दों पर बहस में परस्पर विरोधी विचार धाराओं के लिए गुंजाइश है और होनी भी चाहिये परंतु उदारता, विनम्रता और सहनशीलता के विरुद्ध एक भी शब्द बोलने से सभी दलों को बचना चाहिये, क्योंकि लोकतंत्र में शब्दों को मर्यादा से रखना ही सर्वोपरि है।

❖❖❖

1 25 मई, 2019_

अयोध्या विवाद[1]

अयोध्या में 6 दिसम्बर, 1992 को जो भूल हुई उसे किसी भी मूल्य पर दोहराया नहीं जाना चाहिए। उन्माद और आक्रोश से किसी भी समस्या का समाधान नहीं निकलता है। उन्माद और आक्रोश तो समस्याओं को और अधिक बढ़ाते और उलझाते ही हैं। राम जन्म स्थल पर मन्दिर निर्माण के प्रश्न पर उन्माद और आक्रोश से बचना ही होगा, लेकिन उन्माद और आक्रोश न उत्पन्न होने पाए, क्या इस संदर्भ में शासन और समाज का कोई दायित्व नहीं बनता है? क्या शासन द्वारा ऐसे कदम नहीं उठाए जाने चाहिए, जिससे अयोध्या समस्या का समाधान जल्दी से जल्दी निकल सके? आखिर अयोध्या में कब तक यथास्थिति बनाई रखी जायेगी?

अत: केन्द्रीय सरकार एवं राजनीतिक दल यदि न्यायालय से फैसला कराना चाहते हैं तो उन्हें संविधान के अनुच्छेद 138 के तहत कार्रवाई करनी पड़ेगी। यदि ऐसा नहीं हो पाता है तो न्यायालय के आदेश के लिए अनिश्चितकाल तक प्रतीक्षा करना भविष्य के लिये हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इस विवाद में जो पार्टियाँ शामिल हैं और उनके जो राजनीतिक समर्थक हैं, वे अनिश्चित समय तक मौन बैठे नहीं रह सकते हैं। न तो मन्दिर समर्थक अनिश्चितकाल तक प्रतिक्षा कर सकते हैं और न ही इसी प्रकार मस्जिद समर्थक भी लम्बे समय तक प्रतिक्षा कर सकते हैं। दोनों समुदायों में धैर्य की परीक्षा कब तक बनी रहेगी यह कहना कठिन है। उन्हें कभी भी किसी के भी द्वारा उकसाया जा सकता है। कानून एवं व्यवस्था कितनी प्रभावी है, यह तो सभी को पता ही है। हिन्दू एवं मुस्लिम बिरादरी और उनके समर्थकों को यह भी समझाना कठिन है कि है कि चाहे कितना भी उकसाया क्यों न जाए, वे अपने को संभालकर रखें।

दूसरा विकल्प है कि केन्द्र सरकार इस तरह का पुख्ता इंतजाम करे कि सम्बद्ध पक्षकारों के बीच बातचीत की दौड़ शुरू हो जाए। यह प्रधानमंत्री द्वारा हाल में की गई उस घोषणा के अनुरूप है, जिसमें उन्होंने कहा कि आपसी समझौते से समस्या का सुलझाया जाना एक मान्य विकल्प है, जो न्यायालय के आदेश की लंबे समय तक प्रतिक्षा करने की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर है। इस पृष्ठभूमि में यह सुझाव दिया जा सकता है कि कानून विशेषज्ञ इस संभावना की भी छानबीन कर देखें कि आर्बिट्रेशन एण्ड कनसिलिएशन एक्ट 1996 की धारा 61–81 भाग–3 के प्रावधानों को कहां तक लागू किया जा सकता है एवं इसके आधार पर बातचीत शुरू करने का कानूनी आधार भी प्रस्तुत कर सकते हैं? अधिनियम का यह हिस्सा भारतीय कानून की दृष्टि से स्वागतयोग्य माना गया है, क्योंकि समझौता होने पर दोनों पक्षकारों के बीच भावनात्मक एकता पर अधिक आघात नहीं होगा। जैसा कि न्यायालय में मुकदमे के फैसले से होता है। यह प्रकिया सुलभ है और समझौते की बातचीत में व्यवहार प्रक्रिया संहिता तथा साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों की बाध्यता भी नहीं है। कानूनी विशेषज्ञ यह भी सलाह दे सकते हैं कि बाबरी मस्जिद स्थल पर जो विवाद खड़ा हुआ है उसे कानूनी संबंधों से उठे विवाद के दायरे में लाया जा सकता है या नहीं?

1 23 अप्रैल, 2005

जैसा कि अधिनियम में बताया गया है। जहाँ तक समझौता कराने वालों के चुनाव का सवाल है, विवाद के पक्षकारों के लिए यह कठिन नहीं है कि वे बिना किसी भेदभाव के किसी एक या उससे अधिक व्यक्तियों के नाम पर सहमत हों, जिन्हें वे निष्पक्ष और स्वतंत्र विचार के मानते हैं, जैसा कि अधिनियम की अपेक्षा है।

उचित यह होगा कि भारत सरकार अयोध्या मुद्दा के संदर्भ में सभी पक्षों के प्रतिनिधियों को बुलाकर सार्थक बातचीत करने की फिर से कोई पहल करे। यही नहीं उसे सर्वोच्च न्यायालय से भी यह अनुरोध करना चाहिए कि वह अयोध्या प्रकरण पर यथाशीघ्र अपना निर्णय दे। अयोध्या प्रकरण पर न्यायपालिका द्वारा निर्णय देने में जो देरी हो रही है, वह कोई शुभ लक्षण नहीं है। इस देरी का कोई अच्छा असर भारतीय समाज पर नहीं पड़ रहा है। महत्वपूर्ण मुद्दों पर न्याय में होने वाली देरी भारत की प्रभुसत्ता, एकता और अखंडता को ही प्रभावित करती है। न्याय में होने वाली देरी धीरे-धीरे एक अभिशाप बनती जा रही है। क्या भारत सरकार का यह कर्तव्य नहीं बनता है कि भारतीय समाज को इस अभिशाप से मुक्ति दिलाये? अयोध्या में यथास्थिति बनाए रखने के नाम पर सरकार अकर्मण्य और मूकदर्शक बनी रहे, इसका कोई औचित्य नहीं है।

अयोध्या सरीखे गंभीर और राष्ट्र को प्रभावित करने वाले विवाद का समाधान यथाशीघ्र खोजा ही जाना चाहिए। इस विवाद को अनन्तकाल तक जीवित रखने से अन्य अनेक समस्याएँ उपज सकती हैं। यह एक सत्य है कि कोई भी समस्या हो, उसे टालने से वह और अधिक उलझती ही जाती है। समस्याओं को टालते रहने की नीति पर चलने से समाज में कुंठा और आक्रोश की सृष्टि होती है। यह कुंठा और आक्रोश राष्ट्र की एकता और अखंडता को प्रभावित करने का ही कार्य करता है।

❖❖❖

जम्मू-कश्मीर में शरणार्थी परिवारों की बदहाली[1]

प्रधानमंत्री ने जम्मू-कश्मीर की यात्रा कर वहां के हालात को अपनी आंखों देखा है। परंतु यह अफसोस की बात है कि बदहाली की जिन्दगी जी रहे शरणार्थी परिवारों से वे नहीं मिले। केन्द्र और राज्य सरकारों ने अभी तक इन परिवारों की दयनीय स्थिति को महसूस नहीं किया है और न इनकी सहायता बढ़ाने की बात की।

वास्तव में इन बेचारों की ओर सरकार कोई ध्यान इसलिए नहीं दे रही है क्योंकि यह खामोशी से अपनी दुखद जिन्दगी काट रहे हैं। न ये धरने लगाते हैं न शोर शराबे करते हैं। इनकी आवाज न तो अखबारों में न मीडिया में, और न ही मानवाधिकार आयोग संगठनों, राजनैतिक दलों व फिल्मी सितारों द्वारा उठायी गयी। जबकि गुजरात की घटनाओं की ओर देशी-विदेशी मीडिया, राजनैतिक दलों, फिल्मी सितारों द्वारा ध्यान आकर्षित किया गया। सुप्रीम कोर्ट ने भी जम्मू-कश्मीर के इन परिवारों की स्थिति के बारे में जानकारी मांगी थी। अभी तक कुछ व्यवस्था नहीं हो पायी।

इन शरणार्थी परिवारों की खामोशी और चुपचाप परिस्थितियों को सहने के कारण ही सरकार ने इनकी ओर ध्यान नहीं दिया। देश की रक्षा के लिए खामोशी से लड़ाई लड़ रहे द्वितीय पंक्ति के इन सभी लोगों को पर्याप्त सहायता देने के साथ ही उनकी अन्य कठिनाइयों को दूर करने पर विचार करना चाहिए।

शरणार्थियों में सबसे पुराने शरणार्थी वे हिन्दू सिख हैं, जो देश विभाजन के समय पाकिस्तान के सियालकोट क्षेत्र से जम्मू-कश्मीर आये थे। वे अभी भी जम्मू-कश्मीर के नागरिक नहीं बन सके हैं। वहां वे संपत्ति भी नहीं खरीद सकते तथा न ही उनके बच्चे ही वहां सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकते हैं।

दूसरे शरणार्थी वे हैं जो सीमावर्त्ती क्षेत्र में कई वर्षो से पाकिस्तान द्वारा निरंतर गोलाबारी के कारण अपने घर खेत खलिहान छोड़कर पलायन करने को विवश हुए हैं। तीसरे शरणार्थी वे हैं जो 13 दिसम्बर के बाद सीमा पर सेना तैनात होने के पश्चात् खेतों व गांवों में बारूदी सुरंगे बिछाये जाने के कारण अपने घर-बार छोड़ आये हैं। चौथे किस्म के शरणार्थी वे हैं जो पिछले कुछ दिनों से जारी पाकिस्तानी गोलाबारी के कारण घर-बार छोड़ने को मजबूर हुए हैं। इनकी संख्या लगभग लाखों से अधिक है। ज्यादा लोग 15 बड़े कैम्पों में रह रहे हैं तथा अन्य छिटपुट कैम्प भी बड़ी संख्या में हैं। उनके लिए न तो भोजन की व्यवस्था है और न ही उनके बच्चों की पढ़ाई की व्यवस्था है। ज्यादातर लोग फटे-पुराने टेंटों के नीचे रह रहे हैं। सीमा पर अभी पाकिस्तानी गोलाबारी तेज होने के कारण और अधिक ऐसे परिवारों का भी कैम्पों में आगमन शुरू हुआ है। इन शरणार्थियों की संख्या लाखों में पहुँच चुकी है। ये लोग अत्यन्त कठिनाई में दिन गुजार रहे हैं।

1 26 मई, 2002

1989 में आतंकवाद के चरम दौर में लाखों कश्मीरी पंडित और सिख कश्मीर घाटी से पलायन करने को विवश हुए तब से यह पलायन जारी है। केन्द्र सरकार ने आतंकवाद से पीड़ित इन परिवारों की सुध नहीं ली। हालांकि प्रधानमंत्री गुजरात के शरणार्थी कैम्पों में गये, दंगा पीड़ित परिवारों से भी मिले। उम्मीद थी कि प्रधानमंत्री जम्मू–कश्मीर के शरणार्थियों से मिलेंगे। सालों से जम्मू–कश्मीर के पीड़ित शरणार्थी की स्थिति के बारे में न तो मीडिया ने, न राजनीतिक दलों और न मानवाधिकार आयोग ने कुछ कहा और न ही इनके परिवारों ने कुछ शोर–शराबा किया। फिर भी इस प्रकार के लोग बिना हथियार चुपचाप देश की द्वितीय रक्षा पंक्ति के रूप में देश की लड़ाई लड़ रहे हैं। केन्द्र सरकार का फर्ज बनता है कि वह तब तक इनके मुफ्त भोजन, आवास, कपड़ों, बच्चों की पढ़ाई तथा इलाज की जिम्मेवारी निभाये जब तक वे अपने घर वापस नहीं जाते। इसके लिए जो व्यवस्था की जाए वह केन्द्र सरकार स्वयं करे क्योंकि यह राज्य सरकार से संभव नहीं है।

❖❖❖

कश्मीरी पण्डितों का पुनर्वास[1]

प्रधानमंत्री डॉ॰ मनमोहन सिंह की जम्मू-कश्मीर यात्रा के दौरान 50 हजार कश्मीरी पंडितों की घर वापसी के लिए 1600 करोड़ रूपये के पैकेज की घोषणा सराहनीय और स्वागत योग्य है। एक नये प्रयास की शुरुआत है जिसके द्वारा प्रधानमंत्री ने राज्य के लोगों को 'नया जम्मू-कश्मीर' बनाने के सपने को सच करने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर चलने को कहा है। इससे कश्मीर के विस्थापितों और आतंकियों के शिकार लोगों को काफी राहत मिलेगी। इससे कश्मीर की जनता में सकारात्मक संदेश गया है। विशेष पैकेज में अनेक प्रावधान ऐसे हैं, जिनका सीधा संबंध पीड़ित परिवारों की आजीविका से है। यह पैकेज कश्मीर के समग्र विकास और शांति-बहाली की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण साबित होगा। आतंकी घटना में मारे गये लोगों के परिजनों को नौकरी अथवा क्षतिपूर्ति की व्यवस्था किये जाने से संबंधित लोगों को आर्थिक सम्बल मिलेगा। अपने ही देश में शरणार्थी बनने को मजबूर हुए कश्मीरी पंडितों के परिवारों के लिए रोजगार के अवसर, उनके द्वारा पलायन से पूर्व लिये कर्जों पर ब्याज माफी, रोजगार के अवसरों का लाभ उठाने में अक्षम परिवारों को एकमुश्त मुआवजे तथा आवास निर्माण के लिए एकमुश्त अनुदान आदि की प्रधानमंत्री की घोषणाओं से इन परिवारों को राहत मिलेगी। कश्मीर से लगभग दो दशक पहले पंडितों के सामूहिक पलायन से पैदा हुई समस्याओं का समाधान निश्चय ही काफी उलझा हुआ मामला रहा है। पंडितों के संगठनों ने इन परिवारों की वापसी की शुरुआत से पहले माहौल सुधारने की कोशिशों की जरूरत की तरफ बराबर ध्यान दिलाया है। इस पीड़ित समाज में विश्वास सृजित करना आवश्यक है। केन्द्र सरकार द्वारा इस समुदाय के सदस्यों को गंभीर बीमारियों के मामले में मदद के लिए पांच करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था परंतु राज्य सरकार ने इस काम के लिए नियम बनाने में बरसों लम्बा समय लगाया है।

पिछले दो दशकों की घटनाओं के परिणामस्वरूप अपने परिवार, कारोबार को छोड़ने को मजबूर हुए लाखों कश्मीरी पंडितों के हजारों परिवार जम्मू, दिल्ली तथा देश के अन्य भागों में विस्थापितों की तरह रहने को मजबूर हैं। इनकी घर वापसी के लिए सही माहौल बनाने की जिम्मेवारी राष्ट्र की है। इसके लिए ईमानदार कोशिश केन्द्र तथा राज्य सरकार को करनी है। साथ-साथ स्थानीय आबादी और सभी राजनीतिक और गैर राजनीतिक संगठनों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। देश को धर्म के आधार पर बांटने की जो सोच छह दशक पूर्व विभाजन की त्रासदी का कारण बनी थी, उस सोच को नकारने की जरूरत है। पलायन को मजबूर लगभग 55 हजार परिवारों की वापसी की जिम्मेवारी का निर्वहन करना मुश्किल है। इसलिए सभी पक्षों की कटिबद्धता की आवश्यकता है। पलायन को मजबूर हुए लोगों को अपने पूर्वजों की भूमि पर मर्यादा और सम्मान के साथ जीने का हक दिलाकर ही देश उन तत्वों को समुचित जवाब दे सकता है

1 29 अप्रैल, 2008

जिन्होंन इन्हें पलायन को मजबूर करने वाली स्थितियाँ पैदा कीं।

डॉ॰ मनमोहन सिंह की कश्मीर यात्रा से ठीक पांच वर्ष पूर्व उनके पूर्ववर्ती प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कश्मीर के अपने दौरे में पाकिस्तान तथा कश्मीर संबंधी विचार–विमर्श को नयी दिशा दी थी। पांच वर्ष के इस अंतराल में भारत–पाकिस्तान के रिश्तों में एक नयी शुरुआत की संभावना मजबूत हुई है। जम्मू–कश्मीर के लोगों में इस छह दशक पुरानी समस्या के समाधान की नयी उम्मीद भी इस दौरान सामने आयी है।

❖❖❖

जम्मू-कश्मीर राज्य का पुनर्गठन[1]

अनुच्छेद-370 और 35ए के प्रावधानों को हटाने, लद्दाख को जम्मू-कश्मीर से अलग करने और दोनों को केन्द्र शासित प्रदेश बनाने का केन्द्र सरकार ने साहसिक और ऐतिहासिक फैसला लिया है। इस फैसले से भारत के उस संकल्प पर मुहर लग गई है कि यह क्षेत्र भारत का अभिन्न अंग है। अनुच्छेद 370 पर जो सर्जिकल स्ट्राइक की गई है उसने संविधान के अनुच्छेद 35-ए को भी खत्म कर दिया है। वैसे भी यह 1954 में राष्ट्रपति का एक आदेश था, जो राज्य को अधि कार देता था कि वह अपने नागरिकों को एक विशेषाधिकार दे। यह एक गारंटी की तरह था कि राज्य की धार्मिक, जातीय और सामाजिक पहचान पर किसी तरह का कोई खतरा नहीं आने दिया जाएगा। घाटी के राजनीतिक वर्ग और वहाँ की जनता ने भी लंबे समय से अनुच्छेद 370 को न सिर्फ जीने मरने का सामान बना दिया था, बल्कि यह भी कहा जाता था कि यह कश्मीर और भारत को जोड़ने वाला पुल है जो कि हकीकत से परे था।

पं॰ नेहरू ने विश्व शांति की स्थापना के लिए संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् से उस समय संपर्क किया जब भारतीय सेनायें जम्मू-कश्मीर में पाक सेना को पीछे धकेलकर हड़पी गई भूमि पर कब्जा ले रही थी। तब पं॰ नेहरू ने विवाद के समाधान में मदद के लिए 1 जनवरी, 1948 को संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् से सम्पर्क किया। पं॰ नेहरू के ही निवेदन पर संयुक्त राष्ट्र ने युद्ध विराम प्रस्ताव पारित किया। पं॰ नेहरू के कार्यकाल में ही उस समय की परिस्थिति को देखते हुए ही धारा-370 के अंतर्गत जम्मू-कश्मीर को विशेष व्यवस्था दी गई, जो इस समय शांति के लिए खतरा बन चुकी थी। जम्मू-कश्मीर के विकास और शांति कायम करने के लिए ही प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की सरकार ने अनुच्छेद 370 को खत्म किया है, तो इसके साथ ही अनुच्छेद 35ए का भी समापन हो गया है। इसका अर्थ है, भारत का कोई भी नागरिक अब जम्मू-कश्मीर में बसने में समर्थ होगा, वहाँ जमीन या सम्पत्ति खरीद सकेगा और भारत के अन्य सभी राज्यों की तरह यहाँ सम्पत्ति पर उत्तराधिकार के कानून लागू होंगे। ये दोनों ही भाग केन्द्र शासित प्रदेश होंगे। जम्मू-कश्मीर अपनी विधान सभा के साथ एक केन्द्र शासित प्रदेश होगा, जबकि केन्द्र शासित प्रदेश लद्दाख में विधान सभा नहीं होगी। जम्मू-कश्मीर में शासन दिल्ली के स्थानीय शासन की तरह चलेगा।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के साहसिक निर्णयों और नीतियों की वजह से ही भारत आज पुन: विश्व मंच पर शक्तिशाली बनकर उभरा है, साथ ही विश्व शांति नींव को मजबूत किया है। सरकार की उपलब्धियों ने देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक नींव को सबलता प्रदान की है।

❖❖❖

1 07 अगस्त, 2019

झारखंड सरकार की 'डोमिसाइल' नीति[1]

झारखंड राज्य में सरकारी नौकरी के लिए शासन द्वारा 'डोमिसाइल' नीति अपनाये जाने के चलते वहाँ के निवासी उसके पक्ष और विपक्ष में उठ खड़े हुए हैं और सम्पूर्ण राज्य में आन्दोलन, अशांति और टकराव की स्थिति से सामाजिक समरसता खंडित हो गयी है। झारखंड के मुख्यमंत्री ने तृतीय एवं चतुर्थ वर्गीय सरकारी सेवा के आवेदकों के लिए डोमिसाइल (अधिवास) की अनिवार्यता बनाकर अत्यन्त ही विवादास्पद एवं संवेदनशील निर्णय लिया है। इस निर्णय के अनुसार 1932 के सर्वे में जिनका नाम अधिकार अभिलेख (खतियान) में नहीं है उनके बच्चों को सरकारी नौकरी से वंचित किया जा रहा है। राज्य सरकार की यह नीति असंवैधानिक है, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 15 का सीधा उल्लंघन है। उस अनुच्छेद के अनुसार शासन किसी नागरिक के साथ मूल, वंश या जन्मस्थान के आधार पर विभेद नहीं कर सकता। संविधान के ऐसे स्पष्ट प्रावधान के बावजूद झारखंड सरकार अपनी डोमिसाइल नीति के कारण झारखंड में वर्षों से निवास करने वाले नागरिकों को पुलिसकर्मी, शिक्षक और किरानी बनने से कैसे रोक सकती है? झारखंड में सरकार की इस नीति से समाज विभाजित हो गया है। 1932 के पूर्व और उसके बाद के नागरिकों को दो भाग में बांटा जा रहा है, जो निन्दनीय एवं दुर्भाग्यपूर्ण है।

कुछ वर्ष पूर्व कर्नाटक सरकार ने इसी प्रकार की डोमिसाइल नीति बनायी थी जिसे उच्चतम न्यायालय ने निरस्त कर दिया। स्वभावत: झारखंड सरकार की जो नियुक्तियाँ डोमिसाइल नीति के अंतर्गत होगी उन्हें उच्चतम न्यायालय द्वारा रद्द घोषित किया जा सकता है। झारखंड के मुख्यमंत्री ने अपनी डोमिसाइल नीति को उचित ठहराने के पक्ष में बिहार सरकार द्वारा 1982 में जारी परिपत्र का जो हवाला दिया है वह तो और भी विस्मयकारी प्रतीत होता है। प्राय: श्री मरांडी द्वारा निर्देशित वह पत्र सरकारी नौकरियों से संबंधित नहीं है। वह तो श्रम विभाग द्वारा निजी प्रतिष्ठानों में स्थानीय लोगों की परिभाषा निर्धारित करता है। यह सर्वविदित है कि सरकारी सेवाओं के लिए जारी किये जानेवाले परिपत्र या नियम-परिनियम केवल कार्मिक विभाग द्वारा निर्गत होते हैं। मुख्यमंत्री ने बिहार सरकार द्वारा मार्च, 1990 में जारी किये गये उस परिपत्र पर ध्यान नहीं दिया है जिसमें केवल सेना में भर्त्ती किये जाने के लिए अधिवास प्रमाण-पत्र निर्गत करने की प्रक्रियाएँ एवं शर्त्तें निर्धारित की गयी हैं, क्योंकि सेना की भर्त्ती में राज्यवार कोटा निर्धारित है। झारखंड के मुख्यमंत्री को इस पर भी ध्यान देना चाहिए कि भारत की संसद द्वारा पब्लिक इम्प्लायमेंट (रिक्वारमेंट ऐस टू रेजिडेन्स) एक्ट, 1957 के 23.3.1959 से अमल में आने के बाद कोई भी राज्य शासन सरकारी नौकरी में कोई प्रतिबंध नहीं लगा सकता। ऐसा प्रबतिबंध जो उस अधिनियम के पूर्व जारी था स्वत: निरस्त हो गया। इस तरह संविधान का अनुच्छेद 15 लागू बना रहता जिसके अनुसार सरकारी नौकरी में किसी आधार पर विभेद नहीं किया जा सकता।

इन स्पष्ट संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधानों के बावजूद झारखंड शासन द्वारा डोमिसाइल की शर्त्तें आरोपित करने की अविवेकपूर्ण और असंवैधानिक नीति लागू करके संपूर्ण झारखंड राज्य

1 19 जुलाई, 2002

को हिंसा और तनाव के वातावरण में झोंक दिया जाना कभी उचित नहीं ठहराया जा सकता। झारखंड शासन ने कुछ ऐसा ही असमीचीन निर्णय वहां के 12 जिलों की पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन के संबंध में लिया है, जिसके अंतर्गत पंचायत, प्रखंड और जिले के सभी पदों को संविधान के उस प्रावधान की अनदेखी करते हुए आदिवासियों के लिए आरक्षित कर दिया है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए उनकी आबादी के अनुपात में आरक्षण किया जायेगा। झारखंड सरकार ने ऐसा ही एक निर्णय आरक्षण की 50 प्रतिशत सीमा का अतिक्रमण उच्चतम न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध जाकर किया और आरक्षण की सीमा 73 प्रतिशत कर दी थी।

उच्चतम न्यायालय ने डोमिसाइल (अधिवास) के संबंध में विस्तृत व्याख्या की है। 1984 में उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती, न्यायमूर्ति अमरेन्द्र नाथ सेन तथा न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र की पीठ ने अपने फैसले में कहा है कि डोमिसाइल या आवासीय आधार पर किसी को नामांकन एवं सरकारी नियोजन के लिए वंचित नहीं किया जा सकता है। विद्वान न्यायाधीशों ने कहा कि किसी को भी यह अधिकार है कि वह किसी भी राज्य में सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में नौकरी कर सकता है। किसी को भी भाषा, धर्म, जन्मस्थान या आवासीय आधार पर शिक्षण संस्थान में नामांकन और नियोजन से नहीं रोका जा सकता। देश की सर्वोच्च कानूनी संस्था उच्चतम न्यायालय है जो कि भारत के लिए कानून की व्याख्या करता है। अत: उक्त न्यायालय के निर्णय के आधार पर यह कहना बिल्कुल गलत होगा कि भारत का नागरिक किसी एक राज्य का अधिवास (डोमिसाइल) है। न्यायालय ने कहा कि प्रत्येक नागरिक का अधिवास (डोमिसाइल) एक ही होता है और वह है भारत का अधिवास। जो नागरिक किसी एक राज्य का स्थायी निवासी हो वह यदि दूसरे राज्य में जाए तो उसका अधिवास (डोमिसाइल) नहीं बदलता है और न ही वह कोई नया अधिवास ग्रहण करता है। उसका अधिवास एक ही बना रहता है अर्थात् भारत का अधिवास।

उच्चतम न्यायालय ने यह भी चेतावनी दी कि राज्य के संदर्भ में डोमिसाइल (अधिवास) का इस्तेमाल किया जाना बड़ी ही खतरनाक बात है क्योंकि इससे एक अलग राष्ट्र का संदेश जाता है जो कि भारत की संप्रभुता के विपरीत होगा। न्यायालय ने कहा कि इस तरह की सोच एवं ऐसा कार्य करने से भारत की एकता एवं अखंडता को तोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ सकती है। न्यायालय ने कड़ी टिप्पणी करते हुए राज्य सरकारों से कहा है कि वे अपने नियम परिनियम में डोमिसाइल शब्द का गलत इस्तेमाल न करें। संविधान के अनुच्छेद 141 में प्रावधान है कि 'उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि सभी न्यायालयों पर आबद्धकर (Binding) होगी'। अत: इन संवैधानिक प्रावधानों एवं उच्चतम न्यायालय के निर्णय के आलोक में तृतीय एवं चतुर्थ वर्ग के नियोजन में स्थानीयता के आधार पर प्राथमिकता देने के झारखंड शासन के निर्णय पूर्णत: गलत और संविधान का खुला उल्लंघन हैं।

इन तथ्यों को देखते हुए सामाजिक समरसता और शांति एवं व्यवस्था की दृष्टि से डोमिसाइल नीति को तुरत समाप्त करने का आदेश निर्गत किया जाना चाहिए और झारखंड राज्य में व्याप्त हिंसा, अशांति एवं डोमिसाइल के पक्ष एवं विपक्ष में बटे लोगों में पुन: समरसता स्थापित की जानी चाहिए।

❖❖❖

झारखंड पंचायत राज अधिनियम में संशोधन[1]

झारखंड राज्य में पंचायत चुनाव कराने के लिए निर्णय लिया गया। राज्य सरकार का विशेष सत्र बुलाकर पंचायत राज अधिनियम में संशोधन करने की मांग की गयी है। किन्तु, पंचायत राज संस्थाओं को वे शक्तियाँ, अधिकार एवं साधन उपलब्ध नहीं कराये जा रहे हैं जिनका प्रावधान संविधान द्वारा पंचायत राज संस्थाओं के लिये किया गया है।

राज्य सरकार ने संविधान के प्रावधानों को स्थूल रूप में देखा है और उसकी मूल भावना की उपेक्षा करते हुए पंचायत राज अधिनियम में ऐसे प्रावधान किए हैं कि पंचायतों का स्वरूप सरकार की एजेंसी जैसी बन जाएगी। वह एक स्वायत्त संगठन नहीं रहेगा।

लोकहित में यह आवश्यक है कि झारखंड राज्य में पंचायत राज संस्था को प्रभावकारी एवं उपयोगी बनाने के लिए उसे वे सारी आवश्यक शक्तियाँ प्रदान की जाए जो संविधान संशोधन का आशय है। संविधान के अनुच्छेद 40 में कहा गया है कि ''राज्य ग्राम पंचायतों की स्थापना के लिए आवश्यक कदम उठाएगा और उन्हें ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो एक स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हो।'' इस गंभीर अर्थो से भरे उद्देश्य के लिए तथा देश की प्रगति में तेजी लाने के लिए आवश्यक है कि ग्रामीण समुदाय अपनी विकास योजनाएँ बनाने में स्वयं महत्वपूर्ण भाग ले, उन योजनाओं के लिए चिन्तन, आयोजन तथा संगठन करे। ऐसा करने पर ही देश के विकास में उसकी अहम भागीदारी हो सकेगी।

पिछले वर्षों में केन्द्र सरकार ने कई योजनाएँ चलायीं जो केन्द्रीय प्रक्षेत्र या केन्द्र प्रायोजित योजनाएँ कहलाती हैं। इनमें से कुछ योजनाएँ तो ग्राम स्तर के लिए होती हैं और कुछ नगरी क्षेत्रों के लिये। इन योजनाओं का कार्यान्वयन अधिकांशत: उन एजेंसी विशेषों द्वारा कराया जाता है जो जिला स्तर पर सृजित की जाती हैं अथवा कुछ अनौपचारिक रूप से स्थापित संगठनों के माध्यम से कराया जाता है, जिनका वित्त-पोषण केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा सीधे इन योजनाओं के अंतर्गत किया जाता है। कुछ मामलों में स्थानीय निकायों को स्कीमों के साथ जोड़कर रखा गया है मगर वे महज एजेंसी के रूप में कार्य करते हैं और इन स्कीमों को तैयार करने तथा उनका कार्यान्वयन करने के संबंध में उनकी कोई निर्णायक भूमिका नहीं रखी गयी है। खासतौर से जिला ग्रामीण विकास एजेंसी की चर्चा की जा सकती है जो अनुसूची में सम्मिलित विषयों से सम्बन्धित योजनाओं एवं कार्यक्रमों को बनाने और कार्यान्वित करने के लिए केन्द्र सरकार का साधन बनी हुयी है। नये ढाँचे में इन दोनों एजेंसियों का विलय नहीं किया गया है। इसलिए यह सुनिश्चित करना है कि स्थानीय निकाय इस ढंग से कार्य करें मानो वे स्वशासी संस्थाएं हैं और उनके इस तरह कार्य करने में

1 13 अप्रैल, 2003

जो भी बाधाएँ आ रही हैं उन्हें दूर करना भी राज्य सरकार का दायित्व होता है। जब तक ग्रामीण विकास मंत्रालय पहल नहीं करेगा तब तक केन्द्र सरकार के दूसरे मंत्रालयों से यह उम्मीद करना निरर्थक है कि वे अनुसूची में सम्मिलित विषयों से सम्बन्धित योजनाओं को अधिक से अधिक इन पंचायत निकायों के नाम अन्तरित करेंगे।

जिला ग्रामीण विकास एजेंसी (डीआरडीए) को जिला परिषद् के संपूर्ण पर्यवेक्षण, नियंत्रण और निर्देश के अधीन कार्य करने के बारे में जो निर्देश केन्द्र से दिये गये हैं उनका अनुपालन किये जाने से पंचायती राज व्यवस्था को अधिक प्रभावकारी बनाया जा सकता है। खासकर जिला परिषद् को अपना कार्य चलाने में उससे प्रबल समर्थन मिलेगा।

संविधान के मूल प्रावधान को देखते हुए निम्नलिखित बिन्दुओं पर तुरंत कार्रवाई अपेक्षित होगी ताकि पंचायती राज व्यवस्था संविधान संशोधन की अवधारणाओं के अनुकूल बन सके।

(1)जिला ग्रामीण विकास एजेंसी (डीआरडीए) जिला परिषद् के पर्यवेक्षण, नियंत्रण एवं मार्गदर्शन में कार्य करे और जिला परिषद् को अपने कृत्यों के निर्वहन में कार्यपालक एवं तकनीकी सहायता दे। जिला परिषद् का अधयक्ष डीआरडीए (जिला ग्रामीण विकास एजेंसी) के शासी-निकाय का पदेन अध्यक्ष हो। इस हैसियत से जिला परिषद् का अध्यक्ष डीआरडीए के शासी-निकाय की बैठक की अध्यक्षता करे। किन्तु, कार्यपालक एवं वित्तीय शक्तियां जिला समाहर्त्ता/जिला मैजिस्ट्रेट/उपायुक्त मे निहित रहे और वे मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी अथवा कार्यपालक निदेशक कहलाएँ।

(2)डीआरडीए के शासी-निकाय में जिले के सभी सांसद, विधायक और जिला स्तर पर विभिन्न विकास विभागों के पदाधिकारी रहें। जिले के दो पूर्व सांसद और दो पूर्व विधायक वर्णानुक्रम से एक साल के लिए बारी-बारी से रखे जाएँ जिन्हें डीआरडीए के शासी-निकाय के सदस्य के रूप में अधिसूचित किया जाए। इसमें पंचायत समिति के प्रमुखों की एक तिहाई को एक साल के लिए बारी-बारी से वर्णानुक्रम में सदस्य बनाया जाए।

(3)सभी स्कीमों का प्रस्ताव पंचायत स्तर से आरंभ किया जाए और पंचायत सभी स्कीमों को तैयार करके अपनी सिफारिश के साथ पंचायत समिति को भेजे ताकि पंचायत समिति उन्हें जाँचकर अपनी सिफारिश भेजे और उसके बाद जिला परिषद् और डीआरडीए अपनी बैठक में उस पर निर्णय ले। ऐसी बैठक कम से कम हर 6 महीने में एक बार जरूर हो।

(4)डीआरडीए का शासी-निकाय नीति सम्बन्धी निर्देश दे और वार्षिक योजना तथा सभी स्कीमों पर भौतिक एवं वित्तीय दृष्टियों से विचार करे तथा योजना के कार्यान्वयन की समीक्षा करे। डीआरडीए के मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी की अध्यक्षता में एक कार्यपालक समिति गठित होगी जिसमें वार्षिक योजना के कार्यान्वयन से सम्बद्ध सभी जिला स्तरीय पदाधिकारी रहें। यह समिति वार्षिक योजना में अनुमोदित स्कीमों को कार्यान्वित करे और महीने में एक बार अवश्य इसकी बैठक हो।

(5)कार्य प्रक्रिया यह हो कि डीआरडीए का शासी-निकाय परियोजनाओं को तैयार करके

उसका अनुमोदन करे और उनके लिए निधि आबंटित करे तथा कार्यपालक समिति उनकी स्वीकृति देकर कार्यान्वित करवाए।

(6)सभी स्कीमें/परियोजनाएँ डीआरडीए के शासी-निकाय द्वारा अनुमोदित की जाएं और उसके बाद उन्हें स्वीकृत एवं कार्यान्वित किया जाए।

(7)किन्तु किसी स्कीम को अन्तिम रूप से अनुमोदित और मंजूर करने के पहले डीआरडीए के अध्यक्ष का अनुमोदन इष्टकर समझे जाने पर ही लिया जाए।

(8)ग्रामीण विकास प्रशिक्षण जो बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्यक्रम है, उस पर समुचित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। अत: ग्रामीण विकास विभाग अन्य कार्मिकों के साथ भारतीय प्रशासनिक सेवा और राज्य प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए भी इस प्रशिक्षण की व्यवस्था करे। इसके लिए निधि की अलग व्यवस्था की जा सकती है, क्योंकि प्रशिक्षण का खर्च कार्यक्रम के आबंटन में ही सम्मिलित रहता है और अतिरिक्त मांग किये जाने पर भी उसकी पूर्त्ति उदारता से की जाती है। इसलिए सामान्यत: वित्त विभाग द्वारा यात्रा-भत्ता सम्बन्धी प्रतिबंधों से इसे अलग रखा जाए।

(9)केन्द्रीय प्रक्षेत्र या केन्द्र प्रायोजित योजनाओं को जिला परिषद्, पंचायत समिति और पंचायत के अधीन कर दिया जाना चाहिए।

राज्य सरकार पंचायतों को सशक्त बनाने हेतु विशेष प्रावधानों की व्यवस्था का निर्णय लेकर दृढ़ इच्छाशक्ति का प्रदर्शन करे तभी वह एक सराहनीय प्रयास कहा जा सकेगा। पंचायती राज संस्थाओं को सौंपे जा रहे नए-नए दायित्व और अधिकारों के साथ-साथ इनके भली-भांति क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने हेतु कुछ विशेष व्यवस्थाएँ भी साथ ही साथ निर्धारित करनी होगी। कोई भी निर्णय लेते समय उनके दूरगामी प्रभावों का आकलन भली-भांति करना होगा। इसके अतिरिक्त किये जा रहे प्रावधानों को वास्तविक रूप में क्रियान्वित करने में अनुभव की जाने वाली कठिनाइयों का निदान करते हुए उनका निराकरण भी करना होगा। पंचायतों को आबंटित की जाने वाली धनराशि को उन्हें समय पर उपलब्ध कराने के लिए प्रावधानों और नियमों की सुस्पष्ट व्याख्या की जाए। पंचायतों का हस्तान्तरित सरकार कर्मचारियों के हितों की रक्षा, पंचायतों द्वारा किये जा रहे निर्माण की गुणवत्ता और खर्चों का प्रभावी अनुवीक्षण और नियंत्रण, पंचायतों के काम-काज और कार्य प्रणाली में विभागीय और सरकारी हस्तक्षेप को कम करने हेतु भी आवश्यक कदम उठाने होंगे।

प्रदेश में पंचायतों को अधिक शक्तिशाली, अधिकार सम्पन्न, परिणामोन्मुखी और क्रियाशील बनाने के उद्देश्य से सरकार द्वारा विशेष प्रावधान किये जाएं। उनसे पंचायतों को न केवल अधिकार प्राप्त होंगे बल्कि, वास्तव में उन्हें अतिरिक्त दायित्व भी मिलेंगे जिनका निर्वहन करने के लिए उन्हें अपने आपको अधिक पारदर्शी, सक्षम तथा व्यावहारिक बनाना होगा। पंचायतों को उपलब्ध होने वाली सरकारी सहायता पर अवलम्बित न रहते हुए विकास कार्यों को पूर्ण करने हेतु ऐसे रास्ते निकालने होंगे जिनसे गरीब ग्रामीणों पर आर्थिक बोझ भी नहीं पड़े। सभी अशिक्षित जनप्रतिनिधियों

को अपने आप शिक्षित बनाने, विकास की नई–नई नीतियों, विधाओं और तकनीकों को सीखने हेतु आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए तत्पर रहने, उन्हें सरकार और जनता द्वारा सौंपे गए दायित्वों को नैतिकता, ईमानदारी और निष्ठापूर्वक निर्वहन करने के लिए समर्पण भाव से कार्यरत रहना होगा। निष्पक्ष भावना से लोक हितकारी कठोर निर्णय लेने में भी संकोच नहीं करना होगा, तभी होगा सदियों से उपेक्षित और पिछड़े गाँवों और गाँव वासियों का कल्याण तथा पंचायती राज और जनता के राज का सपना साकार।

73वें संविधान संशोधन की अवधारणा एवं प्रावधानों के अनुसार अभी तक देश में पंचायत राज संस्थाओं को वे शक्तियाँ, अधिकार एवं साधन उपलब्ध नहीं कराये गए हैं जिनकी अपेक्षा संविधान के अनुच्छेद 40 में की गई है। उस अनुच्छेद में कहा गया है कि पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ और अधिकार होंगे जिनसे वे एक स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में कार्य करने के लिए सक्षम बन सकें। किन्तु, अभी तक ऐसा इसलिए नहीं हो पाया है कि राज्यों ने संविधान को स्थूल रूप में देखा है और उसकी अवधारणा की अनदेखी कर दी है। वर्णित परिस्थिति में विभिन्न राज्यों की पंचायत राज संस्थाओं को कार्यरत देखने के बाद यह आवश्यक प्रतीत होता है कि नीचे दिए गए बिन्दुओं पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए पंचायतों को शक्तिसम्पन्न बनाने के लिए कानूनी प्रावधान केन्द्रीय स्तर पर तुरंत किये जायें:–

1.पंचायतों का स्वरूप ऐसा नहीं बना दिया जाए कि वे दूसरों की सोच पर बनाई गई योजनाओं को महज कार्यान्वित करने वाली एजेंसी बनकर केन्द्र या राज्य प्रायोजित योजनाओं की निधि प्राप्त किया करें। उन्हें स्वशासी संस्था बनाने के लिए सही माने में विकेन्द्रीकृत योजना की प्रक्रिया चलायी जाए जिससे कि जिला स्तर की योजनाएं या तो ग्राम स्तर पर बने या मध्यवर्त्ती स्तर पर अथवा जिला स्तर पर। ऐसी योजना उन पर ऊपर से नहीं लादी जाएं। तीनों स्तर की पंचायतों के जिम्मे राज्य योजना की निधि और अन्य वित्तीय साधनस्रोत का तर्कसंगत प्रतिशत रखा जाए और उन निधियों का उपयोग पंचायतें अपनी प्राथमिकता और पसन्दगी की योजनाओं के लिए करें। राज्य के बजट में इसका स्पष्ट उल्लेख किया जाए और उस पर राज्य विधान मण्डल की स्वीकृति प्राप्त रहे।

2.जब तक संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में सम्मिलित मदों के बारे में केन्द्र एवं राज्य के प्रशासनिक ढाँचे और शक्तियों में व्यापक परिवर्तन एवं कटौती नहीं की जाएगी, तब तक पंचायतों का स्वरूप स्वशासी संस्था के रूप में नहीं उभर पायगा। केन्द्र और राज्य के विशाल प्रशासनिक ढाँचे के फैले रहने से पंचायतों के स्वशासी प्रशासनिक ढाँचे के विकास में भारी बाधा पहुंचती है। इसलिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों के कृत्यों एवं ढाँचों का पुन: समायोजन सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय आयोग का गठन किया जाए।

3.निर्वाचित पंचायतों को सरकारी अधिकारियों का अधीनस्थ संस्था नहीं बनाया जाना चाहिए। निर्वाचित प्रतिनिधियों को अधिकार दिया जाना चाहिए कि वे पंचायतों में पदस्थापित किये जाने वाले सरकारी अधिकारियों का नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण कर सकें।

4.निचले स्तर की पंचायत इकाइयों के विघटन और उनके कार्यो की देखरेख की शक्ति ठीक ऊपर की पंचायत में निहित होनी चाहिए न कि सरकारी अधिकारियों में ताकि पंचायतों के सामूहिक दायित्व की स्थापना हो सके।

5.पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के लिए एक ही मंत्रालय हो।

6.संविधान के 73वें संशोधन का मूलभूत आदर्श है कि पंचायत संस्थाओं को स्वशासी इकाई बनाया जाए, उसे राज्य सरकार को कभी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। राज्य में जो पंचायत अधिनियम हो या नये ढंग से बने, उसमें ऐसी तमाम धाराओं को जो पंचायतों के ऊँचे लक्ष्यों को बाधित करती हों, उन्हें या तो विलोपित अथवा उपयुक्त ढंग से संशोधित करके ऐसा बनाया जाए कि पंचायतें स्वशासी इकाई के रूप में भागीदारी करनेवाली संस्था बन सकें।

7.हमारे बहुवादी समाज का लोकतंत्रीकरण केवल राज्य के विधायी एवं प्रशासनिक कार्यकलापों से सुनिश्चित नहीं किया जा सका है। इस तरह के समर्थकारी प्रावधानों के समावेश के लिए बड़े पैमाने पर जन समर्थन की आवश्यकता होगी। गैर-सरकारी संगठन, व्यावसायिक निकाय, व्यापार संघ, राजनीतिक दल और अन्य व्यक्ति समूहों को मिलजुलकर दबाव डालना चाहिए कि शक्ति का सन्निवेश उस इाकई में किया जाए जिसके लिए वह अभिप्रेरित है।

8.आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय सम्बन्धी योजनाओं को बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने में गैर-सरकारी संगठनों और सहकारी समितियों को कार्यकारी सहयोगी के रूप में पंचायतों के साथ जोड़ दिया जाए।

9.वित्तीय उत्तरदायित्व का निर्वाह किस रूप में किया जाए यह निर्धारित करने और उसके पर्यवेक्षण का भार महालेखा नियंत्रक एवं अंकेक्षक को सौंपा जाए।

10.शक्तियाँ और कृत्य सौंपने का मूल सिद्धांत वह होना चाहिए जिसका निर्वाह निचले स्तर पर किया जा सके। अत: यह काम हर हालत में उसी स्तर पर होना चाहिए न कि उपर के किसी स्तर पर। ये कृत्य और शक्तियाँ विधान मण्डल द्वारा सौंपे जाएं।

11.राज्य में अन्तर जिला परिषद् या पंचायत काउंसिल का गठन किया जाए जिसका अध्यक्ष मुख्यमंत्री हो तथा सभी जिला परिषदों के निर्वाचित अध्यक्ष, विपक्ष के नेता और सम्बद्ध विभाग के मंत्री उसके सदस्य बनाए जाएं। यह अन्तर जिला परिषद या पंचायत काउंसिल आम तौर पर पंचायतों के बारे में और खास तौर पर जिला परिषद एवं राज्य सरकारों के लिए विधायी, वित्तीय, प्रशासनिक और अन्य संगत विषयों पर विचार-विमर्श करके निर्णय लेगा।

12.पंचायतों की स्थापना देश के हर हिस्से में की जाए। इसमें संविधान की पांचवीं और छठी अनुसूची के अधीन पड़नेवाले क्षेत्र भी सम्मिलित रहेंगे। इन क्षेत्रों में 73वें संविधान संशोधन के मूलभूत सिद्धांतों का तालमेल स्थानीय परम्परा, विचारधारा और संस्थाओं के साथ बैठाया जाए ताकि समुदाय के लोगों को लोकतांत्रिक सुविधाएँ प्राप्त हो सकें। संविधान के अनुच्छेद 243 (एम) में जिस केन्द्रीय कानून को बनाने का प्रावधान किया गया है उस अधिनियम को शीघ्र

पारित किया जाए।

13.त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था पूर्णतया केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकार के अनुदानों पर आश्रित है। ग्रामीण व सामाजिक विकास संबंधित योजनाओं के अन्तर्गत पंचायतों को केन्द्रीय सहायता प्राप्त होती है। इन योजनाओं के अन्तर्गत पंचायतों तक पहुँचने वाली राशियों का औसतन 90 प्रतिशत कुछ शर्त्तों के साथ होता है। इन्हें पंचायत अपनी इच्छा व आवश्यकतानुसार नहीं खर्च कर सकती। इसी तरह की शर्तो से बंधी राशि राज्य सरकारों द्वारा भी प्राप्त होती है। संविधान की धारा 243 जी के अनुसार पंचायतों के लिए 11वीं अनुसूची में 29 कार्यक्षेत्रों का विवरण है। मगर धनाभाव व प्राप्त अनुदान की प्रकृति की वजह से ये तमाम कार्यक्षेत्र महज कागजी बनकर रह गये हैं। पंचायतों को उनकी आवश्यकता से काफी कम राशि आबंटित होती है। इन आबंटित राशियों के बारे में पंचायतों को कोई पूर्व सूचना नहीं होती है। प्राय: ये राशियाँ पंचायतों को वित्तीय वर्ष के अंत में मिलती हैं। इस वजह से पंचायतें अपनी योजनाओं को ठीक से बना नहीं पाती है।

14.पंचायतों के भौगोलिक कार्य क्षेत्र में आने वाले सभी प्राकृतिक व भौतिक संसाधनों पर पंचायतों का अधिकार होना चाहिए। इस तरह वे अपने संसाधनों का पूर्ण उपयोग करके अपने संसाधनों को विकसित कर सकते हैं।

15.पंचायतों को केन्द्रीय सरकार से प्राप्त कुल अनुदानों का कम से कम 50 प्रतिशत शर्तमुक्त राशि हो, ताकि वे इस राशि का अपनी आवश्यकतानुसार उपयोग कर सकें। पंचायतों को प्राप्त होने वाली तमाम आर्थिक सहायता के बारे में उन्हें समय से पूर्व सूचना प्रेषित होनी चाहिए ताकि वे तदनुसार अपनी योजना बना सकें।

पंचायतें स्थानीय स्वशासन की महत्वपूर्ण इकाई हैं। ये तभी सुशासन में सहायक बन सकती है जब इन्हें पूर्ण आर्थिक सहयोग व स्वायत्तता हासिल हो।

❖❖❖

झारखण्ड के मुख्यमंत्री पद को आदिवासी और गैर आदिवासी के रूप में देखना[1]

झारखंड के मुख्यमंत्री पद को आदिवासी और गैर आदिवासी से जोड़कर विवादास्पद बनाना अत्यंत ही निन्दनीय और असंसदीय है, क्योंकि लोकतंत्र में संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का पद धर्म, जाति अथवा वर्ग आदि पर आधारित नहीं माना जाता है। निर्वाचित सांसद और विधायक, दल के नेता का चुनाव करते हैं और वही प्रधानमंत्री तथा मुख्यमंत्री बनता है। इसलिए झारखंड के संबंध में यह कहना कि वहाँ के मुख्यमंत्री आदिवासी ही हो किसी भी तर्क से उचित नहीं माना जा सकता। वैसे भी झारखंड राज्य में 78 प्रतिशत गैर आदिवासियों की आबादी है। 2000 में झारखंड राज्य के गठन के बाद से अभी तक लगातार 14 वर्षों तक आदिवासी मुख्यमंत्री रहे हैं। यह सर्वविदित है कि प्रधानमंत्री अथवा मुख्यमंत्री का पद किसी जाति अथवा धर्म के लिए आरक्षित नहीं हो सकता है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया से कोई भी व्यक्ति मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री बन सकता है। इसलिए सामाजिक सौहार्द्र और समरसता के लिए झारखंड के मुख्यमंत्री पद को विवादास्पद बनाना किसी भी अर्थ में उचित नहीं है।

यह भी ज्ञातव्य है कि झारखंड राज्य के निर्माण में आदिवासी और गैर आदिवासी ने संयुक्त रूप से संघर्ष किया। इसलिए इस राज्य पर दोनों समूह का समान रूप से अधिकार बनता है। झारखंड राज्य के गठन के साथ ही छत्तीसगढ़ राज्य का भी गठन हुआ था। वहाँ भी आदिवासी की आबादी काफी अधिक है। फिर भी छत्तीसगढ़ में लगातार गैर आदिवासी श्री रमन सिंह मुख्यमंत्री निर्वाचित होते रहे हैं। छत्तीसगढ़ में आदिवासी तथा गैर आदिवासी के बीच कोई विवाद उत्पन्न नहीं किया जाता रहा है और यह सर्वविदित है कि पिछले 14 वर्षों में छत्तीसगढ़ राज्य का सर्वांगीण विकास हुआ है, वहीं झारखंड राज्य लगातार पिछड़ता गया है। अपार प्राकृतिक संसाधनों के बावजूद भी यह राज्य विकसित नहीं हो पाया। झारखंड राज्य के आदिवासियों के जीवन में विकास, सुधार अथवा परिवर्तन नहीं हो सका है।

मुख्यमंत्री पद को आदिवासी और गैर आदिवासी के रूप में न आंका जाना चाहिये और न ही देखा जाना चाहिये। लोकतांत्रिक प्रणाली से सर्वसम्मति से निर्वाचित मुख्यमंत्री को ही सभी समूह का व्यापक समर्थन प्राप्त हो जिस उद्देश्य से इस राज्य का गठन हुआ था।

❖❖❖

1 27 दिसम्बर, 2014

चम्पारण : महात्मा गाँधी का उदय[1]

गांधीजी 10 अप्रैल, 1917 को जब बिहार आए तो उनका एक मात्र मकसद चंपारण के किसानों की समस्याओं को समझना, उसका निदान और नील के धब्बों को मिटाना था। गांधीजी के नेतृत्व में बिहार के चंपारण जिले में सन् 1917-18 में एक सत्याग्रह हुआ। इसे 'चम्पारण सत्याग्रह' के नाम से जाना जाता है। गांधीजी के नेतृत्व में भारत में किया गया यह पहला सत्याग्रह था। हजारों भूमिहीन मजदूर एवं गरीब किसान खाद्यान्न के बजाय नील और अन्य नकदी फसलों की खेती करने के लिये बाध्य हो गये थे। वहाँ पर नील की खेती करने वाले किसानों पर बहुत अत्याचार हो रहा था। अंग्रेजों की ओर से खूब शोषण हो रहा था। गांधीजी स्थिति का जायजा लेने वहाँ पहुँचे।

गांधीजी के आदेशों, सलाहों, टिप्पणियों और आचरण को देखने के बाद तीन ही चीजें ऐसी दिखती हैं, जिन्हें गांधी पाना चाहते थे:- (1) चम्पारण के किसानों का दुख-दर्द खत्म कराना। (2)अंग्रेजी शासन का डर निकालना और (3) अंग्रेजी शोषक व्यवस्था की जगह देशी विकल्प देने का प्रयास।

पहला काम तो उन्होंने डंके की चोट पर किया और अंग्रेजी व्यवस्था पर जबरदस्त दबाव बनाया। गांधीजी के तब के प्रयोगों को लेकर आज जब सौ साल बाद हम चर्चा कर रहे हैं तो यह देखना और समझना जरूरी है कि चम्पारण में न कहीं लाठी चली, न बंदूक, न किसी को लम्बी जेल भुगतनी पड़ी, न जान लेवा अनशन हुआ, न चंदा और न दिखावे का खर्च करना पड़ा। गांधीजी के काम करने का अपना तरीका था। वे सिर्फ राजनीतिक लड़ाइयों पर जोर नहीं देते थे, सामाजिक बदलावों को भी उतना ही महत्व देते थे। चंपारण में भी जब लगभग तय हो गया कि तिनकठिया प्रथा खत्म हो जायेगी, गांधीजी ने सामाजिक बदलाव के प्रयासों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर दिया। वे तो चाहते थे कि इस काम में नील प्लांटर भी उनके सहयोगी बने, मगर प्लांटरों ने रुचि नहीं दिखायी बल्कि यह कह दिया कि उनके इलाके में ये काम न हों। ऐसे में गांधीजी को उन गिने-चुने इलाकों में काम करना पड़ा, जो नील प्लांटरों के आधिपत्य में नहीं थे।

भारत की जंगे-आजादी के इतिहास में चंपारण सत्याग्रह को मील का पत्थर माना गया है। इसी आंदोलन की वजह से देशवासियों ने गाँधीजी को महात्मा के तौर पर पहचाना। गाँधीजी ने यहीं से अहिंसा को एक कामयाब विचार के रूप में रोपा।

वैसे तो इतिहास की हर घटना की शताब्दी आती है और उसे सौ साल पुराना बनाकर चली जाती है। इतिहास को बीते समय और गुजरे लोगों का दस्तावेज भर मानते हैं। लेकिन इतिहास बीतता नहीं है, नये रूप और संदर्भ में बार-बार लौटता है और मजबूर करता है कि अपनी आँखें

1 10 अप्रैल, 2017

खोलें और अपने परिवेश को पहचानें। इतिहास के कुछ पन्ने ऐसे होते हैं कि वे जब भी आपको या आप उनको छूते-खोलते हैं तो आपको कुछ नया बनाकर जाते हैं। इसे पारस-स्पर्श कहते हैं। इतिहास का पारस-स्पर्श! चंपारण का गाँधी-अध्याय ऐसा ही पारस है। इस पारस के स्पर्श से गाँधी का स्पर्श ही था जिसने अहिल्या जैसे पाषाणवत् चंपारण को धधकता शोला बना दिया था। यह सब क्या था और कैसे हुआ था? आज हमारी खेती-किसानी अब लाचारी और आत्महत्या का दूसरा नाम बन गयी है, हमें चंपारण सत्याग्रह की इस दिशा पर ध्यान करना चाहिए।

गाँधीजी और चंपारण दोनों ही आज के हिन्दुस्तान की दशा सुधारने और दिशा दिखाने का काम एक साथ कर सकते हैं। शर्त इतनी ही है कि हम दशा सुधारने और दिशा खोजने के बारे में ईमानदार तो हों। गाँधीजी द्वारा 1917 में संचालित चंपारण सत्याग्रह न सिर्फ भारतीय इतिहास में बल्कि विश्व इतिहास की एक ऐसी घटना है, जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को खुली चुनौती दी थी। एक स्थानीय पीड़ित किसान राज कुमार शुक्ल ने कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन (1916) में अंग्रेजों द्वारा जबरन नील की खेती कराए जाने के संदर्भ में शिकायत की थी। श्री शुक्ल का आग्रह था कि गाँधीजी इस आंदोलन का नेतृत्व करें। गाँधीजी ने इस समस्या को न सिर्फ गंभीरतापूर्वक समझा, बल्कि इस दिशा में आगे बढ़े।

❖❖❖

बाबासाहब डॉ॰ अम्बेडकर[1]

डॉ॰ अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय के लिए सामाजिक जनतंत्र एवं राज्य–समाजवाद की वकालत की। वे जनतंत्र को न केवल एक औपचारिक राजनैतिक ढांचा, वरन् एक व्यावहारिक मानवीय भावना के रूप में भी स्थापित करना चाहते थे। इसके लिए समाज के सभी सदस्यों में अन्यों के प्रति समानता एवं आदर का भाव और सामाजिक बंधनों से मुक्त एक सामाजिक संगठन का होना आवश्यक है। सामाजिक जनतंत्र की यह आवश्यकता डॉ॰ अम्बेडकर को राज्य–समाजवाद की ओर ले जाती है, जहाँ न केवल राजनैतिक, वरन् सामाजिक एवं आर्थिक समानता का भी प्रावधान है। साथ ही वे राज्य के लिए समाजवाद की स्थापना को संवैधानिक रूप से बाध्यकारी बनाना चाहते थे।

ब्राह्मण विद्वान और नेता पंडित मदन मोहन मालवीय ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में सन् 1944 में डॉ॰ अम्बेडकर को आमंत्रित कर उनका शानदार स्वागत किया था। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें भारत सरकार का विधि मंत्री एवं संविधान सभा में संविधान प्रारूप समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया। महात्मा गाँधी एवं पंडित नेहरू एवं अन्य स्वतंत्रता सेनानी नेताओं के विचारों का संकलन डॉ॰ अम्बेडकर ने अपने विचारों के साथ सम्मिलित कर संविधान का प्रारूप संविधान सभा में प्रस्तुत किया जिसे संविधान सभा ने स्वीकृत किया। आज भारत का लोकतंत्र डॉ॰ अम्बेडकर के विचारों पर आधारित है।

बाबा साहब अम्बेडकर ने शूद्रों के बारे में प्रचलित कई धारणाओं का खंडन किया है, जो कि सामाजिक न्याय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को रेखांकित करने में मददगार है। डॉ॰ अम्बेडकर ने लिखा है–‘‘शूद्रों के लिए कहा जाता है कि वे अनार्य थे, आर्यों के शत्रु थे। आर्यों ने उन्हें जीता था और दास बना लिया था। ऐसा था, तो ‘यजुर्वेद’ और अथर्ववेद’ के ऋषि शूद्रों के लिए गौरव की कामना क्यों करते हैं? शूद्रों का अनुग्रह पाने की इच्छा क्यों प्रकट करते हैं? शूद्रों के लिए कहा जाता है कि उन्हें वेदों के अध्ययन का अधिकार नहीं था। ऐसा था, तो शूद्र ‘ऋग्वेद’ के मंत्रों के रचनाकार कैसे हुए? शूद्रों के लिए कहा जाता है कि उन्हें यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। ऐसा था, तो सुरदास ने अश्वमेध यज्ञ कैसे किया था? ब्राह्मण शूद्र को यज्ञकर्ता के रूप में कैसे प्रस्तुत करता है? शूद्रों के लिए कहा जाता है कि वे सम्पत्ति संग्रह नहीं कर सकते। ऐसा था, तो ‘मैत्रायणी’ और ‘कठक’ संहिताओं में धनी और समृद्ध शूद्रों का उल्लेख कैसे है? रैयदास जैसे अनेक संतशूद्र दलित हैं जिन्हें सवर्ण पूजते रहे हैं। यह सर्वविदित है कि अत्यंत पवित्र वेदों के ज्ञाता वेद व्यास शूद्र थे। उन्होंने महाभारत और 18 पुराणों की संस्कृत में रचना की थी।

डॉ॰ अम्बेडकर मध्यम मार्गी थे और सामान्य लाभ का मार्ग अपनाना ठीक समझते

1 15 अप्रैल, 2017

थे। सामान्य लाभ का सिद्धांत डॉ॰ अम्बेडकर की दृष्टि में, व्यक्ति प्रधान और समाज-प्रधान सिद्धांतों में एक समझौता है। उनका मानना था कि मानव-हित व्यक्तिगत एवं समाजवाद और आदर्शवाद एवं यथार्थवाद में निहित है। व्यक्तिगत एवं सामजिक उद्देश्यों का सामंजस्य मुख्यतः कानून-व्यवस्था के बिना छिन्न-भिन्न हो सकता है।

❖❖❖

पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की शताब्दी जयन्ती वर्ष[1]

श्रीमती इन्दिरा गांधी का शताब्दी जयन्ती वर्ष मनाया जाना था, किन्तु श्रीमती गाँधी की शताब्दी जयन्ती वर्ष राष्ट्रीय स्तर पर मनाये बिना ही बीत जाना बेहद दुखद और विस्मयकारी है। देश उनके द्वारा किये गये जनहित के कार्यों और बलिदानों को भुला नहीं सकता।

श्रीमती गांधी भारत की तीसरी और छठी प्रधानमंत्री थी और बहुत लोग उन्हें प्यार करते थे, जब तक वे जीवित थीं उन्हें कभी भी नजरअंदाज नहीं किया गया। हर प्रधानमंत्री की सफलताएं और विफलताएं होती हैं। दोनों का आकलन समय-विशेष की पृष्ठभूमि में और उस संदर्भ में होता है जिनमें वे घटित हुई रहती हैं, और उन चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में भी, जिनका सामना उस समय देश को और प्रधानमंत्री को करना पड़ा था।

जब श्रीमती गांधी 1966 में प्रधानमंत्री बनी- (1) दो युद्धों (1962 और 1965) ने देश के संसाधन चूस लिये थे। (2) तब अनाज की भारी कमी थी और देश पीएल 480 के तहत मिलने वाली खाद्य सहायता पर बुरी तरह निर्भर था। (3) कांग्रेस पार्टी का संगठन काफी कमजोर था (और बाद के दो साल के भीतर पार्टी आठ राज्यों में चुनाव हार गई) 1967 के निराशाजनक चुनाव नतीजों के बाद, कांग्रेस के सारे नेताओं में श्रीमती गांधी ही थीं जिन्होंने ठीक से यह पहचाना कि गरीब कांग्रेस से विमुख हो गये हैं। कांग्रेस को फिर से गरीबों का भरोसा जीतना होगा। श्रीमती गांधी ने एक ठोस एजेण्डा पेश करके आगे का रास्ता दिखाया, जो कि उस वक्त की प्रभावी विचारधारा से मेल खाता था-समाजवाद-कांग्रेस का।

श्रीमती गांधी का 1970 से 1974 तक बतौर प्रधानमंत्री का कार्यकाल भारत का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। इस दौरान इन्दिरा जी ने पाकिस्तान को तोड़कर बंगलादेश बना डाला। पहला परमाणु परीक्षण पोखरण में करके भारत की वैज्ञानिक परमाणु शक्ति का पूरी दुनिया में लोहा मनवाया और सिक्किम का भारत में विलय करके भारतीय संघ की शक्ति के आधारभूत ढांचे को मजबूत करते हुए चीन और पाकिस्तान दोनों को ही चुनौती दी कि सांस्कृतिक एकात्मता की ऊर्जा में लोगों को आपस में जोड़े रखने की अपूर्व सामर्थ्य होती है।

उन्होंने पंजाब में तब चल रहे आतंकवाद से डटकर लोहा लिया और उसी की वजह से उनका बलिदान भी हुआ। श्रीमती इन्दिरा गांधी जी जनता की नब्ज भली भांति पहचानती थी। उनको अहसास था कि देश की कोटि-कोटि जन की भावनाओं का, जो समाज में एक लम्बे अर्से से उपेक्षित चला आ रहा था, उन्होंने अनुभव किया कि जनता के धैर्य का प्याला लबालब भर चुका है और वह अब कोरे वायदों पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं थी।

श्रीमती गांधी ने अनेक कार्यक्रमों से अपने देशवासियों के हृदय में एक विशिष्ट स्थान बना लिया। प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी ने गरीबी के विरुद्ध संघर्ष को सद्‌भाव के रूप में न देखकर दायित्व

1 28 नवम्बर, 2017

के रूप में देखना प्रारंभ किया था। उन्होंने कहा था कि मूलभूत मानव अधिकार–जीने का समुचित स्तर, भोजन और अनिवार्य स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा या उचित कार्य के अवसर या भेदभाव से मुक्ति के अधिकार ही देश के सबसे गरीब लोगों की सबसे बड़ी जरूरत है। श्रीमती इन्दिरा गांधी की दृष्टि के कारण विज्ञान और प्रौद्योगिकी का भारत में शक्तिशाली स्वदेशीय आधार निर्मित किया गया। इसका सुन्दर इस्तेमाल श्रीमती गांधी ने किया था जिससे हमारे उत्पादन सभी क्षेत्रों में बढ़े तथा हमारी अर्थव्यवस्था और भी सामर्थ्यवान बन सकी। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये देश में महत्वपूर्ण क्षेत्रों में अनेक प्रौद्योगिकी मिशनों की स्थापना की गई।

श्रीमती गांधी ने इस देश में वैज्ञानिक प्रकृति को विकसित करने की मनोदशा तैयार की। एक नये स्वतंत्र और अत्यन्त ही निर्धन देश के लिये इस दिशा में बढ़ना आसान काम नहीं था, परन्तु इन्दिरा जी की दृष्टि थी कि यह एकमात्र विज्ञान और प्रौद्योगिकी है जिससे भारत अपने को ऊपर उठा सकता था। आज देश वर्तमान अवस्था में इसलिये है क्योंकि श्रीमती गांधी ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर अत्यधिक बल दिया था।

❖❖❖

स्व० राजीव गांधी निर्दोष[1]

दिल्ली उच्च न्यायालय ने बोफोर्स मामले में साक्ष्य एवं किसी प्रकार के सबूत उपस्थित नहीं किये जाने के कारण पूर्व प्रधानमंत्री स्व० राजीव गांधी को निर्दोष करार देते हुए उन्हें बरी कर दिया है। सी०बी०आई० को उच्च न्यायालय ने फटकार लगाते हुए कहा है कि वह पिछले 16 वर्षों में उनके खिलाफ कोई सबूत नहीं जुटा पायी।

कोर्ट का यह फैसला केन्द्र की भाजपा सरकार और सी०बी०आई० के ऊपर एक तमाचा जैसा है जिसने भाजपा सरकार के दबाव में स्व० गांधी को इस मामले में अभियुक्त बनाया था। तत्कालीन प्रधानमंत्री और जनता पार्टी के नेता श्री विश्वनाथ प्रसाद सिंह ने अत्यंत ही घटिया किस्म की ओछी राजनीति से प्रेरित होकर राजीव गांधी पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया था। इस मामले की जाँच उन्हीं के प्रधानमंत्री रहते शुरू कर दी गई और उन्होंने ही 1989 के लोक सभा चुनाव में कांग्रेस के विरुद्ध इसे मुद्दा बनाया था और झूठे आरोप को ही चुनाव अभियान में मुद्दा बनाकर श्री राजीव गांधी को प्रधानमंत्री के पद से हटाया था। लगातार इस मामले को राजनीतिक तूल दिया जाता रहा।

एक उच्च, साफ सुथरे छवि वाले व्यक्ति पर चरित्र हनन का अभियान चलाये रखा गया। बोफोर्स मामले को लेकर ही जनता पार्टी चुनाव जीती थी। उच्च न्यायालय ने कहा है कि इतने वर्षों के बाद भी स्व० गांधी के विरुद्ध सबूत इकट्ठे नहीं किये जा सके। इस फैसले ने यह भी साबित किया है कि भाजपा सरकार भी राजीव गांधी के विरुद्ध, उनकी मृत्यु के बाद भी, मुकदमा चलाने के लिए पूरा जोर लगाती रही। श्री राजीव गांधी की हत्या के बाद भी उनके नाम को घसीटने में केन्द्र सरकार की भूमिका दोषपूर्ण रही है। इस मामले से यह भी साबित हुआ है कि देश में राजनीतिक भावना से प्रेरित होकर निर्दोष व्यक्ति को अनावश्यक रूप से प्रताड़ित और परेशान किया जाता है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने अंततः यह फैसला दे ही दिया कि यह मामला केवल राजनीति से प्रेरित था। इस मामले में उनकी कोई अंतर्लिप्तता नहीं थी, वे पूरी तरह निर्दोष थे।

उच्च न्यायालय ने सत्य और असत्य का फैसला कर दिया है कि स्व० राजीव गांधी एक स्वच्छ छवि के राष्ट्रवादी व्यक्ति थे। उन्होंने स्वयं संसद में कहा था कि ''मैं रहूँ या न रहूँ पर वक्त इस बात का साक्षी रहेगा कि मेरे और मेरे परिवार के किसी सदस्य का इस आरोप से दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं था''।

आज राजीव गांधी हमारे बीच नहीं हैं परंतु सम्पूर्ण राष्ट्र को राजीव गांधी के निर्दोष साबित होने पर फक्र है। वास्तव में आज सोनिया जी और उनके बच्चों का मस्तक गर्व से ऊँचा है कि उनके पति या पिता राजीव गांधी के चरित्र में कोई दाग नहीं था।

❖❖❖

1 5 फरवरी, 2004

पूर्व प्रधानमंत्री की स्मृति में स्मारक[1]

केन्द्र की भाजपा सरकार द्वारा नई दिल्ली में पूर्व प्रधानमंत्री श्री पी॰वी॰ नरसिम्हा राव की स्मृति में स्मारक बनाने का निर्णय स्वागत योग्य है। केन्द्र की राजग सरकार काँग्रेस के प्रधानमंत्री पी॰वी॰ नरसिम्हा राव की याद में नई दिल्ली में स्मारक बनवाना चाहती है। यह दिल्ली में यमुना किनारे एकता सथल पर बनाया जायेगा।

राव वैसे प्रधानमंत्री थे, जिन्होंने तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ॰ मनमोहन सिंह के साथ मिलकर 1991 में देश की आर्थिक कायाकल्प करने के उद्देश्य से नींव रखी थी। उनसे पहले चन्द्रशेखर जी के समय तो 47 टन सोना बैंक ऑफ इंग्लैंड के पास गिरवी रखने की नौबत आ गई थी। जिस वक्त राजीव गांधी की हत्या हुई राव दिल्ली छोड़कर हैदराबाद में रिटायर होने की तैयारी कर रहे थे। आधी उनकी लाइब्रेरी वहां भेज दी गई थी पर इस बीच राजीव जी की हत्या हो गई और सोनिया ने प्रधानमंत्री बनने से इन्कार करते हुए पहले उपराष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा को प्रधानमंत्री बनाने का सुझाव दिया था। डा. शर्मा ने सेहत तथा आयु का हवाला देकर इन्कार कर दिया तब सोनिया ने राव का सुझाव दिया।

राव की जिन्दगी का एक बढ़िया किस्सा उनकी तथा अटल बिहारी वाजपेयी की दोस्ती थी। दोनों एक-दूसरे की इज्जत भी बहुत करते थे। राव के बाद वाजपेयी प्रधानमंत्री बने थे। राव इससे काफी खुश थे। राष्ट्रपति भवन में ही राव ने नए प्रधानमंत्री वाजपेयी को चिट पकड़ा दी कि "सामग्री तैयार है, आपको मेरा अधूरा काम पूरा करना है।" अधूरा काम जो राव पूरा होना देखना चाहते थे वह परमाणु परीक्षण था। 1996 में वाजपेयी की पहली सरकार केवल 13 दिन ही रही। जब वह दोबारा 1998 में प्रधानमंत्री बने तो वाजपेयी ने परमाणु परीक्षण का आदेश दे दिया। वाजपेयी को भारत रत्न मिल चुका है जबकि राव की याद का तिरस्कार किया गया। केन्द्रीय सरकार ने कोई हवाई अड्डा, सड़क, स्टेडियम आदि का नाम भी उनके नाम पर नहीं रखा। राव अत्यन्त योग्य नेता थे जिन्होंने देश की अर्थव्यवस्था तथा विदेश नीति की धारा बदल दी थी। अब पीवी नरसिम्हा राव की याद का पुनर्वास हो रहा है।

❖❖❖

1 12 अप्रैल 2015

अद्‌भुत अटल जी[1]

अटल बिहारी वाजपेयी जी की राजनीति का मुख्य पहलू था सबको समान दृष्टि से देखना। हमारे राजनीतिक शब्दकोष में एक शब्द है–गठबंधन धर्म–सबको साथ लेकर चलने की नीति का पालन करना, अटल जी इस नीति पर बखूबी चलते रहे। जब वह प्रधानमंत्री थे, तब न केवल राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) के सबसे छोटे घटक दल को भी वह बराबर का सम्मान देते थे, बल्कि कांग्रेस जैसे विपक्ष के लोगों को भी वह वैसा ही सम्मान देते थे। हमारे लोकतंत्र और संसद की गरिमा को ऊँचा बनाने के लिए यह बहुत जरूरी है। अटल जी ने अपने शासनकाल में अपने आचरण और नीतियों से भाजपा पर लगे उन तीन मुख्य आरोपों को पूरी तरह से गलत साबित कर दिया कि भाजपा एक साम्प्रदायिक पार्टी है, मुसलमानों के खिलाफ है और इसकी आर्थिक नीतियाँ गरीबों के हक में नहीं हैं। अटल जी कहा करते थे कि इस देश में आजादी से पहले जिस तरह से मुसलमान रहते आये थे, ठीक उसी तरह आगे भी वे रहेंगे, उनके साथ कोई भेदभाव नहीं होगा। यही अटल जी का सबके लिए समान सोच वाला व्यक्तित्व था।

श्री वाजपेयी जी भारतीय राजनीति में एक ऐसे नेता थे, जिन्होंने यह कोशिश की कि विदेश नीति के मामले में पक्ष और विपक्ष के बीच कोई बड़ा मतभेद न हो। यह चीज आज की राजनीति में गायब है और अब तो पक्ष–विपक्ष के बीच हर स्तर पर भारी मतभेद है। उनकी कोशिश हमेशा यही रही कि पड़ोसी देशों से हमारे संबंध अच्छे रहें, जिसके लिए वह बातचीत में यकीन रखते थे, लेकिन वह निडर भी थे। साल 1998 में परमाणु परीक्षण के बाद उन्होंने अमेरिका से कहा था कि हमने चीन के कारण परमाणु विस्फोट किया है। परमाणु परीक्षण के बाद अमेरिका के साथ अन्य कई देशों ने भारत पर कुछ प्रतिबंध लगाये थे। तब श्री वाजपेयी जी की पहली प्राथमिकता थी कि ये प्रतिबंध हटे। इसके लिए जरूरी था कि पड़ोसी देशों के साथ रिश्ते सुधारे जाएं। इस नीति के तहत मानना यह था कि परमाणु परीक्षण सिर्फ अपनी सामरिक शक्ति बढ़ाने के लिए और ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए है, किसी के साथ युद्ध करने के लिए नहीं है और इसी नीति पर चलकर श्री वाजपेयी जी पड़ोसी देशों के साथ रिश्तों को बेहतर से बेहतर बनाते चले गये। यह उनकी विदेश नीति की बड़ी उपलब्धियों में थी। भारत के हितों की रक्षा करने वाले श्री वाजपेयी जी ने कश्मीर में 'कश्मीरियत, इंसानियत, जम्हूरियत' का नारा दिया था। यह बहुत शानदार पहल थी, कश्मीर मसले को हल करने की कोशिश में। यह बात अलग है कि बाद के वर्षों में स्थितियाँ वैसी नहीं रह गयीं। दुनिया के जिस भी देश में भारतीय मूल के लोग हैं, उन देशों को उन्होंने अपने साथ जोड़ा। भारतीय मूल के लोगों के लिए वह दोहरी नागरिकता चाहते थे। उनका मानना था कि इससे भारत की सांस्कृतिक विरासत को संभालने–संवारने में मदद मिलेगी और हम पूरी दुनिया में अपनी छवि बेहतर बना सकेंगे। इसका बहुत फायदा हुआ और आर्थिक के साथ–साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध सुधारे।

1 21 अगस्त, 2018

अटल जी का गुजरे समय के व्यक्तित्व से खाली हुए स्थान को आने वाले समय का कोई व्यक्तित्व पूरा नहीं कर सकता। देश काल में हर समय और हर स्थान की अपनी अहमियत होती है। जब भाजपा को अटल जी के नेतृत्व की जरूरत थी, तब अटल जी दे रहे थे। उनके मार्गदर्शन में जितना भाजपा को फायदा हुआ, वह बेहद शानदार रहा। अब भी उनके दिखाये रास्ते पर ही भाजपा आगे बढ़ रही है। निश्चित रूप से भारतीय राजनीति में अटल जी जैसा व्यक्तित्व खोज पाना मुश्किल है। भारतीय राजनीति हमेशा उनकी ऋणी रहेगी और उनका राजनीतिक सिद्धांत हमें हमेशा रास्ता दिखाता रहेगा। आज वह हमारे बीच नही हैं। उनके अवसान से मैं दुखी और आहत हूँ। मेरी विनम्र श्रद्धांजलि!

❖❖❖

अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री[1]

अंतर्राष्ट्रीय स्तर के अर्थशास्त्र के ख्याति प्राप्त विशिष्ट अर्थशास्त्री डा० मनमोहन सिंह को भारत के नये प्रधानमंत्री मनोनीत किए जाने पर काफी प्रसन्नता हो रही है। अब यह उम्मीद की जा सकती है कि उनके सबल नेतृत्व में भारत 21वीं शताब्दी में सभी विसंगतियों को समाप्त कर विश्व समुदाय में प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा।

विकास दर को दस प्रतिशत तक पहुँचाने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्हें यह भी देखना पड़ेगा कि आर्थिक सुधार की सबसे बड़ी समस्या, राजस्व में ह्रास न हो। यह समझा गया था कि आर्थिक सुधार के लागू होते ही निजी क्षेत्रों में उत्साह और विश्वास के साथ आर्थिक नीतियों के कार्यान्वयन में सक्रिय भागीदारी बन जायेगी। लेकिन सब तरह के नियंत्रण हटाये जाने, करों में भारी कटौती और रियायत तथा ब्याज की दरों में लगातार की गई कटौती के बावजूद न निवेश बढ़ा है और न ही विकास को अपेक्षित गति मिली, बल्कि आर्थिक उत्पादन घट गया है। बेशक शुरुआती वर्षों में आधारभूत ढाँचे खड़े करने से आवश्यक सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार हुआ, जिसका लाभ देश को अब तक मिल रहा है, परन्तु विनिवेशीकरण के कारण गरीबी, भूख एवं बेरोजगारी दूर करने और सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ दूर करने को प्राथमिकता नहीं दी गयी।

अर्थव्यवस्था की विकास दर दस प्रतिशत करने तथा दस वर्षों में देश से बेरोजगारी, भुखमरी और अशिक्षा को पूरी तरह समाप्त करने तथा प्रत्येक व्यक्ति को विकास का लाभ पहुँचाने का दावा दृष्टि पत्र में किया गया है। विनिवेश प्रक्रिया को पूरी तरह से पारदर्शी तथा विसंगतियों को दुरुस्त करने का वादा किया गया है। यह निर्विवाद है कि उदारीकरण और आर्थिक सुधार लागू होने के बाद रोजगार के अवसरों में गिरावट आयी तथा नवयुवकों के सामने बेरोजगारी का स्वरूप भयावह हो गया। काँग्रेस द्वारा लागू 1991 के आर्थिक सुधार कार्यक्रम में संशोधन कर विनिवेश की प्रक्रिया को लागू करने के बजाय सार्वजनिक उपक्रमों को लाभकारी बनाने का वादा और जबरन लाभकारी उपक्रमों को विनिवेश नहीं करने के प्रयास की घोषणा स्वागत योग्य है।

डॉ. सिंह ने कृषि क्षेत्र में नये निवेश को आमंत्रित करने तथा विकास के लाभ को मुट्ठीभर लोगों में न सिमटने देने के लिए दीर्घकालीन कार्यक्रमों को अमलीजामा पहनाने की बात कही है, जिससे किसानों एवं आम आदमी के हालत में सुधार आ सके। दृष्टि पत्र के महत्वाकांक्षी लक्ष्य को पूरा करने के लिए अपने कार्यक्रमों का खुलासा करना पड़ेगा। भारत को एकदम उपभोक्तावादी आर्थिक कार्यक्रमों के अनुरूप चलाना न संभव है न उपयोगी। हमारे देश में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले की जनसंख्या काफी है। हमारे देश का बहुसंख्यक भाग कृषि पर आश्रित है। लेकिन पिछले दशकों में उसकी उपेक्षा की गयी है। कृषि, आधारभूत ढाँचा और सामाजिक

1 20 मई, 2004

क्षेत्रों में निवेश बढ़ाकर विकास का वांछित लक्ष्य प्राप्त करने का संकल्प लिया जाए। विनिवेश और श्रम-सुधार के प्रश्न को स्पष्ट किया जाए। दृष्टि पत्र में उद्योग को लुभाने के लिए कई आकर्षक वादे किये गये हैं। प्रधानमंत्री जानते हैं कि नयी आर्थिक नीतियों के कारण 1996 के चुनाव में कांग्रेस का जनाधार खिसक चुका है। राजग की हार का भी यह मुख्य कारण है। इस बार उसे ध्यान में रखकर सरकार को आम आदमी को केन्द्र में रखना चाहिये। प्रधानमंत्री को परिवर्तित परिस्थिति में देखना पड़ेगा कि पिछले वर्षों में आर्थिक नीतियों के कारण ही लाखों मजदूरों को छटनी का कुप्रभाव झेलना पड़ रहा है। प्रधानमंत्री को समाज में व्याप्त असमानताओं को दूर कर सम्पूर्ण व्यवस्था को उत्पादक बनाने की नीति लागू करनी होगी। नई सरकार के गठन के तुरंत बाद राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक बुलाकर अपनी नीति और अपना बजट बनाने की प्रक्रिया प्रारंभ करनी चाहिए, इससे नीतियों के कार्यक्रम में मदद मिलेगी।

❖❖❖

पूर्व राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी[1]

पूर्व राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी के बायोग्राफी के तीसरे खण्ड के विमोचन के अवसर पर पूर्व प्रधानमंत्री, डॉ॰ मनमोहन सिंह ने कहा कि 2004 में भाजपा सरकार के हारने के बाद संयुक्त सरकार के गठन के समय श्री मुखर्जी की योग्यता प्रधानमंत्री बनने की थी और उनका प्रशासनिक और राजनीतिक अनुभव पद के अनुकूल था। वे गठबंधन के उपयुक्त प्रधानमंत्री हो सकते थे। परन्तु श्रीमती सोनिया गांधी ने ही डॉ॰ मनमोहन सिंह को यह जिम्मेवारी सौंपी।

उस समय यदि श्री प्रणब बाबू को प्रधानमंत्री बनाया गया होता तो पार्टी की राजनीतिक दुर्गति वैसी नहीं होती, जो दस वर्षों में यूपीए गठबंधन को भुगतनी पड़ी। श्री प्रणब बाबू तो डॉ॰ मनमोहन सिंह के गठबंधन की सरकार में शामिल नहीं होना चाहते थे। परन्तु श्रीमती गांधी के दबाव में वे शामिल हुए।

श्री प्रणब बाबू ने पुस्तक में जिक्र किया है कि राजीव गांधी हत्या काण्ड में डीएमके के संलग्न होने की जो रिपोर्ट आई वह तत्कालीन अध्यक्ष श्री सीताराम केशरी के प्रधानमंत्री बनने की महत्वाकांक्षा थी। इसी उद्देश्य से डीएमके की संलिप्तता राजीव गांधी हत्या काण्ड में रहने के कारण श्री इन्द्र कुमार गुजराल को डीएमके के मंत्री को हटाने का निर्देश दिया। जब उन्होंने ऐसा नहीं किया तो सरकार से समर्थन वापस ले लिया। यह विस्मयकारी रहा कि डीएमके पर राजीव गांधी हत्या काण्ड रहने के कारण सीताराम केशरी ने सरकार से समर्थन वापस लिया। बाद में 2004 तथा 2009 की बनने वाली सरकार में डीएमके को श्रीमती सोनिया गांधी ने सरकार में सम्मिलित किया।

श्री प्रणब बाबू ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि अपनी विश्वसनीयता बनाये रखने के लिए किसी भी राजनीतिक दलों के साथ सत्ता के लिए गठबंधन करने से बचना चाहिये। श्री मुखर्जी ने जो विचार व्यक्त किये हैं वे राजनीतिक चिन्तन और लम्बे राजनीतिक अनुभव की देन हैं।

2003 में जब केन्द्र में श्री अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार थी और कांग्रेस विपक्ष में थी तब पंचमढ़ी में हुए सम्मेलन में यह निर्णय हुआ कि कांग्रेस किसी के साथ गठबंधन में नहीं जायेगी और अकेले चुनाव लड़ेगी। बाद में शिमला सम्मेलन में पंचमढ़ी के विरुद्ध अन्य दलों ने गठबंधन का निर्णय लिया जिसका श्री मुखर्जी जी ने विरोध किया था। परन्तु वे अकेले पड़ गये।

श्री मुखर्जी ने आज की दौड़ के राजनीतिज्ञों की आँखें खोलने के लिए एक नीति के तहत कहा है कि एक चुनाव हारने से पार्टी का जनाधार समाप्त नहीं होता है। वह कुछ समय के लिए हो सकता है। परन्तु सदा के लिए राजनीतिक दलों का लोगों से संवाद बना रहे और अपेक्षाओं का समन्वय बना रहे यह प्रयास करने की जरूरत है।

1984 में भाजपा के लोकसभा के दो सदस्य रहने के बावजूद केन्द्र में 15 वर्षों के भीतर ही

1 17 अक्टूबर, 2017

साझा सरकार बनाने में सफल हो गयी। केवल 5 वर्षों में हार जीत के आधार पर पार्टी के भविष्य को आँका नहीं जा सकता। लोकतंत्र में मजबूत विपक्ष होना भी जरूरी होता है। उनके अनुसार कांग्रेस पार्टी की राजनीतिक महत्ता अन्य सभी दलों के मुकाबले ज्यादा है।

जब वह 2012 में राष्ट्रपति बने थे तो गणतंत्र दिवस पर उन्होंने अपने संदेश में कहा था कि पंण्डित नेहरू द्वारा लिखित लेख में जिक्र किया गया था जिसे स्वतंत्रता मिलने के कुछ समय पहले लन्दन में प्रकाशित किया गया था। जिसमें भारत की ऐतिहासिक विरासत का हवाला देते हुए कहा गया था कि भारत कभी गरीब नहीं रहा। ये प्रारंभ से ही समृद्धशाली रहा। श्री मुखर्जी ने कहा है कि कांग्रेस को इस भ्रम में नहीं रहना चाहिये कि उनकी पार्टी का उत्थान गठबंधन के जरिये हो सकता है। उन्हें अपने आप पर और राष्ट्रीय धरोहर पर भी विश्वास रखना चाहिये।

यह हकीकत है कि बहुत कम देश हैं जिन्हें राजनीतिक विरासत नसीब है। हाल के दिनों में नेतृत्व का दिवालियापन उजागर हुआ है। उत्तर प्रदेश में सत्तारूढ़ पार्टी से गठबंधन इसलिए कर लिया गया कि भाजपा को रोक सकें। ऐसा करके समाजवादी पार्टी के सारे दोष अपने सिर ढो लिये।

श्री मुखर्जी ने कहा है कि गठबंधन करना कांग्रेस के लिए हानिकारक है। बेहतर है कि 5 सालों में अपनी पहचान स्वच्छ बनाये रखी जाए। गौर से देखा जाए तो गठबंधन से कांग्रेस पार्टी को सदैव नुकसान के सिवा कुछ नहीं मिला।

❖❖❖

श्रीमती सोनिया गाँधी का फैसला[1]

कांग्रेस बुरे दौर से गुजर रही है। 2012 से लेकर अब-तक हुए विधान सभा के ज्यादातर चुनावों के साथ कांग्रेस 2014 का लोकसभा का चुनाव हार चुकी है। कभी पूरे देश पर राज करने वाले दल के संसद में इस समय केवल 44 सदस्य हैं। देश में केवल 5 राज्यों में कांग्रेस है। उनमें कर्नाटक ही बड़ा राज्य है। अधिकांश राज्यों में गुटबाजी हावी है। जमीनी ताकत कमजोर पड़ चुकी है।

श्रीमती सोनिया गांधी ने कांग्रेस की कमान उस वक्त संभाली थी जब पार्टी की अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लग गया था। 1998 में जब वह कांग्रेस अध्यक्षा बनी तब कांग्रेस सत्ता से बाहर थी पार्टी बिखर रही थी। उन्होंने 6 साल के भीतर ही पार्टी को सत्ता में ला दिया हालांकि कांग्रेस को बहुमत न तो 2004 में मिला न ही 2009 में, लेकिन सामान्य विचार वाले दलों के साथ उन्होंने संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन बनाया उसी बल बूते पर 10 साल तक राज किया। कांग्रेस के शासनकाल में लम्बे समय तक रहने वाली श्रीमती गांधी ने रिटायरमेंट का फैसला लिया है।

राजनीति में वह ऐसी पहली नेता हैं जिन्होंने प्रधानमंत्री तक की कुर्सी ठुकरा दी थी और उन्होंने कांग्रेस को एक अलग चेहरा दिया। उनकी ही विशेषता थी कि 2004 में कांग्रेस ने जब सरकार बनायी तो उसे मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन था। आजादी के बाद जो कोई अध्यक्ष नहीं कर सका वह श्रीमती गांधी ने किया। 2009 के चुनाव में कांग्रेस का प्रदर्शन बेहतर रहा। इसके पीछे दो अहम करण थे, एक तो कांग्रेस के अध्यक्ष ने जनता के बीच जाकर धारा प्रवाह हिन्दी में भाषण दिये, दूसरा उन्होंने प्रधानमंत्री पद के लिए डॉ॰ मनमोहन सिंह के नाम की घोषणा पहले ही कर दी। इसमें कोई शक नहीं कि श्रीमती गांधी बेमिसाल अध्यक्षा रही। जिस तरह श्रीमती गांधी ने 1998 में कांग्रेस की बागडोर अपने हाथों में ली थी उस समय कांग्रेस की पार्टी बिखरी हुई थी, ठीक उसी तरह आज भी कांग्रेस पूरे देश में कमजोर अवस्था में है।

❖❖❖

1 16 दिसम्बर, 2017

श्री राहुल गाँधी को सलाह[1]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचित होने पर श्री राहुल गाँधी को बधाई एवं शुभकामना। कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित होना यह सत्ता नहीं संघर्ष का परिवारवाद है। श्री राहुल को अपने पुरखों की लाज ही नहीं बचानी है बल्कि 132 साल पुरानी उस पार्टी को भी पुनर्जीवित करना है, जिसने इस देश की आजादी की लड़ाई लड़ी और संविधानसम्मत भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला रखी लेकिन, आज वह इतिहास की गर्त में जाने की कगार पर है।

कांग्रेस समाजवाद, मिश्रित अर्थव्यवस्था और वैश्वीकरण तीनों पद्धतियों की प्रणेता रही है। कांग्रेस को नीतिगत स्तर पर इस उलझन से निकलने का नया रास्ता बनाना है ताकि समता आधारित भ्रष्टाचारविहीन विकास हो सके। एक चुनौती मंडल और अम्बेडकरवादी ताकतों से संवाद करने की भी है। कांग्रेस को अगर अपने से दूर छिटकी दलित, पिछड़ी और आदिवासी जातियों को साथ लाना है तो उसके नेताओं से अंग्रेजी में नहीं जनता की जुबान में बात करनी होगी और उनकी राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी।

श्री राहुल गांधी को मीडिया और पार्टी के बुजुर्ग नेताओं से लेकर सामान्य कार्यकर्ता तक के लिए अपने को उपलब्ध रखना होगा, इसी से पार्टी में प्राण फूंके जा सकेंगे। अगले कुछ महीनों के भीतर ही राहुल गांधी को एक ऐसा कांग्रेस संगठन खड़ा करना पड़ेगा, जो पिछले लोकसभा चुनाव में 44 सीटों तक सिमट चुकी और कई राज्य गवां चुकी। अब उन्हें कांग्रेस संगठन में आमूलचूल परिवर्तन कर अपनी सोच और समझ की कांग्रेस बनानी होगी, जिसमें अनुभव और युवा उत्साह का समन्वय आवश्यक होगा। उन्हें कांग्रेस को विरासत में मिली धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और सामाजिक न्याय के पथ पर चलने के साथ ही उनकी ओर आकर्षित हो रहे युवाओं और अपने जनाधार को संदेश देना होगा कि उनकी कथनी और करनी में कोई भेद नहीं होगा। देश, समाज और कांग्रेसजनों को संदेश देना होगा कि वे फुल टाइम राजनीति के लिए ही मैदान में हैं।

गुजरात के चुनाव में जिस तरह से उन्हें जनेऊधारी ब्राह्मण के रूप में पेश करने की कोशिश की गई, उसकी जरूरत नहीं थी। देश की राजनीति में शिखर पर पहुँचने के लिए किसी एक धर्म और जाति का होना और उसे प्रचारित करना आवश्यक नहीं है। राहुल गांधी को अपने इर्द–गिर्द जमा कुछ बड़े नेताओं, सलाहकारों और उनकी सलाह से मुक्ति पानी होगी, जो समाज के मुखर तबके से आते हैं लेकिन अपने तबकों के बीच उनका अपना कोई आधार नहीं है। राहुल गांधी को कांग्रेस की अपनी कमजोरियों और उसके कारणों की पहचान भी करनी होगी।

❖❖❖

1 13 दिसम्बर, 2017

गाँधीवादी निर्मला देश पाण्डेय[1]

निर्मला देश पाण्डेय के देहावसान से एक युग खत्म हो गया है। अभी कुछ ही दिनों पहले उन्होंने बापू के शब्दों को दोहराया था कि यह आजादी तो राजनीतिक आजादी है, और सामाजिक व आर्थिक स्वतंत्रता के लिए हमें लड़ाई जारी रखनी होगी। तब उन्होंने दुखी होकर कहा था कि आजादी के छह दशकों के बाद भी हम बापू के सपनों का भारत नहीं बना पाए हैं। सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता के लिए लड़ाई आज भी जारी है। बापू के सपनों का भारत बनाने के लिए निर्मलाजी जीवन भर जुटी रहीं। उन्होंने बापू के अहिंसा मार्ग को ही चुना और गांधी दर्शन की सार्थकता और शक्ति का पूरे विश्व को प्रमाण दिया। छोटी आयु में ही वह आचार्य विनोबा भावे के भूदान आंदोलन से जुड़ गईं। उन्होंने श्रमदान किया। उस समय इस आंदोलन में नई पीढ़ी के जिन लोगों ने सशक्त योगदान किया, उनमें निर्मलाजी प्रमुख थीं। नागरिक शांति सेना की विनोबाजी की परिकल्पना को उन्होंने साकार किया। उन्होंने हमेशा समाज में व्याप्त भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया और अन्याय के विरुद्ध डटकर खड़ी हुईं। उन्होंने सांप्रदायिक हिंसा के खिलाफ अहिंसक तरीकों का इस्तेमाल किया। वह ऐसी शक्ति थीं, जो अहिंसा के बल पर सांप्रदायिक ताकतों के बीच खड़ी हो जाती थीं। वह उनसे संवाद कायम करती थीं। वह विनोबा जी के उन गिने-चुने शिष्यों में से एक थी, जिन्होंने गांधीजी की विरासत को आगे बढ़ाया। निर्मलाजी ने गलत तरीके से हथियार उठाने वालों से संवाद कायम किया और उन्हें अहिंसा का पाठ पढ़ाया। निर्मलाजी के जाने के बाद अब ऐसे बहुत कम लोग रह गए हैं। लगता है कि देश और समाज में बहुत बड़ी शून्यता आ गयी है।

निर्मलाजी अंतिम समय तक शांति की स्थापना में लगी रहीं। उन्होंने जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद के खिलाफ आवाज उठाई, तो गुजरात की हिंसा के खिलाफ भी अभियान चलाया। वहीं भारत-पाकिस्तान के बीच संवाद कायम करने में भी बड़ी भूमिका निभाई। निर्मलाजी बहुतेरे आतंकवादियों को शस्त्र छोड़कर बातचीत की मेज पर लाने में सफल हुईं। कश्मीर में उन्होंने यासीन मलिक जैसी शख्सियतों के साथ आमने-सामने बातचीत कर उनका हृदय परिवर्तन किया, जो मामूली बात नहीं थी। नेपाल में भी उन्होंने प्रचण्ड के साथ बातचीत की थी। आपातकाल के समय वह श्रीमती इन्दिराजी के साथ जुड़ीं और उनकी नीतियों का उन्होंने समर्थन किया। दरअसल विनोबाजी ने आपातकाल का समर्थन किया था। श्रीमती इन्दिराजी के साथ विनोबाजी के जुड़ने के कारण निर्मलाजी उनसे जुड़ी थीं।

देश से बाहर भी शांति और सौहार्द्र की स्थापना के लिए निर्मलाजी ने काम किया। भारत-पाकिस्तान के बीच संवाद स्थापित करने में उनका बड़ा योगदान था। इसीलिए पाकिस्तान में उनकी अपार लोकप्रियता थी। तिब्बतियों के मसले पर भी उन्होंने सक्रियता दिखाई। उन्होंने तिब्बतियों की संवेदनाओं को समझा और उनका साथ दिया। दलाई लामा के साथ उन्होंने बातचीत

1 15 मई, 2008

तो की ही, चीन में भी तिब्बतियों के अभियान में शामिल रहीं। वह जिस समस्या या मुद्दे से जुड़ती थीं, पूरे मन से जुड़ती थीं। सुश्री निर्मलाजी अब नहीं हैं लेकिन समाज को बेहतर बनाने में उन्होंने जो अतुलनीय योगदान दिया है, उस नींव पर महल बनाया जा सकता है। उनकी शांति सेना काम कर रही है। हालांकि उनका उठ जाना केवल देश की क्षति नहीं, हम लोगों के लिए भी व्यक्तिगत रूप से बहुत बड़ी क्षति है।

❖❖❖

स्वामी सहजानन्द सरस्वती[1]

स्वामी सहजानन्द सरस्वती प्रथम वर्ग आधारित, संगठित, अखिल भारतीय किसान सभा के संस्थापक थे। ये उग्र किसान संघर्ष के सिद्धांतकार, सूत्रकार और संघर्षकर्ता भी थे। इनके स्वराज्य का असली मतलब किसान–मजदूर राज्य था। इन्होंने सामंत विरोधी संघर्ष चलाकर राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम को नयी भाषा, नया आवेग, नया तेवर और धारदार अग्रगति प्रदान की। सुभाष चन्द्र बोस के साथ मिलकर समझौताविहीन साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष चलाया। इन्होंने राष्ट्रीय नेताओं द्वारा चाहा गया औपनिवेशिक स्वराज्य की मंजिल की जगह भगत सिंह के पूर्ण स्वराज्य के दावे को अपनी किसान राजनीति का पाथ फाइन्डर माना। इनके उग्र किसान संघर्षों में राहुल सांकृत्यायन, रामवृक्ष बेनीपुरी, दिनकर, महाश्वेता देवी, भीष्म साहनी, प्रभाकर माचवे, अज्ञेय, मुल्कराज आनन्द, पं० पद्म सिंह शर्मा, चन्द्रदेव शर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा, उग्र नागार्जुन जैसे समर्थ साहित्यकारों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। इसके अलावे, योगेन्द्र शुक्ला, बैकुण्ठ शुक्ला, किशोरी प्रसन्न सिंह, सियाराम सिंह, केशव प्रसाद शर्मा, सूरजनारायण सिंह, नक्षत्रमालाकार, झारखंडे राय, अम्बिका सिंह, धनराज शर्मा, शीलभद्रयाजी, के०एन० शांडिल्य जैसे राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी भी शरीक हुए। इन्होंने कर्म और ज्ञान के बीच मार्क्स और वेदांत का पुल बनाकर उनकी दूरी को अपने क्रियात्मक व्यवहार से पाट दिया और इस तरह वेदांत को सक्रिय और मार्क्स को ग्राह्य बनाकर नये अंदाज में झोंपड़ी–झोंपड़ी जाकर उसे अमलीजामा दिया। यही विलक्षणता उन्हें भारतीय परिवेश में अतुलनीय बना देती है।

❖❖❖

1 21 जनवरी, 2006

जे.एन.यू. की घटना[1]

जेएनयू विश्वविद्यालय में देश विरोधी नारे लगाये जाने एवं प्रधानमंत्री का पुतला जलाये जाने जैसी घटना शर्मनाक है। जो देश के विश्वविद्यालयों एवं शिक्षण संस्थानों में राष्ट्र विरोधी मानसिकता बढ़ती जा रही है। जेएनयू के फरवरी की घटना के बाद राष्ट्र विरोधी घटनाएं हुई जिससे स्पष्ट है कि शैक्षणिक संस्थाओं में देश विरोधी मानसिकता को बढ़ाया जा रहा है। ऐसी घटनाओं से ऐसा लग रहा है कि देश को ज्यादा बाहरी की अपेक्षा आन्तरिक खतरों से निपटना जरूरी है। इस समय ऐसी मानसिकता की जरूरत है कि देश का बच्चा-बच्चा अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार हो।

अनर्गल बयान, प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व और कार्यों को धूमिल करने की चेष्टा, राष्ट्र विरोधी हरकतें मानी जा सकती हैं। प्रधानमंत्री की नीतियों ने विदेशों में भारत की एक स्वच्छ छवि बनाते हुए पं० जवाहर लाल नेहरू द्वारा विदेश नीति कारगर ढंग से नीहित करने की क्षमता है। विश्व स्तर पर भारत की एक नई पहचान बनाने में जहाँ भारत के विरोधी दलों को सहयोग करना चाहिये वहाँ नकारने की चेष्टा अत्यंत ही निन्दनीय है।

भारत की राजनीतिक दलों द्वारा राष्ट्र विरोधी हरकतें करने वाले की ओर कुछ राजनीतिक दलों की नीहित छोटी राजनीतिक स्वार्थ के कारण राजनीतिक दल द्वारा राष्ट्रीय हित के विरुद्ध अग्रसर होना भविष्य के लिये अत्यंत ही खतरनाक साबित हो सकता है।

तीन दशकों से ज्यादा समय में पाकिस्तान लगातार भारत को कश्मीर सीमा पर छोटी-बड़ी घटनाओं से लगातार घाव पर घाव देता आ रहा है। सीमाओं की सुरक्षा पर तैयार हमारे जवानों ने समय-समय पर उपयुक्त जवाब दिया और शहादतें दी हैं। कश्मीर में पाकिस्तान आईएसआई आतंकवाद फैला रहे है । सेना की कार्रवाई पर सवाल उठाया जा रहा है। सर्जिकल स्ट्राइक को लेकर अनर्गल बहस की जा रही है, जिसे राष्ट्र हित में स्वीकार नहीं किया जा सकता। केवल नीहित राजनीतिक प्राप्ति के लिये सरकार को गलत ठहराने की कोशिश हो रही है, जबकि सम्पूर्ण राष्ट्र सरकार के साथ है। अमेरिका, रूस समेत अन्य देशों ने सर्जिकल स्ट्राइक को सही बतलाते हुए भारत की नीति की प्रशंसा की है। अमेरिका ने कड़ी चेतावनी देते हुए कहा है कि खूँखार पाकिस्तानी आतंकी हाफिज सईद को सलाखों के बीच होना चाहिये। अमेरिका ने पाकिस्तान से मुम्बई के मास्टर माइन्ड और सभी आतंकियों पर कार्रवाई करने को कहा है। सार्क सम्मेलनों में भी सार्क देशों ने सार्क सम्मेलन स्थगित कर उसे यह एहसास दिलाया है कि संभवत: वही स्थिति ब्रीक्स सम्मेलन में भी बन सकती है।

तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू और श्री अटल बिहारी वाजपेयी के विदेश नीति के बाद

1 14 अक्टूबर, 2016

प्रधानमंत्री श्री मोदी ने विदेश नीति ऐसी बनायी है जिससे अमेरिका और रूस के समर्थित सभी देशों ने भारतीय विदेश नीति की लगातार सराहना की है। अभी अमेरिका ने कहा है कि भारत–अमेरिका की साझेदारी पिछले दिनों काफी मजबूत हुई है। अमेरिका ने कहा है कि इतिहास के किसी भी दौर की तुलना में रक्षा संबंध अधिक परिपक्व हुए हैं।

❖❖❖

मोदी सरकार की उपलब्धियाँ[1]

पिछले वर्षों में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने महात्मा गाँधी जी के उन सपनों को पूरा करने का प्रयास किया जिसमें गांधी जी ने कहा था कि गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका अपना देश है जिसके निर्माण में उसके आवाज का महत्त्व है। वे ऐसे भारत के लिए कोशिश करते रहे, जिसमें ऊँच नीच का कोई भेद न हो। सभी जातियाँ मिलजुल कर रहें। उनके भारत में, अस्पृश्यता व शराब तथा नशीली चीजों के अनिष्टों के लिए, काई स्थान न हो। गांधी जी के अनुसार संविधान की उद्देशिका में सम्पूर्ण संविधान के सार हैं, दर्शन सरल है। संविधान के सभी उपबंध उद्देशिका में निहित भावनाओं से स्फूर्ति ग्रहण करते हैं। इसमें जिन तथ्यों, सिद्धांतों तथा आदर्शों का निरूपण हुआ है वे समूचे संविधान में विद्यमान हैं।

पिछले सालों का आकलन करें तो अर्थव्यवस्था में काफी अच्छा काम हुआ है। 90 के दशक के बाद भारत ही नहीं, दुनियाभर में नौकरियों के अवसर घट रहे हैं। मजदूरों का काम मशीनें करने लगी हैं। लेकिन भारत में कुछ ऐसे भी क्षेत्र उभरे हैं, जहाँ नौकरियों के अवसर बढ़ रहे हैं।

श्री मोदी की सरकार पारदर्शिता लाने में पूर्ण रूप से सफल रही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत एक बार फिर विश्व मंच पर अपने को स्थापित करने में सफल रहा है। श्री मोदी की सरकार ने अपनी नीतियों में समाज के गरीब एवं कमजोर वर्ग पर विशेष जोर दिया है। जनता ने श्री मोदी की नीयतों पर विश्वास जताया है। सरकार ने कार्य योजनाओं एवं पांच साल की प्राथमिकताएं पूरी की है। लोगों को पूरे भारत में विकास दिखने लगा है। लेकिन रोज-रोज की सांप्रदायिक बयानबाजियाँ, धमकियाँ, फसाद, धर्मांतरण की ओछी हरकतें, चुनौती है।

हमारे सामने आज असली मुद्दा आर्थिक पिछड़ेपन और विकास का है। सिर्फ सांप्रदायिकता जैसे एक गलत कदम से हमारी ऐतिहासिक प्रक्रिया रुक जाएगी और बिखराव आ जायेगा। धर्म के चोले में सांप्रदायिकता तबाही ला सकती है। राष्ट्रवाद का तकाजा यह है कि हम सांप्रदायिकता की चुनौती का आँखों में आँखें डालकर सामना करें। हमें फिलहाल विश्व में चल रही नई औद्योगिक क्रान्ति में हिस्सेदारी से चूकना नहीं है और वही हमारा असली राष्ट्रीय एजेंडा है। दुनिया हमारी आँखों के सामने बदल रही है और हमें इसके साथ ही बदलना होगा। ऐसा नहीं किया गया तो हम विश्व के आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य में किनारे कर दिये जाएंगे। हमारी सारी ऊर्जा इस विकास की ओर केंद्रित होनी चाहिए। धार्मिक हो या राजनीतिक, कोई दूसरा मामला उस असली सामाजिक दिशा से हमें भटकाएगा तो बड़ी गड़बड़ी होगी। जितने भी विखंडनकारी मुद्दे हैं, उन्हें तब तक पीछे फेंकना होगा, जब तक विकास की चुनौती से नहीं निपट लिया जायेगा। यही कसौटी है, जिस पर इतिहास में हमारे राष्ट्रवादी या राष्ट्र विरोधी होने का फैसला लिया जायेगा।

---

1 13 मार्च 2019

अतीत हालांकि महत्वपूर्ण होता है और लोगों में आत्म विश्वास भी भरता है, लेकिन राष्ट्रीय महानता अतीत का बखान करने से नहीं आती। राष्ट्रीय महानता के लिए गरीबी हटाना जरूरी है, उसके लिए आर्थिक रूप से मजबूत होना जरूरी है, राजनीतिक रूप से स्थिर होना जरूरी है, आर्थिक और राजनीतिक समस्या का सामना करने की हैसियत रखना जरूरी है और राष्ट्र की विदेश नीतियों पर पूरा नियंत्रण होना जरूरी है। भले ही हम दुनिया के सभी देशों के साथ विश्व समुदाय का हिस्सा बने रहें, आजादी और राजनीतिक ताकत आज आर्थिक मजबूती और समृद्धि, कृषि और ऊर्जा की आत्म निर्भरता तथा उत्पादकता पर निर्भर है। दूसरी ओर राष्ट्रीय एकजुटता, आर्थिक और सामाजिक विकास, सामाजिक एवं आर्थिक समानता तथा सामाजिक न्याय से जो भी चीज ध्यान हटाती है, वह बुरी है और असल में राष्ट्रद्रोही है।

❖❖❖

अर्थतंत्र की चुनौतियाँ
निजीकरण[1]

संविधान की प्रस्तावना में समाजवाद शब्द को रखते हुए उसके अनुच्छेद 38 में जहां संकल्प लिया गया है कि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय को राजनीतिक जीवन से जुड़ी सभी संस्थाओं के लिए आदर्श बनाकर उसे लोक-कल्याण की अभिवृद्धि करने वाला बनाया जायेगा, वहां उन संवैधानिक प्रावधानों में संशोधन किये बगैर वित्त मंत्रालय नौकरशाहों, सत्ताधारी गठबंधन के मंत्रियों और भारतीय पूँजीपतियों के एक जबर्दस्त गिरोह के दबाव में आकर व्यक्तिगत लाभ के लिए भूमंडलीकरण के नाम पर सार्वजनिक उपक्रमों को निजी हाथों में सौंपता जा रहा है जो कदम अंततः खतरनाक सिद्ध होगा।

सरकारी विभागों और सार्वजनिक उपक्रमों में लाखों की संख्या में मजदूर एवं कर्मचारी कार्यरत हैं। विनिवेशीकरण के नाम पर निजीकरण कर दिये जाने के बाद ऐसे कर्मचारियों एवं मजदूरों की संख्या घटकर कुछ हजार की हो जायेगी। इस तरह सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण से बेरोजगारी में बेतहाशा वृद्धि हो रही है और कुछ औद्योगिक समूह पर एकाधिकार का वर्चस्व स्थापित हो रहा है। सरकार जो मूलतः दलित एवं गरीब विरोधी हैं, तेजी से अरबों-खरबों की संपत्ति कौड़ी के भाव निजी हाथों में सौंप रही है। इस विनिवेशीकरण और भूमंडलीकरण से नौकरशाहों, पूंजीपतियों और राजनीतिक दलों को अपना काला धन देश के बाहर लगाने में आसानी होगी।

कॉंग्रेस और समाजवादी पार्टी गरीबों के प्रति तो अपनी सहानुभूति दर्शाती है, पर वे इस बात को क्यों नहीं समझ पा रहे हैं कि जी०वी० ग्रोवर की अध्यक्षता वाले आयोग की 1996-97 की रिपोर्ट में विनिवेशीकरण की जैसी रूप रेखा प्रस्तुत की गयी थी, उसका अनुसरण किया जाना चाहिए। उक्त रिपोर्ट में यह स्पष्ट निर्देश है कि सार्वजनिक उपक्रमों में करदाताओं का धन लगा हुआ है, इसलिए उनका एकाधिकार निजी हाथों में नहीं सौंपा जाना चाहिए। उस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि जिस तरह सार्वजनिक उपक्रमों का एकाधिकार नहीं होना चाहिए उसी तरह निजी उपक्रमों में भी एकाधिकार की स्थिति पैदा नहीं होनी चाहिए। गरीबों और दलितों के विरोधी अंतर्राष्ट्रीय संगठन, विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन के दबाव में उस वर्ग के प्रखर विरोधी डा० मनमोहन सिंह ने भूमंडलीकरण और आर्थिक सुधार के नाम पर निजीकरण की क्रूरता प्रारंभ की जो आज खतरनाक दौर में पहुँच गयी है।

❖❖❖

1 03 सितम्बर,2002

पेट्रोलियम कम्पनियों के विनिवेश[1]

केन्द्र सरकार की आर्थिक नीति, वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण से देश का विकास नहीं, बल्कि नाश हो रहा है। पेट्रोलियम कम्पनियों के विनिवेश में राष्ट्रीय सुरक्षा को ध्यान में नहीं रखा जा रहा है।

प्रधानमंत्री इस बात को भूल रहे हैं कि श्रीमती इन्दिरा गांधी ने संसद से कानून बनाकर राष्ट्रीय सुरक्षा के कारण 1974 में कॉल टैक्स और एस्प्रो का तथा 1976 में वर्मा सेल का राष्ट्रीयकरण किया था क्योंकि इसने युद्ध के दौरान भारतीय वायुसेना को तेल देने से इन्कार कर दिया था। संसदीय स्थायी समिति की अनुशंसा है कि हिन्दुस्तान पेट्रोलियम और भारत पेट्रोलियम का विनिवेश नहीं किया जाए, क्योंकि दोनों कंपनी आधारभूत संरचना का निर्माण कर रही है और विनिवेश के उद्देश्यों को पूरा कर रही है। भारत सरकार ही अपनी तेल सुरक्षा को बेच रही है।

पंडित नेहरू ने पूंजीपतियों के हाथों गरीब जनता के शोषण को रोकने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण किया था। केन्द्र सरकार को राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ खिलवाड़ नहीं करना चाहिये। सामरिक हितों की रक्षा करनी चाहिये। अक्षम शासन द्वारा राष्ट्रीय हितों की बलि दी जा रही है। सरकारी सम्पत्ति का विनिवेश किया जा रहा है और आर्थिक सुधार के नाम पर बेचा जा रहा है। 'वी०आर०एस०' के नाम पर चार साल में 1 करोड़ से ज्यादा मजदूरों की छंटनी की जा चुकी है। बैंकों से 1 लाख 20 हजार लोगों को हटाया जा चुका है। सार्वजनिक क्षेत्रों की कंपनियों से 2 लाख 30 हजार मजदूरों को निष्कासित किया गया है। अनुमान है कि बेरोजगार बनाये गए मजदूरों की संख्या और भी ज्यादा हो सकती है। अगले सात साल में 5 करोड़ और मजदूरों की छंटनी हो सकती है। इस बाबत केन्द्र सरकार ने पूरी योजना बना ली है। गैर सरकारी संस्थानों में भी बड़े पैमाने पर मजदूरों को बेरोजगार किया जा रहा है। केन्द्र सरकार की नीतियों का असर असंगठित क्षेत्र के मजदूरों पर भी पड़ा है। सरकार की नीतियों से मजदूर ही नहीं, बड़ी संख्या में किसान भी तबाह हो रहे हैं। आर्थिक नीतियों ने देश को बर्बादी और तबाही के द्वार पर खड़ा कर दिया है। सार्वजनिक क्षेत्र के बेशकीमती उद्योग कौड़ी के भाव विनिवेश के नाम पर बेचे जा रहे हैं।

बैंकों द्वारा बड़े पूँजीपतियों से 1 लाख 22 हजार करोड़ रुपये बकाये की वसूली नहीं हो पा रही है। पूँजीपतियों पर टैक्स के 80 हजार करोड़ रुपए बकाये हैं। इन रुपयों से आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सकता है पर केन्द्र सरकार इस मसले पर चुप है और वह वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के जरिए देश की आर्थिक स्थिति सुधारने में जुटी है। लोक उपक्रमों को बंद करने के निर्णय से मजदूर बेरोजगार होकर भूखमरी का सामना करेंगे। केन्द्र एवं बिहार सरकार के खिलाफ आन्दोलन तेज करने के लिए तमाम दलों को एकजुट होना चाहिए। मजदूरों के हितों के विरुद्ध श्रम कानूनों में संशोधन किया जा रहा है। लोकतंत्र में मजदूरों को मौलिक अधिकार से वंचित करना खतरनाक संकेत है। ❖❖❖

1 27 जनवरी, 2003

नई आर्थिक नीतियों ने देश को पीछे धकेल दिया[1]

नई आर्थिक नीतियों ने देश के पिछड़े और गरीब राज्यों को और पीछे धकेल दिया है। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों का आर्थिक और सामाजिक विकास प्रभावित हुआ है। इससे गरीबों और अमीरों के बीच की खाई बढ़ी है। इन राज्यों का आर्थिक ढांचा चरमरा गया है और औद्योगिक विकास की गतिविधियां लगभग ठप्प हैं। उधर लगातार बढ़ रही आबादी से भी इन प्रदेशों की हालत चिंताजनक हो गयी है। कानून और व्यवस्था की स्थिति भी बिगड़ती जा रही है। पिछले वर्षों में गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की आय में कमी हुई है। इसके साथ ही उनका सामाजिक, आर्थिक विकास भी प्रभावित हुआ है। अनियंत्रित विकास की वजह से प्रति व्यक्ति आय में लगातार गिरावट हो रही है। शैक्षणिक माहौल, महिलाओं की स्थिति, अस्पतालों की संख्या और उनके रख रखाव, सड़कों और डाकघरों की स्थिति, बैंकों की स्थिति, बिजली उत्पादन एवं खपत, कृषि उत्पादन, दलितों और पिछड़ों की स्थिति, रोजगार के अवसर आदि की स्थिति भी दयनीय है।

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री ने जिस तरह दलित समाज की समस्याओं के लिए मनुवादियों को दोषी ठहराया उससे उन्होंने दलितों को दिग्भ्रमित करने का ही कार्य किया। निःसंदेह ऐसा जानबूझकर संकीर्ण राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए किया गया। उन्होंने अवसरवाद की राजनीति का ही परिचय दिया है। उन्होंने जिस तरह अन्य सभी दलों को मनुवादी और एक प्रकार से दलितों का विरोधी करार दिया वह दुर्भाग्यपूर्ण ही है।

वैसे तो वोट बैंक पर कब्जा करने अथवा उसे अपने साथ बनाए रखने के लिए समाज के विभिन्न वर्गों को बरगलाने-बहकाने की राजनीति कोई नयी बात नहीं है, लेकिन यह कार्य जितने खुले और आक्रामक तरीके से इस समय किया जा रहा है वह तो समाज में कटुता और विद्वेष को ही उत्पन्न करने वाला है। समाज को विभाजित कर अपना राजनीतिक उल्लू सीधा करने की राजनीति की जा रही है। इस प्रकार की राजनीति जातीय विद्वेष को भड़काने और समाज में उथल-पुथल मचाने वाली है। दलितों के साथ दुर्व्यवहार की इक्का-दुक्का घटनाएं अभी भी होती ही रहती हैं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि दलित समाज के लोग आज भी उसी तरह उत्पीड़न और शोषण का शिकार हैं जैसे कि वे सदियों पहले थे।

मुख्यमंत्री दलितों के मुकाबले समाज के अन्य वर्गों को उनके शत्रु के रूप में चित्रित करने में लगी हुई हैं। यह सही है कि एक समय था जब दलितों और पिछड़ों के साथ अन्याय किया गया और उन्हें उनके अधिकारों से वंचित भी किया गया, लेकिन आज तो ऐसी स्थिति बिल्कुल भी नहीं है और न ही कोई दलितों के उत्थान का विरोधी है। आज तो सभी राजनीतिक दल दलितों,

1 26 अप्रैल, 2003

पिछड़ों और निर्धनों के हित की ही बात करने में लगे हुए हैं। भारतीय संविधान में अनेक ऐसी व्यवस्थाएं की गई हैं जिनसे दलितों के हितों की रक्षा हो सके और उनके साथ किसी भी प्रकार का अन्याय न होने पाए। निश्चित रूप से दलित समाज को इन व्यवस्थाओं का लाभ भी मिला है और आज वह पहले से कहीं अधिक सक्षम और जागरूक है।

यह दु:खद है कि कुछ नेता बार-बार उन्हें न केवल दलित होने का अहसास दिला रहे हैं, बल्कि यह भी चाहते हैं कि वे स्वयं शोषित और पीड़ित महसूस करते रहें। यह तो दलित समाज के साथ किया जाने वाला घोर अन्याय ही है। आज आवश्यकता तो इस बात की है कि दलित समाज को इस बात के लिए प्रेरित किया जाए कि कैसे वे अवसरों का लाभ उठाएं और अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करें, लेकिन दुर्भाग्य से स्वयं को दलित हितों का हितैषी बताने वाले राजनीतिक दल ऐसा कुछ करने के स्थान पर दलित समाज को भड़काने में लगे हुए हैं। यही नहीं वे दलित समाज में अन्य वर्गों के प्रति अकारण कटुता का बीज बोने और विद्वेष पैदा करने का कार्य कर रहें हैं। इसके चलते अनेक अप्रिय घटनाएँ भी हो रही हैं।

उचित यही होगा कि दलित समाज ऐसे नेताओं से सावधान रहे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो यह समाज महज एक वोट बैंक बनकर रह जाएगा और अपने ही तथाकथित हितैषी नेताओं से बार-बार छला जाएगा।

❖❖❖

विश्व व्यापार संगठन की विफलता[1]

कानकुन में विश्व व्यापार संगठन के मंत्रिस्तरीय सम्मेलन की विफलता को लेकर आशंका और चिन्ता का जो माहौल बना था तथा जिस तरह की बहस चल रही थी वह सब अकारण नहीं था। अभी तक कोई भी ऐसा आर्थिक संगठन नहीं था जो कि विश्व व्यापार संगठन की तरह आर्थिक गतिविधियों से जुड़े हर क्षेत्र को प्रभावित करने की क्षमता रखता हो।

प्रत्येक दो वर्ष पर होने वाला मंत्रिस्तरीय सम्मेलन विश्व व्यापार संगठन की सर्वोच्च निर्णयकारी संस्था है जिसके निर्णय सभी सदस्य देशों के लिए मान्य होते हैं। भारत जैसे विकासशील देशों ने संगठन की स्थापना के बाद जिन प्रतिकूल परिणामों का अनुभव किया है एवं आगे जिनकी आशंकाएँ दिख रही है उसमें अपने हितों की रक्षा के लिए उठकर दृढ़ता से खड़ा होने के अलावा कोई विकल्प बचा ही नही था। प्रगति में सबसे बड़ी बाधा कृषि व्यापार है। कृषि व्यापार के उदारीकरण में तीन बातें शामिल हैं। कृषि को घरेलू समर्थन, निर्यात सब्सिडी एवं कृषि बाजार का उदारीकरण। अमेरिका एवं यूरोपीय संघ के साथ जापान एवं दक्षिण कोरिया जैसे देश कृषि में सबसे ज्यादा सब्सिडी देते हैं। अमेरिका, यूरोप एवं कृषि निर्यात वाले कुछ प्रमुख देश जब तक अपनी सब्सिडी में भारी कमी नहीं लाते तब तक विकासशील देश कृषि व्यापार के लिए अपनी सीमाओं को खोलने के लिए तैयार नहीं हो सकते। अमेरिका एवं यूरोपीय संघ के बीच जो सहमति बनी है उनमें केवल वायदे हैं, किसी प्रकार के आमूल परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं है।

इस सम्मेलन में विश्व व्यापार संगठन के घोषणा पत्र के मसौदे ने भारत समेत सभी विकासशील देशों को पूरी तरह निराश किया है। क्योंकि इसमें विकसित देशों की कृषि सब्सिडी में कटौती तथा सिंगापुर मुद्दे पर बातचीत टालने की उनकी मांग की पूरी तरह उपेक्षा की गयी है। मसौदे में किसी तरह की सार्थक बातचीत की गुंजाइश ही नहीं रही, क्योंकि इसमें विकासशील देशों के विचारों और चिन्ताओं की पूरी उपेक्षा की गयी है। इसमें न तो कृषि सब्सिडी में मौजूद गतिविधियों को जारी रखने का प्रावधान किया गया और न ही इन गड़बड़ियों को बढ़ाने के प्रावधान ही किये गये हैं। विश्व के विकसित राष्ट्र विकासशील एवं निर्धन राष्ट्रों को कोई रियायत देने के स्थान पर ऐसी शर्तें लगाना चाहते हैं जिससे उनके विकास के रास्ते ही बंद हो जायें। विकसित राष्ट्र विशेष रूप से अमेरिका तथा यूरोपीय संघ यह चाहते रहे हैं कि अन्य राष्ट्र उनके हिसाब से ही अपनी आयात-निर्यात नीतियां बनाये और कृषि को संचालित करे। यह बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि विकसित राष्ट्र विकासशील एवं निर्धन राष्ट्रों का शोषण करनेवाली नीतियां ही चालू रखना चाहते हैं और वह भी विश्व अर्थव्यवस्था की भलाई के नाम पर। यह उन राष्ट्रों की स्वार्थपरता की पराकाष्ठा है। इस सम्मेलन ने यह स्पष्ट किया है कि विकसित राष्ट्र जानबूझकर ऐसी व्यवस्था बनाये रखना चाहते हैं जो विकासशील एवं निर्धन राष्ट्रों के हित के विरुद्ध हो, यह आर्थिक साम्राज्यवाद है।

1 16 सितम्बर, 2003

इस सम्मेलन की यह विशेषता रही की विकासशील राष्ट्रों ने विकसित राष्ट्रों के समक्ष आत्मसमर्पण करने से इन्कार कर दिया। विकासशील देशों को ऐसी दृढ़ता निरंतर दिखानी होगी। तभी समृद्ध राष्ट्रों को अपनी साम्राज्यवादी आर्थिक नीतियों का परित्याग करने को विवश होना पड़ेगा। इसके लिए विकासशील राष्ट्रों को एकजुटता बनाये रखनी पड़ेगी। विकसित राष्ट्र विभिन्न उपायों से विकासशील राष्ट्रों की एकजुटता को खंडित करने के लिए हर संभव प्रयास कर सकते हैं। संभावना तो यह थी कि विश्व व्यापार संगठन के पिछले सम्मेलनों की विफलता को देखते हुए विकसित राष्ट्र लचीला और नरम दृष्टिकोण अपनाएंगे, लेकिन उन्होंने इस अपेक्षा के विरुद्ध आचरण किया है।

भारी मतभेदों के चलते विकसित और विकासशील देशों ने संशोधित प्रारूप पर समझौता नहीं किया, जिससे यह बैठक विफल हो गयी। प्रारूप में विकासशील देशों की जगह विकसित देशों का ही ध्यान रखा गया है। यह न सिर्फ समझ से परे हैं बल्कि विकासशील देशों में गरीबी में रह रही बड़ी आबादी के प्रति अत्यधिक सबलहीनता भी दर्शाता है। विकसित राष्ट्रों को विकासशील राष्ट्रों की व्यवस्थाओं को स्वीकार करना पड़ेगा। विश्व के करोड़ों लोग अत्यन्त ही निर्धनता से ग्रस्त हैं और वे विकसित राष्ट्रों की नीतियों का परिणाम भुगत रहे हैं। अमेरिका और यूरोपीय संघ के राष्ट्रों को संवेदनशील, मानवीयता एवं नैतिक पक्ष को विश्व में स्थायी शांति के लिए स्वीकार करना पड़ेगा।

❖❖❖

12वीं पंचवर्षीय योजना का एप्रोच पेपर[1]

12वीं योजना में प्रस्तावित मसौदे पर विचार किया जाना चाहिए कि बिहार अभी देश का सबसे पिछड़ा राज्य है और सभी विकास सूचकों के लिहाज से योजना युग की लगभग शुरुआत से ही देश में सबसे निचले पायदान पर बरकरार है। इसका मुख्य कारण राज्य में सभी योजना में प्रति व्यक्ति योजना परिव्यय के साथ प्रति व्यक्ति सबसे कम केन्द्रीय सहायता है। फलत: राज्य अभी भी हर तरह की समस्या से पीड़ित है। अब राज्य के प्रति किये गये इस कमी को दूर करने के लिए केन्द्र को विशेष प्रयास करना पड़ेगा।

नब्बे के दशक में शुरू हुए उदारीकरण के दौर में भी, जब उच्च आय वाले राज्य काफी लाभान्वित हुए हैं, वहीं बिहार जैसा पिछड़ा राज्य लाभ से वंचित ही बना रहा है। राज्य के ढांचे के निर्माण एवं सुदृढ़ीकरण के अतिरिक्त, राज्य में निवेशकों को आकर्षित करने की क्षमता बढ़ाने का भी प्रयास हो रहा है। उदारीकरण के परिणामस्वरूप, पूंजी और श्रम का गरीब राज्यों से संपन्न राज्यों की ओर पलायन हो ही रहा है। कमजोरियों को दूर करने के लिए योजना आयोग को अवश्य मदद करनी चाहिए। आमतौर पर निवेश दर को किसी अर्थव्यवस्था में विकास का एक महत्वपूर्ण कारक समझा जाता है जो अधिकांशत: अधिसंरचना से संबंधित होती है। सार्वजनिक एवं निजी निवेश योजना काल में बिहार निम्नतम रहा है।

अगर भारत की औसत विकास दर 2019-20 तक 9 प्रतिशत से अधिक बनी रहती है, जैसी संभावना है तो बिहार को उसके समकक्ष पहुँचने के लिए 2019-20 तक 15 प्रतिशत की औसत विकास दर हासिल करनी होगी। उस विकास दर को हासिल करने के लिए समस्त संभावनाओं के जरिए लगभग 80 हजार करोड़ रूपये की वार्षिक योजना की आवश्यकता होगी। यह विशाल राशि विशेष राज्य का दर्जा के अंतर्गत अनुदान के जरिए ही प्राप्त की जा सकती है। योजना आयोग इस पहलू पर भी विचार करे और राज्य के लिए विशेष राज्य का दर्जा देने की अनुशंसा केन्द्र सरकार को दे ताकि बिहार पिछड़ा राज्य न रहे। पूंजीगत अधिसंरचना के निर्माण और प्रशासनिक व सामाजिक सेवाओं के उन्नयन के लिए आयोग लक्षित सहायता अनुदान की अनुशंसा भी करे। बिहार की अर्थव्यवस्था, जिस तरह वित्तीय साधन स्रोत पिछले वर्षों में, विशेषकर राज्य विभाजन के बाद सीमित रही उसे देखते हुए यह नितान्त आवश्यक है कि राज्य सरकार पर केन्द्र सरकार के ऋण का जो बोझ है उससे मुक्ति दे दी जाए जैसा कि अनेक अवसरों पर कई अन्य राज्यों के मामलों में किया जा चुका है।

❖❖❖

1 28 मई 2011

बिहार को 12वीं पंचवर्षीय योजना के तहत 12 हजार करोड़ रूपए का विशेष पैकेज[1]

बिहार अभी देश का सबसे पिछड़ा राज्य है। सभी विकास सूचकों के लिहाज से योजना युग की लगभग शुरुआत से ही देश में सबसे निचले पायदान पर बरकरार है। इसका मुख्य कारण राज्य में सबसे कम योजना परिव्यय तथा निवेश का निम्न स्तर है। केन्द्र सरकार द्वारा 12वीं पंचवर्षीय योजना के तहत बिहार को 12 हजार करोड़ रुपये का विशेष पैकेज दिये जाने की घोषणा स्वागत योग्य है। राज्य सरकार ने अपनी जरूरतों को दर्शाते हुए केन्द्र से बीआरजीएफ में कम से कम चार हजार करोड़ रुपये प्रतिवर्ष अर्थात कुल 20 हजार करोड़ रूपये की मांग की थी। क्योंकि गरीबी की अधिकता, प्रति व्यक्ति कम आय, औद्योगीकरण का निम्न स्तर और सामाजिक आर्थिक आधार के पिछड़ेपन के कारण बिहार राष्ट्रीय औसत से काफी नीचे है। बिहार की लगातार उपेक्षा के कारण जहाँ देश में प्रति व्यक्ति केन्द्रीय निवेश का राष्ट्रीय औसत 4,144 रुपये है जबकि बिहार में यह सिर्फ 395 रुपये है। वर्तमान मूल्य पर बिहार की प्रति व्यक्ति आय मात्र 23,436 रुपया है जबकि राष्ट्रीय औसत 60 हजार है।

बिहार की प्रति व्यक्ति की आय न्यूनतम स्तर पर है तथा यहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य के साथ-साथ सामाजिक आर्थिक व्यय सबसे निचले पायदान पर है। बिहार को आर्थिक पिछड़ापन और विकासात्मक घाटे के कारण विशेष सहायता एवं विशेष राज्य का दर्जा तुरंत मिलना चाहिये। राज्यों के बीच व्याप्त विषमताओं को पाटने और विकसित राज्यों की श्रेणी में लाने के उद्देश्य से इसकी आवश्यकता है। बिहार को औद्योगिक रूप से पिछड़े होने के कारण टैक्स में छूट मिले जिससे निजी निवेश को प्रोत्साहन मिले। देश का कोई राज्य अगर औसत विकास से नीचे है तो राष्ट्रीय एकता के लिए उसे विशेष सहायता दी जाए। इस समय बिहार में देश की कुल आबादी का 8 प्रतिशत है लेकिन राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में इसकी भागीदारी मात्र 2.92 प्रतिशत है। अगर बिहार को विशेष सहायता और विशेष राज्य का दर्जा दिया जाए तो देश के जीडीपी में बिहार भी 10 प्रतिशत योगदान कर सकता है। अगर केन्द्र सरकार, वित्त आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् से बिहार को अपेक्षित सहायता मिले तो अपनी क्षमता से वह विकास कर सकता है।

संविधान सभी प्रकार की असमानताएं दूर करने के प्रति बहुत गंभीर है, चाहे वे व्यक्तियों के बीच हों या समूहों के बीच। संविधान के अनुच्छेद 38(2) का उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा जो राज्यों को असमानताएं दूर करने की जवाबदेही देता है। ''राज्य खास करके आय की असमानताएं न्यूनतम करने का प्रयास करेगा और प्रतिष्ठा, सुविधाओं तथा अवसरों की असमानताओं को व्यक्तियों के बीच ही नहीं, विभिन्न इलाकों में विभिन्न स्थानों पर रह रहे

---

1 19 अप्रैल, 2013

जन समूहों के बीच की भी असमानताओं को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहेगा।'' लेकिन संविधान के इस दिशा-निर्देश के बावजूद, बिहार के लोग व्यक्तियों और जनसमूहों के बीच मौजूद असमानताओं से पीड़ित हैं।

बिहार की वित्तीय आवश्यकता पर विकसित राज्यों से अलग होकर विचार करने की जरूरत है। इसके लिए साहसपूर्ण और सुदृढ़ वित्तीय नीति बनानी पड़ेगी। आज पिछड़े राज्यों और विकसित राज्यों की वित्तीय आवश्यकताओं को एक ही तराजू पर तौलकर अनुमान करने की जो प्रणाली बनी हुई है उसे त्यागकर पिछड़े राज्यों की विशेष समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उनकी आवश्यकताओं का आकलन करने में अधिक संतुलित दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा।

❖❖❖

आर्थिक विकास[1]

भारत के सामने आज असली मुद्दा आर्थिक पिछड़ेपन और विकास का है। सिर्फ एक गलत कदम से हमारी ऐतिहासिक प्रक्रिया रूक जायेगी और बिखराव आ जायेगा। धर्म के चोले में साम्प्रदायिकता तबाही ला सकती है। राष्ट्रवाद का तकाजा यह है कि हम साम्प्रदायिकता की चुनौती का आँखों में आँखें डालकर सामना करें। भारत आज गरीब है। भारत को फिलहाल दुनिया में चल रही नई औद्योगिक क्रान्ति में हिस्सेदारी से चूकना नहीं चाहिए और वही भारत का असली राष्ट्रीय एजेंडा होना चाहिए। दुनिया आँखों के सामने बदल रही है और भारत को इसके साथ ही बदलना होगा। ऐसा नहीं किया गया तो भारत विश्व के आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य में किनारे कर दिया जायेगा। भारत की सारी ऊर्जा इस विकास की ओर केन्द्रित होनी चाहिए। धार्मिक हो या राजनीतिक, कोई दूसरा मामला इस असली सामाजिक दिशा में भारत को भटकाएगा तो बड़ी गड़बड़ी होगी। जितने भी विखंडनकारी मुद्दे हैं, उन्हें पीछे फेंकना होगा। विकास की चुनौती से निपटना होगा, यही कसौटी है।

अतीत हालांकि महत्वपूर्ण होता है और लोगों में आत्मविश्वास भी भरता है। राष्ट्र की विदेश नीतियों पर भारतीय हित का पूरा नियंत्रण होना जरूरी है। भले ही भारत दुनिया के सभी देशों के साथ विश्व समुदाय का हिस्सा बना रहा। आजादी और राजनीतिक ताकत आज आर्थिक मजबूती और समृद्धि, कोष और ऊर्जा की आत्मनिर्भरता और उत्पादकता पर निर्भर है। दूसरी ओर, राष्ट्रीय एकजुटता आर्थिक और सामाजिक विकास, सामाजिक और आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय से जो भी चीज ध्यान हटाती है, वह बुरी है और असल में राष्ट्रद्रोही है।

❖❖❖

1 28 जनवरी, 2015

नवउदारवादी नीतियाँ[1]

भारत ने 1991 से नवउदारवादी नीतियों को अपनाया है तब से अरबपतियों की संख्या और उनकी दौलत में तो नाटकीय ढंग से वृद्धि हुई ही है, लेकिन मानव आबादी के सबसे निचले हिस्से की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। परिणाम यह हुआ कि विषमता की खाई लगातार चौड़ी होती चली गई।

भारत का सच यह है कि यहाँ लगभग आधे या आधे से अधिक लोग गरीबी में बसर कर रहे हैं। विश्व बैंक के मुताबिक भारत की लगभग 41.6 प्रतिशत आबादी अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा के नीचे है। 1990 से देश में असमानता के स्तर में भी भारी वृद्धि हो रही है। वित्तीय परिसंपत्तियों का स्वामित्व सीमित हाथों में केन्द्रित है। प्राय: समस्त वित्तीय संपदा जनसंख्या के 1 प्रतिशत से भी कम लोगों के पास निहित है।

संसाधन के वितरण में असमानता, अवसरों की असमानता में बदल जाती है, जो भारत की आर्थिक नीति के घोषित लक्ष्य-समावेशी विकास को ही नकार देती है। वर्तमान नीतियों के कारण ही देश में करोड़पतियों की संपदा दिन दूनी-रात चौगुनी बढ़ रही है। भारत में करोड़पतियों की संख्या में 22.2 फीसद का इजाफा हुआ है। हाल में अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष ने भी कहा है कि भारत में पिछले 15 वर्षों में अरबपतियों की संपदा में 12 गुणा वृद्धि हुई है। यह अंतर्विरोध दर्शाता है कि देश में विकास की गति असंतुलित है।

महज आंकड़ों की बाजीगीरी से गरीबी मिटाने का सपना साकार नहीं होने वाला है। यह तो एक सामान्य तस्वीर है जो विषमता की रूपरेखा पेश करती है। लेकिन असल सवाल यह नहीं है बल्कि यह है कि ये गरीब लोकतंत्र के उस ढांचे में किस तरह से फिट बैठ पायेंगे जो अपनी जीविका चलाने में ही असमर्थ हों। क्या कोई ऐसा फार्मूला बनेगा, जिससे लोकतंत्र की सहभागिता में अमीरी या गरीबी अवरोधक न बने? यदि ऐसा नहीं होता है तो फिर देश की कम से कम आधी आबादी लोकतंत्र के अर्थ और उसके महत्व को समझने में हमेशा ही असमर्थ रहेगी।

असमानता एक भयंकर रोग है जो भारत में हर तरफ अपनी जड़ें मजबूती से जमाए हुए है। सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक, लैंगिक एवं राजनीतिक असमानता अन्यायकारी रूप धारण कर चुकी है। यह राजनीतिक लोकतंत्र के लिए खतरा बनती जा रही है। किसी भी देश की शासन व्यवस्था उसकी सामाजिक संरचना एवं आर्थिक आधार पर टिकी होती है। अलोकतांत्रिक समाज में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का सफल होना असंभव है, इसकी सफलता के लिए सामाजिक लोकतंत्र एवं आर्थिक समानता एक पूर्व शर्त बन जाती है।

भारतीय संविधान को संविधान सभा को सौंपते हुए इसके मुख्य शिल्पकार डॉ॰ अम्बेडकर

1 03 जून, 2015

ने 26 नवम्बर, 1949 को राष्ट्र को चेताया था, कि भारत में राजनीतिक समानता एवं दूसरी तरफ सामाजिक एवं आर्थिक असमानता का अंतर्विरोध स्थापित हो रहा है इसे शीघ्र समाप्त करने की जरूरत है अन्यथा गैर-बराबरी के शिकार समूह राजनीतिक बराबरी में अपना विश्वास खो देंगे।

आज 67 साल बाद भी डॉ॰ अम्बेडकर की चेतावनी प्रासंगिक है। वर्तमान में अगर हम भारतीय लोकतंत्र के सम्मुख प्रमुख चुनौतियों को रेखांकित करें जिसकी वजह से समाज एवं अर्थव्यवस्था का लोकतंत्रीकरण नहीं हो पा रहा है तो यह सुनिश्चित हो जायेगा कि लोकतांत्रिक संस्थाओं की बुनियाद असमानता अत्याचार, अपमान, अन्याय एवं अलगाव जैसी भेदभावकारी अलोकतांत्रिक बीमारियों के ऊपर नहीं रखी जा सकती। भारत में आज लोकतंत्र एक प्रक्रियात्मक यंत्र के रूप में संचालित हो रहा है यह कहना गलत न होगा।

❖❖❖

देश की अर्थव्यवस्था[1]

देश की अर्थव्यवस्था में सुधार हुआ है, किंतु चुनौतियां भी बड़ा दी है। देश की आबादी तेजी से बढ़ी है। किंतु नये काम और जॉब उस तेजी से नहीं बढ़ रहे हैं। उद्योगों और कृषि की अपेक्षा अधिकांश जॉब सेवा क्षेत्र में आ रहे हैं, जिनका हिसाब सकल आय में बढ़ता जा रहा है। सरकार का लक्ष्य प्रतिवर्ष एक करोड़ नए जॉब उपलब्ध कराना है जो पूरा होता नहीं दिखाई देता। औद्योगिक विकास की गति में तेजी और किसानो की आय में भारी बढ़ोत्तरी के बिना यह संभव नहीं है।

कई देशों में इमीग्रेशन की नीतियों का असर भारत की आईटी और अन्य उद्योगों पर पड़ने लगा है। देश की एक चौथाई के लगभग आबादी अभी भी गरीबी रेखा के नीचे है। इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास हुआ है, किंतु आशानुकूल नहीं। बुलेट ट्रेन की तैयारी हो रही है किंतु गरीबों के लिए अनारक्षित रेल के डिब्बे की स्थिति, गाड़ियों के समय पर न चलने और दुर्घटनाओं के कारण दुनिया की सबसे बड़ी भारतीय रेल अभी समय से पीछे है। राजमार्गों के निर्माण और संचार व्यवस्था में सुधार हुए हैं। किंतु देश के पिछड़े राज्यों को लाभ कम हुआ है। बड़ी संख्या में लघु और मध्यम उद्योग बन्द हो गए हैं, कारीगर बेरोजगार हो गए हैं इन उद्योगो को देश को उतनी ही जरूरत है जितने बड़े उद्योग की। गाँवो में इंफ्रास्ट्रक्चर की कमी और काम के अभाव में शहरों की ओर पलायन अभी जारी है। देश में स्मार्ट गाँवों की भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी स्मार्ट शहरों की।

देश के विकास का फायदा समाज के सभी तबकों तक नहीं पहुँच पाया है। गरीब वंचितों के सर्वांगीण विकास में योगदान नहीं हो पाया है। आर्थिक विकास को ज्यादा से ज्यादा समावेशी बनाना होगा।

जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) और प्रति व्यक्ति आय देश की जनता का विकास करने के लिए पर्याप्त नहीं है। कुशल मानव संसाधन देश की विकास की प्रथम इकाई है। आर्थिक न्याय के अभाव में सामाजिक न्याय कल्पना मात्र है।

❖❖❖

1 13 जुलाई, 2017

झारखंड एवं बिहार को विशेष आर्थिक सहायता[1]

खनिज पदार्थ झारखंड क्षेत्र का महत्वपूर्ण साधनस्रोत है जिसका लाभ पूरे देश के उद्योग उठाते हैं। उनसे मिलने वाला स्वामित्व शुल्क मूल्य आधारित यदि उपयुक्त मात्रा में राज्य सरकार को मिले तो उसकी कमजोर संसाधन एवं विकास क्षमता बहुत हद तक सुधर जायेगी। इस दृष्टि से खनिज स्वामित्व शुल्क की समीक्षा समय-समय पर दूसरे राज्यों में क्रूड तेल की समीक्षा के समान करने का आग्रह किया जाए। केन्द्र सरकार ने विकसित और अल्प-विकसित राज्यों के उद्योग के लिए लगभग एक ही मापदण्ड रखा है। किन्तु पिछड़े राज्यों के उद्योगों के सामने पहली बाधा यह है कि वे औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्र में स्थापित हैं, और उनके पास प्रशिक्षित कामगार कम संख्या में क्रयशक्ति उपलब्ध हैं। पास पड़ोस में कोई विकसित बाजार नहीं है। अत: विकसित राज्यों के उद्योग के साथ प्रतियोगिता में विकसित एवं अल्प-विकसित राज्यों के बीच खाई कम होने की बजाय बढ़ती जाती है। अत: पिछड़े एवं विकास की संभावना वाले राज्यों के लिए विशेष मापदण्ड आधारित केन्द्रीय नीति की आवश्यकता है।

लघु स्टील कारखाने की स्थापना कच्चा माल (पिग आयरन) कम्पलेक्स के आधार पर की जाए। सिंहभूम क्षेत्र के चिरिया में कच्चा लोहा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। अनुमान किया गया है कि यह 2,000 मिलियन टन होगा, झारखण्ड राज्य सरकार केन्द्र सरकार से अनुरोध करे कि वह केन्द्रीय बिक्री-कर की दर पर ही कनसाइनमेंट टैक्स ले तथा इसकी वसूली एवं निर्धारण के लिए भी केन्द्रीय बिक्री-कर की ही मशीनरी रखे और (क) केन्द्रीय उत्पादन शुल्क के मूल्यांकन की पद्धति से ही इसका मूल्यांकन हो, (ख) कुल प्राप्तियों का 50 प्रतिशत वसूली करने वाले राज्यों को दिया जाए तथा शेष 50 प्रतिशत वित्त आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर अन्य राज्यों में बांटा जाए। (ग) केन्द्र सरकार के साथ-साथ राज्य सरकारों को कनसाईनमेंट टैक्स से छूट देने की शक्ति प्रदान की जाए। कनसाईनमेंट टैक्स के निर्धारण में पहले ही काफी विलम्ब हो चुका है और अब इसमें किसी प्रकार का विलम्ब नहीं किया जाना चाहिए। कनसाईनमेंट टैक्स नहीं लगाये जाने के कारण झारखंड जैसे अविकसित राज्यों को अपूर्णीय क्षति हो रही है। झारखंड में निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र के बड़े-बड़े उद्योगों द्वारा अपने उत्पादन का बड़ा हिस्सा बिक्री की बजाय कनसाईनमेंट में दिखाया जा रहा है, इसमें मुख्य रूप में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, टेल्को लि० एवं बोकारो स्टील लि० के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार अगर राज्य की सभी नियंत्रित वस्तुओं से संबंधित कनसाईनमेंट टैक्स का आकलन किया जाए, तो वार्षिक राजस्व की क्षति 300 करोड़ रुपए से अधिक की होगी। अतएव राज्यों के आर्थिक विकास कार्यक्रमों को अंजाम देने के लिए केन्द्र सरकार को 1984 एवं 1989 में हुए मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में आम सहमति से तय कनसाईनमेंट टैक्स कानून को अविलम्ब संसद में प्रस्तुत कर अधिनियमित कराना चाहिए।

1 19 मार्च, 2002

भारत सरकार से यह अनुरोध करना होगा कि वह अन्तरण की ऐसी योजना बनाए जो संघ के पास केन्द्रीय 'लेवी' के आर्थिक लाभों के कारण एकत्र आकलित अतिरेक पर आधारित हो और जिसे राज्यों के बीच अन्तरित किया जा सके ताकि वे संविधान प्रदत्त दायित्वों को पूरा कर पायें। अनुच्छेद 275 के अधीन दिए जाने वाले अनुदान का निर्धारण गैर–योजना राजस्व अन्तराल के आधार पर नहीं किया जाए बल्कि उसका भुगतान राज्यों को निम्नलिखित प्रयोजनों के लिए किया जाए यथा: (क) राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किये गये कार्यक्रम के आधार पर खास प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के स्तरों को समान स्तर प्रदान करने के लिए और (ख) सहायता खर्च मद में किये जाने वाले खर्च का जो भार राज्य के कोष पर पड़ता है, उसे वहन करने के लिए (ग) संविधान के अनुच्छेद 270 और 272 के अधीन विभाजन करों और शुल्कों में से तथा अनुच्छेद 275 के अधीन सहायता अनुदान बांट देने में भारत सरकार को प्रतिरोधी न्याय का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। उसके अनुसार एक ऐसा असमान सिद्धांत निर्धारित करना होगा, जो अंतर्राज्यीय विषमताओं को दूर करने में सहायक हो। आयकर और केन्द्रीय उत्पाद शुल्कों को बांटने में केन्द्र इसी प्रकार का सिद्धांत अपनाये और राज्यों के बीच उन्हें वितरित करने में ऊँची प्रगतिशीलता दिखाये। इसमें राज्यों की प्रति व्यक्ति आय को ध्यान में रखते हुए पिछड़ेपन को अधिक महत्व दिया जाए और भागीदारी वाले करों के विभाजक पुल को प्रचुर रूप में बढ़ाया जाए। राज्य की वित्तीय जरूरतों को बजट में दर्शायी जानेवाली आवश्यकता मानकर सम्मिलित किया जाए। इन वित्तीय आवश्यकताओं को अनुदान सेवाओं के भौतिक मापदण्डों के आधार पर लगाया जाना चाहिए, जिनकी उपलब्धि असाधारण रूप से पिछड़े राज्यों को भी करना है।

हमारे देश में योजना और गैर–योजना खर्च की जरूरतों में जो भेद रखा गया है, वह अत्यन्त अस्पष्ट है। जिसे गैर–योजना खर्च कहा जाता है उसमें भी विकास के तत्व निहित रहते हैं। इसलिए राज्य सरकारें केन्द्र सरकार से अनुरोध करें कि वह इन राज्यों की वित्तीय समस्याओं को योजना और गैर–योजना का फर्क किए बिना समग्र रूप में देखा जाए और वित्तीय सहायता देने की ऐसी प्रणाली बने कि राज्य की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ हो और उसकी कार्य क्षमता बढ़े। असमान रूप में विकसित और निरन्तर पिछड़ेपन के कारण अल्प विकसित राज्यों का क्षेत्रीय असंतुलन दूर करने के लिए भरपूर सहायता की मांग की जानी चाहिए। केन्द्र से दिए जानेवाले वित्तीय अंतरणों में और अधिक समानता आये इसके लिए आवश्यक है कि इन पिछड़े राज्यों को अधिक से अधिक साधनस्रोत उपलब्ध कराये जायें जिनकी आबादी अधिक है और जहाँ विकास की संभावनाएँ भी अधिक हैं। वितरण के सिद्धांतों में परिवर्त्तन लाना इस दृष्टि से नितान्त आवश्यक है।

बिहार एवं झारखंड की अर्थव्यवस्था जिस तरह चरमरा गयी है और उसका वित्तीय साधनस्रोत जितना जर्जर हो चुका है उसे देखते हुए यह नितांत आवश्यक है कि राज्य सरकारों पर केन्द्र सरकार के ऋण का जो बोझ है उससे बिहार एवं झारखंड को मुक्ति दी जाए जैसा कि अनेक अवसरों पर कई अन्य राज्यों के मामलों में किया जा चुका है। वस्तुत: जरूरत इस बात की है कि बिहार एवं झारखंड को विशेष कोटि के राज्य का दर्जा दिया जाए और उसी के अनुरूप वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जाए। बिहार एवं झारखंड में उद्योग स्थापित करने के लिए

उद्यमियों को प्रेरित करने की दृष्टि से बिहार एवं झारखंड में आयकर, केन्द्रीय उत्पाद–कर और केन्द्रीय बिक्री–कर में रियायत देनी होगी। केन्द्र सरकार ने कुछ राज्यों में स्थापित की जाने वाली नयी औद्योगिक इकाईयों को दस वर्षों तक इन करों से मुक्त करने के उपबंध किये हैं, अत: वैसी सुविधा बिहार एवं झारखंड को भी मिलनी चाहिए।

बिहार और झारखण्ड राज्य आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़े हुए राज्य हैं, जिसका मुख्य कारण यह है कि केन्द्र से जितना सहयोग अपेक्षित था, वह नहीं मिला। अतएव केन्द्र सरकार से पर्याप्त सहायता लेकर और अपनी ओर से भी संसाधन का प्रबंध कर झारखण्ड एवं बिहार के व्यापक औद्योगीकरण की दिशा में प्रभावकारी कदम उठाये जाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार कृषि क्षेत्र पर भी गंभीरता से ध्यान देना पड़ेगा। इस क्रम में पिछड़े राज्यों की वित्तीय आवश्यकता पर विकसित राज्यों से अलग हटकर विचार करने की जरूरत है। यदि भारत सरकार तय करे कि सहायता अनुदान को केवल अवशेष तक सीमित रखा जाए, अर्थात राजस्व बजट को संतुलित रखा जाए तो पिछड़े राज्यों की वित्तीय आवश्यकतायें शायद ही पूरी हो सकेंगी। अत: केन्द्र सरकार से यह मांग की जाए कि जिन वित्तीय आवश्यकताओं को योजना में समाविष्ट नहीं किया गया है, उन पर अलग से विचार करके उनकी पूर्त्ति की जाए। विशेष राज्य का दर्जा पाने के लिए बिहार एवं झारखंड सभी मापदंडों को पूरा करते हैं। अत: इन दोनों राज्यों को विशेष राज्य की श्रेणी में सम्मिलित करते हुए इन दोनों राज्यों को केन्द्र सरकार के ऋण से मुक्त किया जाए।

❖❖❖

बिहार राज्य वित्त आयोग की रिपोर्ट[1]

बिहार राज्य वित्त आयोग की नवीनतम रिपोर्ट में कहा गया है कि राज्य में बढ़ती बेरोजगारी और गरीबी खतरे का संकेत देती हैं। देश के अन्य भागों में जब गरीबी-रेखा के नीचे गुजर-बसर करने वालों की संख्या लगातार कम हो रही है, वहीं बिहार में यह बढ़ती ही जा रही है। आज बिहार में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लगभग 56 प्रतिशत लोग हैं, जबकि राष्ट्रीय औसत मात्र 26.1 प्रतिशत है। वर्षों से बिहार की विकास-दर एक प्रतिशत बनी हुई है। राजस्व घाटा भी साल-दर-साल बढ़ता जा रहा है। कृषि की उपेक्षा और आधारभूत संरचनाओं के अभाव का खामियाजा आज बिहारवासियों को भुगतना पड़ रहा है। विकास की दौड़ में यह राज्य पिछड़ता जा रहा है। सरकार ने विकास को प्राथमिकता नहीं दी। उसका ही नतीजा है कि असंतोष, आक्रोश और क्षोभ चरम पर है।

आयोग ने जो चेतावनी दी है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। राज्य तथा केन्द्र सरकार दोनों को इस ओर पूरा ध्यान देना चाहिये और आर्थिक विकास के लिए तुरंत समुचित कदम उठाने चाहिये। आयोग ने इस संदर्भ में जो सुझाव प्रस्तुत किये हैं उन पर गौर किया जाना चाहिए। बेहतर शिक्षा और स्वास्थ्य, बिजली के क्षेत्र में सुधार और नये उद्योगों की स्थापना करके ही आसन्न संकट से बचा जा सकता है। बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है, जबकि कृषि उपज लगातार कम हो रही है। कृषि क्षेत्र में भारी निवेश और सुधार की आवश्यकता है। सरकार को देर किये बिना सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर प्रयास करना चाहिये तभी राज्य 'अराजकता का गढ़' बनने अथवा नक्सली क्षेत्र में परिणत होने से बच सकता है।

देश अखंड और एक सूत्रबद्ध रहे इसके लिए क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करना नितांत आवश्यक समझा गया। यही कारण है कि 1991 के पहले की सभी केन्द्रीय सरकारों ने पिछड़े राज्यों और इलाकों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया। कोशी, गंडक और दामोदर नदियों से संबंधित परियोजनाओं, सिंदरी उर्वरक कारखाना, बरौनी तेलशोधक कारखाना, बोकारो इस्पात संयंत्र, रांची हेवी इंजीनियरिंग कारखाना आदि का विशेष रूप से निर्माण हुआ। अभी जबकि आर्थिक विकास में राज्य की सक्रिय भूमिका को नकार कर बाजार की शक्तियों को सर्वोपरि माना जा रहा है तब बिहार का आर्थिक विकास क्या होगा? कहना न होगा कि निजी देशी और विदेशी पूंजी निवेश वहीं होगा जहां विकसित आधारभूत ढांचा हो, प्रशासनिक तंत्र चुस्त-दुरुस्त हो और कानून एवं व्यवस्था की स्थिति को लेकर किसी प्रकार की कोई चिन्ता या असुरक्षा की भावना न हो। इसका अर्थ है कि बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों से मुकाबला नहीं कर पायेगा।

भूस्वामियों, अफसरों और राजनीतिक नेताओं के गठजोड़ ने जमीन की समस्या का हल नहीं

1 6 मई,2003

होने दिया जिससे बिहार अपने पड़ोसी राज्य पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश से पिछड़ता चला गया। आज भी गांवों में दहक रही जनअसंतोष की आग को कानून और व्यवस्था का सवाल बताकर या फिर विभिन्न जातीय गुटों के संघर्ष की संज्ञा देकर टाल दिया जाता है। सच्चाई तो यह है कि सत्ता पक्ष हो या विपक्ष, कोई भी असलियत को देखकर उसे स्वीकारते हुए समस्या का सही हल नहीं निकालना चाहता।

बिहार के बटवारे के बाद, बिहार को फिर से शुरुआत करने की जरूरत है। विकास की रणनीति और राजनीति में एक साझा सामाजिक नजरिया विकसित करना होगा। आर्थिक आयाम के बिना बिहार की उपराष्ट्रीयता कभी मजबूत नहीं हो सकेगी।

विकास के राज्य केन्द्रित ढाँचे के चलते बिहार पहले से ही काफी नुकसान झेल चुका है। अब यदि बाजार-केन्द्रित विकास के दौर में बिहार अपनी रणनीति में बदलाव नहीं लाएगा तो प्रलय ही शेष रह जाएगा। वस्तुतः बिहार में उपराष्ट्रीयता की उद्दाम जिजीविषा का घोर अभाव है। इसलिए यहां की 'कम लागत में अधिक उत्पादन' और 'उच्च श्रम-उत्पादकता' जैसे सकारात्मक आर्थिक पहलुओं को आकर्षक ढंग से विश्व के बुद्धिजीवी, व्यवसायी और मीडिया के सामने प्रस्तुत करना होगा।

बिहार को आर्थिक पुनर्जीवन देने के लिए बिहारी उपराष्ट्रीयता के प्रति पूरी प्रतिबद्धता की जरूरत है। बाजार-अर्थव्यवस्था में समान स्पर्धा वाले माहौल का अभाव है और यह खासकर बिहार जैसे कम विकसित राज्यों के संदर्भ में ज्यादा सच है। साथ ही वैश्वीकरण के इस युग में उपराष्ट्रीयता के मुद्दे को क्षेत्रीय बाजार तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। अब बाजार और वैश्वीकरण के दौर में क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था केवल क्षेत्रीय बाजार के बूते नहीं टिक सकती। अब हमें ऐसी रणनीति बनानी होगी कि राष्ट्रीय और विश्व बाजार में हम टिक सकें और सफल हो सकें। हालांकि यह कठिन होगा लेकिन यह असंभव और अप्राप्य भी नहीं है। इसके लिए हमें न केवल क्षेत्रीय पूँजी बल्कि ज्ञान (नॉलेज) का भी उत्खनन करना होगा।

❖❖❖

राज्यों का पिछड़ापन[1]

विकास दर को टिकाऊ करने के लिए आवश्यक है कि पिछड़े राज्यों का विकास हों, जो छूट गये हो उन्हें आगे लाया जाए। गरीब राज्यों को विशेष मद्द मिले।

हमारा संविधान भी न्याय के साथ विकास की बात कहता है। क्षेत्रीय विषमताओं को पाटने का दायित्व है। बिहार जैसे पिछड़े राज्यों के उपेक्षित रहने के परिणामस्वरूप बिहार में योजनाकाल में योजना व्यय और प्रति व्यक्ति केन्द्रीय सहायता निम्नतम रही। केन्द्र सरकार को विशेष राज्य का दर्जा के लिये नया फार्मूला तैयार करना चाहिये। वर्तमान मापदण्ड आज के संदर्भ में उपयुक्त नहीं है। देश में प्रति व्यक्ति केन्द्रीय निवेश का राष्ट्रीय औसत 4144 रुपये है जबकि बिहार में यह सिर्फ 395 रुपए है। जब बिहार को विशेष राज्य के तहत सहूलियतें, रियायतें और उद्यमियों को मदद मिलेगी, तभी इसके विकास की रफ्तार तेज होगी। बिहार को आर्थिक पिछड़ापन और विकासात्मक घाटे के कारण केन्द्र से विशेष राज्य का दर्जा मिलना संपूर्ण आंतरिक विकास और देश की राजनीतिक स्थिरता दोनों के हित में जरूरी है। राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया, चाहे जितनी भी मजबूत क्यों न हो, बिहार जैसे बड़े राज्य के आर्थिक पिछड़ेपन के बंधनों को सम्हाल नहीं सकती। कमजोर आधारभूत संरचना, संसाधन का कमजोर आधार और बड़े-बड़े बाजारों से दूरी, भौगोलिक अलगाव, पहुँच के परे स्थान एवं आर्थिक अक्षमता जिनका व्यवहार योजना आयोग और वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय द्वारा बहुधा किया जाता है, बिहार खरा उतरता है, अधिक नहीं, तो समान रूप से अवश्य ही विशेष दर्जा प्राप्त राज्यों की तरह बिहार की स्थिति बनी हुई है। मात्र गरीबी ही इस राज्य को बुरी तरह से पंगु नहीं बनाती, अपितु इसकी संरचनात्मक परिस्थिति बिहार को चिरंतन और सतत् विद्यमान वह चरित्र भी प्रदान करती है, जो चरित्र अन्य विशेष दर्जा प्राप्त राज्यों में प्राप्य नहीं है।

देश के किसी भी राज्य की गरीबी से बिहार की आधारभूत संरचना की हीनता बहुत ज्यादा बढ़ी हुई है। बिहार में आधारभूत संरचना का पिछड़ापन तो ऐतिहासिक रूप से राज्य को वंचित रखे जाने की लंबी दास्ताँ से रेखांकित है, जिसका सामना औपनिवेशिक सरकार के समय से बिहार करता रहा है। बिहार को विशेष राज्य का दर्जा दिये जाने से न केवल बिहार बल्कि समग्रता में पूरे देश को भी लाभ होगा। बिहार को विशेष दर्जा मिलने का मसला केवल केन्द्रीय करों में राहत तक ही सीमित नहीं है, वस्तुतः इससे उत्पादन में जो बढ़ोतरी होगी उसका लाभ पूरे देश को मिलेगा। बिहार अभी तक देश को केवल उत्पादन के साधन उपलब्ध कराता रहा है, उसकी सीधे हिस्सेदारी उत्पादन में भी हो जायेगी। इस तरह उत्पादन और विकास का विकेन्द्रीकरण होने से बिहार से लोगों के विस्थापन में कमी आयेगी।

❖❖❖

1 26 मार्च, 2013

14वें वित्त आयोग की अनुशंसा[1]

भारत ऐसा लोकतंत्र है जिसका संघीय ढांचा विभिन्न सूत्रों से एक-दूसरे से बंधकर चलते हुए राष्ट्रीय एकता को संपुष्ट करता है। चाहे प्रशासनिक व्यवस्था हो अथवा वित्तीय व्यवस्था, दोनों ही मामलों में राज्यों और केन्द्र के बीच परस्पर निर्भरता बनी रहती है। वास्तव में यह हमारी विशेषता है। हमारे लोकतंत्र के ढांचे की बुनियाद मजबूत होने की एक वजह यह भी है कि विकास की जिम्मेदारी में केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों की सहभागिता है। यह सहभागिता केन्द्र की योजनाओं को लागू करने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों को सुपुर्द करके पुख्ता की गई है।

बिहार को पहले की तुलना में अब अधिक केन्द्रीय सहायता मिलेगी अधिक फंड मिलने से राज्यों को योजनाओं के निर्माण में वित्तीय स्वायत्तता मिल पायेगी, नेशनल निवेश फंड खत्म कर दिये जाने और सार्वजनिक उपक्रमों की हिस्सेदारी बेचने से मिलने वाले फंड में उन राज्यों को भी हिस्सेदारी मिलेगी, जहाँ ये स्थित हैं। राज्यों को मनोरंजन और प्रोफेशनल करों की समीक्षा का अधिकार होगा, स्थानीय निकायों को मनोरंजन कर लगाने का अधिकार मिलेगा। हालांकि कर्ज में डूबे राज्यों के लिए कोई विशेष प्रावधान नहीं है, लेकिन 1.94 लाख रुपये राज्यों के राजस्व घाटे को कम करन के लिए दिये गये हैं।

संविधान के अनुच्छेद 280 में वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है, जिसका पांच वर्ष की समाप्ति पर राष्ट्रपति द्वारा गठन किया जाता है। उसी संवैधानिक उपबंधो के अंतर्गत रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर वाई.बी. रेडडी की अध्यक्षता में गठित वित्त आयोग की सिफारिशों को केन्द्र सरकार ने स्वीकार कर लिया है। अभी तक केन्द्र को विभिन्न प्रत्यक्ष व परोक्ष करों के माध्यम से जो भी राजस्व प्राप्त होता था उसका 32 प्रतिशत ही विभिन्न राज्यों को दिया जाता था। 14वें वित्त आयोग ने सिफारिश की है कि यह हिस्सा बढ़ाकर 42 प्रतिशत कर दिया जाना चाहिए। पांच साल पहले कुल प्रस्तावित वास्तविक हस्तांतरण 39 फीसदी था। ऐसा तब था जब सशर्त और बिना शर्त हस्तांतरण को एक साथ मिला दिया जाता था। 14वें वित्त आयोग ने अपनी अनुशंसा में कहा है कि सरकार मोटे तौर पर सशर्त और बिना शर्त का भेद मिटा दे। यह बात संघीय निर्देशन में एक मूलभूत बदलाव की ओर संकेत करती है। इससे राज्यों को अधिक स्वायत्तता और लचीलापन मिलता है ताकि वे उनको मिलने वाले धन का मनमुताबिक इस्तेमाल कर पाएं। यह बात विकेन्द्रीकरण की ओर बढ़ते कदमों को और बल प्रदान करती है। केन्द्र सरकार को यह सुनिश्चित करना है कि राज्य ऐसी संस्थागत क्षमताएं विकसित करें जो कार्यक्रमों के नियंत्रण, उनकी निगरानी और नीति निर्माण का काम करें। अब राज्य अपनी जरूरत के अनुसार योजनाएं बना सकते हैं और चयन कर सकते हैं। योजना आयोग के स्थान पर जिस नीति आयोग का गठन किया गया है वह इसी दृष्टि से काम करेगा।

❖❖❖

1 03 मार्च, 2015

बिहार सभी मापदण्डों के स्तर पर राष्ट्रीय औसत से निम्नतम[1]

केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय के नेतृत्व में देश के 640 जिलों में हुई जनगणना के मात्र गाँवों से सम्बन्धित आंकड़े ही सामने आये हैं। गाँवों की गरीबी का यह सरकारी दस्तावेज है, जो सरकार के उन सभी योजनाओं और कार्यक्रमों की पोल खोलता है, जो गाँवों और वहाँ की आबादी की बेहतरी के लिये बनाये गये थे। देश की आजादी के बाद गाँवों के विकास के लिये आबंटित विपुल धनराशि खर्च करने का ऐसा परिणाम सामने आयेगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। अभी भी जो तस्वीर उभरी है उसे लेकर हमारे सभी नीति-नियंताओं को गंभीर रूप से चिन्तन-मनन करने की जरूरत है, क्योंकि उपलब्ध आंकड़े बता रहे हैं कि जिन गाँव-गरीबों-किसानों-मजदूरों को लेकर बड़ी-बड़ी बातें की जाती हैं उनकी स्थिति बिल्कुल भी संतोषजनक नहीं हैं।

देश में व्याप्त गरीबी, पिछड़ापन, स्वास्थ्य, आवास, रोजगार सम्बन्धी जो आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं और जो मापदण्ड अपनाये गये हैं, उसके आधार पर बिहार की गरीबी एवं गरीबों की संख्या ने बिहार की पिछले 25 वर्षों की सामाजिक न्याय की सरकार की उपलब्धियों की पोल खोल दी है। सभी मापदण्डों के अंतर्गत बिहार की गरीबी, पिछड़ापन, स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार तथा आवास राष्ट्रीय औसत तथा अन्य राज्यों की तुलना में इस सर्वेक्षण के मुताबिक सबसे निचले पायदान पर बिहार प्रदर्शित हो रहा है।

इस जनगणना ने सामाजिक न्याय के दावे को सर्वथा निरर्थक साबित कर दिया है और यह प्रमाणित हुआ है कि बिहार में अशिक्षा और शिक्षा की गुणवत्ता के अभाव के कारण राष्ट्रीय नियोजन में बिहार के नवयुवकों की हिस्सेदारी लगातार घटती जा रही है। जहाँ 25 वर्ष पूर्व बिहार के नौजवानों की राष्ट्रीय नियोजन में 15 प्रतिशत हिस्सेदारी थी वह घटकर मात्र 5 प्रतिशत रह गयी है। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित केन्द्रीय सेवाओं में भी बिहार के नवयुवकों की हिस्सेदारी साल-दर-साल घटती जा रही है। केन्द्रीय सेवाओं में पिछड़े वर्गों के लिये 27 प्रतिशत आरक्षण में बिहार के पिछड़े वर्गों के नवयुवकों के लिये सांकेतिक प्रतिनिधित्व ही प्राप्त हो रहा है। पिछड़े वर्गों के कोटे में अन्य राज्यों की हिस्सेदारी लगातार बढ़ती रही है, जबकि बिहार की हिस्सेदारी शिक्षा प्रणाली में त्रुटियों के कारण घटती जा रही है। बिहार के जो नवयुवक स्थान पा रहे हैं उनमें से अधिकांश बिहार के बाहर शिक्षा प्राप्त करने वाले हैं।

गरीबी एवं पिछड़ेपन का मुख्य कारण यह भी रहा है कि पिछले 25 वर्षों में बिहार में सार्वजनिक अथवा निजी निवेश अन्य राज्यों की तुलना में निम्नतम रहा है। पूर्व में स्थापित उद्योग या तो रुग्ण अथवा बंद पड़े हैं। साथ ही नये उद्योग न तो सार्वजनिक, न निजी क्षेत्र में और ना ही संयुक्त क्षेत्र में स्थापित किये जा सके हैं। औद्योगिक नीति के बावजूद राज्य के विभिन्न जिलों

1 06 जुलाई, 2015

में पिछले 25 वर्षों से औद्योगीकरण की रफ्तार सुस्त है। राज्य सरकार ने स्थानीय उद्यमियों को 1990 से 2005 तक और फिर 2005 से 2014 तक मदद नहीं दी है। यह बड़ा ही विस्मयकारी रहा है कि देश के बड़े-बड़े कॉर्पोरेट क्षेत्र के बड़े-बड़े उद्योगपतियों द्वारा बिहार में पूँजी निवेश के लिए आश्वासन देने के बावजूद उद्योगपतियों ने पूँजी निवेश नहीं किया। लघु उद्योग इकाइयों के राज्यस्तरीय अध्ययन के अनुसार, बिहार की 70 प्रतिशत लघु उद्योग इकाइयाँ रुग्न अथवा बंद हैं। बिजली संकट दूर करने की कार्य योजना बनाने का निर्णय लिया गया था जिसमें सफल सुधार संभव नहीं हो पाया है। राज्य सरकार लघु, छोटे और मझोले क्षेत्र के उद्यमियों की नई पीढ़ी तैयार करने में अब तक विफल रही है। सामाजिक स्थिति या जातिवादी विचारधाराओं के कारण भी लोगों को अवसर नहीं मिल पाते।

अनुसूचित जातियों के बीच गरीबी तो उच्च वर्ग की अपेक्षा तीन गुणा अधिक है। पिछले 25 वर्षों में दलित अंगीभूत योजना पर कुल योजना उद्व्यय का 15 प्रतिशत व्यय के विरुद्ध केवल 1.2 प्रतिशत ही व्यय हुआ है। इसी तरह की स्थिति मुसलमान और पिछड़ा वर्ग के बीच फैली है। बिहार में धनविनिवेश का स्तर गिरते जाने से विकास सम्बंधी उपलब्धि कम हुई है। राज्य में गैर-सरकारी स्तर का धन-विनिवेश अन्य राज्यों की अपेक्षा बहुत ही कम हुआ है।

बिहार में विभिन्न प्रकार का सामाजिक वर्गभेद बड़े पैमाने पर है और वह कई दशकों से लगातार चलता आ रहा है। शिक्षा क्षेत्र में नामांकन और साक्षरता की दरें देश के औसत से बहुत कम है जिससे पता चलता है कि स्त्री-पुरुष में और समाज के विभिन्न वर्गों में कितना बड़ा अन्तर है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी कई ऐसे उदाहरण हैं जिनमें बिहार सबसे पिछड़ा हुआ है। स्वच्छ पेयजल के मामले में बिहार की स्थिति अच्छी नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ी कमजोरी यह रही है कि शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षक रहते ही नहीं। प्रशासनिक कमजोरियों ने इस समस्या को अधिक उलझा दिया है।

सरकार की ओर से मिलने वाला आर्थिक सहायता गरीबों तक नहीं पहुँच पाता। बिहार में इसके मुख्य कारण चार हैं। पहला यह कि सरकार जो भी धनराशि खर्च करती है उसका लाभ गरीबों को न तो शिक्षा के क्षेत्र में और न स्वास्थ्य के क्षेत्र में मिलता है भले ही बजट में उसका प्रावधान क्यों न किया गया हो? दूसरा यह कि जो भी धन खर्च किया जाता है वह भ्रष्टाचार और व्यवस्था की कमजोरी के कारण जरूरतमंदों को नहीं मिल पाता है। तीसरी बात यह कि जो लोग ऐसी सेवा प्रदान करने के लिए जिम्मेवार हैं उन्हें मौजूद रहकर देखना चाहिए कि गरीबों को ऐसी सेवा उपलब्ध हो रही है वो ऐसा नहीं करते। चौथा कारण यह है कि शिक्षा और स्वास्थ्य के मामलों में जनता को सरकार पर भरोसा ही नहीं रह गया है।

बिहार में राजनीतिक हस्तक्षेप अधिक होता है। अधिकारी वर्ग की क्षमता भी कुशल नहीं है। बिहार का शासन बहुत भी केन्द्रीयकृत है जिसके चलते निर्णय लेने और परियोजनाओं के कार्यान्वयन में बाधा पड़ती है।

❖❖❖

सबका साथ सबका विकास[1]

उपराष्ट्रपति श्री हामिद अन्सारी ने देश की सबसे बड़ी दूसरी आबादी मुसलमानों के संबंध में जो बातें उनकी शैक्षणिक, आर्थिक, साामजिक एवं नियोजन के संबंध में कही हैं, वे पूर्णत: संविधान की उद्देशिका एवं संविधान के अनुच्छेद-14,15,16 एवं 25 में जो उपबंध किये गये हैं उन्हीं के अनुकूल हैं और संविधान के प्रति की गयी शपथ के अनुकूल भी। उपराष्ट्रपति ने अपने संवैधानिक उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए ही समावेशी विकास सबका साथ सबका विकास नीति के अंतर्गत ही केन्द्र और राज्य सरकारों से कहा है कि मुस्लिम समुदाय के पक्ष में सकारात्मक कार्रवाई करने की जरूरत है और यह पूर्णत: सरकार की नीतियों के ढांचे के अंतर्गत ही है।

उपराष्ट्रपति भारत के संविधान का सम्मान करते हैं। संविधान में अल्पसंख्यकों के प्रति क्या भावना है और संविधान लागू होने के 67 वर्ष बाद मुसलमानों की क्या स्थिति है, वह किसी से छिपी हुई नहीं है।

यह निर्विवाद है कि देश में मुस्लिम समुदाय अन्य समुदाय की तुलना में अधिक गरीब और निरक्षर हैं। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र की नौकरियों में उनकी संख्या कम है। उन्हें देश की मुख्य धारा में लाना बेहद जरूरी है। पूर्व न्यायाधीश श्री सच्चर ने इस बारे में तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ॰ मनमोहन सिंह को जो रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी उसमें यह बताया गया है कि इतनी बड़ी आबादी को नजरअंदाज कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। सच्चर कमिटी ने दुखती रग पर हाथ रखा है उसमें विभिन्न राज्यों के बारे में जो आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं उनके हिसाब से देश में कई राज्यों में मुसलमान अनुसूचित जाति एवं जनजाति के मासिक आय-व्यय के मुकाबले नीचे हैं। इस तथ्य को एक सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता कि गरीबी के कारण उनके बच्चे आधुनिक शिक्षा और तकनीकी शिक्षा से वंचित हैं। उन्हें जीविका के कारण मदरसों में भेजा जाता है। सच्चर ने मदरसों को आधुनिक शिक्षा के लिये सुधार की जरूरत पर जोर दिया है। इसमें कोई शक नहीं कि शहर की मुसलमान-आबादी की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र के मुसलमान अधिक गरीब और पिछड़े हैं। बैंको से कर्ज मिलने में परेशानी से ये स्वरोजगार में भी पिछड़ रहे हैं।

प्राय: सभी सरकारों ने उनके पिछड़ेपन को बढ़ाने में अपनी भूमिका निभायी। राजनीतिक दलों ने उन्हें अपने वोट बैंक के रूप में तो इस्तेमाल किया लेकिन उनके कल्याण के बजाय शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से उनकी कमर तोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मुसलमानों ने जिन दलों को अपने वोटों से सत्ता तक पहुँचाया उन्होंने भी केवल सांत्वना देने और हरे उद्यान दिखाने के अलावा कुछ नहीं किया। वे जीवन के हर क्षेत्र में पीछे होते चले गये, यहाँ तक कि उनकी स्थिति अनुसूचित जातियों और जनजातियों से भी बदतर हो गयी। देश के अल्पसंख्यक विशेषकर मुसलमान के संबंध में सच्चर कमिटी रिपोर्ट एक ऐसा आईना है

1 03 सितम्बर, 2015

जिसमें हर व्यक्ति अपनी तस्वीर साफ देख सकता है। इस रिपोर्ट ने साबित कर दिया कि देश की एक बड़ी आबादी अपने ही देश में कैसे सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक रूप से हाशिये पर पहुँचा दी गयी।

सच्चर एवं रंगनाथ समिति के बाद केन्द्र सरकार द्वारा गठित प्रो॰ अमिताभ कुण्डू समिति नाम की एक सरकारी समिति ने ही सामाजिक–आर्थिक (मुस्लिमों की) स्थिति का मूल्यांकन किया और परामर्श दिया है कि नियोजकों को लक्षित कर भेदभाव विरोधी कानून बनाया जाए जिससे मुस्लिम समुदाय और देश के शेष वासियों के बीच बढ़ रहे अंतर का सामना किया जा सके। प्रतिवेदन (रपट) में कहा गया है कि मुस्लिम समुदाय के लिए अनेक चलायी जा रही कल्याणकारी योजनाओं के बावजूद, उनमें कोई जमीनी बड़े परिवर्तन को सरकार लाने में असफल रही है। सच्चर की तरह ही इस कुण्डू समिति ने भी अपने अध्ययन की पूरी अवधि (2004–2005 से 2011–2012 तक की) जो बिहार की राजद और जद (यू॰) और पश्चिम बंगाल के वाम और तृणमूल के शासन को आच्छांदित करती है, बंगाल (पश्चिम) एवं बिहार की पहचान सबसे बुरे अभिकर्त्ता के रूप में की है। समिति के अनुसार इन राज्यों में मुस्लिमों का नियोजन में पीछे और व्यावहारिक शिक्षा में तलहटी में चलते रहना चालू है। सच्चर कमिटी के प्रतिवेदन में रेखांकित किया गया है कि मुसलमानों की स्थिति वामदल सरकार वाली पश्चिमी बंगाल, राजद–जद(यू॰) सरकार वाली बिहार, समाजवादी सरकार उत्तर प्रदेश की तुलना में सबसे बदतर है। आधे आबंटन का भी व्यय नहीं होना राज्य सरकार की मुसलमान विरोधी अवधारणा को दर्शाता है। उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में उपराष्ट्रपति श्री हामिद अंसारी द्वारा सबका साथ और सबका विकास और समावेशी विकास की बात को देखा जाना चाहिये। उपराष्ट्रपति ने अपने संवैधानिक दायित्वों का निर्वहन किया है। मुसलमान होने के कारण उन पर सही बात उजागर करने के लिये उनकी आलोचना करना और यह कहना कि उन्होंने संवैधानिक पद का सम्मान नहीं किया है और वे संवैधानिक पद के विपरीत गये हैं, किसी भी स्तर पर जायज नहीं है।

❖❖❖

बिहार में गरीबी[1]

देश में व्याप्त गरीबी, पिछड़ापन, स्वास्थ्य, आवास, रोजगार सम्बन्धी जो आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं और जो मापदण्ड अपनाये गये हैं, उसके आधार पर बिहार की गरीबी एवं गरीबों की संख्या बिहार की पिछले दशकों की सामाजिक न्याय की सरकार की उपलब्धियों की पोल खुल गई है। सभी मापदण्डों के अंतर्गत बिहार की गरीबी एवं पिछड़ापन अधिकतम है। स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार तथा आवास, राष्ट्रीय औसत तथा अन्य राज्यों की तुलना में इस सर्वेक्षण के अनुसार बिहार सबसे निचले पायदान पर है।

राज्य सरकार ने स्थानीय उद्यमियों को 1990 से 2005 तक और फिर 2005 से 2014 तक मदद नहीं दी है। यह बड़ा ही विस्मयकारी रहा है कि देश के बड़े-बड़े कॉर्पोरेट क्षेत्र के बड़े-बड़े उद्योगपतियों द्वारा बिहार में पूँजी निवेश के लिए आश्वासन देने के बावजूद उद्योगपतियों ने पूँजी निवेश नही किया। लघु उद्योग इकाइयों के राज्यस्तरीय अध्ययन के अनुसार, बिहार की 70 प्रतिशत लघु उद्योग इकाइयाँ रुग्न अथवा बंद हैं। बिजली संकट दूर करने की कार्य योजना बनाने का निर्णय लिया गया था जिसमें सफल सुधार संभव नहीं हो पाया है। राज्य सरकार लघु, छोटे और मझौले क्षेत्र के उद्यमियों की नई पीढ़ी तैयार करने में अब तक विफल रही है। सामाजिक स्थिति या जातिवादी विचार-धाराओं के कारण भी लोगों को अवसर नहीं मिल पाते। अनुसूचित जातियों के बीच गरीबी तो उच्च वर्ग की अपेक्षा तीन गुणा अधिक है। पिछले 25 वर्षों में दलित अंगीभूत योजना पर कुल योजना उद्व्यय का 15 प्रतिशत व्यय के विरुद्ध केवल 1.2 प्रतिशत ही व्यय हुआ है। इसी तरह की स्थिति मुसलमान और पिछड़ा वर्ग के बीच फैली है। बिहार में धनविनिवेश का स्तर गिरते जाने से विकास सम्बंधी उपलब्धि कम हुई है। राज्य में गैर-सरकारी स्तर का धन-विनिवेश अन्य राज्यों की अपेक्षा बहुत ही कम हुआ है।

बिहार में विभिन्न प्रकार का सामाजिक वर्ग भेद बड़े पैमाने पर है और वह कई दशकों से लगातार चलता आ रहा है। शिक्षा क्षेत्र में नामांकन और साक्षरता की दरें देश के औसत से बहुत कम है जिससे पता चलता है कि स्त्री-पुरुष में और समाज के विभिन्न वर्गों में कितना बड़ा अन्तर है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी कई ऐसे उदाहरण हैं जिनमें बिहार सबसे पिछड़ा हुआ है। स्वच्छ पेयजल के मामले में बिहार की स्थिति अच्छी नहीं है।

शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ी कमजोरी यह रही है कि शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षक रहते ही नहीं। प्रशासनिक कमजोरियों ने इस समस्या को अधिक उलझा दिया है। स्वास्थ्य-सेवा क्षेत्र का हाल भी कुछ ऐसा ही है। सरकार की ओर से मिलने वाला आर्थिक सहायता गरीबों तक नहीं पहुँच पाता। इसके मुख्य कारण चार हैं। पहला यह कि सरकार जो भी धनराशि खर्च करती है उसका लाभ गरीबों को न तो शिक्षा के क्षेत्र में और न स्वास्थ्य के क्षेत्र में मिलता है।

---

1 11 जुलाई, 2017

बिहार में अनेक गरीबी निवारण करने वाली योजनाएँ चलायी जा रही हैं जिसका उद्देश्य है कि उनसे गरीबों तथा समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को जीविका मिले और उनकी दशा में सुधार हो, किन्तु जिन लोगों को यह लाभ पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया है उनसे भिन्न लोगों के बीच धन का इस्तेमाल होता है। यह एक गंभीर समस्या है। बिहार में राजनीतिक हस्तक्षेप अधिक होता है और अधिकारी वर्ग की क्षमता भी कुशलतापूर्ण नहीं है। इनके अलावा कुछ अन्य कठिनाइयाँ हैं कि बिहार का शासन बहुत केन्द्रीयकृत है जिसके चलते निर्णय लेने और परियोजनाओं के कार्यान्वयन में बाधा पड़ती है।

❖❖❖

बिहार की उपलब्धियों का रिपोर्ट कार्ड[1]

सामाजिक, आर्थिक एवं जातीय जनगणना के संबंध में जो रिपोर्ट प्रस्तुत हुई है उसके आधार पर बिहार की गरीबी एवं गरीबों की संख्या ने बिहार की पिछले 25 वर्षों की सामाजिक न्याय की सरकार की उपलब्धियों की पोल खोल दी है। सभी मापदण्डों के अंतर्गत बिहार की गरीबी, पिछड़ापन, स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार तथा आवास राष्ट्रीय औसत तथा अन्य राज्यों की तुलना में इस सर्वेक्षण के मुताबिक, सबसे निचले पायदान पर बिहार प्रदर्शित हो रहा है। इस जनगणना ने सामाजिक न्याय के दावे को सर्वथा निरर्थक साबित कर दिया है और यह प्रमाणित हुआ है कि बिहार में अशिक्षा और शिक्षा की गुणवत्ता के अभाव के कारण राष्ट्रीय नियोजन में बिहार के नवयुवकों की हिस्सेदारी लगातार घटती जा रही है। इन वर्षों में बिहार के लोगों को रोजगार की तलाश में पलायन करना पड़ा है।

जहाँ 25 वर्ष पूर्व बिहार के नौजवानों की राष्ट्रीय नियोजन में 15 प्रतिशत हिस्सेदारी थी वह घटकर मात्र 5 प्रतिशत रह गयी है। एक सर्वेक्षण से यह तथ्य उजागर हुआ है कि संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित केन्द्रीय सेवाओं में भी बिहार के नवयुवकों की हिस्सेदारी साल-दर-साल घटती जा रही है। केन्द्रीय सेवाओं में पिछड़े वर्गों के लिये 27 प्रतिशत आरक्षण में बिहार के पिछड़े वर्गों के नवयुवकों के लिये सांकेतिक प्रतिनिधित्व ही प्राप्त हो रहा है। पिछड़े वर्गों के कोटे में अन्य राज्यों की हिस्सेदारी लगातार बढ़ती रही है, जबकि बिहार की हिस्सेदारी शिक्षा प्रणाली में त्रुटियों के कारण घटती जा रही है। बिहार के जो नवयुवक स्थान पा रहे हैं उनमें से अधिकांश बिहार के बाहर शिक्षा प्राप्त करने वाले हैं।

प्रसिद्ध पत्रकार श्रीमती तवलीन सिंह ने एक लेख में जिक्र किया है कि ''किसको चन्दन कहा, विष किसने दिया, सांप किसको कह रहे थे यह राज सिर्फ श्री नीतीश कुमार ही जानते हैं। लेकिन उनकी इस बात से इतना तो सब जान गये कि श्री लालू प्रसाद के साथ उनकी नयी दोस्ती में चन्दन से ज्यादा विष मिलेगा अक्सर किसी मजबूरी के कारण ही दो दुश्मनों में अचानक दोस्ती होती है। बिहार में ऐसा ही कुछ हुआ है। इन दोनों राजनेताओं को श्री मोदी के डर ने दोस्ती करने पर मजबूर कर दिया। भला कौन भूल सकता है कि मुख्यमंत्री व समाजसेवक श्री नीतीश कुमार की वह बात कि लालू के जमाने में कानून व्यवस्था की जगह जंगल राज था। पिछले लोक सभा चुनाव में इस उम्मीद में बिहार गये थे कि श्री नीतीश कुमार के दस वर्षों के शासन में परिवर्तन आया होगा लेकिन पटना की गलियों का हाल देखकर पत्रकार श्रीमती सिंह को ऐसा लगा जैसे किसी नरक में पहुँच गयी हूँ। हर जगह पर कूड़े का ढ़ेर हर गली में गंदी नालियाँ दिख रही थी। इतना ही नहीं हर मोड़ पर कोई न कोई ऐसा दृश्य दिख रहा था कि जो साबित करता था कि आर्थिक तौर पर बिहार अभी भी इतना ही बेहाल है जितना लालू-राबड़ी के राज में था। अगर जातिवाद और धर्मवाद के झगड़ों के कारण राज वापसी होती है तो यकीन मानिये बिहार का

1 27 जुलाई, 2015

भविष्य रौशन नहीं है। ऐसा इसलिए क्योंकि कानून व्यवस्था में आया सुधार भी बेअसर हो जायेगा। इसलिये सोच समझकर ही बिहार के लोगों को फैसला लेना होगा।''

श्रीमती सिंह की उपयुक्त टिप्पणी का विश्लेषण भारत सरकार के सामाजिक एवं आर्थिक जनगणना प्रतिवेदन के आधार पर बिहार सभी मापदण्डों के स्तर पर राष्ट्रीय औसत से निम्नतम है। ऐसा केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय के नेतृत्व में देश के 640 जिलों में हुई जनगणना के मात्र गाँवों से सम्बन्धित आंकड़े ही सामने आये हैं, वे सभी बिहार सरकार के उन सभी योजनाओं और कार्यक्रमों की पोल खोलते हैं, जो गाँवों और वहाँ की आबादी के लिये बनाये गये थे। बिहार सरकार के गाँवों के विकास के लिये आबंटित विपुल धनराशि खर्च करने की ऐसी सच्चाई सामने आयेगी इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। इस प्रतिवेदन से जो तस्वीर उभरी है वह बिहार सरकार एवं राजनीतिक नेताओं के लिये नीति-नियंताओं को गंभीर से चिन्तन-मनन करने की जरूरत है।

❖❖❖

विशेष राज्य का दर्जा आवश्यक[1]

बिहार को आर्थिक पिछड़ापन और विकासात्मक घाटे के कारण केन्द्र से विशेष राज्य का दर्जा मिले और विकास की गति को बनाये रखा जा सके इसलिए 15वें वित्त आयोग की अनुसंशा आवश्यक है।

भारत की अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय बदलाव आया है और हाल के वर्षों में वृद्धि दरें त्वरित हुई हैं। तथापि उदारीकरण के परिणामस्वरूप, पूंजी और श्रम का गरीब राज्यों से संपन्न राज्यों की ओर पलायन हो रहा है। जिन राज्यों को सुधार से लाभ न होकर बेहतर राज्यों की ओर निवेश योग्य संसाधनों के पलायन से हानि ही हुई है, उन्हें उन खास कमजोरियों को दूर करने के लिए अवश्य मदद की जानी चाहिए जिन्होंने उन्हें पिछड़ा बना रखा है। आमतौर पर निवेश दर को किसी अर्थव्यवस्था में विकास का एक महत्वपूर्ण कारक समझा जाता है जो अधिकांशत: अधिसंरचना से संबंधित होती है। बहरहाल, अधिसंरचना की गुणवत्ता किसी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए नितांत महत्वपूर्ण है क्योंकि वह निवेशकों व उत्पादकों को औद्योगिक गतिविधियां आरंभ करने के लिए प्रेरित करती है। बिहार की अर्थव्यवस्था की कमजोर स्थिति भौतिक अधिसंरचना की विपन्नता के जरिए पाली-पोसी गई है।

आर्थिक सुधारों से लाभान्वित न हुए बिहार को सहायता देना निहायत जरूरी है। बिहार के लिए अपने क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने का एकमात्र तरीका अधिसंरचनात्मक सुविधाओं में सुधार करना ही हो सकता है। इस कार्यभार को पूरा करने के लिए उसके पास कम वित्तीय संसाधन मौजूद हैं। जब तक अधिसंरचनात्मक व सेवा संबंधी स्तर इस अवस्था में न पहुँच जाएं कि वहाँ निजी निवेश का अच्छा-खासा प्रवाह होने लगे, तब तक इसके लिए आवश्यक संसाधनों को केन्द्रीय पुल से ही आना है। अधिसंरचना एक मुख्य मानदंड है। अगर एक अधिसंरचना सूचकांक बनाया जाए और संवितरण के स्तरों को इससे जोड़ दिया जाए, तो ऐसा करना बिल्कुल संभव है। निवेश वातावरण सूचकांक एक अधिक उपयुक्त सूचक हो सकता है। इसी प्रकार, बिजली की प्रति व्यक्ति खपत को संवितरण योजना में एक अलग कारक के रूप में शामिल करना जारी रखना चाहिए जिससे इसे पर्याप्त ऊँचा भार देने के जरिए बिहार जैसे गरीब राज्य के साथ न्याय हो। भारत में भारी आंचलिक विविधता और संसाधनों का असमान वितरण है। साथ ही, सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में भी काफी अंतर है। फलत: बिहार द्वारा राजस्व जुटाने की क्षमता में भी अंतर है। वित्त आयोग का राज्यों के लिए राजकोषीय अंतरणों का दृष्टिकोण मुख्यत: समानीकरण के सिद्धांत से निर्देशित होता है। वित्त आयोग संघीय ढांचे का प्रमुख स्तंभ है और यह ऐसी संस्था है जिसके जरिए राज्यों को संसाधनों का अंतरण तथा उसकी समीक्षा होती है। यह स्वीकार्य है कि बड़े पैमाने पर समानता हासिल करने का काम अकेले वित्त आयोग के अंतरणों पर निर्भर नहीं करता; असमानता कम करने में योजना आयोग और मंत्रालयों के अंतरणों को भी

1 31 मई, 2018

पूरक भूमिका निभानी चाहिये। योजना निर्माण प्रक्रिया के कामकाज की निगरानी करने वाली राष्ट्रीय विकास परिषद् के 1952 में गठन के समय इसे ही ''सभी नागरिकों द्वारा समान रूप से किए गए त्याग के जरिए कम विकसित अंचलों व तबकों का पूर्ण विकास सुनिश्चित करते हुए राष्ट्रीय विकास हेतु संसाधनों के निर्माण का कार्यभार सुपुर्द किया गया था।

बिहार देश का सबसे पिछड़ा राज्य है और सभी विकास सूचकों के लिहाज से योजना युग की लगभग शुरुआत से ही देश में सबसे निचले पायदान पर बरकरार है। इसका मुख्य कारण राज्य में सबसे कम योजना परिव्यय तथा निवेश का निम्न स्तर है। राज्य के प्रति किए गए अन्याय को दूर करने के लिए केन्द्र द्वारा कोई प्रयास नहीं किया गया। फलत: राज्य अभी भी हर तरह की समस्या से पीड़ित है। संयुक्त बिहार में खनिज सम्पदा के रॉयल्टी में पूरा न्याय नहीं किया गया। बिहार की खनिज संपदा के मूल्य के आधार पर भारत सरकार से मूल्य की तुलना में बहुत कम रॉयल्टी प्राप्त होती थी। अत: कोयला एवं अन्य खनिजों से प्राप्त हो रहे रॉयल्टी को मूल्य आधारित करने की माँग होती रही थी। जैसाकि पेट्रोलियम के लिए लागू है। केन्द्र सरकार मूल्य आधारित रॉयल्टी पर सहमत नहीं हुई। बिहार के हित में केन्द्र से अपील की जाती रही कि बिहार के आनुषांगिक उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की खरीदारी बिहार के बड़े उद्योगों द्वारा की जाए, जिसका लाभ छोटे उद्योगों को मिल सकेगा। राज्य के हित में भारत सरकार को यह सुझाव दिया गया कि बिहार के औद्योगिक उत्पाद जो अन्य राज्यों को भेजे जाते हैं, उन उत्पादों से बिहार को 'ट्रांसफर ऑफ स्टॉक' के नाम पर बिक्री कर से वंचित नहीं किया जाए। अत: केन्द्र सरकार से यह माँग की गयी कि राज्य सरकार को 'कनसाइनमेन्ट टैक्स' लगाने का अधिकार दिया जाए। माल भाड़ा समानीकरण के कारण बिहार बड़े उद्योगों से वंचित रहा क्योंकि बिहार की खनिज सम्पदा का मूल्य जो बिहार में था वह बिहार से बाहर मुम्बई, चेन्नई में भी रहता था। सामान्यत: बड़े उद्योग घराने बिहार में उद्योग स्थापित करने के बजाय बिहार से बाहर उद्योग स्थापित करते रहे। सभी बड़ी कम्पनियों का मुख्यालय बिहार से बाहर रहने के कारण आयकर से प्राप्त आय में वित्त आयोग ने बिहार को लगातार वंचित किया है।

❖❖❖

सेस और सरचार्ज का वितरण[1]

बिहार जैसे पिछड़े राज्य को विकसित राज्यों की श्रेणी में लाने के लिए विशेष सहायता एवं विशेष राज्य के दर्जे की आवश्यकता है तभी बिहार अन्य विकसित राज्यों की श्रेणी में आयेगा। बिहार में अभी भी राष्ट्रीय औसत से प्रति व्यक्ति आय काफी कम है। बिहार को अन्य राज्यों की श्रेणी में लाना कठिन होगा। इसलिए सेस और सरचार्ज वित्त आयोग के वितरण का हिस्सा बने ताकि बिहार जैसे राज्यों को लाभ मिल सके। पूर्व में बिहार को उचित केन्द्रीय सहायता नहीं मिली, जिसके परिणामस्वरूप आज भी बिहार बीमारू राज्य की श्रेणी से बाहर नहीं निकल सका है।

पूर्व में केन्द्र द्वारा जो राज्यों को संसाधन उपलब्ध कराये जाते थे, उनमें कोई भी विशेष नियमों का पालन नहीं होता था। इसके चलते अलग-अलग क्षेत्रों का विकास एक समान नहीं हो पाया। विशेष श्रेणी के राज्य के दर्जे का मुद्दा 1969 में सर्वप्रथम राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक में डॉ॰ गाडगिल के फार्मूले में कहा गया कि राष्ट्रीय विकास परिषद् की ओर से कुछ राज्यों को विकास के लिए विशेष राज्य का दर्जा दिया जाना चाहिये। इससे पहले तक केन्द्र के पास राज्यों को अनुदान देने का कोई स्पेसिफिक फार्मूला नहीं था। उस समय तक सिर्फ योजना आधारित अनुदान ही दिये जाते थे। डॉ॰ गाडगिल कमिटी ने जो रिपोर्ट दी, उसे राष्ट्रीय विकास परिषद् ने ही स्वीकृति प्रदान की। सामान्य राज्य को केन्द्र के द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता में 70 प्रतिशत कर्ज के रूप में और 30 प्रतिशत मदद के तौर पर मिलता है। लेकिन जिस राज्य को विशेष राज्य का दर्जा मिलता है, उसे केन्द्र से मात्र 10 प्रतिशत कर्ज के रूप में और बाकी 90 प्रतिशत मदद के तौर पर वित्तीय सहायता प्राप्त होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि स्पेशल केटेगरी स्टेट्स वाले राज्य को मिलने वाली केन्द्रीय सहायता में सीधे-सीधे 60 प्रतिशत की बढ़ोतरी हो जाती है। जिन राज्यों को विशेष राज्य का दर्जा दिया जाता है उनको जितनी राशि केन्द्र सरकार द्वारा दी जाती है उसका 90 प्रतिशत अनुदान के रूप में और बकाया 10 प्रतिशत बिना ब्याज के कर्ज के रूप में दिया जाता है।

कर्ज मुक्त केन्द्रीय सहायता के अलावा स्पेशल केटेगरी स्टेट्स के कई अन्य फायदे हैं। विशेष दर्जा प्राप्त करने वाले राज्यों में निजी पूँजी निवेश के तहत अगर कोई उद्योग या कारखाना स्थापित करना चाहे तो उसे-उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क, आय कर, बिक्री कर और कॉरपोरेट टैक्स जैसे केन्द्रीय करों से खास छूट मिल जाती है। इन करों में ऐसी रियायतों से उस राज्य में पूँजी निवेश का आकर्षण बढ़ जाता है और इस कारण वहाँ रोजगार के कई अवसर पैदा हो जाते हैं। विशेष राज्य की स्थिति में केन्द्रीय योजनाओं में देनदारी बहुत कम हो जाने के कारण जो बचत होती है, उसका इस्तेमाल राज्य अपनी अन्य योजनाओं के लिए करते हैं। इसी बहाने राज्य को अपनी आधारभूत संरचनाओं और दूसरे उद्योगों के विकास करने का मौका मिल जाता है।

---

1 04 अक्टूबर, 2018

राज्यों को विशेष राज्य का दर्जा देने के पीछे मुख्य उद्देश्य होता है उनका पिछड़ापन और क्षेत्रीय असंतुलन दूर करना। प्रति व्यक्ति आय और गैर कर राजस्व काफी कम हो, आधारभूत ढाँचे का अभाव हो। जनजातीय आबादी की बहुलता हो और आबादी का घनत्व काफी कम हो। इनके अलावा राज्य का पिछड़ापन, भौगोलिक स्थिति, सामाजिक समस्याएं भी इसका आधार है।

भारतीय संविधान में किसी भी राज्य के लिए विशेष श्रेणी के राज्य का कोई प्रावधान नहीं है। लेकिन पहले के योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद् ने यह मानते हुए कि देश के कुछ इलाके तुलनात्मक रूप से दूसरे इलाकों से पिछड़े हुए हैं, उन्हें अनुच्छेद 371 के तहत विशेष केन्द्रीय सहायता देने का प्रावधान किया। इसके आधार पर आगे चलकर कुछ राज्यों को विशेष राज्य का दर्जा दिया गया।

❖❖❖

बढ़ती बेरोजगारी[1]

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी से अपील करते हुए कहा है कि देश में बेरोजगारों की संख्या लगातार बढ़ रही है। वे एक शोध पत्र के आधार पर इन वर्षों में बड़ी संख्या में 6.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। मजदूर संरक्षण के अनुसार 2017–18 में विभिन्न आय समूह के बेरोजगारों की संख्या बढ़ती गई है। अद्यतन सर्वेक्षण के मुताबिक 20 से 24 एवं 25 से 26 आयु समूह के बीच बेरोजगारों की संख्या अधिक बढ़ी है। हालांकि इस बीच में उच्च शिक्षा में बढ़ोतरी होती जा रही है। 2017–18 में ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारों की संख्या 41.2 प्रतिशत हो गयी है और 20 से 24 आयु समूह में बेरोजगारों की संख्या 25 प्रतिशत होगी। यह भी सही है कि 15 से 19 आयु समूह में बेरोजगारों की संख्या घटी है। 20 से 29 आयु समूह में महिला बेरोजगारों की संख्या अधिक होती जा रही है। शिक्षा के प्रचार तथा विस्तार के बावजूद इन आयु समूह में पुरुष–महिला में बेरोजगारों की संख्या लगातार बढ़ी है जो केन्द्र तथा राज्य सरकारों के लिए चिन्ता का सबब बना हुआ है।

देश में बेरोजगारी की दर लगातार बढ़ रही है और शिक्षित बेरोजगारों की दरों में अच्छी–खासी वृद्धि हो चुकी है। सैण्टर फॉर मॉनिटरिंग इकोनामी ने हाल ही में अपनी रिपोर्ट में देश में बढ़ती बेरोजगारी के आंकड़े जारी करते हुए बताया कि वर्ष 2018 में 1.10 करोड़ भारतीयों ने नौकरियाँ गंवाई हैं। तीन दशक पहले नव–उदारवादी आर्थिक नीतियाँ लागू होने से पहले तक देश में सकल रोजगार में सरकारी नौकरियों का हिस्सा दो फीसदी होता था लेकिन उदारवादी आर्थिक नीतियों के बाद विभिन्न क्षेत्रों के निजीकरण के चलते नौकरियों में लगातार कमी आ रही है। रोजगार युवाओं का अधिकार है। अब सवाल उठता है कि क्या सभी बेरोजगार युवाओं, खासतौर पर शिक्षितों को रोजगार मुहैया कराना सरकार की ही जिम्मेदारी है। बेरोजगारी हर दौर में समस्या बनी रही है, जिसे दूर करने का वादा हर सरकार ने किया, लेकिन यह समस्या अब विकराल रूप ले चुकी है। युवाओं का गुस्सा फूट रहा है। देश में कितनी नौकरियाँ पैदा होंगी, यह सरकार की नीतियों से तय होता है। आज ऐसी धारणा बन चुकी है कि नौकरियाँ देने की जिम्मेदारी केवल सरकार की है, जबकि नौकरियाँ तो योग्यता से मिलती हैं। सरकारें घोषणाएं करती हैं कि निजी क्षेत्र में हजारों करोड़ का निवेश होगा। वह निवेश के लिए सारे दरवाजे खोल देती हैं। निवेश होगा तो हजारों लोगों को नौकरियाँ मिलेंगी लेकिन परिणाम सबके सामने हैं। राष्ट्रीय स्तर पर बेरोजगारी का परिदृश्य किसी से छिपा हुआ नहीं है।

अर्थव्यवस्था के अनुपात में रोजगार के अवसरों का नहीं बढ़ना लम्बे समय से चिन्ता का विषय बना हुआ है। वर्तमान में देश बेरोजगारी की गंभीर समस्या से जूझ रहा है। आर्थिक परिदृश्य पर नजर रखने वाली संस्था सेन्टर फॉर मॉनिटरिंग इण्डियन इकॉनोमी की ताजा रिपोर्ट के अनुसार दिसम्बर, 2018 में बेरोजगारी दर बीते 27 महीने में सबसे ज्यादा रही और 7.38 फीसद तक जा

1 04 जून, 2019

पहुँची। सरकार को समझना होगा कि रोजगार विहीन विकास हमें आर्थिक असमानता की गहरी खाई की ओर अग्रसर करेगा। हमें विकास को रोजगारपरक बनाना होगा। इसके लिए आवश्यक है कि सरकार रोजगार प्रदान करने वाले विशिष्ट क्षेत्रों की पहचान करे और उसे प्राथमिकता दे। उद्योग जगत की यह शिकायत भी है कि वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) लागू होने के बाद से करों के मामलों में उसकी स्थिति कमजोर हुई है। कपड़ा उद्योग के साथ दिक्कत यह भी है कि हमारी फैक्टरियाँ प्रतिस्पर्धी देशों की तुलना में निहायत छोटी हैं। इससे लागत बढ़ती है। आंकड़े बताते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरोजगार में खासी कमी आई है और उसके स्थानों पर दिहाड़ी मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुई है। एक तरफ जीडीपी तेजी से बढ़ रहा है, लेकिन रोजगार में वृद्धि तो दूर, कमी ही दिखाई दे रही है। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार अपने विकास को रोजगारोन्मुखी बनाये।

❖❖❖

बिहार में उद्योगिकरण की रफ्तार[1]

औद्योगिक नीति के बावजुद विभिन्न जिलों में पिछले 8 वर्षों से बिहार में औद्योगीकरण की रफ्तार सुस्त है। 80 के दशक में प्रत्येक जिले में एक-एक मध्यम उद्योग स्थापित करने का निर्णय लिया गया था और सभी जिलों में उद्यमियों को पूंजी सहायता देने की भी नीति बनाई गई थी, साथ ही उद्योग उत्पादित वस्तुओं के लिए राज्य सरकार द्वारा खरीद के लिए 15 प्रतिशत मूल्य सहाय देने की भी नीति बनाई गई थी। परंतु 1990 के बाद और विशेषकर 2005 के बाद से राज्य सरकार स्थानीय उद्यमियों के लिए पूंजी बाधा दूर करने की दिशा में विफल रही है।

राज्य में बंद 16 चीनी मिलों की पुनर्स्थापना की नीति बनाई थी। परन्तु इस नीति के बावजूद रैयाम, सकरी, लौहट, समेत 16 मिलों में से केवल दो चीनी मिल ही चम्पारण में पुनर्जीवित की जा सकी हैं। यह बड़ा ही विस्मयकारी रहा है कि देश के बड़े-बड़े कॉर्पोरेट क्षेत्र के बड़े-बड़ें उद्योगपतियों द्वारा बिहार में पूँजी निवेश के लिए अश्वासन देने के बावजूद उद्योगपतियों ने पूँजी निवेश नहीं किया।

लघु उद्योग इकाइयों के राज्यस्तरीय अध्ययन के अनुसार, बिहार की 70 प्रतिशत लघु उद्योग इकाइयाँ रुग्न अथवा बंद हैं। अभी तक प्राप्त सूचना से यह स्पष्ट हुआ है कि 2005 तक 25000 ईकाइयाँ और उसके बाद 15000 ईकाईयाँ बंद हुई हैं। हालांकि आवश्यक सहायता देकर 60 प्रतिशत इकाइयों को पुनर्वासित-पुनर्जीवित किया जा सकता है। इससे उनकी पूंजीगत परिसंपत्तियाँ फिर से उत्पाद उपयोग में लग सकेंगी। यह रोजगार के विशाल अवसर उपलब्ध कराने के अलावा सकल राज्य घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण वृद्धि में भी योगदान करेगा। सरकार द्वारा उसे रुग्न/बंद इकाइयों के पुनर्वास हेतु कुल ऋण का न्यूनतम 50 प्रतिशत विशेष सब्सिडी अनुदान के रूप में प्रदान किया जा सकता है।

बिहार राज्य औद्योगिक निवेश सलाहकार परिषद् की बैठक में औद्योगिक विकास को गति देने के लिए रोड-मैप तैयार करने का निर्णय भी लिया गया। यह रोड-मैप देश के कॉरपोरेट दिग्गज राज्य सरकार के साथ मिलकर तैयार करना था। इसके लिए परिषद् की विशेष कमिटी बनाने का फैसला किया गया था जिसमें विशेष बल एग्रो-इंडस्ट्री, ग्रामीण विकास और रोजगार पर दिया गया था। परन्तु यह विस्मयकारी है कि इस दिशा में प्रगति अभी तक नहीं हो पायी है। बिजली संकट दूर करने की कार्य योजना बनाने का निर्णय लिया गया था जिसमें सफल सुधार संभव नहीं हो पाया है। कृषि आधारित उद्योग, वैल्यू एडेड फार्मिंग और ग्रामीण विकास पर विशेष ध्यान दिये जाने का फैसला हुआ था। शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अन्य क्षेत्रों में निवेशकों को आकर्षित करने की योजना बनाने का निर्णय हुआ। यह उम्मीद की गई थी कि प्रदेश में अगले दो साल में बड़ा निवेश होगा। राज्य उद्योग प्रोत्साहन बोर्ड ने कुल 838 कम्पनियों के प्रस्ताव में सहमति दी थी।

---

1 10 मार्च, 2015

इनमें 31 कम्पनियाँ ऐसी थी जो दस करोड़ रुपये से अधिक की पूंजी लगाती। पांच करोड़ से कम पूंजी लगाने वाली कम्पनियों की संख्या ज्यादा बतायी गयी थी। इन उद्योगों में सीमेंट, राइस मिल, कोल्ड स्टोरेज, बिस्कुट, रिफाइंड आयल, खाद्य प्रसंस्करण, चीनी मिल, डिटर्जेंट और शैक्षणिक संस्थान जैसी इकाइयाँ शामिल थी। कुल प्रस्तावों में से अभी तक बहुत कम काम शुरू हो पाया है। यह कुल स्वीकृत प्रस्तावों का 10 प्रतिशत ही है।

ऐसी सूचना मिली है कि जिन कुछेक कंपनियों ने पहले प्रस्ताव दिये थे अब वे काम में दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं। इसी तरह राज्य सरकार ने उद्यमियों के प्रोत्साहन के लिए जो नयी औद्योगिक नीति लागू की उसमें बिजली की कमी बड़ी बाधा बनी हुई है, इसलिये बड़े उद्योगपति इस ओर अपना रुख नहीं कर रहे हैं। राज्य सरकार को कॉर्पस फंड और वेंचर फंड नाम की नई योजनाएं शुरू करनी चाहिये। राज्य सरकार लघु, छोटे और मझौले क्षेत्र के उद्यमियों की नई पीढ़ी तैयार करने में अब तक विफल रही है। राज्य में कमजोर आर्थिक पृष्ठभूमि वाले उद्यमियों को आगे आने का मौका नही मिला है। इससे राज्य में रोजगार के साथ-साथ विनिर्माण क्षेत्र के विकास की तरक्की का मौका नहीं मिला है। बिहार में निवेश के कई अच्छे प्रस्ताव आये परंतु शुरुआती दौर में ही लटक जाते रहें हैं। बैंक राज्य में कर्ज देने से कतराते हैं, जिस वजह से राज्य में उद्यमी पैदा नहीं हो पा रहे हैं, इसलिए राज्य सरकार को कॉर्पस फंड तैयार करना चाहिये। कॉर्पस फंड के तहत राज्य सरकार कर्ज के रूप में एक निश्चित रकम उद्यमियों को दे सकती है।

❖❖❖

बिहार में औद्योगिक और आर्थिक विकास[1]

हाल के विश्व बैंक की रिपोर्ट का संक्षिप्त सार यह है कि आर्थिक एवं सामाजिक विकास के मामले में देश में गुजरात को सबसे अव्वल और बिहार को 21वाँ राज्य करार दिया है। मसलन जात-पात का बोलबाला प्रदेश के सामाजिक विकास के मामले में पिछड़ने के एकाधिक कारणों में सबसे पहला कारण है। क्या यह सच नहीं है कि प्रदेश में दलितों, पिछड़ों और हाशिये पर के लोगों को सामाजिक न्याय और सत्ता-व्यवस्था में भागीदारी दिलाने के नाम पर कुत्सित जातीय राजनीति का जो कोहराम मचा है उसकी कीमत प्रदेश की आम जनता को चुकानी पड़ रही है? सरकार खस्ताहाल वित्तीय स्थिति के बावजूद राजकोष के धन का यदि भ्रष्ट से भ्रष्टतम तरीके से दुरुपयोग करने में भी जब शर्म न महसूस करे तो प्रदेश को दुर्दशा से क्या कोई बचा सकता है। आर्थिक एवं सामाजिक विकास के मामले में बिहार का लाइन में सबसे पीछे खड़े होना इसी का नतीजा नहीं है? तभी तो अपनी पहले रपट में विश्व बैंक ने जात-पात की समस्या को लाइलाज बतलाते हुए कहा था कि 'प्रदेश में सामाजिक समरसता लाना संभव नहीं है।' रिपोर्ट में जनता के पैसे पर सत्ता और व्यवस्था की सुख-सुविधाएँ प्राप्त कर रहे नेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों में जनता के प्रति जिम्मेदारी बोध न होने पर भी अफसोस जाहिर किया था।

विश्व बैंक के रिपोर्ट में उल्लेखित तथ्यों की सम्पुष्टि सामाजिक, आर्थिक एवं जातीय सर्वेक्षण रिपोर्ट 2011 के अनुसार 25 वर्षों में बिहार देश का सबसे गरीब और पिछड़ा राज्य प्रमाणित हुआ है। यहाँ गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या पर विचार करें या अशिक्षा व पढ़ाई बीच में छोड़ने, स्वास्थ्य की देखभाल, या फिर ग्रामीण विकास की बात करें और निजी सार्वजनिक एवं संयुक्त धन निवेश पर बात करें तो इस रिपोर्ट के अनुसार बिहार हर बिन्दु पर निचले पायदान पर खड़ा पाया जाता है। यहाँ प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय सबसे कम है। सबसे चौंकाने वाली बात तो यह है कि कक्षा दस तक आते-आते पढ़ाई छोड़ने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या लगभग 84 प्रतिशत है। हैरानी की बात तो यह है कि राज्य की गरीबी के लिए एक ओर फंड की कमी का रोना रोया जाता है और दूसरी ओर विभिन्न मदों में जो सहायता राशि मिलती है उसका सही एवं पूरा उपयोग स्वस्थ राजनीतिक मानसिकता के अभाव और विषम सामाजिक स्थितियों के कारण नहीं हो पाता है।

हाल में जारी विश्व बैंक की रिपोर्ट का सार यह है कि दूसरे विकसित राज्यों की तो छोड़िये, अपने पड़ोसी राज्यों से भी बिहार पीछे हैं। औद्योगिक निवेश के लिए जरूरी सुविधाएं नहीं हैं। वर्ल्ड बैंक की रिपोर्ट ने आइना दिखाया है कि बिहार में निवेश को आकर्षित करने के लिये ठोस और दिखने वाले पहल की जरूरत है, तभी निवेशकों में भरोसा जगेगा और यहाँ पैसा लगाने की मन:स्थिति तैयार होगी, क्या राजनीतिक दल इसे गंभीरता से लेंगे?

❖❖❖

1 16 सितम्बर, 2015

बिहार की प्रगति[1]

हाल में जीबी पंत संस्थान, इलाहाबाद के अर्थशास्त्री भाष्कर मजूमदार ने विश्व बैंक की रिपोर्ट का संक्षिप्त सार बिहार सरकार को भेजा। इस रिपोर्ट के अनुसार आर्थिक एवं सामाजिक विकास के मामले में देश में गुजरात को सबसे अव्वल और बिहार को सबसे फिसड्डी करार कर दिया है। रिपोर्ट में प्रदेश में सामाजिक पिछड़ेपन के जो कारण बतलाये गये हैं वे काबिले गौर हैं।

क्या प्रदेश के नेतागण और अधिकारीगण इस चुनौती को स्वीकार करेंगे? करेंगे कैसे? आखिर इन्हीं सब अविवेकपूर्ण निर्णयों का यह नतीजा है। विश्व बैंक ने इस समस्या के लिए प्रदेश के राजनीतिक दलों को ही जिम्मेदार ठहराया है। रिपोर्ट में जनता के पैसे पर सत्ता और व्यवस्था की सुख–सुविधाएं प्राप्त कर रहे नेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों में जनता के प्रति जिम्मेदारी बोध न होने पर भी अफसोस जाहिर किया गया है। महिलाओं को पुरुषों के समान दर्जा नहीं दिया जा रहा है और विकास कार्यों की नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी शून्य के बराबर है।' बिहार प्रदेश की यह बदहाली साबित करती है कि प्रदेश में 'जन सामान्य की विचारधारा कबीलाई है' और यहां 'जाति विशेष के लोगों को ही सरकारी योजनाओं का लाभ पहुंच रहा है।' संचार और ऋण सुविधा उपलब्ध न होना प्रदेश की राजनीति और व्यवस्था में मची अंधेरगर्दी का ही परिणाम है। उम्मीद की जानी चाहिए कि विश्व बैंक की आंख खोल देने वाली इस रपट से प्रदेश के राजनीतिज्ञों, अधिकारियों और प्रबुद्ध नागरिकों की आंखें खुलेंगी।

''राजीव गांधी इंस्टीच्यूट ऑफ कान्टेंपरेरी स्टडीज एण्ड इन्डस्ट्रीयल एनालिसिस'' के द्वारा भारत के प्रत्येक राज्य में एक व्यापक अध्ययन किया गया जिसका विषय था ''हाउ आर द स्टेट्स डूइंग'' अर्थात राज्य अपना कार्य एवं दायित्व किस तरह निभा रहा है? इस विषय पर एक व्यापक रिपोर्ट तैयार की गयी। राज्यों के विकास की गति को नापने के लिए जो मापदंड तय किए गए उनमें से प्रमुख थे: (1) राज्यों में पूंजी निवेश का माहौल (2) आज तक की उपलब्धियां (3) आधारभूत सुविधाएँ (4) वित्तीय अनुशासन (5) कानून और व्यवस्था की स्थिति (6) उपभोक्ताओं के अनुभव (7) मीडिया की भूमिका (8) लघु उद्योगों की स्थिति (9) कृषि संबंधी कार्य। विश्व बैंक ने अपनी रिपोर्ट को उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त कुछ अन्य क्षेत्रों तक भी विस्तारित किया और जो नतीजे सामने आए वे चौंकाने वाले हैं। इन नतीजों में कहीं कोई पूर्वाग्रह नहीं, कोई राजनीति नहीं, किसी व्यक्ति विशेष के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं है। निहायत वस्तुपरक और तथ्यपरक इन नतीजों का एक ही निष्कर्ष है कि जिन 14 विषयों का अध्ययन किया गया है उनमें अन्य राज्यों में तो किसी मद में कोई उपर है और कोई नीचे है, किन्तु बिहार प्रदेश तो सभी क्षेत्रों में प्रगति की दृष्टि से सबसे नीचे है। इस रिपोर्ट के अनुसार सभी क्षेत्रों में इसकी उपलब्धि शून्य है।

❖❖❖

---

1 10 अक्टूबर, 2015

विकास की चुनौती[1]

बिहार में विकास की चुनौती बहुत बड़ी है, क्योंकि यहाँ गरीबी बेहद और लगातार बनी हुई है, सामाजिक संगठन का ढाँचा उलझा हुआ है, बुनियादी संरचनाएँ संतोषजनक नहीं हैं और शासन–तंत्र कमजोर है। बिहार की लगभग 40 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे बसर करती है जो भारत में सबसे अधिक है। गरीबी के सम्बन्ध में इसकी जो विषमता है वह बताती है कि राष्ट्रीय स्तर पर उसमें कितना अन्तर है और वह राष्ट्रीय औसत से बहुत अधिक बढ़ा हुआ है। गरीबी दूर करने की दर राष्ट्रीय औसत से बहुत कम रही। इसके साथ ही मिलेनियम डेवलपमेंट गोल की दिशा में देश के स्तर पर जो प्रगति हुई उसके मुकाबले बिहार की प्रगति काफी फीकी रही। राज्य की शैक्षणिक तस्वीर सुधारने के लिए जो योजनाएं लागू की गयीं, उनका मकसद व्यवहार में साक्षरता का प्रतिशत बढ़ाने तक सीमित रहा। इससे स्कूलों में नामांकन की दर में तो इजाफा हुआ, लेकिन बच्चों की प्रगति का प्रश्न गौण हो गया, बल्कि सीखने की उनकी गति और धीमी हो गयी। ज्यादातर बच्चे साधनहीनता और शैक्षणिक वातावरण के अभाव में स्कूल छोड़कर चले जाते हैं, जो बचते हैं उनमें दसवीं कक्षा के बाद पढ़ाई की इच्छाशक्ति नहीं रह जाती है। इसके बाद भी कुछ बच्चे बच गये तो वे प्रतियोगिता के इस वातावरण में निजी विद्यालयों के बच्चों के सामने टिक नहीं पाते हैं। शिक्षा के लिए पर्याप्त बजट का प्रावधान करना चाहिए। वहीं भूमि सुध ार कार्यक्रम महत्वपूर्ण मुद्दा आज भी बना हुआ है। भूमि सुधार संबंधी नीति में इस तरह के उपाय करने की आवश्यकता है कि जमीन के मामले में समाज में समानता आये, भूमि संबंधों में किसी तरह के शोषण की गुंजाइश नहीं रहे। हदबंदी से फाजिल जमीन का वितरण हो, कृषि भूमि की चकबंदी की जाए तथा भूमि–अभिलेखों को अद्यतन बनाया जाए। सरकार ऐसी व्यवस्था शुरू कर सकती है जिससे सभी जमीनों के मालिकाना हक के अपडेट कागजात तैयार हो सकें।

शिक्षा का अभाव, कमजोर स्वास्थ्य और स्वच्छ पेयजल एवं स्वच्छ वातावरण की कमी का प्रत्यक्ष प्रभाव गरीबी को बरकरार रखने पर रहा है। बिहार में विभिन्न प्रकार का सामाजिक वर्गभेद बड़े पैमाने पर है और वह कई दशकों से लगातार चलता आ रहा है। शिक्षा क्षेत्र में नामांकन और साक्षरता की दरें देश के औसत से बहुत कम है जिससे पता चलता है कि स्त्री–पुरुष में और समाज के विभिन्न वर्गों में कितना बड़ा अन्तर है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी कई ऐसे उदाहरण हैं जिनमें बिहार सबसे पिछड़ा हुआ है। शिशु–मृत्यु की दर अधिकांश अन्य राज्यों से अधिक है। शिशु–पोषाहार के मामले में बिहार की स्थिति पूरे देश की तुलना में गई गुजरी है। सामाजिक सेवा क्षेत्र में कम उपलब्धि का मुख्य कारण यह रहा है कि इसमें अनेक त्रुटियाँ रहीं। इस क्षेत्र में सरकार की अहम् भूमिका रहती है। शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ी कमजोरी यह रही है कि शिक्षा–संस्थाओं में शिक्षकों की नियुक्ति नहीं हुई है जो शिक्षक हैं, भी वे उपस्थित नहीं होते हैं। प्रशासनिक कमजोरियों ने इस समस्या को अधिक उलझा दिया है। वर्तमान राष्ट्रीय मानदंड के

1 16 फरवरी, 2017

मुकाबले स्वास्थ्य उपकेन्द्र और प्राथमिक स्वास्थ्य क्लिनिकों की संख्या कम है। जो उपकेन्द्र और क्लिनिक हैं भी वे समस्याओं से ग्रस्त हैं। वहाँ सुविधाओं का अभाव है, बिजली की कमी के चलते यंत्रों और साज-सामानों का उपयोग नहीं हो रहा है, लगातार दवाओं और टीकों की आपूर्त्ति बंद रहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी स्थिति हर जगह देखी जाती है। सरकारी स्वास्थ्य-सेवा केन्द्रों का सहारा लेने वाला केवल 1-5वाँ हिस्सा ही होता है। सरकार की ओर से मिलने वाला आर्थिक सहायता गरीबों तक नहीं पहुँच पाता। शिक्षा और स्वास्थ्य के नाम पर जो भी आर्थिक सहायता प्राप्त होते हैं वे सुखी-सम्पन्न लोगों द्वारा डकार लिये जाते हैं।

बिहार में अनेक गरीबी निवारण करने वाली योजनाएँ चलायी जा रही हैं जिन्हें केन्द्र सरकार चला रही है और उद्देश्य है कि उनसे गरीबों तथा समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को जीविका मिले और उनकी दशा में सुधार हो। किन्तु, इन योजनाओं से अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाया है क्योंकि उनका उपयोग गलत ढंग से हो रहा है और ऐसी कोई संस्था नहीं है जिसके माध्यम से सरकारी निधि का उपयोग प्रभावकारी ढंग से हो सके। जिन लोगों को यह लाभ पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया है उनसे भिन्न लोगों के बीच धन का इस्तेमाल होता है। यह एक गंभीर समस्या है।

❖❖❖

निवेश की समस्या[1]

बिहार का धन निवेश स्तर गिरने का मुख्य कारण रहा है कि विनिवेश का वातावरण अनुकूल नहीं है। इसके अनकों कारण है जिनमें शामिल हैं घटिया आधारभूत संरचना (सड़क, बिजली, पानी, कमजोर वित्तीय साधन, उधार मिलने का अभाव एवं कमजोर शासन व्यवस्था)। अगर कोई विनिवेश करना चाहता है तो उसे राजकीय समर्थन प्राप्त नहीं होता है इसलिए सरकार की विकास नीति में प्राथमिकता देने वाली दो महत्वपूर्ण बातें हैं:- पहला बिहार का कमजोर आधारभूत संरचना जिसे मजबूत करने की आवश्यकता है। वहीं दूसरा लचर कानून व्यवस्था जिसे सुदृढ़ बनाने के लिए इस दिशा में लम्बे अर्से से चली आ रही समस्या को सुधारना होगा। बिहार की लगातार गिरती जा रही कानून व्यवस्था निश्चय ही जोखिम भरा है जिससे लोग विनिवेश करने से डरते हैं। बिहार के वृहत् प्रशासनिक सुधार कार्यावली को कार्य रूप देना होगा। इस समय निजी योजनाओं के तहत बिहार की भूमिका अन्य राज्यों के बीच न्यूनतम रही है। पिछले वर्षों में बिहार सरकार की ओर से किये जाने वाला धन निवेश कम रहा क्योंकि राज्य की अपनी वित्तीय स्थिति कमजोर है। क्षत-विक्षत शिक्षा, कमजोर स्वास्थ्य व्यवस्था, स्वच्छ वातावरण की कमी का प्रत्यक्ष प्रभाव पूरे बिहार में गरीबी बरकरार रखने में सहायक है। सड़क निर्माण, बाढ़ नियंत्रण तथा बच्चों की शिक्षा पर अधिक बल देते हुए विकास के लिए बिहार में विनिवेश का वातावरण बनाना होगा ताकि बिहार कृषि और मानव संसाधन स्रोत का अधिकाधिक उपयोग हो सके।

बिजली क्षेत्र की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि इससे पारम्परिक रूप से बिहार क्षेत्र में नुकसान बराबर लगता आया है। बुनियादी ढाँचे में मोटे निवेश की जरूरत है। राज्य सरकार अपने स्तर पर कोशिश कर रही है। लेकिन अकेला अपने बूते ऐसा करना मुमकिन नहीं है। बुनियादी ढाँचे में राज्य राष्ट्रीय स्तर से काफी पीछे है। बिजली के पैमाने पर बिहार की स्थिति काफी खराब है। बिहार आज भी अपनी जरूरत की 80 प्रतिशत बिजली केन्द्रीय पुल से खरीदता है। केन्द्रीय पुल से बिहार को केवल 2000-2200 मेगावाट बिजली मिलती है। जबकि जरूरत 5000 मेगावाट से ज्यादा की है। माँग बढ़ने पर स्थिति और खराब हो जाती है। वितरण के मोर्चे पर व्यवस्था कमजोर होने से घाटा काफी ज्यादा होता है। इसी वजह से पड़ोसी राज्यों की तुलना में प्रतिवर्ष बिजली खर्च कम है। कई पैमानों पर बिहार को बड़े स्तर पर केन्द्र सरकार के मदद की दरकार है।

अर्थव्यवस्था में निजी निवेश बढ़ाने की आवश्यकता है। उद्यमशीलता और रोजगार बढ़ाने की नई योजनाओं की शुरुआत की जा सकती है। खासतौर पर युवाओं और महिलाओं को केन्द्र में रखकर नई पहल की जा सकती है। कृषि से जुड़े खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र के लिए नई पहल की आवश्यकता है। कोल्ड स्टोरेज तथा वेयर हाउस को बढ़ावा देने के साथ ही कृषि कर्म को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। इस बजट में गाँव और खेती को ज्यादा तरजीह मिलनी चाहिये। राज्य सरकार केन्द्रीय धन का बंदर-बांट करती रही है। योजना का पूरा लाभ किसानों तक पहुँचे ऐसा

1 27 फरवरी, 2017

प्रभावकारी प्रशासन तंत्र बिहार सरकार सृजित करने में विफल रही है। केन्द्र सरकार से बड़ी राशि प्राप्त होने के बावजूद किसानों को मदद नहीं मिली है। समय पर केन्द्र सरकार को उपयोगिता प्रमाण-पत्र राज्य सरकार से प्राप्त नहीं होती है। सिंचाई संसाधन मुहैया कराने के लिए धन आबंटित होता रहा है, परन्तु उस धन का भी उपयोग नहीं हो रहा है।

❖❖❖

उद्योगों को प्रोत्साहन[1]

बिहार में उद्योग और निवेश विशेष राज्य का दर्जा मिलने से ही संभव है। बिहार राज्य में औद्योगीकरण के लिए निवेशकों को आकर्षित करने में सरकार विफल रही है। इस पृष्ठभूमि में भारत सरकार की औद्योगिक सहायता सुनिश्चित करने के लिए 2006, 2011 एवं 2016 में बिहार औद्योगीकरण प्रोत्साहन नीति बिहार सरकार ने घोषित की परन्तु हाल में जारी विश्व बैंक की रिपोर्ट का सार यह है कि दूसरे विकसित राज्यों की तो छोड़िये, अपने पड़ोसी राज्यों से भी बिहार पीछे है। औद्योगिक निवेश के लिए जरूरी सुविधाएं नहीं हैं। वर्ल्ड बैंक की रिपोर्ट ने आईना दिखाया है कि बिहार में निवेशकों को आकर्षित करने के लिये ठोस पहल की जरूरत है, तभी निवेशकों में भरोसा जगेगा और यहाँ पैसा लगाने की मनःस्थिति तैयार होगी। क्या राजनीतिक दल इसे गंभीरता से लेंगे? बिहार की पुरानी मीलें एक-एक कर बंद होती गयीं और नये उद्योग नहीं लग पाये हैं। लगभग एक दशक से बिहार राज्य में उद्योग में पूँजी निवेश नहीं होने कारण आर्थिक स्थिति बेहद खराब रहा है।

औद्योगिक विकास के लिए राज्य में बेहतर सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए बार-बार के आश्वासन तथा घोषणाओं के बावजूद यहाँ की इकाइयाँ लगातार बंद होती जा रही है, जो चल रही हैं, उनमें से अधिकांश रुग्ण हैं। यही हाल राजधानी स्थित पाटलिपुत्र औद्योगिक क्षेत्र की है। पिछले दस साल में पाटलिपुत्र औद्योगिक प्रांगण एवं औद्योगिक क्षेत्र में नये उद्योग नहीं लगे हैं बल्कि कई पुरानी इकाइयाँ बंद हो गई। बिहार सरकार ने राजधानी में इस औद्योगिक प्रांगण की स्थापना विशेष तौर पर लघु उद्योग के विस्तार के लिए की थी। लेकिन बाद के दिनों में अनेक बड़ी यूनिटें भी यहाँ लगी। यहाँ से तैयार माल दूसरे राज्यों में जाने लगा। फिलहाल यहाँ स्थापित 125 इकाइयों में से केवल 25 ही किसी तरह चल रही है। इससे यहाँ की गंभीर स्थिति का पता चलता है। बिहार औद्योगिक संघ रुग्ण यूनिटों का डायग्नोसिस स्टडी करवा रही है ताकि बंद यूनिटों का मूल कारण पता लगाकर यह तय किया जा सके कि उन्हें पुनः चालू किया जा सकता है। यूनिटों के बंद होने के पीछे मुख्य रूप से विभाग ही जिम्मेवार है। अधिकारियों की दोहन नीति ने उद्योगों को बंद करने पर मजबूर किया है।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने बिहार के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए, बिहार को राष्ट्र की मुख्य धारा में जोड़ने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार द्वारा 21 जिलों को पिछड़ा घोषित कर उन्हें औद्योगीकरण के लिए विशेष कर राहत देने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा राहत की अधिसूचना जारी होने के चार वर्षों के बावजूद भी बिहार सरकार औद्योगिक विकास में सफल नहीं हो रही है। बिहार के औद्योगीकरण में तीव्रता लाने एवं बड़े उद्यमियों को आकर्षित करने के उद्देश्य से ही श्री मोदी ने दो प्रमुख रियायतें यानी 15 प्रतिशत करों में छूट और पूँजी निवेश पर 15 प्रतिशत विशेष छूट देने की घोषणा एवं अधिसूचना जारी की।

1 09 अक्टूबर, 2018

अब अतीत में झाँकने का समय नहीं है। आज समय है बिहार के हक को लेकर आर–पार की लड़ाई लड़ने का, संघर्ष करने का। वोट की राजनीति से ऊपर उठकर बिहार के लिए एकजुट होकर संघर्ष करना होगा। यह बात राजनीति की नहीं बल्कि बिहार की प्रगति ही एक मात्र ध्येय होनी चाहिये। आज की मूल्यविहीन राजनीति के खेल में बिहार की जनता अपने आपको अत्यंत असहज महसूस करने लगी है। यह नितान्त आवश्यक है कि बिहार राज्य पर केन्द्र सरकार के ऋण का जो बोझ है उससे बिहार को मुक्ति दे दी जाए जैसा कि अनेक अवसरों पर कई अन्य राज्यों के मामलों में किया जा चुका है। वस्तुत: जरूरत इस बात की है कि बिहार को विशेष कोटि के राज्य का दर्जा दिया जाए और उसी के अनुरूप वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जाए।

सरकार हमेशा विकास को राष्ट्र की सबसे बड़ी प्राथमिकता मानती आयी है और मानना भी चाहिये, क्योंकि सरकार का गठन इसी उद्देश्य से होता है। नि:संदेह हर सरकार इसके लिए योजनाएं बनाती है और उनके कारगर क्रियान्वयन में निजी क्षेत्र को भी भागीदार बनाती है। दूसरी ओर सोच–समझकर जोखिम उठाने वाले साहसी उद्यमी ही राष्ट्र के विकास को सही दिशा में रफ्तार देते हैं।

❖❖❖

बिहार में औद्योगिक विकास कैसे हो[1]

बिहार के 38 में से 21 जिलों को पिछड़ा क्षेत्र के तौर पर अधिसूचित किया गया, जिसके तहत इन जिलों में नया विनिर्माण संयंत्र, भवन के निर्माण और आयकर में 15 प्रतिशत की छूट मिल रही है। केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड ने इस बारे में अधिसूचना जारी कर सम्बन्धित जिलों को आयकर कानून की धारा-32, 32(एडी) के तहत ला दिया है। पिछले वित्तीय वर्ष की शुरुआत से इन जिलों में भवन, नये संयंत्रों एवं मशीनों में निवेश करने पर उद्यमियों को 15 प्रतिशत कम आयकर देना अनुमान्य हो गया। अधिसूचित जिलों में पटना, नालंदा, भोजपुर, रोहतास, कैमूर, गया, जहानाबाद, औरंगाबाद, नवादा, वैशाली, शिवहर, समस्तीपुर, दरभंगा, मधुबनी, पूर्णियां, कटिहार, अररिया, जमूई, लखीसराय, सुपौल और मुजफ्फरपुर शामिल हैं।

बिहार की पुरानी मिलें एक-एक कर बंद होती गयीं और नये उद्योग नहीं बन पाये हैं, 36 रुग्ण बंद उद्योग चालू नहीं हुए हैं। उनमें निम्नांकित इकाइयों के पुनर्वास के कुछ मामले पर तत्कालीन 80 के दशक में सरकार का निर्णय था:- उसमें (1) रोहतास इन्डस्ट्रीज लि॰ (2) अशोक पेपर मिल, दरभंगा (3) डुमराँव टैक्सटाइल्स लि॰ डुमराँव (4) गंगा वनस्पति लि॰, रोहतास (5) हथुआ वनस्पति लि॰ (6) श्री सारण इंजीनियरिंग वर्क्स (7) फुलवारीशरीफ काटर मिल, पटना (8) कटिहार जूट मिल (10) ठाकुर पेपर मिल, समस्तीपुर (11) सर्वश्री हथुआ वनस्पति (12) सर्वश्री डुमराँव टैक्सटाइल्स लि॰ (13) सर्वश्री बिहार कॉटन मिल, फुलवारीशरीफ। 1996 में 16 चीनी मिल बंद किये गये उनको चालू नहीं किया जा सका है जिसमें रैयाम, लोहट, सकरी, बनमन्खी जैसे मिल सम्मिलित हैं। बैद्यनाथपुर कागज कारखाना नहीं चालू हो सका। पण्डौल और सीवान सूती मिल बंद पड़ा है। दरभंगा और मुजफ्फरपुर औद्योगिक प्राधिकार का विघटन बिना किसी औचित्य के कर दिया गया। गण्डक, सोन, कोशी, क्यूल, बडुआ, कमाण्ड एरिया डेभलपमेंट ऑथरिटी और कोशी विकास प्राधिकार 25 वर्षों से पूर्णत: निष्क्रिय है। 80 के दशक में 37 इन्डस्ट्रीयल स्टेट स्थापित किये गये वह भी पूर्णत: निष्क्रिय और ठप्प रहे है।

राज्य की अधिकांश आबादी खेती से जीवन-यापन करती हैं, ऐसे में केन्द्र को विशेष ध्यान देना चाहिए। साथ ही राज्य में सिंचाई योजना को भी विकसित करनी चाहिए ताकि पूरा पानी मिल सके। बिहार के अलग-अलग हिस्सों में कम-से-कम 4 मेगा फूड पार्को की जरूरत है और व्यवस्था में पूंजी निवेश बढ़ाने की आवश्यकता है। उद्यमिता और रोजगार बढ़ाने की नई योजना की शुरुआत हो सकती है। खासतौर पर युवा और महिलाओं के विकास को आगे बढ़ाने के लिए गाँव-गरीबी, खेती-किसान और महिलाओं के विकास के बिना बिहार का विकास अधूरा है। कृषि से जुड़े खाद्य प्रसंस्करण के लिए नई पहल की आवश्यकता कोल्ड स्टोरेज और वियर हाउस को बढ़ावा देने के साथ कृषि की प्रगति को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। आधुनिक

1 26 जुलाई, 2019

निजी और संयुक्त क्षेत्र में कोई बड़ा कारखाना स्थापित नहीं हो पाया है। यह प्रमाणित करता है कि अन्य वर्षों की तरह बिहार सरकार औद्योगीकरण में विफल रह रही है। बिहार सरकार द्वारा जारी नई प्रोत्साहन नीति निर्गत होने के बावजूद बंद उद्योग और रुग्ण उद्योग पुनः चालू नहीं हो पाए और नये उद्यमी भी नहीं आ सके जिसके कारण बिहार औद्योगीकरण के मामले में पीछे रहा है। इन्हीं कमियों को दूर करने के लिये प्रधानमंत्री द्वारा लागू की गयी सुविधा का लाभ बिहार सरकार को लेना चाहिए जिससे केन्द्र की सहायता का सदुपयोग किया जा सके।

❖❖❖

औद्योगिक विवाद कानून 1947[1]

केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा 'औद्योगिक विवाद कानून 1947' में संशोधन करने का निर्णय, जिसके अन्तर्गत जिन उद्योगों में एक हजार तक मजदूर कार्यरत हों वहाँ प्रबंधन को छंटनी, आंशिक छंटनी करने अथवा तालाबंदी करने के लिए सरकार की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं होगी एक प्रतिगामी, संविधान की प्रस्तावना एवं राज्य की नीति के निदेशक तत्व के विरुद्ध है।

देश के तीव्र औद्योगिक विकास का मुख्य कारक मजदूर और उद्योगपति है। लेकिन भारत की शासन प्रणाली पर हमेशा समाजवादी अवधारणा का प्रभाव रहा है और ऐसा निरन्तर विचार रखा गया है कि मजदूरों को बुनियादी सुरक्षा अवश्य प्रदान की जाए। किसी भी सरकार ने औद्योगिक मजदूरों को सुरक्षा प्रदान करनेवाले कानून में संशोधन नहीं किया। परन्तु बहुराष्ट्रीय कंपनियों और भारत के औद्योगिक घरानों के दबाव में केन्द्र की राजग सरकार ने श्रमिक वर्ग को असुरक्षित करने का निर्णय लिया है, जबकि भारतीय जनता पार्टी स्वदेशी और राष्ट्रवाद की विशिष्ट पहचान करने का संकल्प लगातार दोहराती रही थी। केन्द्र सरकार ने श्रमिक कानूनों में व्यापक संशोधन करने की घोषणा पिछले बजट भाषण में की थी। लेकिन श्रमिक संगठनों के भारी विरोध के कारण संशोधन पर पुनर्विचार के दौरान श्रमिकों के हितों पर सहानुभूति पूर्वक विचार करने का आश्वासन देते हुए केन्द्र सरकार ने मजदूर सुरक्षा बनाए रखने की बात कही थी। परंतु उन आश्वासनों के बावजूद 'औद्योगिक विवाद अधिनियम', 'वेतन भुगतान अधिनियम' और 'ठेका-मजदूर अधिनियम' के संदर्भ में मंत्रिमंडल समिति ने अपनी अनुशंसा दे दी है और उसी के आलोक में केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने 'औद्योगिक विवाद कानून 1947' में यह संशोधन करने का निर्णय लिया है। यह निर्णय जिस दिन कानून का रूप ले लेगा वह दिन देश के लाखों मजदूरों के लिए सबसे दुर्भाग्यपूर्ण होगा। क्योंकि उन पर हर वक्त छंटनी की तलवार लटकती रहेगी और वे कानून की सुरक्षा नहीं रहने के कारण गुलाम की तरह जीने को मजबूर होंगे।

पूँजी निवेश, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और बड़े निजी औद्योगिक प्रतिष्ठानों को तुष्ट करने के लिए 'ट्रेड यूनियन अधिनियम, 1926' और 'औद्योगिक विकास अधिनियम, 1947' के प्रावधानों में संशोधन करने का निर्णय राष्ट्र के संगठित और असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को असुरक्षित करते हुए निजी क्षेत्र की स्वेच्छाचारिता पर उन्हें छोड़ दे रहा है। अभी जिन उद्योगों में सौ से अधिक कर्मचारी काम करते हैं वहाँ बंद (ले ऑफ), छंटनी या तालाबंदी करने के पहले सरकार से अनुमति लेने की बाध्यता है, इस नये संशोधन से सौ की यह संख्या बढ़ा कर एक हजार कर दी गयी है। मजदूरों को यही एक मात्र सुरक्षा की गारंटी थी और इसी कानूनी प्रावधान के सहारे कर्मचारी अपने हक के लिए लड़ते थे। अब सुरक्षा की भावना से निराश श्रमिकों के बल पर औद्योगिक प्रगति नहीं हो सकती। जब किसान और मजदूर अपने को असहाय महसूस करने लगे

1 23 फरवरी, 2002

तब समझ लेना चाहिए कि देश की आत्मा गुलाम हो गयी है। महात्मा गाँधी के समय से विभिन्न श्रमिक आन्दोलनों के माध्यमों से मजदूरों ने जो सुरक्षा और अधिकार अर्जित किया था उसे इस संशोधन से विनष्ट कर दिया जा रहा है और मजदूरों को बिल्कुल असहाय बनाया जा रहा है।

आर्थिक उदारीकरण लागू करने से बेरोजगारी की समस्या विकराल हुई है। सरकारी क्षेत्रों में नयी भर्त्ती लगातार कम और कम होकर नगण्य हो चुकी है। सरकारी उद्योग के निजीकरण और इसे बेचने से उनमें कार्यरत दो करोड़ कर्मियों में अनिश्चितता आ गयी है। इण्डिया ट्रेड के एक सर्वेक्षण के मुताबिक पिछले पाँच वर्षो में निजी प्रतिष्ठानों में दस लाख नौकरियां समाप्त की गयी हैं। इस आंकड़े को देखते हुए लगता है कि नये संशोधन से छंटनी की संभावना बढ़ जायेगी। सरकार श्रम कानूनों में संशोधन कर उद्यमियों को मनमानी करने की छुट दे रही है। श्रम कानूनों को बेअसर करने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों और देश की बड़ी कंपनियों ने अपनी पुरानी मांग मनवा ली है। इस संशोधन के पारित हो जाने पर लाखों मजदूरों और कामगारों का भविष्य पूरी तरह अनिश्चित और मालिकों की दया पर निर्भर रहेगा।

संगठित क्षेत्र में 87 प्रतिशत इकाइयां ऐसी हैं जिनमें एक हजार से कम मजदूर काम करते हैं। इसी से समझा जा सकता है कि कितने लोग सरकार के इस फैसले से प्रभावित होंगे। सरकार के प्रस्तावित संशोधनों में बंदी या छंटनी के हालात में साल भर काम के बदले 45 दिन ग्रैच्युटी थमाने का प्रावधान किया गया है। परंतु, संशोधन इस पर चुप है कि कंपनियों को आई०डी० एक्ट के प्रावधानों से मुक्त होने के बाद कामगारों के मामले में मनमानी से रोकने का क्या प्रावधान है।

यदि आर्थिक सुधार एवं उदारीकरण के बाद श्रमिक कानून में नवीकरण की आवश्यकता है तो सरकार को द्वितीय श्रम आयोग की अनुशंसा के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिये थी। श्रमजीवी वर्गो के लिए सामाजिक सरंक्षण का बड़ा महत्व है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी सामाजिक भेदभाव के शिकार होते रहे हैं।

❖❖❖

उर्वरक कारखानों को बंद करने का निर्णय[1]

बिहार स्थित बरौनी, पश्चिमी बंगाल के दुर्गापुर और झारखंड के सिंदरी उर्वरक संयंत्रों को हमेशा के लिए बंद करने के फैसलों पर विस्मय और चिन्ता होती है। केन्द्र सरकार का यह निर्णय कृषि उत्पादन में वृद्धि करने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के इन संयंत्रों के प्रति उसकी दिलचस्पी कम होती जाने का प्रतीक है, जबकि भारतीय अर्थतंत्र की रीढ़ कृषि को ही माना गया है। ऐसी परिस्थिति में कृषि उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण इनपुट की भूमिका निभाने वाले उर्वरक उत्पादन की उपेक्षा केन्द्र सरकार द्वारा क्यों की जा रही है तथा ऐसे उर्वरक संयंत्रों को बंद करने का क्या औचित्य हो सकता है, यह समझ में नहीं आता?

बीज और उर्वरक के उत्तम प्रबंध से ही हरित क्रांति सफल हुई और खाद्यान्न के मामले में भारत ने आत्मनिर्भरता प्राप्त की। कृषि में उत्पादन अधिक बढ़ने के कारण ही भारत की अर्थव्यवस्था मजबूत हुई, इसलिए बरौनी, दुर्गापुर और सिन्दरी उर्वरक कारखानों को बंद करना दुर्भाग्यपूर्ण है। यह भी आश्चर्यजनक लगता है कि कोर्वा, गोरखपुर, तालघर और रामगुण्डक कारखाने को बंद करने के बाद ऊपर बताये गये तीनों संयंत्रों को बंद करने का निर्णय उस राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार ने कैसे लिया जो भारत को आत्मनिर्भर बनाये रखने का दावा निरंतर करती रही है। इन कारखानों को बंद करने के निर्णय को एक सामाजिक त्रासदी कहा जा सकता है, क्योंकि इन्हें बंद करने से हजारों मजदूर बेरोजगार हो जायेंगे और उनकी बेरोजगारी भाजपा की उस घोषणा के सर्वथा प्रतिकूल होगी जिसमें उसने प्रतिवर्ष एक करोड़ लोगों को रोजगार देने का वादा कर रखा था। इसके अतिरिक्त आगे कृषि उत्पादन में गिरावट आने पर भी यह त्रासदी प्रत्यक्ष रूप में लोगों को महसूस होगी। पूर्व में अन्य सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के विनिवेशीकरण के बाद जिस तरह उनकी संपत्तियां कौड़ी के दाम निजी अरबपतियों को बेच दी गयीं उसी तरह इन प्रतिष्ठानों की बेशुमार अचल संपत्ति भी न कहीं बेच देनी पड़े। आज आवश्यकता इस बात की थी कि इन उर्वरक कारखानों का आधुनिकीकरण किया जाता पर ऐसा कुछ नहीं कर उन्हें हमेशा के लिए बंद कर देने का ही निर्णय किया जाना कतई उचित नहीं है।

जहां तक बिहार में बरौनी के उर्वरक संयंत्र का सवाल है, इस संबंध में यह विशेष उल्लेखनीय है कि बिहार के विभाजन के बाद सभी केन्द्रीय प्रतिष्ठान और प्रमुख निजी प्रतिष्ठान झारखंड राज्य में चले गये। बिहार में केवल दो बरौनी का तेलशोधक कारखाना और उर्वरक संयंत्र रह गये। संयुक्त बिहार का 97 प्रतिशत औद्योगिक संयंत्र झारखंड राज्य में चला गया और मात्र तीन प्रतिशत छोटी एवं मध्यम कोटि के संयंत्र बिहार में बच रहे हैं। बरौनी उर्वरक संयंत्र को बंद करना बिहार के साथ अन्यायपूर्ण कार्रवाई है। बरौनी उर्वरक कारखाना का नवीकरण और पुनरुद्धार करने में उस कारखाने की मजबूत आधारभूत संरचना का इस्तेमाल उपयोगी साबित हो

1 20 सितम्बर, 2002

सकता है। झारखंड शासन ने सिन्दरी उर्वरक कारखाना और रांची स्थित भारी अभियंत्रण निगम (एच०ई०सी०) के जीर्णोद्धार के लिए केन्द्र सरकार के पास प्रस्ताव भेजा है। बिहार सरकार को भी तुरंत केन्द्र से मांग करनी चाहिए कि बरौनी उर्वरक संयंत्र के आधुनिकीकरण, विस्तार और जर्जर मशीनों को बदलकर खाद उत्पादन को बढ़ावा देना आवश्यक है। बिहार की आर्थिक दुर्बलता, उद्योगविहीनता और बिहार में केन्द्रीय पूंजी-निवेश के न्यूनतम स्तर को देखते हुए बरौनी उर्वरक कारखाने को हमेशा के लिए बंद किए जाने के निर्णय पर फिर से विचार करना चाहिए।

बिहार का बरौनी उर्वरक कारखाना और झारखंड का सिन्दरी उर्वरक कारखाना, दोनों ही इकाईयों का पुनरुद्धार किया जाना आवश्यक है। अविभाजित बिहार के लोग एच०ई०सी० के लिए पहले से ही चिंतित थे और अभी बरौनी एवं सिन्दरी कारखानों को बंद करने के निर्णय ने लोगों को उद्वेलित कर दिया है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इन कारखानों का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने इस विश्वास के साथ किया था कि कृषि प्रधान इस देश को उनसे काफी मदद मिलेगी। उनके विश्वास के अनुसार इन कारखानों ने देश में और खासकर बिहार में हरित क्रांति लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। अत: इन कारखानों को बंद करने का केन्द्रीय मंत्रिमंडल का निर्णय लोगों को आश्चर्य में डाल देता है।

इन कारखानों को बंद करने की अनुशंसा करने में मंत्रियों के समूह ने विशेषज्ञों की राय लिये बिना ही फ्यूएल ऑयल आधारित इन कारखानों को अक्षम करार दिया जबकि गत वर्ष में फ्यूडो और पी०डी०आई०एल० के विशेषज्ञों ने संयुक्त रूप से इन कारखानों को अर्थ-सक्षम बताया था। इन परिस्थितियों को देखते हुए प्रधानमंत्री के लिए यह विचार करना आवश्यक है कि जब देश के फ्यूएल ऑयल आधारित अन्य पाँच सार्वजनिक प्रतिष्ठान चल सकते हैं तो नई मूल्य नीति के तहत बरौनी और सिन्दरी फ्यूएल ऑयल कारखाने क्यों नहीं चल सकते? जहां तक ऊर्जा सक्षमता का प्रश्न है यह विचारणीय हो जाता है कि यदि नानगल को ऊर्जा सक्षम बनाया जा सकता है तो बरौनी और सिन्दरी में दो कारखाने क्यों नहीं सक्षम बनाये जा सकते?

जिस प्रकार झारखंड सरकार ने सिन्दरी और एच०ई०सी० के जीर्णोद्धार के लिए केन्द्र सरकार पर दबाव बना रखा है उसी प्रकार का दबाव बिहार सरकार को बरौनी उर्वरक कारखानें के लिए बनाना चाहिए। बिहार के आर्थिक पिछड़ेपन और केन्द्र की भेदभावपूर्ण नीति के कारण उत्पन्न आक्रोश के प्रदर्शन से बरौनी संयंत्र को बंद किये जाने के निर्णय पर पुनर्विचार की मांग को बल मिलेगा। प्रधानमंत्री बिहार के साथ हो रही नाइन्साफी को रोकें और बरौनी इकाई को बंद करने संबंधी मंत्रिमंडल के निर्णय को रद्द करने पर तथा उस इकाई के आधुनिकीकरण की मांग पर गंभीरता से विचार करें।

❖❖❖

लोक सभा द्वारा पारित पेटेंट विधेयक[1]

पेटेंट जैसी व्यवस्था भारत की उस परंपरागत सोच के विपरीत है, जिसमें ज्ञान एवं अनुसंधान तथा उसके लाभ को ज्यादा से ज्यादा लोगों के बीच प्रचारित करने एवं उसका लाभ पहुँचाने की बात की जाती रही है। इसलिए इस पूरी व्यवस्था का इस संदर्भ में सतत् विरोध होना चाहिए।

भाजपा के विरोध के बावजूद पेटेंट संशोधन विधेयक, 2005 लोकसभा से पारित हो गया। पहले वाम दलों द्वारा इस विधेयक का विरोध करने की घोषणा से सरकार मुश्किल में पड़ गयी थी, लेकिन ऐन मौके पर सरकार उन्हें मनाने में सफल हो गयी। इस पेटेंट कानून के लागू हो जाने पर देश के करोड़ों जरूरतमंद लोगों को जीवन रक्षक दवाओं की आपूर्ति कठिन हो जायेगी। भारत की कोशिश होनी चाहिए कि हम विदेशी ताकतों की अपमानजनक एवं हमें नुकसान पहुँचा सकने वाली शर्तों को न माने। लेकिन देश इस तरह की दृढ़ता दिखाये, इसके लिए सरकार को आम जनता को भी अपने विश्वास में लेना चाहिए। एक समय भाजपा के आक्रामक विरोध के कारण संयुक्त मोर्चा सरकार के दौरान पेटेंट कानून का विधेयक संसद में पेश नहीं हो सका। सबसे आश्चर्यजनक रवैया वाम दलों का रहा। यह संभावना थी कि कम से कम वे नये पेटेंट कानून के विरोध में सड़क पर अवश्य उतरेंगे। यह बात सही है कि उनके समर्थन न मिलने की संभावना के कारण ही सरकार ने इसके लिए अध्यादेश का रास्ता चुना, पर 26 दिसम्बर को अध्यादेश जारी हुआ एवं 28 दिसम्बर को इसे कानून का रूप भी दे दिया गया, किन्तु वाम दलों ने विरोध में एक शब्द तक नही कहा। अब लोकसभा ने उनकी सहमति से पारित कर दिया है।

पेटेंट विधेयक भारत के हित के विरुद्ध है। यह बात सही है कि वर्तमान विश्व व्यवस्था में दुनिया के देशों से अलग-थलग रहकर विकास की सीढ़ियाँ बहुत दूर तक चढ़ना संभव नहीं है। विवशता की स्थिति में भारत सरकार ने विश्व व्यापार संगठन की शर्त्तों के अनुपालन के क्रम में उत्पाद पेटेंट की नयी व्यवस्था अध्यादेश द्वारा देश में लागू की। केन्द्र सरकार ने अध्यादेश के जरिये पेटेंट कानून में संशोधन किया था और विश्वास व्यक्त किया था कि इससे भारतीय उत्पादकों के हितों की रक्षा हो सकेगी, वही अध्यादेश अधिनियम के रूप में संसद द्वारा स्वीकृत हुआ है। लेकिन इससे छोटी या मध्यवर्गीय आर्थिक हैसियत के लोगों के हितों की रक्षा सही अर्थो में नहीं हो पायेगी। आर्थिक विश्लेषक मानते हैं कि इससे उत्पाद पेटेंटधारी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भरपूर लाभ होगा, जबकि पद्धति पेटेंट के तहत उत्पादन करने वाले छोटे उत्पादकों की इससे कमर टूट जायेगी। उल्लेखनीय है, कि पेटेंट की नयी व्यवस्था खाद्य पदार्थो, दवाओं, रसायनों, कुछ विशेष साफ्टवेयरों पर लागू होगी। आर्थिक विश्लेषकों का मानना है कि इससे देश की औद्योगिक आत्मनिर्भरता को आघात पहुँचेगा तथा छोटे उत्पादकों के लिए सस्ती दवाओं और खाद्य सामग्रियों का उत्पादन करना कठिन हो जायेगा।

1 24 मार्च, 2005

पूर्व की स्थिति में उत्पादक निर्माण पद्धति का पेटेंट हासिल कर लेते थे, लेकिन अब ऐसे उत्पादकों को अपने उत्पाद को नयी खोज साबित करना होगा अन्यथा पुराने पेटेंटधारियों को लाइसेंस फीस चुकानी होगी। जाहिर है, इससे दवाइयों की कीमतें बढ़ सकती हैं। नयी पेटेंट व्यवस्था स्वदेशी उद्योग के लिए अहितकर है। विकास की वर्तमान प्रतिस्पर्द्धा में भारत विश्व के देशों से अलग हटकर विकसित देशों की जमात में शामिल नहीं हो सकता। विश्व व्यापार संगठन की जो भी नीतियाँ व शर्त्तें हैं, वे सभी अमेरिका और यूरोपीय देशों के हितों की रक्षा को ध्यान में रखकर तय की गयी हैं। विश्व व्यापार संगठन की कानकुन बैठक में कृषि सब्सिडी के मुद्दे पर भारत विकासशील देशों के हित में अमेरिका व अन्य विकसित देशों को झुकने के लिए बाध्य कर चुका है। इसी प्रकार की दृढ़ता भारत ने उत्पाद आधारित पेटेंट कानून में सुधार के मुद्दे पर क्यों नहीं दिखायी? नयी पेटेंट व्यवस्था से भारत की उद्योग व्यवस्था चरमरायेगी और दवाओं के मूल्य बहुत बढ़ेंगे, वैसी अवस्था में देश में डब्ल्यूटीओं के दायरे से बाहर निकलने की मांग जोर पकड़ सकती है।

❖❖❖

बैंकों के ऋण[1]

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन के निर्देश पर भारत सरकार ने ऐसी नीतियाँ चालू कर रखी हैं जो बड़े-बड़े किसानों के लिए हितकर हैं, लेकिन जिसने छोटे-मझोले किसानों को आर्थिक सुधार के लाभ से वंचित कर रखा है। खाद्यान्न की खरीद, बीज, उर्वरक, कीट-नाशकों में जो सहायता दी जाती है उसका लाभ लघु किसान उठा नहीं सकते हैं। जबकि, देश में 96 प्रतिशत किसान छोटे किसान हैं।

डा. एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता वाली कृषि आयोग की अनुशंसा केन्द्र स्वीकार करे। आयोग ने स्वीकार किया है कि खेती घाटे का धंधा बनती गई है। बजट में घोषणा के बाद भी सरकार किसानों को 7 फीसदी की दर से ऋण नहीं दिला पायी। नतीजतन किसानों को 24 से 48 फीसदी सालाना की दर से ब्याज वसूलने वाले साहूकारों की ही शरण लेनी पड़ी। स्वामीनाथन पहले ही किसानों को 4 फीसदी सालाना की दर से ऋण उपलब्ध कराने की सिफारिश कर चुके हैं। जब तक किसानों को साहूकारों के चंगुल से नहीं निकाला जायेगा तब तक एमएसपी बढ़ाने या उनको हजार दो हजार करोड़ का राहत पैकेज दे देने का भी कोई अर्थ नहीं है। उन तक कृषि तकनीक पहुँचाने, सस्ते ऋण, फसल बीमा पहुँच और उपज बाद विपणन सेवाओं के मामले में प्रभावी मदद के नुस्खे पर जोर हो।

फसल ऋणों पर ब्याज दर कम की जाए। वर्ष 2007-08 के लिए माननीय वित्त मंत्री की बजट घोषणा के अनुसरण में सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से आशा की जाती है कि वे 03.00 लाख रु. तक के अपने अल्पावधि कृषि ऋणों पर 7 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज लगाएं। नाबार्ड द्वारा इस संबंध में सभी सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के लिए आवश्यक मार्ग निर्देश जारी होने के बावजूद यह सहायता उपलब्ध नहीं हो रही है। अत: इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए निम्नलिखित रियायतें दी जाए। जहाँ तक निवेश ऋण पर बैंकों द्वारा प्रभावित ब्याज-दर का संबंध है, निवेश ऋण पर ब्याज दरें अब अनियमित की जाए और बैंक निधियों की लागत, जोखिम लागत, मार्जिन आदि को ध्यान में रखकर ब्याज दर निर्धारित की जाए। फसल ऋणों पर चक्रवृद्धि ब्याज के स्थान पर साधारण ब्याज लगाना। कृषि ऋणों पर मौजूदा नीति के अनुसार, गैर-अतिदेय ऋणों पर साधारण दर प्रभारित की जाए। ऋण/ ब्याज माफ करना और किसानों द्वारा आत्महत्या रोकने के लिए विशेष पैकेज के अंतर्गत नाबार्ड/ भारतीय रिजर्व बैंक ऋण/ ब्याज माफ करे। जहाँ तक किसानों द्वारा आत्महत्या करने और विशेष पैकेज का संबंध है, भारत सरकार ने 4 राज्यों अर्थात महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल के चुने गये 31 जिलों में ऋण ग्रस्त किसानों के लिए राहत पैकेज की घोषणा की है, वह सुविधा सभी राज्यों को भी दी जाए।

❖❖❖

---

1 20 जनवरी, 2008

भारतीय खुदरा व्यापार में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का प्रवेश[1]

केन्द्र सरकार ने खुदरा बाजार के दरवाजे विदेशी कंपनियों के लिए खोलने का फैसला करके भारतीय किसानों और छोटे व्यापारियों की कमर तोड़ने का काम किया है। 10 लाख से ज्यादा की आबादी वाला पटना शहर इस निर्णय से बेहद प्रभावित होगा। हजारों छोटे दुकानदार बेरोजगार हो जायेंगे।

भारतीय खुदरा व्यापार में बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अधिक निवेश की मंजूरी को किसानों के हित में लिया फैसला बताने वालों से एक सवाल जरूर पूछा जाना चाहिए कि यदि सुपरमार्केट किसानों को लाभ पहुँचाने में सक्षम हैं तो अमेरिका में कृषि क्षेत्र को बड़े पैमाने पर सब्सिडी क्यों देनी पड़ रही है? यह दावा करना कि बहुराष्ट्रीय रिटेल चेन भारतीय कृषि की कायाकल्प कर देगा, यहाँ के किसानों को ही नहीं, बल्कि देश के साथ भी धोखा है।

दरअसल, भारतीय खुदरा बाजार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सीमा बढ़ाने का फैसला जी-20 देशों के दबाव में लिया गया है। जी-20 समूह के देशों में खुदरा कारोबार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को खुली छूट का करार पहले ही हो चुका है। दावा किया जाता है कि ये कंपनियां कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण और कोल्ड श्रृंखला ढांचे के विकास में भारी-भरकम निवेश करेगी। उधर, सुपरमार्केट की ओर से दावा किया जाता है कि उनके यहाँ बिचौलिये नहीं होते हैं, जिससे किसानों को उपज का अधिक दाम मिलता है। जबकि वास्तव में होता इसका उलटा है। सुपरमार्केट खुद ही बड़े बिचौलिये हैं। छोटी मछलियों को निगल जाते हैं। भारत में भी 1.2 करोड़ छोटे दुकानदारों, चार करोड़ हॉकरों और कम से कम 20 करोड़ छोटे किसानों की आजीविका खतरे में पड़ जायेगी। जरूरत इस बात की है कि देश भर में मंडियों की स्थापना पर सरकारी खर्च बढ़ाया जाये।

सरकार ने मल्टी-ब्रांड रिटेल में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को अनुमति देने की जो दलीलें दी हैं, वे बनावटी हैं। एक दलील यह है कि किसानों को उनके उत्पाद पर मिलने वाली कीमत और उपभोक्ताओं द्वारा अदा की गई कीमत के बीच बड़ा अंतर है। यह अंतर 'बिचौलियों' द्वारा हड़प लिया जाता है। ये विदेशी रिटेलर्स सीधे किसानों से खरीदेंगे और 'बिचौलियों' को हटाकर वे किसानों को उनकी फसल की बेहतर कीमत देंगे। बड़े रिटेलर भी 'बिचौलिए' हैं। उनकी व्यापारिक नीति सरल है-कम से कम दाम में खरीदो और ज्यादा से ज्यादा दाम में बेचो। दलील यह है कि जब बड़े रिटेलर किसानों से खरीदने के लिए बाजार में आएंगे, तो वे किसी तरह प्रचलित मूल्य की अनदेखी कर किसानों को अधिक कीमत देंगे। बड़े रिटेलर किसानों की मंडी में जायेंगे और कुछ ही समय में एकाधिकार जमाकर वहाँ की स्पर्धा को समाप्त कर देंगे। फिर किसान अपना उत्पादन बेचने के लिए बड़े रिटेलर के रहमोकरम पर रहेंगे। जब 'वालमार्ट, 'टेस्कोस' और 'कारफोर्स' बाजार में उतरते हैं, तब वे स्थानीय स्पर्धा को पूरी तरह ध्वस्त कर देते हैं, क्योंकि उनका व्यापार उसी पर आधारित है। उनके संसाधन असीम हैं। उनके निवेश उथल-पुथल मचाने की हद तक जा सकते हैं। उनका उत्पादन-स्रोत विश्वव्यापी होगा। भारतीय व्यावसायियों ने

1 29 नवम्बर, 2011

अब तक ऐसा कुछ भी नहीं किया होगा, जो इनकी तुलना में ठहर सकें। इससे समय के साथ आस-पड़ोस के किराना स्टोर्स पूरे देश में हजारों-लाखों की संख्या में बंद हो जायेंगे। बाजार का संतुलन पूरी तरह बिगड़ जायेगा, और कई परिवार व समुदाय आर्थिक रूप से नष्ट हो जायेंगे। जहाँ कहीं भी ये बड़े रिटेलर गये हैं, वहाँ ऐसा ही हुआ है। सरकार 'समावेशी विकास' को बढ़ावा देना चाहती है। लेकिन मल्टी-ब्रांड रिटेल में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश उत्पादन और रिटेल क्षेत्र में उपलब्ध रोजगार को चोट पहुँचायेगा, जो समावेशी विकास की धारणा के एकदम उलट है।

20 करोड़ से ज्यादा लोग फुटकर और परचून के अलावा किराना कारोबार के धंधों में लगे हुए हैं उनके पेट पर सीधी लात मारकर यह ऐलान किया कि इससे मुल्क में रोजगार बढ़ेगा। क्या अमेरिकी वालमार्ट जैसे स्टोरों की श्रृंखलाएं भारत के शहरों में खोले जाने से लोगों को सामान सस्ता मिलने लगेगा? बल्कि इसका उल्टा यह होगा कि ये विदेशी स्टोर अपना कारोबार भारत में जमाने के लिए दुनिया के दूसरे देशों से सस्ता माल अपने स्टोरों में लाकर बेचकर भारतीय उद्योग-धंधों को चौपट करेंगे। विदेशी कंपनियों के स्टोर हमारे देश की गरीब जनता के हित में नहीं बल्कि अपने मुनाफे के हित में काम करेंगे और इस क्रम में वे छोटे-छोटे कस्बों और गाँवों में भी महंगाई कई गुना रफ्तार से बढ़ाने का काम करेंगे। जिस विदेशी निवेश की यह कहकर वकालत की जा रही है कि इससे कृषि क्षेत्र का आधारभूत ढांचा मजबूत होगा, क्या वह बिना कीमत चुकाये हो सकेगा और वह भी भारी मुनाफा कमाने की गरज से आयी विदेशी कंपनियों द्वारा। मगर उस गरीब छोटे दुकानदार का क्या होगा, जो पूरी तरह बेरोजगार हो जायेगा। इसलिए सरकार के इस फैसले का जमकर विरोध होना वाजिब है।

विदेशी कंपनियों के रिटेल क्षेत्र में आने से महंगाई, बेरोजगारी और ट्रांसपोर्ट सेक्टर पर भी प्रतिकूल असर पड़ेगा। अंततः इसका खामियाजा आम लोगों को उठाना होगा। जब बाजार पर कुछ बड़ी कंपनियों का नियंत्रण हो जाता है, तो वे बाजार को अपने अनुकूल चलाने की कोशिश करते हैं। इसका खामियाजा छोटे-छोटे खुदरा कारोबारियों को उठाना ही होगा, क्योंकि उनकी पूंजी और संसाधन के सामने घरेलू खुदरा व्यापारी अपने सीमित संसाधनों के बल पर सामना नहीं कर पायेंगे। एक तो वे असंगठित हैं, दूसरी ओर संसाधन और तकनीक के मामले में भी काफी पीछे हैं। पहले से ही बड़ी कंपनियों के खुदरा बाजार में उतरने से छोटे रिटेलरों का कारोबार काफी प्रभावित हो रहा है। छोटे कारोबारियों को तबाह करने के लिए ये रिटेल कंपनियां ग्राहकों को बाजार मूल्य से कम कीमत पर सामान बेच रही हैं। ऐसे हालात में छोटे कारोबारियों को काफी नुकसान उठाना पड़ रहा है और कई बेरोजगार हो गये हैं। विदेशी कंपनियों के आगमन से यह स्थिति और भी जटिल हो जायेगी, उनके आने पर लाखों छोटे व्यापारियों के सामने रोजगार का संकट उत्पन्न हो जायेगा। विदेशी कंपनियों के रिटेल क्षेत्र में आने से तात्कालिक तौर पर मध्यवर्गीय ग्राहकों को भले ही कुछ लाभ मिले, लेकिन भविष्य में इसके भयंकर दुष्परिणाम सामने आना तय है। क्योंकि एक बार बाजार पर प्रभुत्व कायम होते ही ये कंपनियां फिर अपनी मर्जी के मुताबिक कीमतों का निर्धारण करने लगेगी।

❖❖❖

नोटबंदी[1]

सरकार के भ्रष्टाचार को समाप्त करने के निर्णायक कदम के खिलाफ संसद के भीतर विपक्षी दलों ने जो माहौल इसकी वजह से बनाया है उससे आम जनता को यही संदेश गया है कि पूरा विपक्ष भ्रष्टाचार और काले धन के समर्थन में आकर खड़ा हो गया है। भारतीय लोकतंत्र की इससे बड़ी विडम्बना और कुछ नहीं हो सकती। अप्रत्याशित रूप से उठाये गये मजबूत कदम से काला धन रखने वालों की कठिनाई स्वाभाविक है किन्तु कुछ राजनीतिक दलों ने इस फैसले की आलोचना करके साबित कर दिया है कि उनका दम भी घुट रहा है। यह कदम देश की अर्थव्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन लाने वाला साबित होगा इसमें किसी प्रकार का संदेह आम जनता को नहीं रहना चाहिये और इसका असर चौतरफा होगा इसमें भी किसी प्रकार का शक नहीं होना चाहिये। सबसे बड़ा असर भ्रष्टाचार को रोकने में होगा। प्रधानमंत्री का फैसला केवल भारत के आन्तरिक अर्थतंत्र को ही नियन्त्रित नहीं करेगा बल्कि यह मुद्रा बाजार में डालर के मुकाबले रुपये की कीमत पर भी असर डालेगा और इसके परिणामस्वरूप सोने के घरेलू मूल्यों पर भी इसका असर पड़ना लाजिमी होगा। यही रास्ता अंततः आर्थिक भूमण्डलीकरण के चक्र में रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता की खिड़की भी बन सकता है।

देश की अर्थव्यवस्था से अघोषित पैसे को खत्म करने के लिए सरकार का यह फैसला फिलहाल बाजार में मौजूद काली मुद्रा को रोकने के लिये है। यह देश के बड़े आर्थिक सुधार का एक हिस्सा मात्र है। सरकार के बड़े नोटो के चलन से बाहर करने के निर्णय से हालांकि काला धन पूरी तरह से तो समाप्त नहीं होगा लेकिन इससे बाजार में प्रचलित काली मुद्रा पर अंकुश जरूर लग जायेगा।

जिस पैसे पर सरकार को कोई टैक्स नहीं दिया जाता है अथवा सरकार से छुपाकर रखा जाता है वह काला धन कहलाता है। सरकार को बिना कर अदा किए रुपये के रूप में मौजूद रुपये को काली मुद्रा कहते हैं जबकि काली मुद्रा के जरिए बनायी गयी चल अचल सम्पत्ति काला धन कहलाती है। राजनीतिक इच्छाशक्ति और इस प्रकार के कड़े कदम देश की अर्थव्यवस्था से अघोषित पैसे को खत्म करने के लिए सरकार का यह फैसला फिलहाल बाजार में मौजूद काली मुद्रा को रोकने के लिये है। यह देश के बड़े आर्थिक सुधार का एक हिस्सा मात्र है। सरकार नकदी रहित भुगतान की दिशा में काम कर रही है।

विपक्षी दल कालेधन के खिलाफ छेड़ी गई सरकारी मुहिम का विरोध करते हैं तो उसकी क्या वजह हो सकती है? विपक्षी दल भ्रष्टाचार और हवाले से इकट्ठा की गई धनराशि के कागज

1 27 नवम्बर, 2016

के टुकड़े हो जाने का विरोध करते हैं तो उसका क्या कारण हो सकता है? विपक्षी दल भारत की समूची अर्थव्यवस्था को वैध धन से चलाने के प्रयासों का विरोध करते हैं तो उसका क्या कारण हो सकता है? और विपक्षी दल स्वयं चुनावों के कम खर्चीला होने के रास्ते का विरोध करते हैं तो उसका क्या अर्थ हो सकता है? एक हजार और पांच सौ रुपये का प्रचलन बाजार में कुल मुद्रा का 86 प्रतिशत हैं। जाहिर है जो भी लेन देन भारत में होता है उसका छियासी प्रतिशत बड़े नोटों में ही होता है और भ्रष्टाचार से इकट्ठा किया गया काला धन भी इन्हीं मुद्राओं में बाजार के चक्र में जाता है।

श्री मोदी उस काले धन को अर्थव्यवस्था से बाहर करना चाहते है जो भरपूर मात्रा में बाजार का चक्कर लगा रहा है और महंगाई बढ़ाने से लेकर देश की राजनीति को गंदा करते हुए पैसे का गुलाम बना रहा है। यह आर्थिक कदम है। इसका स्वागत किया जाना चाहिये और सब तरफ से किया जाना चाहिये। क्योंकि यह समूचे भारत के लोगों के हित में है और सबसे ज्यादा गरीबों, किसानों और सामान्य आय वर्ग के लोगों के हित में है।

❖❖❖

कालाधन[1]

काले धन के विरुद्ध प्रधानमंत्री श्री मोदी ने सबसे पहले दुनिया के प्रमुख 20 अर्थव्यवस्थाओं के समूह जी–20 के समूह ब्रिशवेन शिखर सम्मेलन में काला धन के विरुद्ध भारत के रूप से परिचित कराते हुए काले धन के मसले को पूरजोर उठाया था और शिखर सम्मेलन काले धन से उपजी समस्याओं और चुनौतियों में दुनिया भर के देशों को परिचित कराया उस पर पाबंदी की वकालत की। श्री मोदी ने विदेशों से भी काले धन लाने के लिए विदेशों की सरकारों को इसके लिए सहमत कराया कि विदेशी काला धन दूसरे देशों की गतिविधियों के मार्फत पैदा किया हुआ धन है। वे देशों और विदेशों में काला धन के विरुद्ध माहौल बनाने में सफल रहे और उसी क्रम में भारत में विमुद्रीकरण के साथ–साथ अनेक योजनाएं काले धन के विरूद्ध चलायी जा रही है।

45 वर्ष पूर्व जब तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व॰ इन्दिरा गांधी ने बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया था तो पूरे देश में जो माहौल बना था उसके केन्द्र में स्वतंत्र भारत की गरीबी थी और गरीब थे लेकिन इसके बाद पिछले 45 सालों में न जाने कितना पानी भारत की नदियों में बह चुका है और यह देश कई प्रकार के झंझावातों को पार करते हुए इस मुकाम पर पहुँचा कि इसके खजाने में विदेशी मुद्रा का भण्डार भरा पड़ा है मगर इसके बावजूद गरीबी से छुटकारा पाना इसके लिए संभव नहीं हो सका। गाँव और शहर के बीच खाई बनी रही, अमीर और गरीब के बीच की आय का अन्तर बरकरार रहा। अमीर और गरीब के बीच विकास के अवसरों की खाई को बाजार मूलक अर्थव्यवस्था ने संभवत: और अधिक चौड़ा इसलिए बना दिया क्योंकि सभी कुछ अर्थ यानी धन पर निर्भर होता चला गया। श्रीमती गांधी ने बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया था तो उनकी नीयत समाज के दबे व पिछड़े लोगों के लिए आर्थिक अवसर समानता के आधार पर सुलभ कराने की थी।

काला धन इतनी अधिक मात्र में है कि देश में इसकी समानान्तर अर्थव्यवस्था चलती बतायी जाती है। सरकार ने काले धन का पता चलाने और उस पर अंकुश लगाने के लिए बहुआयामी रणनीति अपनाई है, जिसमें नीतिगत स्तर पर पहले, क्रियान्वयन के लिए जमीनी स्तर पर अधिक कार्य, मजबूत विधायी एवं प्रशासनिक ढांचे, प्रणालियां एवं प्रक्रियाएं लागू करना और सूचना प्रौद्योगिकी का समुचित इस्तेमाल करना शामिल हैं। आय की स्वैच्छिक घोषणा की योजना (वीआइडीएस), काले (अघोषित विदेशी आय एवं संपत्ति) एवं कर अधिरोपण अधिनियम, 2015 बनाना, बेनामी लेनदेन (निषेध) संशोधन विधोयक प्रस्तुत करना ऐसे ही कुछ प्रमुख कदम हैं, जो सरकार ने हाल ही में इस सिलसिले में उठाये हैं। आईडीएस के अतिरिक्त विदेशी संपत्ति प्रकटीकरण विंडो, काला धन के लिए विशेष जांच दल (एसआईटी) का गठन द्विपक्षीय कर संधियों पर नए सिरे से काम, 2 लाख रुपये से अधिक के लेनदेन में पैन कार्ड अनिवार्य करना तथा विभिन्न देशों के साथ प्रोजेक्ट इनसाइट और हस्ताक्षर सूचना आदान–प्रदान

1 02 दिसम्बर, 2016

की संधियां करना जैसे उपाय भी हैं। सबसे बड़ा कर धन सुधार तो वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) है जिससे अगले वित्त वर्ष से अप्रत्यक्ष करों की चोरी मुश्किल हो जाएगी। भारत ने सभी लोकप्रिय कर हेवन देशों सहित 82 देशों के साथ दोहरे कराधान से बचाव का समझौता किया है। इनमें से भारत ने ऐसे 30 देशों के साथ समझौते व्यापक बनाए हैं जिनके तहत एक दूसरे की तरफ से कर की उगाही करने के लिए परस्पर प्रयास की अपेक्षा है।

विश्व शिखर सम्मेलन में अपने सम्बोधन में श्री मोदी ने काले धन की समस्या से उपजी चुनौतियों से निपटने के लिए दुनिया भर के देशों के बीच बेहतर समन्वय से काम करने की वकालत की थी। उससे आम जनता को यही संदेश गया है कि पूरा विपक्ष भ्रष्टाचार और कालेधन के समर्थन में आकर खड़ा हो गया है। आजादी के बाद यह पहला मौका है जब विपक्ष ने जनता और देश के व्यापक हित में लिये गये फैसले का विरोध उससे सिद्धान्ततः सहमत होते हुए भी किया हो।

❖❖❖

जीएसटी[1]

एक दशक के विवादों के बाद देश में वस्तु व सेवा कर (जीएसटी) संसद के दोनों सदनों से विधेयक स्वीकृत होने के बाद लागू होने का मार्ग प्रशस्त हो गया है। जीएसटी आजादी के बाद का सबसे बड़ा कर सुधार है। जीएसटी के तहत उत्पाद शुल्क, सेवा कर, वैट समेत राज्यों के अन्य कर खत्म हो जाएंगे, जिससे पूरा देश एक बाजार हो जाएगा। जीएसटी लागू होने पर राज्यों को होने वाली हानि की भरपाई 5 साल तक केन्द्र सरकार द्वारा की जाएगी। इस प्रकार जीएसटी राज्यों के लिए भी फायदेमंद है। एक अनुमान के मुताबिक जीएसटी लागू होने पर सकल घरेलू उत्पाद में दो फीसदी वृद्धि होने की संभावना है। जीएसटी से राष्ट्रीय बाजार पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा और उपभोक्ता लाभान्वित होंगे। साथ ही राज्यों में लगने वाले अनेक करों से भी राहत मिलेगी। जीएसटी भारत के कर ढांचे में सुधार का एक बहुत बड़ा कदम है। वर्तमान में एक ही वस्तु पर विभिन्न प्रकार के अलग-अलग कर लगते हैं। लेकिन जीएसटी आने से सभी वस्तुओं और सेवाओं पर एक ही प्रकार का कर लगेगा।

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) एक एकीकृत कर है, जो 'एक राष्ट्र एक कर' की अवधारणा पर काम करेगा। इसके क्रियान्वयन से सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि जीएसटी से कई करों का बोझ कम होगा और इनपुट टैक्स क्रेडिट निर्बाध प्रवाह से मिलेगा। अभी डीलर को वैट पर इनपुट टैक्स क्रेडिट मिलता है, लेकिन सेवाओं पर सेवा कर के मामले में नहीं। लेकिन डीलर जीएसटी प्रणाली में सेवा व वस्तु दोनों मामले में इनपुट टैक्स क्रेडिट का पात्र होगा। उपभोक्ताओं के लिए वस्तु व सेवाओं की अंतिम लागत में कमी आएगी। जीएसटी प्रणाली में वस्तुओं व सेवाओं की पूरे देश में आवाजाही आसान होगी। जीएसटी आर्थिक विकृतियों को हटाने, निर्यात को बढ़ावा देने और एक समान राष्ट्रीय बाजार के विकास के लिए भी मदद करेगा। लंबी अवधि में जीएसटी से उद्योग व उपभोक्ताओं को बड़ा लाभ संभव है। जीएसटी के कारण पारदर्शिता बढ़ने से राजस्व संग्रह में भी वृद्धि होगी। जीएसटी अनुपालन के तहत रिटर्न भरना, रिफंड लेना, कर जमा करना आदि आसान होगा। कई करों से मुक्ति मिलने से वस्तु व सेवाओं की कीमतें कम होने से उपभोक्ताओं को भी फायदा होगा। 1 जुलाई से प्रस्तावित एक ही समेकित कर वस्तु एवं सेवा कर की सफलता का त्वरित आकलन संभव नहीं है। अब कारोबारियों को विभिन्न करों के बजाय एक ही कर देना होगा। सरकारों को भी विभिन्न करों की वसूली के लिए कर्मचारियों की लंबी-चौड़ी फौज नहीं रखनी होगी। जीएसटी से उद्योग की लागत में कमी आयेगी और वस्तुओं के दाम घटेंगे, जिससे महंगाई भी कम होगी। भारतीय कंपनियाँ जीएसटी के बाद निर्यात में अब ज्यादा प्रतिस्पर्धी होंगी। शिक्षा, स्वास्थ्य, धार्मिक संस्थाओं और कृषि को जीएसटी के दायरे से बाहर रखा गया है।

जीएसटी से भारत 'एक कर और एक व्यवस्था' में बदल जायेगा। इससे न सिर्फ बड़ी-बड़ी कम्पनियों, बड़े व्यापारियों को सुविधा होगी, बल्कि देश के सवा सौ करोड़ जनता को भी लाभ

1 12 अप्रैल, 2017

मिलेगा। उपभोक्ता पर पड़ने वाले कीमत की मार कम होगी। इससे स्वैच्छिक कर अनुपालन में भी सुधार होने से कर का दायरा बढ़ेगा और जीडीपी में लगभग 2 फीसदी की बढ़ोतरी होने की संभावना है। इसके अलावा कर अधिकारियों की अवैध वसूली से भी निजात मिलेगी। स्वाभाविक है इससे देश में निजी निवेश व एफडीआई में बढ़ोतरी होगी।

परंतु इन सभी सकारात्मक प्रभाव को फलीभूत करने के लिए राज्य और केन्द्र सरकार दोनों को तकनीकी पेचीदगियों पर ध्यान देना होगा।

❖❖❖

रेल बजट-2004[1]

बिहार के लोगों को मायूसी हुई है कि बिहार के लिए छपरा में रेल पहिया कारखाने के अतिरिक्त कुछ नहीं दिया गया है। पटना रेल पुल, मुंगेर रेल पुल एवं कोसी के महासेतु के लिए अपेक्षित धन का उपबंध नही किया है। उसी तरह सहरसा-फारबिसगंज, दरभंगा-निर्मली, दरभंगा-जयनगर और दरभंगा-नरकटियागंज एवं झंझारपुर-लौकहा का अमान परिवर्तन के लिए बजट में उपबंध नहीं किया है। मानसी-सहरसा अमान परिवर्तन कार्य पूरा हो जाने के बाद भी उस खण्ड में बड़ी लाइन के परिचालन की घोषणा नहीं करना अत्यन्त ही विस्मयकारी है। रेलमंत्री ने बिहार सरकार और बिहार विधान सभा द्वारा अनुशंसित 1 लाख 79 हजार रुपये के विशेष पैकेज में सम्मिलित 16 नई रेल परियोजनाओं का समावेश अपने बजटीय भाषण में नहीं किया है।

पिछली सरकार ने रेलवे की 'हेल्थ' सुधारने की तरफ ध्यान दिया था तथा आधुनिकीकरण, संरक्षण और विस्तार, तीनों को एक साथ जारी रखने की नीति बनायी थी। रेलवे को बचाने के लिए इसी रास्ते पर आगे चलने की जरूरत है, क्योंकि एक बार खर्च अधिक बढ़ जाने के बाद इन पर पुनः काबू पाना बेहद मुश्किल होता है।

ट्रेन दुर्घटनाओं के मामले में विचार करते समय एक तथ्य पर सबसे ज्यादा गौर करने की जरूरत है कि सर्वाधिक हादसे रेलवे कर्मचारियों की चूक की वजह से होते हैं। इस पर काबू पाने के सभी प्रयास अब तक व्यर्थ रहे हैं। कर्मचारियों को नियमित प्रशिक्षण नहीं दिया जाना भी इसी से जुड़ा विषय है, जिसे लगातार नजरंदाज किया गया है।

दुर्घटनाओं को रोकने में विफलता इस वजह से भी हो रही है कि रेलवे को विभागवाद की राजनीति दीमक की तरह खाये जा रही है। अक्सर दुर्घटनाओं के जिम्मेदार लोग बेनकाब नहीं हो पाते क्योंकि रेलवे का हरेक विभाग यात्रियों की जान की फिक्र करने के बजाय अपने कर्मचारियों को बचाने में लगा रहता है। रेल यात्रा को सुरक्षित करने, यात्राी के जान-माल की रक्षा के लिए विशेष उपाय की कोई भी घोषणा अब तक नहीं हुई है।

इधर जिस तरह से सड़क परिवहन की ओर से रेलवे को चुनौती मिल रही है उसके मद्देनजर माल भाड़ा बढ़ाना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं था। रेलवे के हाथ से माल भाड़े का बड़ा हिस्सा पहले ही सड़क परिवहन के हाथों में चला गया है। आमदनी बढ़ाने के स्रोत पहले ही रेलवे में सिकुड़ गये हैं। गैर परम्परागत स्रोतों, मसलन खान-पान निगम और रेल टेल निगम से उगाही का सपना पूरा नहीं हो सका। आगे तो इसके आसार और भी क्षीण दिखाई देते हैं।

1 6 जुलाई, 2004

रेल बजट-2014-15[1]

बजट में हाई स्पीड ट्रेनों की हीरक चतुर्भुज परियोजना सहित अनेक योजनाओं का उल्लेख किया गया है। रेलवे को गतिशील बनाये रखने के लिये रेलवे के विकास से जुड़ी योजनाएं व्यापक हों और कार्य योजनायें उतनी ही हाथ में ली जाए जो तय समय सीमा और उपलब्ध धन से पूरी की जा सके। विकास के इन बुनियादी सिद्धांतों को पिछली सरकारों द्वारा की गयी अवहलेना की वजह से ही आज रेलवे की 368 परियोजनाएं लम्बित हैं और इन्हें पूरा करने के लिये 1 लाख 78 हजार करोड़ रूपये की जरूरत है। इनमें से ज्यादातर पिछले 40 वर्षों से निर्माणधीन है। विभिन्न रेल मंत्रियों की क्षेत्रीय महत्वाकांक्षा के चलते ही कई परियोजनाएं ऐसी हैं जिनको पूरा होने के बाद भी रेलवे को कोई लाभ नहीं होने वाला है। इसलिये जरूरत है कि इन परियोजनाओं में धन लगाने के बजाय पहले लाभदायी योजनाओं को आगे बढ़ाया जाए। ऐसा किया जाता है तो रेलवे को योजना पूर्ण होने के साथ ही आय भी शुरू हो जायेगा।

सैम पित्रौदा समिति की सिफारिशों को माना जाए तो रेलवे को आधुनिकीकरण और सुरक्षा उपायों से जोड़ने के लिये लगातार आठ साल तक 6 लाख करोड़ रुपये की जरूरत होगी जो कभी भी संभव नहीं है, क्योंकि रेलवे अपना रोज-मर्रा का खर्च भी खुद की स्रोत से नहीं जुटा पा रही है। रेल बजट में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि रेलवे को आत्मनिर्भर बनाने के लिये बुनियादी ढांचे में बढ़ोतरी तथा सेवा में सुधार के लिये साधन जुटाना बड़ी चुनौती है। इस समय रेलवे 26 हजार करोड़ का घाटा दिखा रहा है और जो ताजा किराया वृद्धि हुई है उससे केवल 5 हजार करोड़ की अतिरिक्त आमदनी प्राप्त होगी। इस वृद्धि के बाद भी 21 हजार करोड़ का घाटा बना रहेगा।

रेल मंत्री ने स्पष्ट किया है कि रेल धन को समझदारी से ऐसे तकनीकी उपाय पर खर्च करने की जरूरत है जिसका लाभ यात्रा सुरक्षा में दिखायी दे। यह जरूरी है कि रेलवे को ऐसे आधुनिक संकेतों से जोड़ा जाए जिसे सर्दियों के दिनों में कोहरे में जिन ट्रेनों को घंटों लेट होने तथा ट्रेन बंद करने की लाचारी झेलनी पड़ती है उसमें सुधार हो सकेगा। सुरक्षा संबंधी उपायों में तत्काल मानव रहित रेल पार पथों को अन्डर या ओवर ब्रीज में बदलने की जरूरत है। रेलवे का मौजूदा ट्रैक तेज रफ्तार यात्री ट्रेनों और ज्यादा वजन ढोने वाली मालगाड़ियों के लिहाज से अनुपयुक्त है। इसका नवीनीकरण होना चाहिए और अंतर्राष्ट्रीय स्तर की मजबूत पटरियाँ बिछाई जानी चाहिए। रेलवे में कलपुर्जों की खरीद और गुणवत्ता जाँचने के तरीके भी ठीक नहीं हैं। इससे घटिया पुर्जों की खरीद हो रही है, इसे ठीक करने की जरूरत है।

❖❖❖

1 8 जुलाई, 2014

केन्द्रीय बजट[1]

भारत का लक्ष्य केवल उच्च संवृद्धि दर प्राप्त करना ही नहीं है बल्कि यह भी ध्यान रखना है कि संवृद्धि टिकाऊ और समावेशी हो। संवृद्धि दर यथासंभव अधिकतम ही न हो बल्कि वह बनी रहे और उससे सब लोग लाभान्वित हों। ऐसा न हो कि आर्थिक संवृद्धि के परिणामों का वितरण असमान हो और कतिपय आय वर्गों, जातियों, क्षेत्रों और समुदायों को ही फायदा पहुँचे। बजट में रोजगार बहुल क्षेत्रों, बुनियादी ढांचा, आवास, कृषि विपणन और कृषि संबंधी गतिविधियों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। प्रणालियों, प्रोत्साहनों, सरकारी व्यय और सार्वजनिक सेवाओं के संघटन को बेहतर बनाने की दिशा में शुरुआत भी की गई है। ये सभी उपाय विकास में योगदान के अलावा क्षमता निर्माण के जरिए समानता की स्थिति में सुधार लाने में मदद करेंगे ताकि अर्थव्यवस्था के मार्ग में रुकावटें न आएं।

आम तौर पर हर बजट से दो प्रमुख उम्मीदें रहती हैं। एक, करों में छूट की और दूसरी सामाजिक क्षेत्र पर खर्च बढ़ाने की यद्यपि दोनों में थोड़ा विरोधाभास है। परन्तु इस बजट में वित्त मंत्री ने दोनों में संतुलन स्थापित करने का पूर्ण प्रयास किया है। समाज के आखिरी पायदान पर टिके तबकों के कल्याण के लिए सामाजिक क्षेत्र पर राजकोषीय खर्च बढ़ाया गया है। अधिक कराधान एक तरह से सरकार पर या सार्वजनिक क्षेत्र पर सामाजिक क्षेत्र की बेहतर सुध लेने की नैतिक जिम्मेदारी भी डालता है क्योंकि कर नीति का लक्ष्य केवल खर्च के पैसे जुटाना भर नहीं है। यह बजट देश की आर्थिक दशा को विश्वसनीय दिशा दिखा रहा है। महिलाओं का हो या किसानों का, बेरोजगारों का हो या उद्यमियों का अथवा दलितों का हो या अल्पसंख्यकों का हर जगह युवाओं के लिए प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भारतीय बजट को 'युवा बजट' मानने पर विवश कर रहे हैं। बजट भारतीय युवाओं के लिए नयी उम्मीदें लेकर आया है। आम बजट को युवा प्रधान बजट बनाने तथा सुधारों से लैस करने का सिलसिला यदि इसी तरह चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब भारत की अर्थव्यवस्था भी विश्व में एक परिपक्व अर्थव्यवस्था के रूप में अपनी पहचान कायम कर पायेगी और गणतंत्र को नया विस्तार मिल पायेगा। यह बजट समावेशी और सतत् विकास के लिए उच्च वृद्धि की आवश्यकता की वकालत की है।

जहाँ एक ओर आर्थिक नीति हैं वहीं दूसरी ओर आर्थिक कल्याण है, दोनों को ध्यान में रखते हुए अवसरों, शिक्षा, कौशल विकास, नौकरियों तथा आमदनी में बढ़ोतरी पर जोर दिया गया है। बजट का प्रमुख लक्ष्य यही है कि युवाओं को शिक्षा और कौशल-विकास के अवसर प्राप्त हों, जिससे वे अच्छी नौकरियाँ हासिल कर अथवा अपना काम-धंधा शुरू कर सकें जिससे उन्हें

1 28 फरवरी, 2015

पर्याप्त आमदनी हो और वे अपने परिवार के साथ एक सुरक्षित माहौल में जीवन-यापन कर सकें। सम्पूर्ण युवा-वर्ग और विशेषकर युवा महिला, युवा दलित, युवा अल्पसंख्यक, युवा किसान, युवा कारीगर, बुनकर, विद्यार्थी, खिलाड़ी आदि पर ध्यान दिया गया है। इस बजट में 2022 तक गरीबी समाप्त करने, गाँव में 4 करोड़ आवास और शहर में 2 करोड़ आवास बनाने तथा प्रत्येक परिवार में एक व्यक्ति को नौकरी देने के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा सभी बुजुर्गों को देने का प्रावधान किया गया है। जन धन योजना के अंतर्गत 2 लाख का बीमा जैसे 10 प्रमुख प्राथमिक कार्यक्रम जो समावेशी विकास स्थापित करने की दिशा में बड़ी ही महत्वपूर्ण सोच है। स्वास्थ्य सुविधा, स्वास्थ्य बीमा और सबों को पेंशन देने का प्रावधान अत्यंत ही सराहनीय है।

❖❖❖

बिहार बजट[1]

बिहार में विकास की चुनौती बहुत बड़ी है, क्योंकि यहाँ गरीबी बेहद और लगातार बनी हुई है।

इस बजट की रणनीति के अंतर्गत भूख, कुपोषण, गरीबी रेखा के नीचे जीवन जी रहे लोगों के समावेशी विकास, गरीबी खत्म करने, रोजगार, जीवन यापन के साधनों का सृजन, आर्थिक आधारभूत ढांचे का निर्माण, मानव संसाधन के विकास की क्षमताएं विकसित करने एवं सामाजिक आधारभूत ढांचे में परिवर्तन करने, वित्तीय सुधारों के साथ प्रशासन की गुणवत्ता में सुधार लाने, भ्रष्टाचार पर नियंत्रण तथा कमजोर तबके, विशेषकर अल्पसंख्यक, दलित, अत्यंत पिछड़ी जाति एवं महिलाओं का विशेष ध्यान रखने का कोई स्पष्ट संकल्प इस बजट से प्रदर्शित नहीं हुआ है।

औद्योगीक नीति के बावजूद राज्य के विभिन्न जिलों में पिछले 10 वर्षों से औद्योगीकरण की रफ्तार सुस्त है। यह बड़ा ही विस्मयकारी रहा है कि देश के बड़े-बड़े कॉर्पोरेट क्षेत्र के बड़े-बड़ें उद्योगपतियों द्वारा बिहार में पूँजी निवेश के लिए आश्वासन देने के बावजूद उद्योगपतियों ने पूँजी निवेश नही किया।

लघु उद्योग इकाइयों के राज्यस्तरीय अध्ययन के अनुसार, बिहार की 70 प्रतिशत लघु उद्योग इकाइयाँ रुग्न अथवा बंद हैं। अभी तक प्राप्त सूचना से यह स्पष्ट हुआ है कि 2005 तक 25000 ईकाईयाँ और उसके बाद 15000 ईकाईयाँ बंद हुई हैं। बिहार राज्य औद्योगिक निवेश सलाहकार परिषद् की बैठक में औद्योगिक विकास को गति देने के लिए रोड-मैप तैयार करने का निर्णय भी लिया गया। यह रोड-मैप देश के कॉरपोरेट दिग्गज राज्य सरकार के साथ मिलकर तैयार करना था। इसके लिए परिषद् की विशेष कमिटी बनाने का फैसला किया गया था जिसमें विशेष बल एग्रो-इंडस्ट्री, ग्रामीण विकास और रोजगार पर दिया गया था। परन्तु यह विस्मयकारी है कि इस दिशा में प्रगति अभी तक नहीं हो पायी है। राज्य सरकार ने उद्यमियों के प्रोत्साहन के लिए जो नयी औद्योगिक नीति लागू की उसमें बिजली की कमी बड़ी बाधा बनी रही है, इसलिये बड़े उद्योगपति इस ओर अपना रुख नहीं कर रहे हैं। राज्य सरकार लघु, छोटे और मझौले क्षेत्र के उद्यमियों की नई पीढ़ी तैयार करने में अब तक विफल रही है। राज्य में कमजोर आर्थिक पृष्ठभूमि वाले उद्यमियों को आगे आने का मौका नहीं मिला है। इससे राज्य में रोजगार के साथ-साथ विनिर्माण क्षेत्र के विकास को तरक्की का मौका नही मिला है। सरकार के निर्णय के बावजूद पुलिस कर्मियों को 12 महिने के वेतन के स्थान पर 13 महिने का वेतन भुगतान करने के निर्णय के कार्यान्वयन का प्रावधान भी बजट में नहीं किया गया है। गृह रक्षकों का मानदेय 300 से बढ़ा कर 400 रुपये प्रतिदिन, यात्रा भत्ता 20 रुपये से बढ़ाकर 50 रुपये करने, 20 साल से लगातार सेवा पूरी करने

1 12 मार्च, 2015

वाले गृह रक्षकों को सेवा उपरांत 1.5 लाख मानदेय तथा सेवा अवधि 58 से 60 वर्ष करने के निर्णय का भी उल्लेख बजट भाषण में नहीं किया गया है।

विभिन्न पंचायतों में निजी माध्यमिक विद्यालयों एवं इंटर कालेजों में शिक्षकों को सरकारी वेतनमान पर नियोजित करने का प्रावधान बजट में नहीं किया जाना, 3 लाख से अधिक नियोजित शिक्षकों को अन्य सरकारी शिक्षकों की तरह वेतनमान नहीं दिया जाना, संवैधानिक प्रावधान का उल्लघन है। इस संबंध में एक काम के लिए एक वेतनमान अनुमान्य किया जाना है। मध्याह्न भोजन कार्यक्रम के अंतर्गत रसोइयों को 1000 प्रतिमाह देने का भी उल्लेख नहीं किया गया है। खेती को आधुनिकतम बनाने के उद्देश्य से किसान सभाकारों को 7 हजार रुपये मानदेय दिये जाने का भी निर्णय बजट में नहीं किया गया है।

राजस्व ग्रामों में (लगभग 46000) एक-एक सुरक्षाकर्मी की व्यवस्था की स्वीकृती दी है किन्तु उसका भी प्रावधान नहीं है। सरकारी सेवाओं में 35 प्रतिशत महिलाओं को आरक्षित करने का उल्लेख भी बजट में नहीं किया जाना दुखद है। मदरसों में आधुनिक शिक्षा पर जोर देने के लिए कम्प्यूटरीकरण की व्यवस्था बजट में नहीं की गई है। बिहार पत्रकार पेंशन योजना के लिए भी धन का उपबंध नहीं किया गया है। उच्च, मध्य, माध्यमिक, इंटर एवं डिग्री महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों को वेतनमान देने संबंधी निर्णय के कार्यान्वयन के लिए भी बजट भाषण में उल्लेख नहीं किया गया है। 5 एकड़ भूधारी किसानों, जिन्हें मुफ्त बिजली देने एवं सिचाई शुल्क नहीं लेने के निर्णय के लिए भी प्रावधान नही किया गया है। कोशी, गंडक, सोन, बडुआ विकास प्राधिकरण को व्यवहार्य बनाकर खेती को बढ़ावा देने का भी प्रावधान नहीं है। प्रत्येक सैनिक किसानों को निजी नलकूप लगाने के लिए उदारतापूर्वक अनुदान देने के पिछले प्रावधानों को लागू नहीं करने से कृषि नीति बनाने के बावजूद भी कार्यन्वयन होना संभव नही होगा।

❖❖❖

बदलाव तो जरूरी है

फर्जी मुठभेड़[1]

बिहार राज्य में पुलिस ज्यादती, पुलिस द्वारा फर्जी मुठभेड़, बिहार की हिरासत में बढ़ती हुई कैदियों की मौत, चिकित्सा के अभाव में न्यायिक हिरासत में कैदियों की मौत, भूख से मौत, जातिगत नरसंहार एवं नक्सली-उग्रवादी हत्याओं के रूप में राज्य में मानवाधिकार हनन की घटनाओं को थामने के लिए राज्यपाल का व्यक्तिगत ध्यान आवश्यक है। मानवाधिकार संबंधित विषयों की सारगर्भिता को देखते हुए एवं इसके प्रभाव को अधिक व्यापक बनाने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि राज्य सरकार मानवाधिकार हनन संबंधी सभी मामलों की निगरानी और जांच पड़ताल करा उन घटनाओं के कारणों और दोषियों को चिह्नित कर तथा मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए अति शीघ्र मानवाधिकार अधिनियम, 1993 के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत राज्य मानवाधिकार आयोग का गठन किया जाना चाहिये। अभी राज्य में जिस जरह की परिस्थिति बन आयी है उसे देखते हुए आवश्यक है कि पुलिस की भूमिका को ऐसे साँचे में ढाला जाए कि दोषी व्यक्तियों को निश्चित रूप से दंड मिले तथा निर्दोष व्यक्तियों को परेशान न किया जाए।

मानवाधिकार संरक्षण के प्रसंग में यह उल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है कि संविधान में जिस समतामूलक समाज की परिकल्पना की गई है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 को मौलिक अधिकारों की आत्मा मानकर उसमें जो कहा गया है कि ''किसी व्यक्ति को उसके प्राण अथवा दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य किसी प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा'', उसे ध्यान में रखते हुए सच्चाई ठीक इसके विपरीत मालूम पड़ती है। आज सैकड़ों लोगों की सामूहिक नरसंहारों में हत्या, फर्जी पुलिस मुठभेड़ में हत्या, हिरासत में मौत और भूख से भी मौत की घटनाएं कानून की स्थापित प्रक्रिया की धज्जियाँ उड़ाती हैं। इसलिए इस तथ्य का गंभीर अध्ययन किया जाए कि कमजोरी कहाँ है और उसे कैसे सुधारा जा सकता है? बिहार में हिंसा, भ्रष्टाचार, विकासशून्यता और बेरोजगारी जैसी समस्याओं से आम आदमी त्रस्त है। व्यवस्था के प्रति चौतरफा आक्रोश एवं असंतोष चरम पर है। सम्प्रति समाज जातीय रूप से टुकड़ों में बंटा हुआ है। किसी भी चीज का आकलन करते वक्त जाति के समीकरण पहले खड़े हो जाते हैं।

पटना जैसे संवेदनशील शहर में ऐसे पुलिस जुल्म के खिलाफ आक्रोश का भड़कना स्वाभाविक था। पटना और बेगूसराय की घटना बिहार की अराजकता, निरंकुश और संवेदनहीन प्रशासन का प्रमाण है। फर्जी मुठभेड़ों के अनेक मामलों की जाँच में यह सत्यापित हो चुका है कि पुलिस द्वारा निर्दोष और मासूमों पर अपनी बहादुरी दिखाकर आवार्ड पाने की कोशिश की जाती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में फर्जी मुठभेड़ द्वारा हत्या करके मानवाधिकार हनन की घटनाओं पर कार्रवाई के लिए कानूनी प्रावधान का अभाव है। इसने देश में और देश के बाहर भी बिहार की स्थिति शर्मनाक बना दी है। राज्य की कानून-व्यवस्था अपना प्रतीकात्मक महत्व और प्रभाव खो चुकी है।

❖❖❖

1 6 जनवरी, 2003

राष्ट्रीय जाँच एजेन्सी विधेयक[1]

आतंकवाद से मुक्ति दिलाने का दायित्व सरकार का है। आतंक मुक्त जीवन हर नागरिक का मौलिक अधिकार है। आतंकवाद से निपटने और निर्दोष लोगों की जान बचाने में सरकार विफल रही है। 1993 में मुम्बई में भयानक आतंकवादी हमला हुआ था। उसके बाद सभी सरकारें आतंकवादी घटनाओं को रोकने में नाकामयाब रहीं। 2001 में संसद पर हुए हमले के बाद सरकार सक्रिय नहीं रह पायी। आतंकवाद निरोधक कानून को सख्त बनाने और राष्ट्रीय जाँच की आवश्यकता महसूस की जा रही थी, परन्तु सरकार के स्तर से कोई कठोर कानून नहीं बनाया जा सका।

मुम्बई के आतंकी हमले के बाद सम्पूर्ण राष्ट्र में यह महसूस किया जा रहा था कि आतंकवाद के मुकाबले के लिये वर्तमान कानून और तौर-तरीकों में परिवर्तन की जरूरत है। यह अच्छी बात है कि इन अधिनियमों में टाडा एवं पोटा जैसे विवादास्पद अधिनियमों के अंशों को हटा दिया गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि पोटा लागू होने के समय लाल किले, संसद और अक्षरधाम मन्दिर पर हमले से या महाराष्ट्र में मोकोका के लागू रहते हुए तमाम विस्फोटों और मुम्बई को हमले से बचाया नहीं जा सका। यह महसूस किया जा रहा था कि प्रभावशाली रक्षा तंत्र के लिए प्रशासनिक और पुलिस सुधारों के उपायों की जरूरत है। राष्ट्रीय जाँच एजेंसी इसी दिशा में एक मजबूत विधेयक है।

पिछली कई आतंकी घटनाओं के बाद सुरक्षा एजेंसी में तालमेल न होना सबसे बड़ी कमजोरी दीख रही थी। यह भी महसूस किया जा रहा था कि राज्य सरकारों का सुरक्षा तंत्र आतंकी हमलों के मुकाबले के लिए सक्षम नहीं था। राज्यों की कमजोर पुलिस ऐसे आतंकवादी संगठनों से निबटने में सक्षम नहीं दीख रही थी क्योंकि ज्यादातर राज्यों की पुलिस अप्रशिक्षित और कमजोर मनोबल बाली है। राजनीतिक इस्तेमाल एवं हस्तक्षेप के कारण पुलिस न पेशेवर थी और न सक्षम थी। राष्ट्रीय जाँच एजेंसी पुलिस की बुनियादी सुरक्षा और जाँच की व्यवस्था कर सकेगी।

❖❖❖

1 18 दिसम्बर, 2008

सी.बी.आई. को राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त करना एक चुनौती है[1]

देश में भ्रष्टाचार में बढ़ोतरी पर हम सभी चिन्तित हैं। हालाँकि समय-समय पर भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने की कोशिशें भी होती रही हैं। इसी क्रम में 1997 के 17 दिसम्बर को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित फैसले में कहा गया कि- हर्षद मेहता कांड के बाद भ्रष्टाचार नियंत्रण के लिए जो निर्देश जारी किये गये उनका कार्यान्वयन नहीं होने के कारण राष्ट्र में लगातार घोटालों और भ्रष्टाचार में बढ़ोतरी होती गयी है। अब सर्वोच्च न्यायालय का कहना है कि उनका (सर्वोच्च न्यायालय का) पहला प्रयास सी.बी.आई. को राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त करने का है। न्यायालय के सभी निर्देशों में 4 (चार) महत्वपूर्ण हैं। (1) फैसला के अनुसार सी.बी.आई. पर अधीक्षण का दायित्व सरकार से हटा कर केन्द्रीय निगरानी आयोग को सौंपा गया। (2) फैसलों के अनुसार सी.बी.आई. के निदेशक का चयन केन्द्रीय निगरानी आयोग (सी.भी.सी.) की अध्यक्षता में दो सदस्यों, केन्द्रीय गृह सचिव एवं कार्मिक सचिव, के साथ गठित समिति द्वारा किया जाना चाहिये। (3) सी.बी.आई. निदेशक का कार्यकाल अल्पतम दो वर्षों का हो- बिना वार्द्धक्य का विचार किये। (4) सी.बी.आई. को अब से संयुक्त सचिव के स्तर तक के पदाधिकारियों के विरुद्ध आरोपों की जाँच करने के लिए सरकार से आदेश लेने की आवश्यकता नहीं होगी। इन चारों में से एक भी निर्देशिका का अनुपालन ईमानदारी से नहीं किया गया। सर्वोच्च न्यायालय को न केवल सी.बी.आई. को स्वतंत्र करने की अनुशंसायें करने के लिए सोचना है, अपितु अनुशंसाओं का अनुपालन कराने के लिए भी।

❖❖❖

1 28 जनवरी, 2013

कार्यक्रम कैसे हो[1]?

सरकार कोई व्यावसायिक संगठन नहीं है जिसे आय, व्यय और मुनाफे पर विचार करना पड़ता है। कल्याणकारी राज्यों में आम जनता की, विशेषकर गरीबों के संबंध में उनके कल्याण तथा उनकी प्रगति के लिए मुख्य जिम्मेवारी हमारे संविधान के अंतर्गत मूल अधिकार और राज्य के निदेशक तत्व के अंतर्गत दिये गये निदेशों में निहित हैं।

मेरी सरकार ने अपने कार्यकाल में 54000 प्राथमिक विद्यालयों, 3000 माध्यमिक विद्यालयों, 235 महाविद्यालयों को अंगीभूत करने, 429 संस्कृत विद्यालयों को सरकारीकरण, 39 संस्कृत महाविद्यालयों को अंगीभूत करने, संस्कृत एवं मदरसा शिक्षकों को सरकारी शिक्षकों की भाँति वेतन एवं अन्य सुविधाएं प्रदान करने, अत्यंत पिछड़ी जाति के छात्रों को दलित छात्रों की तरह सुविधा प्रदान करने, जिला बोर्ड एवं जिला परिषद् में अत्यंत पिछड़े एवं दलित का मनोनयन करने, भूमि सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत भूमिहीनों को जमीन देने, अल्पसंख्यक समुदाय के लिए सुरक्षा एवं कल्याण की अनेक योजनाओं के साथ-साथ औद्योगिक आर्थिक विकास की संभावनाओं को गतिशील बनाने के उद्देश्य से अनेक कार्यक्रमों को कार्यान्वित कराकर बिहार राज्य में सामाजिक न्याय एवं गरीबी उन्मूलन की संभावनाएं बनायीं। 45000 चौकीदार-दफादार को सरकारी कर्मचारी बनाये जाने, अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए अंगीभूत योजना और जनजातीय उपयोजना को कार्यान्वित करने, मधेपुरा, आरा, छपरा, हजारीबाग तथा दुमका में नये विश्वविद्यालयों की स्थापना करने, 23 लाख वृद्ध पुरुष-महिला को सामाजिक सुरक्षा पेंशन प्रदान करने, 3 लाख नौजवानों को सरकारी बेरोजगारी पेंशन प्रदान करने की स्वीकृति देने, किसानों के कर्ज की माफी, सिंचाई शुल्क की माफी, बिजली के बकाये राशि में कटौती करने किसानों के निजी नलकूप के लिए अनेक प्रकार की सहायता राशि प्रदान करने, छात्रवृत्ति की राशि दूनी करने, चौथे वेतन का पुनर्निधारण करने, केन्द्रीय सरकार के अनुरूप महंगाई भत्ता की स्वीकृति देने आदि जैसे अनेक ऐसे निर्णय जन-कल्याण की दृष्टि से लिये।

❖❖❖

1 16 फरवरी 2015

लोक शिकायत निवारण अधिकार अधिनियम[1]

बिहार में लोक शिकायत निवारण अधिकार अधिनियम (आरटीपीजीआरए) प्रणाली के माध्यम से लोक शिकायत दूर करने की लगातार कोशिश की जा रही है। परन्तु अब लोक शिकायत निवारण अधिकार अधिनियम (आरटीपीजीआरए) के प्रभावी होने के बाद लोक शिकायत का मजबूती से निवारण किया जा सकता है।

लोक शिकायत अधिकार अधिनियम द्वारा लोक शिकायत दूर करने के उद्देश्य से जिला स्तर पर अलग लोक शिकायत पदाधिकारी स्थापित है। परन्तु यह विस्मयकारी है कि राज्य सरकार की लोक शिकायत निवारण अधिकार अधिनियम आरटीपीजीआरए प्रणाली बुरी अवस्था में है। अधिकतर मामलों का निवारण कागजों पर ही कर दिया जाता है। ज्यादातर शिकायतें पदाधिकारी से सम्बन्धित होती हैं। इसलिए इनका निराकरण नहीं हो पाता है। शिकायत प्रणाली ऑन लाइन देखी जा सकती है। कुछ अधिकारी शिकायत को नजर-अंदाज करने का प्रयास करते हैं।

राज्य सरकार को ऐसी चुस्त और दुरुस्त प्रणाली बनानी चाहिए कि जब तक धरातल पर काम न हो तब तक निराकरण न माना जाए। ऐसे शिकायत के निबटारे में समय तो लगेगा पर जनता को लाभ मिलेगा। अधिक संख्या में शिकायतों का निबटारा कर देने से कोई लाभ नहीं है। सड़क, बिजली, छात्रों को छात्रवृत्ति, किसानों को सहायता, बाढ़ से प्रभावित लोगों को सहायता, मनरेगा, केन्द्र सरकार से मिलने वाली विभिन्न वित्तीय पोषण सम्बन्धित शिकायतों का निराकरण, शिक्षा आदि शिकायतों के निबटारे नहीं हो पाते हैं। केन्द्र और राज्य सरकार प्रभावित और उपेक्षित लोगों के लिए व्यय करती हैं परन्तु राशि आबंटित होने के बावजूद वे लाभान्वित नहीं हो पाते है। यह काफी दुखद है। उनकी शिकायतें जिला स्तर पर प्रभावी ढंग से नहीं सुनी जाती जिससे सम्बन्धित विभिन्न गंभीर समस्याओं का निराकरण विभागीय स्तर पर नहीं हो पाता है। अल्प पूंजी निवेश, भूमि का खण्डीकरण, बाढ़ एवं सुखाड़, फसलों की विफलता, सिंचाई की अनुपलब्धता, ऋण इत्यादि जैसे प्रत्यक्ष मुद्दे हैं। जिनके लिए राशि आबंटित होती है वे लोग लाभान्वित नहीं होते और उनकी शिकायतों का निराकरण नहीं हो पाता। केवल औपचारिकता निभाई जाती है। विभागीय स्तर पर आवेदन को अग्रसारित कर दिया जाता है। फलत: उपेक्षित लोगों को योजनाओं का पर्याप्त लाभ नहीं मिल पाता। केन्द्र और राज्य सरकार को इसके लिए विभिन्न विभागों को पर्याप्त बजट देना चाहिए, जिससे शिकायत मिलते ही प्राथमिकता के आधार पर कार्रवाई की जा सके। ऐसे में जरूरत है शिकायत प्रणाली को चुस्त-दुरुस्त करने के साथ-साथ जमीनी स्तर पर काम करने की।

❖❖❖

1 25 सितम्बर, 2017

नौकरशाही में भ्रष्टाचार[1]

राजस्थान के मुख्यमंत्री द्वारा लाया गया अध्यादेश कानून भ्रष्टाचार में लिप्त नौकरशाही को अभयदान प्रदान करेगा। यह कानून न केवल बेतुका है बल्कि यह संस्थागत भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई को कमजोर करेगा। राजस्थान सरकार के निर्णय द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता और कर्मचारियों के खिलाफ शिकायत करने से पहले सरकार से अनुमति लेनी पड़ेगी। राजस्थान सरकार ने जो किया है वह गलत है। अध्यादेश के मुताबिक सरकारी कर्मचारियों तथा न्यायाधीश आदि के खिलाफ शिकायत आने पर भी तब तक एफ॰आई॰आर॰ दर्ज नहीं की जा सकती जब तक राज्य सरकार इसकी अनुमति नहीं दे। हालांकि यह कानून कानूनी कसौटी पर नहीं टिकेगी। जहाँ प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी भ्रष्टाचार उन्मूलन के लिए प्रतिबद्ध है वहीं राजस्थान सरकार द्वारा इस प्रकार का अध्यादेश लाया जाना देश के लिए उचित नहीं हो सकता।

भ्रष्टाचार के विरुद्ध राजनीति एवं प्रशासनिक स्तर पर बिहार विधान मण्डल द्वारा 3 अगस्त, 1983 को पारित बिहार विनिर्दिष्ट भ्रष्ट आचरण निवारण अधिनियम विधेयक पारित किए जाने के समय मेरी तत्कालीन सरकार ने राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध चौतरफा प्रहार के लिए अनेक कदम उठाने का प्रयास किया था। इसके अंतर्गत उठाए गये कुछ उल्लेखनीय कदमों में प्रमुख हैं–बिहार विनिर्दिष्ट भ्रष्ट आचरण निवारण अधिनियम, 1989 निगरानी–तंत्र का विकेन्द्रीकरण, जिला निगरानी परिषद् का गठन और मंत्रिपरिषद के सदस्यों के विरुद्ध विधान मंडल के 33 सदस्यों द्वारा उपस्थापित आरोपों की जाँच की प्रक्रिया का आरंभ कराया जाना और लोकायुक्त अधिनियम में संशोधन।

आइ॰पी॰सी॰ एवं पी॰सी॰ एक्ट के अंतर्गत सभी कर्मचारियों, पदाधिकारियों को ऐसा संरक्षण मिला हुआ है कि उनके विरुद्ध बिना सरकारी अनुमति के संज्ञान नहीं लिया जा सकता। बिहार विनिर्दिष्ट भ्रष्ट आचरण निवारण अधिनियम, 1983 का अब तक प्रभावकारी नहीं बन पाना विस्मयकारी रहा है। इस अधिनियम के अंतर्गत भ्रष्टाचार के विरुद्ध चौतरफा कार्रवाई की जा सकती है। बिहार विनिर्दिष्ट भ्रष्ट आचरण निवारण अधिनियम, 1983 के अंतर्गत संबन्धित पदाधिकारी एवं व्यक्तियों के विरुद्ध मामला उठाया जा सकता है। मामला प्रथम दृष्ट्या सही मालूम पड़े तो उन पदाधिकारियों एवं व्यक्तियों के विरुद्ध थाना, आरक्षी अधीक्षक, जिला पदाधिकारी, उप विकास आयुक्त एवं स्थानीय कोर्ट में मामला (एफ॰आई॰आर॰) दाखिल किया जा सकता है। राज्य सरकार, लोक उपक्रमों, स्थानीय प्राधिकारों, सहकारिता समितियों अथवा राज्य सरकार से सहायता प्राप्त अन्य संस्थाओं या संगठनों के कार्यकलापों में सेवारत व्यक्तियों अथवा उससे सम्बद्ध अन्य व्यक्तियों द्वारा अपनाये जाने वाले भ्रष्ट तरीकों के उन्मूलन के उद्देश्य से बिहार विनिर्दिष्ट भ्रष्ट आचरण निवारण अधिनियम, 1983 लागू है। यह अधिनियम सरकारी

1 23 अक्टूबर, 2017

कर्मचारियों (जिसमें डाक्टर भी सम्मिलित हैं), ठीकेदारों, आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के विक्रे. ताओं, वन–उत्पादनों को चुराने वालों या कर्मचारियों की वैसी सभी गतिविधियों पर अंकुश लगाता है जो भ्रष्ट आचरण समझी जाती हैं और जनहित में नहीं हैं। इस कानून के जरिये अदालत की ताकत भी कम की जा रही है।

❖❖❖

पुलिस की निष्क्रियता[1]

पटना जिला के चर्चित हैबसपुर नरसंहार कांड के 28 आरोपी, पुलिस और प्रशासनिक निष्क्रियता के कारण साक्ष्य के अभाव में बरी हो गये। ऐसा प्रमाणित होता है कि न्याय प्रणाली, पुलिस प्रणाली और सरकारी तंत्र में विशेष खमियां हैं अथवा उनकी मानसिकता दलित विरोधी है।

अनुसूचित जाति और जनजाति पर अत्याचार निवारण के लिए समय-समय पर जो अधिनियम बनाये गये हैं उसका अनुपालन नहीं होता है। 1989 में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण अधिनियम) पारित किया गया। इस अधिनियम के लागू होने के बाद भी दलित और आदिवासियों पर अत्याचार लगातार जारी रहा। संवैधानिक संरक्षण और विभिन्न प्रकार के अपराध नियंत्रण अधिनियम के अन्तर्गत निचली अदालतों द्वारा सजा देने के बावजूद उच्च न्यायालय से दोषी लगातार साक्ष्य के अभाव में बरी होते रहे हैं। जिसके परिणामस्वरूप दलितों और आदिवासियों पर व्यक्तिगत और सामूहिक जुल्म और अन्याय करने वालों का मनोबल बढ़ता ही गया है।

अधिनियम के अनुपालन का पुनरावलोकन हो। इसके उद्देश्य की पहचान को मापने और भविष्य में इस अधिनियम का प्रभावशाली अनुपालन एवं मजबूती के लिए केन्द्र और राज्यों/संघीय राज्यों में उच्च स्तरीय समिति का गठन किया जाए। अनुसूचित जाति एवं जनजाति अधिनियम के क्रियान्वयन के लिए प्रभावशाली तरीके की जरूरत हो तो इसमें संशोधन करें ताकि उनकी प्रभावशाली कार्यवाही के लिए इससे संबंधित केन्द्र एवं राज्य मंत्रालयों को दिशा निर्देश किया जाए। अधिनियम और नियम के अधीन प्रकरणों की त्वरित मुकदमे के लिए विशेष रूप से न्यायालयों की स्थापना हो, विशेष लोक अभियाजकों और अधिकारियों की नियुक्ति हो। योगात्मक हिंसाओं को जिनसे अनुसूचित जाति एवं जनजाति के व्यक्ति शिकार होते है, जैसे सामाजिक एवं आर्थिक वहिष्कार झूठा प्रकरण जो कि मौजूदा हिंसाओं की सूची में नहीं है उनको जोड़ा जाए। इस अधिनियम की विभिन्न धाराओं में प्रयुक्त अभिव्यक्ति जैसे उद्देश्य के आधार पर जानबूझकर आदि को हटाया जाए जो कि पुलिस और न्यायपालिका को इस अधिनियम की संगीणता को व्यक्तिपरक तथा मनमाने ढ़ंग से व्याख्या करने में मददगार हैं। पीड़ितों एवं गवाहों के अधिकारों के साथ विशेषत: विभिन्न प्रकार के नागरिक अधिकार दिए जाएं।

अत्याचारों को पूर्ण विराम देने के लिए इस अधिनियम का संशोधन किया जाए। भारतीय दंड संहिता में जिस प्रकार अत्याचार एवं हिंसा की प्रकृति एवं संगीणता को ध्यान में रखकर दंड का प्रावधान है उसी प्रकार इस अधिनियम के अधीन अत्याचारों के अपराध के लिए सजा को बढ़ावा दिया जाए। अनुसूचित जाति जनजाति की परिभाषा में संशोधन किया जाए ताकि सूची में शामिल किसी भी जनजाति के सभी ईसाइयों या मुसलमानों सभी क्षेत्रीय अल्पसंख्यकों, जो कि

1 30 मई, 2018

क्षेत्रवाद के शिकार हैं और अनुसूचित जाति एवं जनजाति के प्रवासी मजदूरों को उनके राज्य में दिये गये अनुसूचित जाति एवं जनजाति का दर्जा प्राप्त है इस अधिनियम के अंतर्गत लाया जा सके। राष्ट्रीय एवं राज्य आयोग एवं नागरिक सामाजिक संस्थाएं जो कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के अधिकारों की सुरक्षा के लिए कार्यरत हैं, की सिफारिशों को प्राथमिकता देकर स्वीकारा जाये एवं उनका अनुपालन किया जाये।

❖❖❖

लम्बित मुकदमें[1]

भारत के विभिन्न प्रधान न्यायाधीशों एवं विधि आयोगों ने समय-समय पर देश की अदालतों में लम्बित मुकदमों पर गहरी चिन्ता जताई है। भारत के संविधान में उद्देशिका, मूल अधिकार राज्य के निदेशक तत्त्व के अंतर्गत स्वच्छ और मजबूत लोकतंत्र के लिए जो प्रावधान है वह न्यायपालिका में विधि आयोग की सिफारिशों के लागू नहीं होने के कारण नागरिको को सरल और सुलभ तरीके से न्याय प्राप्त नहीं हो पाते हैं। उच्चतम न्यायालय ने निरंतर लम्बित मुकदमों पर अपनी गहरी चिन्ता जाहिर की। दरअसल, भारत में न्यायिक सुधार की बातें सिर्फ बहसों तक सीमित रह गयी हैं जबकि इस दिशा में पूरी इच्छाशक्ति से काम करने की जरूरत है। हालांकि, न्यायिक सुधार की जिम्मेदारी सिर्फ न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं और सरकारों पर ही निर्भर नहीं है, बल्कि आम जनता को भी इस दिशा में सोचने की जरूरत है। अदालतों में लम्बित मुकदमों की सुनवाई मात्र ही इस समस्या का समाधान नहीं है। पुराने और अप्रासंगिक हो चुके कानूनों में संशोधन, अदालतों को अत्याधुनिक तकनीकी से लैस करने और सुरक्षित न्यायिक परिसर बनाने पर भी गौर करना होगा। न्यायपालिका में व्याप्त खामियों की वजह से कई समस्याएं पैदा हुई हैं। न्यायपालिका को देश की बाकी संस्थाओं से कतई अलग नहीं मानना चाहिए।

अमेरिकी विचारक अलेक्जेंडर हैमिल्टन ने कहा था, 'न्यायपालिका राज्य का सबसे कमजोर तंत्र होता है, क्योंकि उसके पास न तो धन होता है और न ही हथियार। धन के लिए न्यायपालिका को सरकार पर आश्रित रहना होता है और अपने दिये गये फैसलों को लागू कराने के लिए उसे कार्यपालिका पर निर्भर रहना होता है।' राष्ट्रीय अदालत प्रबंधन की हालिया रिपोर्ट के मुताबिक बीते तीन दशकों में मुकदमों की संख्या दोगुनी रफ्तार से बढ़ी है। अगर यही स्थिति बनी रही तो अगले तीस वर्षों में देश के विभिन्न अदालतों में लम्बित मुकदमों की संख्या करीब 15 करोड़ तक पहुँच जायेगी। इस मामले में विधि एवं न्याय मंत्रालय के आंकड़े भी चौंकाने वाले हैं। रिपोर्ट के अनुसार देश में 2015 तक देश की विभिन्न अदालतों में साढ़े तीन करोड़ से अधिक मुकदमे लम्बित थे। इनमें सर्वोच्च न्यायालय में 66,713, उच्च न्यायालयों में 49,57,833 और निचली अदालतों में 2,75,84,617 मुकदमे लम्बित थे।

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की तुलना में निचली और जिला अदालतों की हालत ज्यादा खराब है। मुकदमों की शुरूआत यहीं से होती है लेकिन यहाँ न तो पक्षकार सुरक्षित हैं और न ही उनके मुकदमों से जुड़े दस्तावेज। जाली दस्तावेज और गवाहों के आधार पर किस तरह यहाँ मुकदमे दायर होते हैं, यह तथ्य किसी से छुपा नहीं है। मध्य बिहार में हुए ज्यादातर नरसंहारों की मूल वजह भूमि विवाद ही रही है। जमीन विवाद के कारण देश में हर साल हजारों लोगों की हत्याएं होती हैं। दीवानी मुकदमों का आलम यह है कि आखिरी फैसला आने तक कई लाशें बिछ जाती हैं और मामला दीवानी के साथ-साथ फौजदारी में भी तब्दील हो जाता है। सभी लोग

1 28 जुलाई, 2018

कहते हैं कि न्यायपालिका में सुधार होना चाहिए लेकिन यह कैसे होगा हमें यह तय करना होगा?

विधि आयोग ने कई सिफारिशें केन्द्र सरकार को सौंपी है। उस रिपोर्ट में कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये हैं, लेकिन अफसोस इस दिशा में गंभीर पहल की कमी है। न्यायपालिका में काफी सुधार की गुंजाइश है। लेकिन सिर्फ समस्या गिनाने से कुछ नहीं होता, बल्कि उन सिफारिशों पर अमल करने से समस्याएं हल होंगी जो न्यायविदों ने सरकार को सौंपी है।

न्याय पाना किसी भी व्यक्ति का अधिकार है। ऐसे में यह जरूरी है कि बगैर किसी देरी के न्यायालयों में सभी रिक्त पदों पर नियुक्तियाँ हों। उच्च न्यायालय का विकेन्द्रीकरण यानी सभी राज्यों में इसके खण्डपीठ का गठन किया जाए ताकि मुकदमों के निस्तारण मे तेजी आये। छुट्टियों के दिनों में भी न्यायालय में मामलों की सुनवाई हो ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये।

❖❖❖

पदों एवं सेवाओं की रिक्तियाँ[1]

आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के आरक्षण हेतु संविधान में संशोधन किया गया। पूर्व में अटल बिहारी वाजपेयी की नेतृत्व वाली सरकार ने संविधान में संशोधन कर प्रावधान किया था कि 50 प्रतिशत की सीमा बकाये रिक्तियों पर लागू नहीं होगी। दूसरा संविधान संशोधन के अनुच्छेद 335 में संशोधन कर यह प्रावधान किया गया कि सरकार दलित, आदिवासी एवं पिछड़े वर्गों को आरक्षण देने में योग्यता को शिथिल कर सकती है। तीसरा आरक्षित पदों के प्रोन्नति में आरक्षण उनकी वरीयता के साथ की जा सकती है। इन तीनों संशोधनों और अभी के निर्णय से यह प्रमाणित होता है कि केन्द्र की भाजपा सरकार सभी वर्गों के लिए आरक्षण के प्रति पूर्णत: प्रतिबद्ध है। वर्तमान में संविधान के अनुच्छेद 15 एवं 16 में संशोधन कर गरीब सवर्णों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। संविधान ने आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के आरक्षण की मनाही कभी नहीं की है।

माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने यह दलील अस्वीकृत करते हुए कहा कि जाति ही एक मात्र शक्तिशाली लक्षण पिछड़ापन या पिछड़े वर्गों का वर्गीकरण जातियों पर ही पूर्णत: आधारित नहीं हो सकता। नौकरी में गरीब सवर्णों तक आरक्षण के विस्तार के लिए उठी आवाजों के बीच राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के पूर्व अध्यक्ष ने यह भी कहा था कि आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को ओबीसी में सम्मिलित करने के लिए तैयार है, चूंकि जाति की तरह पेशा भी पिछड़ेपन का चिह्न लगाता है। ईश्वरैया ने कहा था कि सवर्ण/उच्च जातियों के लिए मण्डलोत्तर वाद-विवाद में आरक्षण एक हृदय-वेदना का मुद्दा रहता आ रहा है और इसके पक्षधर यह कहते रहे हैं कि मण्डल द्वारा उल्लिखित वर्गों तक ही इसकी (आरक्षण की) स्वीकृति की क्रिया को सीमित रखना उस 'ईबीसी' के प्रति अन्याय सूचक है जो ईबीसी वैसी ही समान कठिनाइयाँ भोगते हैं जैसी ओबीसी। सामाजिक विविधता इस देश की ताकत है। इसका प्रतिबिम्ब तमाम संस्थाओं में नजर आये, इसके लिए सभी गरीब असहाय लोगों को सम्मिलित करते हुए बिहार सरकार ने आरक्षण के प्रावधानों को मजबूत किया है। सिद्धांत: सामाजिक समरसता के लिए पूर्व में कर्पूरी ठाकुर की सरकार ने भी गरीब सवर्णों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया था।

राष्ट्रीय जनता दल राजनीतिक स्तर पर कर्पूरी ठाकुर के सिद्धांतों के विपरीत सवर्ण आरक्षण का विरोध कर रहे हैं। राजनीतिक दलों की जिम्मेवारी है कि सामाजिक समरसता के सिद्धांतों को कायम रखा जाए। उसी के अनुरूप केन्द्र सरकार ने कर्पूरी ठाकुर के सिद्धांतों के अनुसार पिछड़े वर्गों को पिछड़ा एवं अतिपिछड़ा वर्गों में विभाजित किया था। इसी आधार पर केन्द्र सरकार ने पिछड़ा वर्ग आयोग गठित किया है। यह विस्मयकारी है कि राष्ट्रीय जनता दल ने अपने सारनाथ सम्मेलन में आर्थिक रूप से पिछड़े को आरक्षण देने के लिए स्वीकृति दी थी। अब आर्थिक रूप से कमजोरों को आरक्षण का विरोध करना सामाजिक समरसता को खण्डित करने के बराबर है। सामाजिक समसरता, सामाजिक सौहार्द्र एवं सामाजिक न्याय को कायम रखने के लिए ही कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है। ❖❖❖

1 19 फरवरी, 2019

पंचायती राज[1]

पंचायती राज संस्था का गठन 2001 में ही हो गया था। 2006 में संशोधन द्वारा महिला और अत्यंत पिछड़ी जाति को विशेष आरक्षण सुनिश्चित किया गया। परन्तु संविधान के प्रावधान के अनुसार तथा बिहार राज्य पंचायत अधिनियम के अनुसार त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्था को जो अधिकार एवं उत्तरदायित्व सौंपा जाना चाहिए था, वह अभी तक राज्य सरकार द्वारा सौंपा नहीं गया है।

पंचायती राज संस्थाएँ राष्ट्रीय विकास की महत्वपूर्ण कड़ी मानी जाती हैं, किन्तु बिहार सरकार ने उसे महज स्थानीय स्तर पर कुछ सेवाएं अर्पित करने का एक साधन माना है। इन स्वशासी संस्थाओं को अपने वित्तीय एवं मानव साधन-स्रोतों के लिए अधिकतर ऊपर के सरकारी अधिकारियों पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में पंचायती प्रणाली ने जो स्वरूप धारण किया है उससे वह स्थानीय शासन का केन्द्र बिन्दु नहीं बन पा रही है।

बिहार ने 73वें संविधान संशोधन अधिनियम को स्थूल रूप में देखा है और उसकी मूल भावना की उपेक्षा की है। बिहार सरकार ने सम्बन्धित कानून में ऐसे प्रावधान किये हैं कि पंचायतों का स्वरूप ऐसा बना है कि वे सरकार की कोई एजेन्सी हैं, कोई स्वायत्त संगठन नहीं है। पंचायत अधिनियम में अधिकारियों का वर्चस्व रखा गया है। अधिकारी मानते हैं कि पंचायती राज व्यवस्था को अधिकार देना उनके क्षेत्राधिकार पर हस्तक्षेप है। जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण में अधिकार वस्तुतः निर्वाचित प्रतिनिधियों में निहित होते हैं। अधिकारी वर्ग केवल जनता का सेवक है। इस दृष्टि से अधिकारी वर्ग में पंचायत संस्थाओं में सहभागिता की भावना जगाने की जरूरत है। ऐसे तंत्र से ही पंचायती राज व्यवस्था सफल हो सकती है। इतना ही नहीं पंचायती राज संस्थाओं को जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का प्रभावकारी साधन बनाने के लिए उसे वित्तीय स्वतंत्रता दी जानी चाहिये। परन्तु अभी तक स्वतंत्र वित्तीय अधिकार नहीं दिये गये हैं।

पंचायती निकाय के गठन के साथ ही संविधान की 11वीं अनुसूची में बताये गये 29 विषयों के अनुसार कर्तव्य एवं दायित्व पंचायतों को सौंपते हुए उन पर व्यय की जाने वाली धन-राशि तथा कार्मिक भी त्रिस्तरीय पंचायतों को तुरंत अंतरित कर दिया जाना चाहिए था। परन्तु राज्य सरकारें चूंकि सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिए प्रतिबद्ध नहीं रही हैं और नौकरशाही कब्जा जमाकर रखने वाला है, इसलिए वह वास्तव में विकेन्द्रीकरण के लिए प्रतिबद्ध नहीं हैं। इसलिए नौकरशाही पंचायती संस्था पर कब्जा जमाकर रखने वाला समूह है। वे सत्ता का विकेन्द्रीकरण करने को इच्छुक नहीं हैं, इसलिए सत्ता विकेन्द्रीकरण का मामला विधायकों और पंचायत प्रतिनिधियों तथा प्रशासनिक पदाधिकारियों के बीच विवाद का मुद्दा बना हुआ रहा है। पदाधिकारी अपनी भूमिका

1 02 जुलाई, 2015

घटने की संभावना से ही नाराज रहे हैं। पटना उच्च न्यायालय के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप और निर्देश के बावजूद पंचायतों को अधिकार अन्तरित नहीं किये गये हैं। पंचायती राज संस्था के कारगर होने से ग्राम सभाएं गाँव की पंचायत के लिए, पंचायत समिति प्रखण्ड के लिए एवं जिला परिषद् जिले के विकास लिए प्रतिबद्ध संस्था है, परन्तु राज्य सरकार ने ऐसा नहीं होने दिया है। ये संस्थाएं स्थानीय स्तर की समस्याओं का हल स्थानीय तौर पर निकाल सकती हैं। परन्तु, ऐसा नहीं करने दिया जाता है। विकास के लिए व्यय, पंचायत राज संस्था के माध्यम से होना चाहिये।

बिहार शासन द्वारा व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण के लिए आदेश जारी किया गया है, उसमें पंचायतों को स्वायत्त शासन इकाई के रूप में कार्य करने के लिए पर्याप्त शक्तियाँ और अधिकार प्रदान नहीं किए गए हैं।

❖❖❖

पंचायतों के अधिकार[1]

ग्राम पंचायतों में जीएसटी लागू होने के बाद जीएसटी की चर्चा नहीं हो रही है, जबकि जीएसटी से पंचायतों के पास वित्तीय संसाधनों की कमी होने वाली है। जीएसटी का केन्द्र और राज्य स्तर पर क्या प्रभाव पड़ रहा रहा है इसकी चर्चा जीएसटी बैठक में तो होती है परतु, 2,40,930 पंचायतें हैं जिनमें 31 लाख से ज्यादा जनता के प्रतिनिधि कार्यरत हैं, वहाँ जीएसटी का पंचायतों पर क्या असर पड़ रहा है इसकी चर्चा नहीं हो रही है। यह स्थिति गंभीर बनी हुई है।

पंचायतों को संविधान संशोधन द्वारा स्वायत्त संसाधन संस्थानों को तरजीह देते हुए कहा गया कि पंचायतें अपने स्तर पर आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाएं बना सकती हैं। पंचायती राज 73वाँ संविधान संशोधन के बाद पंचायतों को अपने वजूद में आये दो दशक से ज्यादा हो गया। पर ये संस्थाएं अभी राज्य और केन्द्र सरकार पर ही पूर्णतः आश्रित हैं। जीएसटी के लागू होने के बाद इनकी स्थिति और भी दयनीय होने वाली है क्योंकि इनके पास वित्तीय संसाधनों की कमी होने वाली है।

केन्द्रीय जीएसटी और राज्य जीएसटी इनके दो अंग हैं। इसके अलावा, एकीकृत जीएसटी है जो राज्यों के बीच वस्तु और सेवाओं की आपूर्ति कर केन्द्र सरकार के द्वारा लगाया जायेगा। पंचायत कानून में विज्ञापन कर मनोरंजन कर लगाने का प्रावधान है। पर उन सबका जीएसटी में विलय हो गया है। अब पंचायतें ये कर नहीं लगा सकती। मनोरंजन कर कुछ समय के लिए तो लगा सकती है पर बाद में उसका जीएसटी में विलय हो जायेगा।

जीएसटी का पंचायतों पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। उससे इनके साधन समाप्त हो सकते हैं, जो इस समय इनके पास हैं, क्योंकि राज्य और पंचायतों के बीच बटवारे का कोई फार्मूला नहीं हैं। पंचायतें अनुदान आधारित व्यवस्थाएँ है, जो केन्द्र और राज्य सरकार की विभिन्न योजनाओं के माध्यम से निधि प्राप्त करती हैं। 16वें वित्त आयोग द्वारा पंचायतों को 2 लाख करोड़ से अधिक का अनुदान 5 वर्षों के लिए दिया गया है।

पंचायत की भी अपनी महत्वाकांक्षाएँ हैं। उन्हें भी राज्य सरकार द्वारा जीएसटी परिषद् की गठित समिति में भागीदारी दी जाए ताकि वे भी अपनी बात समिति में रख सकें। पंचायतें भी वस्तु एवं सेवा कर के माध्यम से पंचायत राज्य अधिनियम के अंतर्गत वित्तीय संसाधन जुटाएं। पंचायतों के पास अपने स्रोत भी हैं। पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य के माध्यम से पैसा जा रहा है। पंचायतें उनमें यूजर्स चार्ज ले सकती है। पंचायतों की क्षमता बढ़ाना भी आवश्यक है। अभी कई पंचायतों के पास बिल्डिंग नहीं हैं। उनके पास क्षमता का अभाव है तथा दस्तावेज रखने की सुविधा उपलब्ध नहीं है। जीएसटी की पंचायत स्तर पर अनेक उलझने हैं जिसे जीएसटी की बैठक में विचार किया जाना चाहिये। भारतीय संविधान में पंचायतों को वित्तीय अधिकार दिये गये हैं। इसका संरक्षण जीएसटी परिषद् को करनी चाहिये।

❖❖❖

1 13 सितम्बर, 2017

क्रीमीलेयर को आरक्षण[1]

जिस प्रकार सुखी संपन्न पिछड़ा वर्ग (क्रीमीलेयर) को आरक्षण के लाभ से वंचित किया गया उसी तरह दलित एवं आदिवासी जो सुखी संपन्न होने के वावजूद आरक्षण का लाभ पीढ़ी-दर-पीढ़ी लेते आ रहे हैं, उन्हें आरक्षण का लाभ नहीं मिलना चाहिए।

जो दलित एवं आदिवासी प्रभावशाली और बहुसंख्यक है, उन्होंने धीरे-धीरे नियोजन और शिक्षा के क्षेत्र में अपने लिये अधिक सफलता हासिल की है। नतीजा यह है कि अन्य दलित एवं आदिवासी के परिवार आज भी केन्द्रीय स्तर पर आरक्षण के लाभ से वंचित हैं। उनके लिए असमानता बढ़ती गई है।

उच्चतम न्यायालय ने अपने मण्डल आयोग की अनुशंसा के कार्यान्वयन के संबंध में 16 नवम्बर, 1992 के निर्णय में कहा है कि आरक्षण सामाजिक न्याय का उपकरण है। निश्चित रूप से समाज के वंचित और शोषित समूह को न्याय मिलना चाहिये। आरक्षण का लाभ उन्हें ही मिलना चाहिए जो उसके हकदार हैं, न कि उन्हें जो सम्पन्नता के दायरे में आ चुके हैं। जिस प्रकार सुखी सम्पन्न (क्रीमीलेयर) लोगों को आरक्षण की सीमा से बाहर किया गया उसी तरह दलित और आदिवासी जो सुखी संपन्न (क्रीमीलेयर) के तहत आतें हैं या आरक्षण का लाभ प्राप्त कर चुके हैं उन्हें वंचित किया जाना चाहिए और आरक्षण का लाभ जरूरतमंद परिवारों को दिया जाना चाहिए।

जो सामाजिक और शैक्षणिक रूप से कमजोर हैं उनके आबादी के अनुपात में सरकारी सेवाओं में उनका प्रतिनिधित्व नहीं है, उनके लिये सरकार आरक्षण कर सकती है। आबादी के अनुपात में सरकारी सेवाओं में जिनका प्रतिनिधित्व नहीं है उनके लिये सरकार आरक्षण कर सकती है। साथ ही एक बार जिस परिवार को आरक्षण का लाभ मिल जाये उसी परिवार को फिर से आरक्षण का लाभ न मिले ऐसा प्रावधान किया जाना आवश्यक है।

आरक्षण के मामले में विरोधाभास की स्थिति बनी हुई है। एससी/एसटी आरक्षण में क्रीमीलेयर के प्रावधान नहीं रहने से यह सवाल उठता है कि अन्य पिछड़े वर्गों के आरक्षण में इसका प्रावधान है। जब ओबीसी आरक्षण में क्रीमीलेयर है तो एससी/एसटी में क्यों नहीं? सर्वोच्च न्यायालय की यह सोच है कि क्या एससी/एसटी वर्ग के क्रीमीलेयर तबके जो सामाजिक शैक्षणिक एवं आर्थिक रूप से सक्षम हो चुके हैं वे दूसरे लोगों के हक क्यों ले रहे है? आरक्षण का लाभ लेने वाले पीढ़ी-दर-पीढ़ी उससे लाभांन्वित होते रहे हैं। सक्षम लोग आरक्षण का लाभ लेते रहेंगे तो अन्य लोग उससे वंचित रह जाएँगे।

आरक्षित वर्गों के संपन्न लोग आरक्षण का लाभ उठाकर अपने ही बीच के अन्य लोगों के अधिकारों का हनन कर रहे हैं। जब अन्य पिछडे वर्गों में क्रीमीलेयर लागू है तो एससी/एसटी में

1 28 अक्टूबर, 2017

क्यों नहीं? ओबीसी में आरक्षण का वर्गीकरण किया गया है वैसा एससी/एसटी में क्यों नहीं? आरक्षण वंचित, शोषित सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के उत्थान का जरिया है न कि सरकारी नौकरी का माध्यम। दुर्भाग्य है कि सरकारी नौकरी करते रहने के बावजूद नित्य नये तबके खुद को आरक्षण के दायरे में लाये जाने की माँग करते रहते हैं। इसलिए समय आ गया है कि नये सिरे से समीक्षा कर ऐसे निर्णय लिये जाए जिससे जरूरतमंदों को आरक्षण का लाभ मिल सके।

❖❖❖

सामान्य नागरिक सिविल संहिता[1]

उच्चतम न्यायालय द्वारा सामान्य नागरिक सिविल संहिता बनाये जाने के लिए केन्द्र सरकार को निर्देश दिये जाने को वर्तमान साम्प्रदायिक तनाव और हिन्दुत्व के आक्रामक वातावरण में दुर्भाग्यपूर्ण कहा जा सकता है। इस निर्देश से देश के 20 करोड़ से अधिक अल्पसंख्यक समुदायों के बीच असुरक्षा एवं अनिश्चितता की भावना व्याप्त हो गई है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राज्य के नीति निर्देशक तत्व के अन्तर्गत अनुच्छेद 44 के तहत केन्द्र सरकार को नागरिकों के लिए एक सामान्य नागरिक सिविल संहिता बनाने का निर्देश देने से इस समय केन्द्र की भाजपा नींव गठबंधन से जुड़े विश्व हिन्दू परिषद, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसे संगठनों को हिन्दुत्व और साम्प्रदायिकता संबंधी विशेष आक्रामक आचरण करने का मौका मिलेगा। राष्ट्र की धर्मनिरपेक्षता के ताने-बाने और सद्भावना को जबर्दस्त नुकसान पहुँचेगा। अयोध्या के राम मंदिर बाबरी मस्जिद विवाद से राष्ट्र की राजनीतिक बनावट एवं ढाँचे पर लगातार चौतरफा आक्रमण जारी है। ऐसी पृष्ठभूमि में सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय असामयिक होने के साथ-साथ देश के सामाजिक सद्भाव के लिए घातक साबित होगा और उससे भारतीय समाज के खंडित होने की संभावना बढ़ जाएगी।

राष्ट्रीय सर्वानुमति के बगैर ऐसे संवेदनशील विषयों से संबंधित कानून नहीं बनाये जा सकते हैं। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को मजबूत बनाये रखने के उद्देश्य से एक लंबित लोकहित याचिका पर सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय देते हुए केन्द्र सरकार और संसद को यह निर्देश दिया है कि वह सभी धर्म के लोगों के लिए (हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि धर्मावलंबियों के बीच) सैकड़ों वर्षों से अलग-अलग लागू सिविल कानून को समाप्त कर एक ही संहिता बनाये।

देश ने इस विषय पर अपनी आम सहमति नहीं बनायी है। ऐसी अवस्था में सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश का कार्यान्वयन कठिन ही नहीं है वरन राष्ट्र की अखंडता और धर्मनिरपेक्षता के लिए चुनौती भी है।

❖❖❖

1 24 जुलाई, 2003

गवाहों का बयान से मुकरना[1]

गुजरात साम्प्रदायिक दंगे से संबंधित प्रथम न्यायिक फैसले में 21 अपराधियों को आरोप मुक्त किये जाने की घटना से देश की न्यायिक प्रणाली एवं पुलिस-प्रशासन की निष्ठा पर सवालिया निशान उठ खड़ा हुआ है। ऐसे अपराध के दोषियों को जानबूझकर साक्ष्य के अभाव में बरी होने से देश के 20 करोड़ से अधिक अल्पसंख्यकों के मन में संवैधानिक व्यवस्था और न्यायिक प्रणाली से असुरक्षा की भावना व्याप्त हो गयी है।

गोधरा काण्ड के बाद बेस्ट बेकरी नरसंहार के दोषी व्यक्तियों को आरोप मुक्त किये जाने से अनेक प्रश्न राष्ट्र के सामने उभर आए हैं। इससे ऐसा लगता है कि भारतीय दंड संहिता और दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों में संशोधन किया जाना परम आवश्यक है, जिससे ऐसे जघन्य अपराधियों के लिए साक्ष्य जुटाने में न्यायालय को स्वतंत्र अधिकार हो। इस मामले में पिपुल्स यूनियन और सिविल लिवर्टी बडोदरा का यह कथन बड़ा ही समीचीन है कि सरकार साम्प्रदायिक दंगे के सभी आरोपियों को किसी न किसी तरह से आरोप मुक्त कराना चाहती है। साक्ष्यों और गवाहों को शासन के दबाव में विनष्ट कराया जा रहा है।

अभियोजन पक्ष सरकार के दबाव में आरोपितों के खिलाफ पर्याप्त सबूत नहीं जुटा सका। गोधरा में 27 फरवरी, 2002 को साबरमती ट्रेन के 59 यात्रियों को आग लगाकर जिन्दा जलाये जाने के बाद गुजरात में भड़के दंगों के दौरान एक मार्च को बडोदरा के हनुमान टेकरी इलाके में स्थित बेस्ट बेकरी में करीब 1500 लोगों की उग्र भीड़ ने आग लगा दी थी, जिसमें तीन महिलाओं व चार बच्चों समेत 12 लोग जिन्दा जल कर मर गये थे तथा दो लोग लापता हो गये थे। न्यायाधीश ने कहा है कि इस मामले में प्राथमिकी दर्ज करने में अक्षम्य देरी की गयी।

न्यायाधीश ने स्वयं अपने फैसले में यह भी कहा कि लोगों के गले से यह बात नहीं उतरेगी कि इस मामले में किसी को सजा क्यों नहीं दी जा रही है। उसी से यह समझा जा सकता है कि न्यायिक प्रक्रिया पर शक किया जायेगा और अंगुलियां उठायी जायेंगी। न्यायाधीश की टिप्पणी कई वर्षों के अनुभव पर आधारित है, जिसमें उन्होंने कहा है कि साम्प्रदायिक दंगों जैसी घटनाओं की जांच करना पुलिस के लिए काफी कठिन होता है। क्योंकि गुजरात पुलिस को अनुसंधान शासन के दबाव में करना पड़ा है, इसलिए इस मामले में शासन द्वारा प्रायोजित साम्प्रदायिक दंगा में दोषियों के विरुद्ध अभियोजन पक्ष को साक्ष्य जुटाना कठिन था।

गुजरात प्रदेश में हाईकोर्ट के जजों ने भी आतंक में जीने की बात सार्वजनिक रूप से कबूल की है। उस राज्य में गरीब-निरीह गवाहों द्वारा पुलिस के सामने दिये गये बयान से मुकरने और कमजोर साक्ष्य उपलब्ध कराने से अदालत आरोपियों को छोड़ देगी, यह लगभग अपरिहार्य है। अदालत गवाहों के बयान बदलने पर भी बहुत कुछ करने की स्थिति में नहीं होती। यह सच्चाई

---

1 30 जून, 2003

बनी हुई है कि बीच शहर में पहली मार्च को दंगाइयों की एक भीड़ ने 14 लोगों को जिन्दा जला दिया और इस मामले में पुलिस–प्रशासन और अदालत किसी को भी दोषी करार नही कर पाया। यह राज्य सरकार और पुलिस के लिए एक बड़ी असफलता है। प्रशासन में थोड़ा भी सम्मान बचा हो तो उसे नए सबूतों और पहले के गवाहों को पूरा संरक्षण देकर मामले को ऊपर की अदालतों तक ले जाना चाहिए। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, एमनीटी इन्टरनेशनल एवं सिटीजन ट्रिब्यूनल ने अपने–अपने जाँच प्रतिवेदन में स्पष्ट रूप से कहा है कि साम्प्रदायिक दंगा पूर्ण रूप से शासन द्वारा प्रायोजित था, पुलिस संरक्षण में हत्याएँ एवं लूट हुई हैं। ऐसी परिस्थिति में पुलिस से, जो अभियोजन पक्ष है, न्याय की अपेक्षा नही की जा सकती।

अदालतों को खुद से मामलों में किसी को भी अदालत में बुलाने का अधिकार होना चाहिए। उसे अपने अधीन पुलिस से जाँच कराने का अधिकार भी मिलना चाहिए। अदालती कामकाज को प्रभावित करने वाली स्थितियों में अभियोजन पक्ष के अधिकारियों को दंड देने का अधिकार भी अदालतों को होना चाहिए। इस फैसले के बाद राज्य सरकार और भाजपा नेतृत्व को अपने को पाक–साफ साबित करने और दंगा करने वालों को दंडित कराने का प्रयास करना चाहिए। अदालती फैसले केवल तकनीकी हैं, जो पर्याप्त सबूत के अभाव में आये हैं, यद्यपि गुजरात शासन को अपने आप को छुपाने का बहाना नहीं बनाना चाहिए।

❖❖❖

भोपाल गैस त्रासदी पर न्यायालय का निर्णय[1]

भारतीय लोकतंत्र की भोपाल गैस त्रासदी पर न्यायालय का निर्णय देश की न्याय व्यवस्था पर सवाल खड़ा करता है।

हमारी व्यवस्था पूरी तरह से कमजोर, लचर है और आपराधियों को बचाने वाली व्यवस्था है। यह निर्णय उसी खौफनाक तस्वीर को उपस्थापित करता है। यह त्रासदी और न्यायालय का निर्णय निश्चित रूप से देश की न्याय व्यवस्था पर संदेह उत्पन्न करता है। इस निर्णय से यह स्पष्ट होता है कि ऐसे जघन्य अपराधों, जिसमें 20 हजार से अधिक लोग मारे गये, लाखों लोग विकलांग हुए और आर्थिक क्षति हुई, वैसे गंभीर अपराधों के लिए केवल सांकेतिक सजाएं दी गई हैं। इस खौफनाक दुर्घटना की कृतियों को न्याय नहीं मिला।

पूरे तंत्र में परिवर्तन की आवश्यकता दिखती है। वर्तमान परिस्थिति में आम लोगों का विश्वास न्याय प्रणाली से उठ रहा है। भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन की आवश्यकता है। हजारों लोग इस दुर्घटना में मारे गये, फिर भी उसके दोषियों को इस आधार पर वह सजा दी गई जो मामूली दुर्घटना के दोषियों को दी जाती है।

यह भी विस्मयकारी है कि जिस दुर्घटना में हजारों लोगों की मौतें हुई हों, लोग पीड़ित और विकलांग होते रहे हों, उसके आरोपियों के खिलाफ भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता के अनुच्छेद 304 ए का मामला बनाया जाए और उसमें अधिकतम दो साल की ही सजा दी जाए। इतनी बड़ी दुर्घटना के लिए यह धारा क्यों और कैसे लगायी गई? इसमें दोषियों को इतनी कम सजा क्यों दी गई और जमानत पर क्यों छोड़ दिया गया? न्यायालय के फैसले से ऐसा लगता है कि ऐसी बड़ी त्रासदी हुई ही नहीं। इस तरह के फैसले से लोकतंत्र लगातार कमजोर और अविश्वसनीय बनता जा रहा है। इस निर्णय से न्यायपालिका के साथ-साथ मीडिया, अभियोजन पक्ष, जाँच ऐजेंसी, राज्य और केन्द्र सरकारों ने अपनी जिम्मेदारियों का ठीक से निर्वहन नहीं किया है। दोष साबित करने में गंभीरता नहीं दिखायी। इन सबके सचेत नहीं रहने के कारण ही भोपाल की जनता को न्याय नहीं मिल सका। समय की मांग है कि दोषियों की सजा और पीड़ितों को उचित मुआवजा दिलाने का प्रयास किया जाना चाहिए। अदालत ने जो फैसला दिया वह न्याय करने के बजाए न्याय का माखौल उड़ाने वाला ही माना जाएगा।

यूनियन कारबाइड कम्पनी अमेरिका के अध्यक्ष वारेन एंडरसन के बारे में न्यायालय ने कुछ नहीं कहा है। वह जमानत लेकर अमेरिका भाग गया और मुकदमे के 23 वर्षों के दौरान अदालत में उपस्थित नहीं होने के कारण उन्हें भगोड़ा घोषित कर दिया गया। इस बीच की सभी दलों की केन्द्रीय सरकारों ने भारत और अमेरिका के साथ प्रवर्तन संधि के अंतर्गत उसे अमेरिका

---

1 8 जून, 2010

से भारत को सौंपने की मांग नहीं की। इससे ऐसी अवधारणा बनी है कि न तो केवल अमेरिका सरकार बल्कि भारत की सरकार भी अपनी संवेदनहीनता दिखाती रही है। भोपाल गैस त्रासदी और न्यायालय का निर्णय राष्ट्र के लिए एक चेतावनी है।

विश्व की भीषणतम औद्योगिक भोपाल गैस त्रासदी का यह फलाफल हुआ है तो भविष्य में होने वाली त्रासदियों में क्या होगा? पिछले वर्षों में भारत के प्रधानमंत्री अनेक बार अमेरिका गये लेकिन किसी ने भी इस मुद्दे को नहीं उठाया। अमेरिका की कंपनियों ने भोपाल गैस त्रासदी में मारे गये लोगों की रेंगते कीड़ों से अधिक कीमत नहीं आंकी। हालांकि अमेरिका में ऐसी दुर्घटना पर करोड़ों डालरों के मुआवजे की व्यवस्था है लेकिन उसमें भोपाल गैस पीड़ितों के परिवारों को जो राशि दी गई वह शर्मनाक है। ऐसा लगता है कि मध्य प्रदेश और भारत सरकार के लिए वारेन एंडरसन महत्वपूर्ण है न कि देश के लाखों आम नागरिक जो ऐसी दुर्घटनाओं से मरने को विवश होते हैं।

❖❖❖

योजना आयोग के स्थान पर नई संस्था[1]

योजना आयोग के स्थान पर किसी ऐसे संस्थान को लाना चाहिए जो संवैधानिक ढंग से स्थापित हो और वह उन्हीं कामों को अंजाम दे जो योजना आयोग को दिया गया था। अभी तक योजना आयोग एक ऐसा ताकतवर केन्द्र रहा जिसमें संविधानेत्तर शक्तियाँ हासिल रही। लेकिन ऐसा इस वजह से नहीं था कि संविधान ने उन जरूरतों की अनदेखी की थी जिनकी भरपाई यह कर रहा था। केन्द्र से राज्यों को वित्तीय मदद की व्यवस्था संविधान के अनुच्छेद 280 के तहत वित्त आयोगों को सौंपी गई थी जिनका गठन हर पांच साल पर किया जाता है। वित्त आयोग का कार्यकाल दो साल का होता है। केन्द्र और राज्यों के बीच समन्वित नीति की जरूरत को महसूस करते हुए इसकी भी व्यवस्था की गई थी। संविधान के अनुच्छेद 263 में एक अंतर राज्य परिषद् (आईएससी) की व्यवस्था की गई थी ताकि वह उन विषयों की जाँचकर सके जिसमें कुछ या सभी राज्यों का साझा हित हो या फिर ऐसे किसी भी विषय विशेष को लेकर बेहतर नीतिगत समन्वय और कदमों की अनुशंसा। उस लिहाज से योजना आयोग न केवल संविधानेत्तर था बल्कि वह असंवैधानिक भी था क्योंकि उसकी मौजूदगी के चलते 30 सालों तक आईएससी की नियुक्ति नहीं हो सकी।

60 वर्ष की योजनाओं में क्या उपलब्धि हुई है उसके संबंध में हाल ही में आई नमूना सर्वेक्षण की नवीनतम रिपोर्ट देश में व्याप्त गरीबी की ही गवाही दे रही है। इस रिपोर्ट के मुताबिक देश के ग्रामीण इलाकों में सबसे निर्धन लोग औसतन महज 17 रुपये प्रतिदिन और शहरों में सबसे निर्धन लोग 23 रुपये प्रतिदिन में जीवनयापन करते हैं।

डॉ॰ आम्बेडकर ने राष्ट्र को चेताया था कि भारत में राजनीतिक समानता एवं दूसरी तरफ सामाजिक एवं आर्थिक असमानता का अंतर्विरोध स्थापित हो रहा है इसे शीघ्र समाप्त करने की जरूरत है, अन्यथा गैर-बराबरी के शिकार समूह राजनीतिक बराबरी में अपना विश्वास खो देंगे।

आज 67 साल बाद भी डॉ॰ अम्बेडकर की चेतावनी प्रासंगिक है। असमानता एक भयंकर रोग है जो भारत में हर तरफ अपनी जड़ें मजबूती से जमाए हुए है। सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक, लैंगिक एवं राजनीतिक असमानता अन्यायकारी रूप धारण कर चुकी है। यह राजनीतिक लोकतंत्र के लिए खतरा बनती जा रही है। किसी भी देश की शासन व्यवस्था उसकी सामाजिक संरचना एवं आर्थिक आधार पर टिकी होती है। अलोकतांत्रिक समाज में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का सफल होना असंभव है, इसकी सफलता के लिए सामाजिक लोकतंत्र एवं आर्थिक समानता एक पूर्व शर्त बन जाती है।

भारत में शिक्षा, चिकित्सा जैसी मूलभूत सुविधाएं आम आदमी की पहुँच से दूर हैं। देश में

---

1 07 दिसम्बर, 2014

हर स्तर पर भ्रष्टाचार व्याप्त है जिसकी वजह से सरकारी सुविधाओं का फायदा भी ठीक तरह से आम लोगों तक नहीं पहुँच पा रहा है। देश में आर्थिक उदारीकरण के बाद एक तबके का जबर्दस्त विकास हुआ है जबकि दूसरा तबका पिछड़ता गया। भारत में गरीबों की परिस्थितियाँ इतनी बुरी हैं कि इसका अंदाजा लगाना भी मुश्किल है। इन्हीं स्थितियों के कारण संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) ने अपनी मानव विकास रिपोर्ट में भारत को दुनिया के 186 देशों में 136वें नम्बर पर रखा है।

नया संगठन छोटा लेकिन काम करने में दक्ष हो, जो सुधारों को आगे बढ़ाये, परियोजनाओं की निगरानी करे एवं राज्य सरकारों की सक्रिय भागीदारी के साथ योजना का निर्माण करे ताकि इससे संघीय ढांचे को भी मजबूती मिले 'नीति निर्माण के लिए महत्वपूर्ण तथ्य देने में इसकी सक्रिय भूमिका होनी चाहिये।' दुनिया में जितनी तेजी से बदलाव आ रहे हैं उसकी तुलना में यहाँ सुधार की प्रक्रिया बेहद धीमी थी।

❖❖❖

न्याय व्यवस्था की गतिहीनता[1]

श्रीमती इन्दिरा गांधी के शासनकाल में रेल मंत्री रहे ललित बाबू हत्या काण्ड के दोषियों को लगभग 40 साल बाद निचली अदालत ने आजीवन कारावास की सजा सुनायी है। गौरतलब है कि 2 जनवरी, 1975 को समस्तीपुर रेलवे स्टेशन पर आयोजित सरकारी समारोह के दौरान बम विस्फोट द्वारा तत्कालीन रेल मंत्री ललित बाबू की हत्या कर दी गयी थी। चार दशक के लम्बे अरसे के बाद चार लोगों को दोषी करार दिया गया और आजीवन कैद की सजा दी गई है। वह भी निचली अदालत द्वारा। अभी इन दोषियों के पास उच्च एवं सर्वोच्च अदालतों में जाने के पूरे विकल्प खुले हुए हैं। अब अंदाज लगाया जा सकता है कि जब निचली अदालत का फैसला आने में 40 वर्षों का समय लग गया तो उच्च एवं सर्वोच्च अदालतों का फैसला आने में कितना वक्त लगेगा? इस फैसले ने एक बार फिर से भारतीय न्याय व्यवस्था की गतिहीनता पर सवालिया निशान लगा दिये हैं। जब कैबिनेट स्तर के मंत्री की हत्या के मुकदमे का फैसला 40 साल बाद आता है तो आम आदमी के मुकदमों की स्थिति का अंदाजा अत्यंत सहजता से लगाया जा सकता है।

इतने लम्बे समय तक चले इस मामले में 20 से ज्यादा न्यायाधीशों ने सुनवाई की। सुप्रीम कोर्ट के 17 दिसम्बर, 1979 के निर्देश पर यह मामला दिल्ली स्थानान्तरित हुआ और यह सबूत मिटाने के डर से राज्य से बाहर स्थानान्तरित होने वाला देश का पहला मामला बना। इस मामले में अभियोजन पक्ष के 161, आरोपी पक्ष के 43 और अदालत के गवाह के तौर पर 9 गवाहों सहित कुल 213 गवाहों से पूछताछ की गई। इससे पहले आरोपियों ने इस मामले में उनके खिलाफ जारी सुनवाई को निरस्त करने के लिए सुप्रीम कोर्ट से गुहार लगाई थी। शीर्ष अदालत ने 17 अगस्त, 2012 को उनकी याचिकाएं इस आधार पर खारिज कर दी थी की कार्यवाही सिर्फ इस आधार पर निरस्त नहीं की जा सकती कि यह बीते 37 वर्ष में पूरी नहीं हुई है।

वो दिन आज भी मेरी आँखों के सामने दिख रहा है, जिस दिन समस्तीपुर में समस्तीपुर–मुजफ्फरपुर बड़ी लाइन के उद्घाटन के बाद हुई मीटिंग के अंतिम क्षण में बम विस्फोट की घटना घटी। हम दोनों भाई गिर पड़े। उस समय जे॰पी॰ आंदोलन चरम पर था। 1974 की रेलवे हड़ताल को ललित बाबू ने शक्ति से विफल कराया था। इसमें हिंसा का माहौल चौतरफा विकृत रूप लिये हुए था। ऐसी अवस्था में ललित बाबू जैसे बड़े व्यक्तित्व व राजनेता के लिए जैसी सुरक्षा व्यवस्था होनी चाहिए थी, वैसी नहीं थी। यह सवाल भी जनमानस को उद्वेलित करता है। बम काण्ड में ललित बाबू के साथ मैं भी घायल हुआ था। घटना के बाद परिवार की ओर से कोई निर्णय लेने की स्थिति में नहीं था। समस्तीपुर से ललित बाबू को दरभंगा मेडिकल कॉलेज अस्पताल नहीं ले जाया गया, जहाँ जल्दी चिकित्सा व्यवस्था उपलब्ध हो सकती थी। दरभंगा के तत्कालीन डीआईजी बी॰एन॰ प्रसाद को घायल अवस्था में दरभंगा ले जाया गया, वहाँ वे बच

1 18 दिसम्बर, 2014

गये। ललित बाबू को समस्तीपुर से विशेष ट्रेन से दानापुर ले जाया गया, जहाँ आठ घंटे लग गये। पीएमसीएच में नहीं ले जाकर दानापुर रेलवे अस्पताल में लाया गया, जहाँ चिकित्सा की कोई व्यवस्था नहीं थी। चिकित्सा व्यवस्था करने में काफी समय लग गया। उनकी जान नहीं बचायी जा सकी।

बम लगने के बाद भी ललित बाबू बोल रहे थे कि हमको कोई क्यों मारेगा। वे मेरे बारे में सबको कह रहे थे कि जगन्नाथ को देखो। उसको बचाओ। समुचित चिकित्सा व्यवस्था नहीं होने, सुरक्षा इंतजाम नहीं होने, तुरंत चिकित्सा व्यवस्था उपलब्ध नहीं कराने, समस्तीपुर से दानापुर लाने, पूरी जाँच प्रक्रिया में षड्यंत्र का मामला आइपीसी की धारा 120पी के तहत बनता था। परन्तु इन बिन्दुओं पर विस्तार से जाँच नहीं हुई। इस संबंध में कोई ठोस सबूत प्रस्तुत नहीं होना यह प्रमाणित करता है कि सीबीआई के पास भी षड्यंत्र से सम्बन्धित ठोस सबूत नहीं था। अभी भी पूरे मामले में जनमानस में भ्रम बरकरार है।

ललित बाबू, बिहार को विशेषकर मिथिलांचल को देश की अगली पंक्ति में लाने के लिए प्रतिबद्ध थे। ऐसे व्यक्ति की निर्मम हत्या की साजिश क्यों व कैसे रची गयी? ललित बाबू नहीं रहे, लेकिन उनकी आत्मा न्याय की प्रतीक्षा कर रही होगी। मैं घायल था, संयोग से जीवित रहा। आज भी दुखी व उद्वेलित हूँ। यह सही तथ्यों का उजागर नहीं होना सम्पूर्ण न्याय प्रणाली व प्रशासनिक व्यवस्था भविष्य के लिए चुनौती है।

वह श्रीमती इन्दिरा गांधीजी के लिए समर्पित थे। श्रीमती गांधी जी को कमजोर करने के लिए ललित बाबू पर आक्रमण होता रहा। उन्हें विवादास्पद बनाये रखा गया, जबकि ललित बाबू समझौता व समस्या के समाधान के लिए लगातार प्रयासरत रहे। पूर्व प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर जी से बात कर ललित बाबू ने श्रीमती गांधी व जे॰पी॰ के बीच 6 जनवरी, 1975 को मुलाकात कराने का भी कार्यक्रम बना कर जे॰पी॰ आंदोलन को खत्म कराने का मन बना लिया था। ऐसा श्री चन्द्रशेखर जी ने अपनी किताब में उल्लेख किया है।

ललित बाबू की हत्या किसी षड्यंत्र के तहत हुई ऐसी आंशका लोगों के मन में अभी भी बनी हुई है, जबकि चार दोषियों को आजीवन कैद की सजा सी.बी.आई. अदालत ने दी है। परन्तु इस सजा के बावजूद षड्यंत्र पक्ष क्या था, कैसे था तथा षड्यंत्र का मास्टर माइन्ड कौन था? यह उजागर और साबित नहीं हो पाया है। यह बात भी सच है कि यह घटना तब घटी थी जब केन्द्र में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार थी वहीं बिहार में अब्दुल गफूर मुख्यमंत्री थे। उसी समय यह मामला सी.बी.आई. को सुपूर्द किया गया। 1977 में सी.बी.आई. की जाँच से उस समय की जनता पार्टी केन्द्र की और राज्य की जनता पार्टी सरकार यदि असंतुष्ट होती तो जाँच की दूसरी एजेंसी बहाल हो सकती थी अथवा मामले की जाँच नये सिरे से करायी जा सकती थी। परन्तु प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई, गृह मंत्री चौधरी चरण सिंह तथा बिहार में मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर सरकार ने उस समय कोई आशंका सी.बी.आई. की जाँच पर प्रकट नहीं की। मामले का अगर कोई व्यापक राजनीतिक षड्यंत्र इस बम काण्ड में हुआ होता तो निश्चित रूप से मामले की जाँच केन्द्र और राज्य की जनता पार्टी की तत्कालीन सरकार नये सिरे से कराती। उस समय सी.बी.आई. की जाँच पर सवालिया निशान नहीं खड़ा किया और जाँच चलती रही। 1979 में उच्चतम न्यायालय

के निर्देश पर इस मामले को पटना सी.बी.आई. कोर्ट से स्थानान्तरित कर दिल्ली कोर्ट लाया गया उस समय भी केन्द्र में तथा राज्य में जनता पार्टी की सरकार थी।

अक्सर कहा जाता है कि देरी से मिला न्याय, अन्याय के ही समतुल्य होता है। लेकिन इसके बावजूद हमारे देश में मुकदमों के जल्द से जल्द निबटारे के लिए कोई कदम नहीं उठाये जा रहे हैं। आये दिन देश के कानून मंत्री एवं न्यायाधीश न्याय में विलम्बता को लेकर चिन्ता जताते हैं और जल्द से जल्द न्याय को गति देने का वादा भी करते हैं लेकिन फिर भी नतीजा ढाक के तीन पात ही साबित होता है।

यदि आंकड़ों पर गौर करें तो पता चलता है कि देश भर की अदालतों में 3.3 करोड़ से ज्यादा मामले लम्बित पड़े हैं। देश की सर्वोच्च अदालत में 70 हजार के करीब मामले लम्बित हैं एवं उच्च न्यायालयों में लम्बित मामलों की संख्या 45 लाख है जबकि निचली अदालतों में 2.7 करोड़ मामले लम्बित हैं। दिन-प्रतिदिन मुकदमों की बढ़ती संख्या और निबटारे की घटती गति को देखते हुए ऐसा अनुमान है कि 2025 तक न्यायालयों में लम्बित मामलों की संख्या 15 करोड़ हो जाएगी जिसके निबटारे में तकरीबन 450 वर्षों का समय लगेगा।

यह कहना गलत न होगा कि न्याय में विलम्ब के कारण लोगों का विश्वास भारतीय न्याय व्यवस्था से उठने लगा है। हालात यह है कि लोग अपने बाप-दादा के जमाने के मुकदमे की मार अभी तक झेल रहे हैं। इस दुनिया से इन्सान का निबटारा हो जाता है, लेकिन मुकदमें का नहीं। न्याय में इसी विलम्बता के चलते जेलों में विचाराधीन कैदियों की संख्या भी दिनोंदिन कई गुना बढ़ती जा रही है। अब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस लचर न्यायिक प्रणाली के लिए कौन जिम्मेदार है?

भारत में इस लचर न्यायिक व्यवस्था के लिए कई कारक जिम्मेदार हैं। देश में आबादी के अनुपात में न्यायाधीशों की तादात में काफी कमी है। आंकड़ों के मुताबिक वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयों एवं अधीनस्थ न्यायालयों में न्यायाधीशों के तकरीबन 4,655 पद रिक्त पड़े हैं। एक तरफ अदालतों में मुकदमों का अम्बार लगता जा रहा है तो दूसरी ओर अदालतों में न्यायाधीशों की नियुक्ति ही नहीं की जा रही है। ऐसी स्थिति में लम्बित मुकदमों के निबटारे एवं त्वरित न्याय की कल्पना कैसे की जा सकती है?

भारत में अब न्यायिक लड़ाई लड़ना गरीबों के बस की बात तो रही ही नहीं। इस बात को सुप्रीम कोर्ट और सरकार दोनों ने स्वीकारा है। मुकदमों की बढ़ती संख्या को देखते हुए आज त्वरित न्यायिक व्यवस्था समय की मांग बन गयी है। भारतीय न्याय व्यवस्था की सबसे बड़ी विडम्बना यह भी है कि जब भी कोई न्यायाधीश न्याय व्यवस्था में सुधार की कोशिश करता है तब तक उसके सेवानिवृत्ति का समय आ जाता है। अब देखना यह होगा कि सरकार और हमारी न्यायिक व्यवस्था पूर्व न्यायाधीश लोढ़ा द्वारा दिये गये सुझावों पर अमल करती है या नहीं। यदि इन सुझावों को अमल के स्तर पर लाया जाए तो निश्चय ही ये लम्बित मामलों के जल्द से जल्द निबटारे में सहायक होंगे और भारतीय न्याय प्रणाली को गति दे सकेंगे।

❖❖❖

जेलों की समस्याएं[1]

सरकारी सूत्रों के अनुसार देश में कुल 1215 जेले हैं जिनकी क्षमता 3 लाख है मगर इस समय उनमें 14 लाख से अधिक कैदी रखे गये हैं। इनमें से 7 लाख कैदी तो ऐसे हैं जिनके मुकदमें अदालतों में वर्षों से विचाराधीन है। बिहार में 20 हजार की क्षमता वाले प्रदेश की 55 जेलों में 40 हजार से अधिक कैदी हैं। इनमें हजारों वैसे हैं, जो दोष साबित होने से पहले सजा से ज्यादा समय कारागार में गुजार चुके हैं। भूख व बीमारी से मरते कैदियों की फेहरिस्त लम्बी होती जा रही, अब तो वे आत्महत्या भी करने लगे हैं। व्यवस्थागत संवेदनशून्यता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या होगा कि बूढ़े व लाचार कैदी चाहरदिवारी में अपनी मौत का इंतजार कर रहे हैं। जेलों में इलाज के लायक इंतजाम नहीं है। देश की जेलों में कुल जनसंख्या में से 71.4 प्रतिशत विचाराधीन कैदी हैं। देश की कुल जेल कैदियों में 3.97 प्रतिशत महिलाएं हैं। कुल 1544 बच्चे अपनी माताओं के साथ जेलों में थे। देश की जेलों में आज भी वह जेल मैन्युअल लागू है, जो कि 1860 में अंग्रेज शासक ने तैयार किया था। अधिकांश जेलों की इमारतें खस्ताहाल है क्योंकि उनका निर्माण सौ वर्ष से भी पहले किया गया था। मॉडर्न जेलें बनाने की ज्यादातर योजनाएं अभी फाइलों की हो शोभा बढ़ा रही है। जेलों में सुधार के लिए गत 50 वर्षों में कम से कम डेढ़ दर्जन आयोग या समितियाँ बनी मगर इनमें से एक की भी सिफारिशों को लागू नहीं किया गया। केन्द्र सरकार यह कहकर अपना दामन झाड़ लेती है कि जेलें राज्य सरकारों के अधीन हैं इसलिए केन्द्र बेबस है जबकि राज्य सरकार यह कहकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेती है कि जेलों की नियमावली में संशोधन या सुधार करना केन्द्र सरकार की जिम्मेदारी है। देश भर की जेलें बेहाल हैं मगर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और पं॰ बंगाल की जेलों की हालत सबसे बदतर है। जेलों में कैम्प लगाकर मुकदमें निपटाये जा सकते हैं। इसके साथ-साथ जेलों में सुरक्षा के भी प्रबंध हों।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने ज्यादातर जेलों, जिनका सर्वेक्षण किया है, उसमें कैदियों की अत्यधिक भीड़ पायी गयी। अब मामलों का जल्दी सुनवाई कर भीड़ कम की जा सकती है। सभी जिलों के जेलों में पूर्णकालिक डॉक्टर की नियुक्ति करके और प्रत्येक उप-जेल में योग्य फार्मसिस्ट की उपस्थिति सुनिश्चित करके स्वास्थ्य सुरक्षा उन्नत की जा सकती है। उच्चतम न्यायालय के निर्देशों और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा जारी 'दिशा-निर्देशों के अनुपालन में पैरोल और उम्र कैदियों की समय पूर्व रिहाई की पद्धति को तर्कसंगत बनाया जा सकता है। गरीब कैदियों को मुफ्त विधिक सहायता के पद्धतिपूर्ण अनुवीक्षण और मूल्यांकन की जरूरत है क्योंकि कई कैदियों को मूलभूत अधिकारों से भी वंचित पाया गया। महिला जेल में व्यावसायिक प्रशिक्षण सुविधाओं और कार्यशाला कार्यक्रम बिल्कुल अपर्याप्त है। शिक्षा, मनोविनोद और कैदियों के कल्याण में गैर-सरकारी संगठनों को और अधिक संख्या में शामिल किया जा सकता है।

1 28 मार्च, 2017

चिकित्सा सुविधाओं के बिना महिला कैदियों की खराब जीने की स्थितियाँ भी चिन्ता का विषय है। जेल में कैदियों की उच्च मृत्यु दर भी चिन्ता का कारण है। कई ऐसी घटनाओं का पता लगा है जिनमें कैदियों की मृत्यु से सम्बन्धित आयोग के अनुदेशों का पालन नहीं किया गया था। न्यायिक हवालातों में निजी ठेकेदारों द्वारा खाद्य आपूर्ति के प्रबंध की समीक्षा किये जाने की जरूरत है।

❖❖❖

संविधान दिवस के अवसर पर[1]

भारतीय संविधान के मूल सिद्धांत उसकी उद्देशिका में मूल अधिकारों संबंधी तीसरे भाग में तथा राज्य की नीति के निदेशक तत्वों संबंधी चौथे भाग में विशेष रूप से मूर्त हुए हैं। मूल अधिकारों का वर्णन अनुच्छेद 12 से 35 में हुआ है और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों का अनुच्छेद 36 से 51 में।

संविधान के उद्देशिका में सारे संविधान का सार है, दर्शन है। संविधान के सभी उपबंध उद्देशिका में निहित भावनाओं से स्फूर्ति ग्रहण करते हैं। उद्देशिका पर आधुनिक युग की तीन महान क्रान्तियों का प्रभाव पड़ा है–फ्रांसीसी, अमरीकी और रूसी। फ्रांसीसी क्रान्ति में स्वतंत्रता, समानता और बंधुता पर जोर दिया गया था, अमरीकी क्रान्ति में राजनीतिक स्वतंत्रता तथा व्यक्ति–स्वातत्रंय पर और रूसी क्रान्ति में आर्थिक समानता पर। भारतीय क्रान्ति के सूत्रधारों ने आरंभ से ही इन तीनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। संविधान निर्माण तथा संस्थान निर्माण एक जीवंत और सतत् गतिशील प्रक्रिया है। संविधान पर अमल केवल संविधान के स्वरूप पर निर्भर नहीं करता। संविधान केवल विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे राज्य के अंगों का प्रावधान कर सकता है। राज्य के उन अंगों का संचालन लोगों पर तथा उनके द्वारा अपनी आकांक्षाओं तथा अपनी राजनीति की पूर्ति के लिए बनाए जाने वाले राजनीतिक दलों पर निर्भर करता है।

सामाजिक न्याय का अभिप्राय है कि मनुष्य–मनुष्य के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेद न माना जाए, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्तियों के समुचित विकास के समान अवसर उपलब्ध हों, किसी भी व्यक्ति का किसी रूप में शोषण न हो और उसके व्यक्तित्व को एक पवित्र सामाजिक विभूति माना जाए, किसी परोक्ष लक्ष्य की सिद्धि का साधन–मात्र नहीं।

सामाजिक न्याय सुलभ करने के लिए यह आवश्यक है कि देश की राजसत्ता विधायी तथा कार्यकारी कृत्यों के द्वारा समतायुक्त समाज की स्थापना का प्रयत्न करे। सामाजिक न्याय के इस मूलभूत मानवीय सिद्धांत को संविधान के अनेक रूपों में मान्यता मिली है। संविधान के तीसरे और चौथे भागों में सामाजिक न्याय की सिद्धि के विविध उपायों का उल्लेख किया गया है।

अनुच्छेद 14 के अनुसार भारत भूमि पर कानून के समक्ष सभी, अर्थात् केवल नागरिक ही नहीं, समान हैं, सबको समान संरक्षण प्राप्त हैं। अनुच्छेद 29 और 30 के अंतर्गत अल्पसंख्यकों के शिक्षा और संस्कृति संबंधी हितों तथा अधिकारों के संरक्षण की व्यवस्था की गयी है।

अनुच्छेद 41 में कहा गया है कि राज्य अपने आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के तथा बीमारी, बुढ़ापा, बेकारी आदि अभाव की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का कार्यसाधक प्रयास करेगा। आर्थिक न्याय के अभाव में सामाजिक न्याय कल्पना मात्र है। आर्थिक न्याय का अभिप्राय है कि धन–संपदा के आधार पर व्यक्ति–व्यक्ति के बीच विच्छेद की कोई दीवार खड़ी नहीं की जा सकती।

❖❖❖

1 26 नवम्बर, 2017

न्यायिक उत्तरदायित्व[1]

1975 की 3 जनवरी भारत के इतिहास में एक ऐसे नेता की हत्या के साथ जुड़ गयी कि जिसकी गुत्थी आज तक नहीं सुलझ पायी है जो विस्मय करने वाला है। तबसे लेकर आज तक भारत, बिहार और मिथिला के लिए उन्हीं की कृतियों और गुणवत्ता, बुद्धिमत्ता, प्रशासनिक, कुशलता, लोकप्रियता, सहजता आदि की स्मृति दिलाने के लिए मशहूर हो चुकी है। ललित बाबू एक सच्चे समाजसेवी थे। वे अपने सिद्धांतों का बड़ी दृढ़ता से पालन करते थे। ललित बाबू की हत्या किसी षड्यंत्र के तहत हुई ऐसी आंशका लोगों के मन में अभी भी बनी हुई है, जबकि चार दोषियों को आजीवन कैद की सजा सीबीआई अदालत ने दी है। परन्तु इस सजा के बावजूद शड्यंत्र पक्ष क्या था, कैसे था तथा षड्यंत्र का मास्टर माइन्ड कौन था? यह उजागर और साबित 43 वर्षों के बाद भी नहीं हो हो पाया है। यह मामला देश की न्याय प्रणाली पर भी सवाल उठाता है। इस मामले में विलंब ने कई विस्मयकारी सवाल खड़े किये हैं। न्यायिक व्यवस्था ने इतना लम्बा समय लिया इससे तो लोगों का न्याय के प्रति विश्वास ही डगमगाने लगा है। जनमानस सवाल खड़े कर रहे हैं कि उनकी हत्या किस सुनियोजित षड्यंत्र के तहत हुई?

भारतीय संविधान की उद्देशिका में प्रत्येक भारतवासी के लिए 'सम्पूर्ण न्याय' की अवधारणा का संयोजन किया गया है। सम्पूर्ण न्याय से आशय है–राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक न्याय। जब तक ये तीनों न्याय प्राप्त नहीं होते तब तक भारतवासी न्याय से वंचित है, यह मानना होगा। न्यायदान का उत्तरदायित्व न्यायपालिका पर है। भारत के न्यायाधीश चुस्त और कार्यकुशल हैं, फिर भी न्यायिक व्यवस्था की चुस्ती और कार्य कुशलता पर प्रश्न चिह्न लगते रहते हैं। संवैधानिक प्रजातंत्र के अस्तित्व के लिए एक सक्षम, निपुण, स्वतंत्र और जागरूक न्यायपालिका अनिवार्य है। किन्तु न्यायपालिका के पास न तो अपना बजट है न प्रशासनिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता। इस हेतु वह कार्यपालिका पर आश्रित है। बड़ी संख्या में प्रकरणों का लम्बित होना, न्यायदान में विलम्ब होना, न्यायिक प्रणाली का खर्चीला और दीर्घकालिक होना–ये सभी नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन है। यह आवश्यक है कि कार्यपालिका इस संबंध में पहल करे, न्यायपालिका को विश्वास में लेकर कारणों का विशेषज्ञ विश्लेषण करे और सुधार के उपायों की पहचान कर उन्हें लागू करने के ठोस कदम उठाये।

❖❖❖

1 3 जनवरी, 2019

किसानों की समस्या[1]

भारतीय किसान तमाम समस्याओं से ग्रस्त हैं और उन समस्याओं का प्राथमिकता के आधार पर निदान होना चाहिये। लेकिन यदि किसान और उनका नेतृत्व करने वाले लोग या संगठन यह सोच रहे हैं कि कर्ज माफी जैसे रास्ते से किसानों का हित हो सकता है तो यह बिल्कुल भी सही नहीं है।

पिछले वर्षों का अनुभव यही बताता है कि कर्ज माफी जैसे उपाय किसानों की हालत में सुधार करने में तो नाकाम होते ही हैं, पूरी बैंकिंग व्यवस्था को भी नुकसान पहुँचाते हैं और साथ ही कर्ज लेकर उसे ईमानदारी से चुकाने वाले लोगों के समक्ष संकट भी पैदा करते हैं। यह संकीर्ण स्वार्थों वाली राजनीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं कि कुछ दल किसानों के साथ हमदर्दी दिखाने के लिए कर्ज माफी की वकालत कर रहे हैं।

किसानों के हित में कई अहम सुझाव देने वाली स्वामीनाथन समिति की सिफारिशों पर अमल से बात बन सकती। इसके साथ ही इस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये कि केन्द्र सरकार स्वामीनाथन समिति की कई सिफारिशों पर अमल करने की दिशा में आगे बढ़ रही है और जो इसी का हिस्सा है। किसानों की आमदनी दोगुनी करने की दिशा में उठाये गये कुछ उल्लेखनीय कदम। आवश्यक यह है कि इन कदमों का असर जमीन पर भी नजर आये और किसान यह महसूस करें कि फसल की लागत से दोगुनी आमदनी का जो संकल्प जताया जा रहा है वह पूरा होगा। इसके साथ ही अपनी माँगें रखते समय किसानों को भी इस पर गंभीरता से विचार करना होगा कि उन उपायों पर अमल कैसे हो जो वास्तव में उनको आत्मनिर्भर बनायें। कृषि और किसानों का कल्याण एक ऐसा विषय है जिस पर न तो अकेले केन्द्र सरकार कुछ कर सकती है और न ही राज्य सरकारें। किसानों का हित तो तब होगा जब केन्द्र और राज्य सरकारें मिलकर सक्रिय होंगी और राजनीतिक हानि-लाभ की चिन्ता किये बिना कदम उठाये जाएंगी।

कृषि की बदहाली का एक बड़ा कारण इस क्षेत्र के लिए उपयुक्त बुनियादी ढाँचे का निर्माण न हो पाना है। यह एक सच्चाई है कि जिस तरह अन्य क्षेत्रों के लिए बुनियादी ढाँचे का निर्माण किया गया है उस तरह का ढाँचा कृषि के लिए नहीं बन पाया। बात चाहे सिंचाई की प्रणाली को दुरुस्त करने की हो या फिर कृषि को आधुनिक तौर-तरीकों से लैस करने की, जब तक केन्द्र और राज्य सरकारें बड़े पैमाने पर निवेश के लिए आगे नहीं आयेंगी तब तक किसानों की दशा में बुनियादी बदलाव नहीं आने वाला।

❖❖❖

1 20 फरवरी, 2019

श्रम दिवस[1]

वास्तव में भारत के असंगठित मजदूर भी सामाजिक सुरक्षा से बहुत दूर हैं। हाल में ही वर्ल्ड इकॉनोमिक फोरम द्वारा प्रकाशित ग्लोबल वीक्स रिपोर्ट–2017 में कहा गया है कि भारत में 90 प्रतिशत असंगठित मजदूरों के पास सामाजिक सुरक्षा नहीं है। उसी तरह सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में शोध संगठन ग्लोबल की शुरुआत इन्डेक्स द्वारा प्रकाशित नवीनतम विस्तृत सुरक्षा रिपोर्ट में 96 देशों में भारत को 71वें स्थान पर रखा गया है।

देश में असंगठित मजदूरों और अन्य लोगों में सामाजिक सुरक्षा की स्थिति चिन्ताजनक है। विगत 9 अप्रैल को भारत सरकार ने देश में पहली बार सार्वभौमिक असंगठित सामाजिक सुरक्षा योजना का जो मसौदा प्रस्तुत किया है वह महत्वपूर्ण है। उस मसौदे के तहत सामाजिक सुरक्षा से वंचित जो समझौते हुए उनमें 90 प्रतिशत से अधिक असंगठित क्षेत्र के लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का प्रावधान है। इस योजना के मसौदे के मुताबिक जिस व्यक्ति की मासिक आय न्यूनतम वेतन से कम होगी वे सामाजिक सुरक्षा का दर्जा प्राप्त कर सकेंगे। सामाजिक सुरक्षा के दायरे में आने वाले लोगों को जमीन, मकान, आभूषण एवं सम्पत्तियों का ब्योरा देना पड़ेगा। असंगठित क्षेत्र स्वरोजगार योजना में लोगों का न्यूनतम वेतन निर्धारण उनके सम्पत्ति के जरिये किया जायेगा।

विश्व बैंक की रिपोर्ट 2016 में कहा गया है कि भारत में असंगठित मजदूरों और गरीबों की सामाजिक सुरक्षा चिन्ताजनक परिदृश्य गरीबी एवं कुपोषण बड़ा कारण है। दुनिया में 2013 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या सबसे ज्यादा भारत में ही थी। नोबेल पुरस्कार सम्मानित अमर्त्य सेन का भी कहना है कि भारत में चिन्ताजनक असंगठित मजदूरों और अन्य गरीबों के बीच सामाजिक सुरक्षा के पीछे कुपोषित लोगों की बढ़ती तादाद ही कारण है। बिहार, बंगाल, उड़ीसा, झारखण्ड, असम एवं अन्य दूसरे राज्यों में इन वर्गों में कुपोषण की संख्या लम्बे समय से दिखाई देती रही है। ग्लोबल विश्व रिपोर्ट 2017 इस बात का संकेत है कि देश के आम आदमी एवं असंगठित मजदूरों के सामाजिक सुरक्षा के लिए गरीबी दूर करने, रोजगार सृजन के प्रयासों के साथ-साथ स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अन्य नागरिक सुविधाओं में जीवन स्तर को ऊपर उठाने की दिशा में अभी भारत सरकार को लम्बा सफर तय करना पड़ेगा।

कमियों को दूर करते हुए सार्वभौमिक सामाजिक सुरक्षा को व्यावहारिक और उपयोगी बनाएं क्योंकि ग्लोबल विश्व रिपोर्ट यह बताती है कि भारत के असंगठित मजदूर एवं आम आदमी की सामाजिक सुरक्षा के लिए गरीबी दूर करने, रोजगार सृजन के साथ-साथ उनके जीवन स्तर को उपर उठाना और उन्हें कार्यान्वित करना बहुत ही आवश्यक है।

❖❖❖

1 29 मई, 2017

श्रमिकों का संरक्षण[1]

भारत के संविधान में श्रमिकों के संरक्षण के लिए स्पष्ट दायित्व सरकार को सौंपे गये हैं। किसी भी देश के लिए श्रमिकों का संरक्षण एवं कल्याण आर्थिक क्षेत्र के संचालन के लिए आवश्यक माना गया है। श्रमिकों के दो क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्र के संगठित श्रमिक और दूसरा कृषि एवं विनिर्माण क्षेत्र के मजदूर अंसगठित एवं असुरक्षित रहते आये हैं।

संविधान के अनुच्छेद 15 एवं 16 के अंतर्गत सभी नागरिकों को समानता और बराबरी का अधिकार सुनिश्चित है। संविधान की उद्देशिका में ही समाज के आर्थिक-राजनीतिक बराबरी की बात सभी के लिए सुनिश्चित की गयी है, 70 वर्षों की आजादी के बाद राजनीतिक दलों ने संगठित मजदूरों को अनेक सुविधाएं उपलब्ध करायी हैं, परन्तु असंगठित क्षेत्रें के मजदूरों को श्रम आयोग की अनुशंसा के पश्चात् भी संरक्षण प्राप्त नहीं हुए हैं। किसी भी राजनीतिक दलों ने असंगठित मजदूरों के लिए प्रभावकारी कार्यक्रम और नीति नहीं बनाये हैं। इन क्षेत्रों के मजदूरों में असंतोष व्याप्त है जिसके कारण कार्यक्षमता पर प्रभाव पड़ता है। अंतत: इसकी हानि लोकतंत्र को प्रभावित करती है।

पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के समय से ही असंगठित क्षेत्रों के मजदूरों के लिए कानून बनाने की घोषणा की गई लेकिन अब तक इन मजदूरों के लिए समेकित कानून नहीं बन पाना विस्मयकारी है। जब कभी भी इनके लिए सुधार कल्याण और सेवा की निरंतरता की बात हुई है तो औद्योगिक क्षेत्र के प्रभाव के कारण प्रभावकारी कार्यक्रम नहीं बन पाया। हाल में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की सरकार ने असंगठित मजदूरों के लिए बर्खास्तगी, काम करने की अवधि तथा इनके बच्चों के कल्याण के लिए श्रम मंत्रालय की ओर से प्रावधान सुनिश्चित की है, परन्तु उद्योगपतियों के विरोध पर सुधार नहीं हो रहा है। श्रम मंत्रालय ने सुधार का प्रारूप प्रस्तुत किया परन्तु उद्योगपतियों के संघों के विरोध के कारण सरकार की घोषणा स्थगित की जा रही है। राष्ट्रीय राजनीतिक दल उद्योगपतियों के प्रभाव के कारण विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र के लघु उद्योगों में कार्यरत मजदूरों के लिए आज भी संविधान प्रदत्त सुविधाओं एवं संरक्षण का नहीं मिल पाना दुर्भाग्यपूर्ण है। प्रधानमंत्री श्री मोदी ने 'सबका साथ सबका विकास' तथा गरीबों की सरकार की बात कही है। इसलिए उनको असंगठित क्षेत्रों के मजदूरों के कल्याण के लिए गंभीरता से विचार करना चाहिये।

गांधीजी भारत को स्वावलंबी आदर्शों वाले लघु उद्योगों एवं ग्रामोद्योगों को अपनाने पर जोर देते थे, गाँवों में फैले हुए ग्रामवासी रूपी करोड़ों जीवित यंत्रों के विरुद्ध जड़ यंत्रों को प्रतिद्वंद्विता में नहीं लाना चाहिये। यंत्रों का सदुपयोग तो यह कहा जाए कि उससे मनुष्य के प्रयत्न को सहारा मिले और उसे वह आसान बना दे। यंत्रों के मौजूदा उपयोग का झुकाव तो उस ओर ही बढ़ता जा रहा है कि कुछ इने-गिने लोगों के हाथ में खूब सम्पत्ति पहुँचाई जाए और जितने करोड़ों स्त्री-पुरुषों

1 22 दिसम्बर,2017

के मुँह से रोटी छीन ली जाती है, उन बेचारों की जरा भी परवाह न की जाए। किन्तु हम भारत में उन करोड़ों लोगों के जीवन की उपेक्षा नहीं कर सकते जो मूल रूप से गाँवों में रहते हैं। गांधीजी का लघु उद्योगों को अपनाने का आग्रह बेकारी की समस्या के मिटाने को संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है।

यदि देश के करोड़ों लोगों को व्यवसाय सुलभ नहीं कराये जाते तो देश से गरीबी, भूख, विषमता और अज्ञानता की आग बुझ नहीं सकेगी। विशाल उद्योगों की अपेक्षा इन्हें प्रोत्साहन देने का दूसरा कारण यह है कि अधिकांश नागरिकों के अतिरिक्त समय का सही सदुपयोग हो सकता है। ग्रामों के संदर्भ में यह प्रश्न और भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है, यही कारण है कि गांधीजी ग्रामोद्योगों को विकसित देखना चाहते थे, हमारे यहाँ सवाल यह नहीं है कि हमारे गाँवों में जो लाखों करोड़ों आदमी पड़े हैं उन्हें परिश्रम की चक्की से निकालकर छुट्टी दिलायी जाए, बल्कि यह है कि उन्हें साल में जो कुछ महीनों का समय यों ही बैठे-बैठे आलस्य में बिताना पड़ता है, उसका उपयोग कैसे किया जाए।

❖❖❖

बिहार से मजदूरों का पलायन[1]

पलायन, बिहार की अर्थव्यवस्था का विशेष हिस्सा है। यहाँ के पुरुष बड़े पैमाने पर काम की तलाश में दूसरे राज्यों में जाते हैं। एन॰एस॰एस॰ओ॰ के मुताबिक बिहार एक ऐसा राज्य है जहाँ से खास समय पर लोग बड़ी संख्या में काम करने के लिए राज्य से बाहर जाते हैं।

2007-08 में बिहार में प्रति हजार पर 57 पुरुष व एक महिला आस-पास के इलाके में काम के लिए जाते थे। सर्वेक्षण के अनुसार पलायित कामगारों में से 98 प्रतिशत पुरुष थे। पहले पलायन की मूल वजह गरीबी थी। पलायितों में ऐसे शिक्षित लोगों की संख्या ज्यादा है जो लम्बे समय के लिए अथवा स्थायी रूप से यहाँ से किसी दूसरी जगह जाकर बस जाते हैं। गरीब पलायितों का अपने परिवार को भेजा जाने वाला पैसा उनकी रोजमर्रा की आधारभूत जरूरतों को पूरा करता है। पलायन सामाजिक संबंधों में बदलाव का भी एक माध्यम सिद्ध हो रहा है। वैसे तो पलायन का मूल कारक अर्थ ही है पर इसकी संख्या का निर्धारण जाति, वर्ग व भू-स्वामित्व जैसे तत्व ही करते हैं।

बिहार में कुल 25 प्रतिशत कामगार पलायित हैं। इनमें से सबसे ज्यादा मुसलमान 33 प्रतिशत (उच्च व निम्न दोनों जातियों में से लगभग बराबर) फिर सवर्ण 29 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति 28 प्रतिशत और अन्य पिछड़ा वर्ग-प्रथम में 26 प्रतिशत कामगार पलायित हैं। अनुसूचित जाति 22 प्रतिशत व ओबीसी 20 प्रतिशत में पलायन अपेक्षाकृत काफी कम है। इन दोनों जाति समूह में पलायन कम होने का कारण उनका किसानी से जुड़ा होना है। कामगारों के पलायन के स्वरूप का आकलन करते हुए यह जानना महत्वपूर्ण है कि कोई कामगार कितना समय परदेश में बिताता है। अनुसूचित जाति, जनजाति, मुसलमान व अन्य पिछड़ा वर्ग-प्रथम में लोग काम के लिए बाहर जाते हैं और कुछ समय बाद लौट आते हैं।

वर्गगत आधार पर देखें तो गैर-कृषक परिवारों में पलायन ज्यादा है। कुल गैर-कृषक कामगारों का 46 प्रतिशत पलायित कामगार दिहाड़ी मजदूर हैं गैर कृषक स्वरोजगार कामगारों में से 36 प्रतिशत पलायित हैं। भूस्वामित्व के आधार पर देखें तो एक तरफ भू-मालिकों में से 43 प्रतिशत पलायित है और दूसरी तरफ भूमिहीन खेतिहर मजदूर 28 प्रतिशत पलायित हैं। इनके बीच के वर्गों में जिनकी भूमि से संबंध है, उनमें पलायन औसत से कम है। किसानों में 22 प्रतिशत और खेतिहर मजदूरों में भी यह 22 प्रतिशत ही है। कृषक परिवारों में कम अवधि का पलायन होता है और जैसे-जैसे हम इसमें उच्च वर्ग की ओर बढ़ते हैं तो उसका कुल पलायन में अनुपात घटता जाता है।

अब अगर पलायन के जातीय और वर्ग के आधार पर तुलना करे तो लगता है कि वर्गगत

1 01 अक्टूबर, 2018

आधार पर पलायन अपेक्षाकृत ज्यादा है। ढ़ाई से पांच एकड़ के भूमालिकों के वर्ग से 22 प्रतिशत, एक से ढ़ाई एकड़ वालों में 23 प्रतिशत और एक एकड़ से कम वालों में पलायन का प्रतिशत 25 देखा गया। 5 से 10 एकड़ भूमि के मालिकों में भी वह 25 प्रतिशत ही पाया गया।

इस पूरे विश्लेषण से साफ है कि सर्वाधिक पलायन भूमिहीनों में है। संक्षेप में ग्रामीण बिहार में पलायन के स्वरूप को तीन सामाजिक व आर्थिक अधिश्रेणियों–जाति, वर्ग व भूमि के आधार पर समझा जा सकता है। भूमि के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में होने वाला पलायन सबसे कम और वर्गगत श्रेणियों में ज्यादा है। ''रोजर्स'' के शब्दों में हालांकि पलायन सभी तीनों श्रेणियों में होता है पर वर्गगत पलायन सबसे ज्यादा है। पुरुषों के इस पलायन ने महिलाओं के जीवन को कई तरह से प्रभावित किया है। पुरुषों के परदेश चले जाने के बाद घर में वही रह जाती हैं। ऐसे में बाहर के कार्यों की जिम्मेदारी भी उन्हीं पर आ जाती है। आईएचडी के 2011 के सर्वेक्षण में कृषि कार्यों में लगी महिलाओं में से 70 प्रतिशत पलायित परिवारों से थी। पशुपालन व लघु घरेलू उद्योग वाले परिवारों में भी महिलाएं उन कार्यों को कर रही थीं जो पहले केवल पुरुष के ही माने जाते थे। सर्वेक्षण में यह भी देखने में आया कि जिन परिवारों में पलायित पुरुष पर्याप्त मात्रा में पैसा भेजते हैं, उनमें महिलाएं बाहर के काम कम करती हैं। स्त्रियों के संदर्भ में कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि पलायन से कृषि क्षेत्र में उनकी भागीदारी बढ़ी हैं और इसीलिए स्त्री–पुरुष के बीच काम व मजदूरी का अंतर भी घटा है। इसे हम कृषि का महिलाकरण भी कह सकते हैं।

❖❖❖

नेपाल में लम्बित परियोजनाएं[1]

इन दोनो देशों के बीच आर्थिक कई परियोजनाएं वर्षों से नेपाल सरकार की सहमति के अभाव में लम्बित है। (1) सप्त कोशी हाई डैम- कोशी नदी से उत्तर बिहार के बहुत बड़े क्षेत्र के बाढ़ पीड़ित होने की समस्या सर्वविदित है। यद्यपि पूर्व में भीम नगर बराज, वीरपुर और बहुत बड़े पैमाने पर नदी पर तटबंधों के निर्माण से नदी की धारा के पश्चिम की ओर के झुकाव पर नियंत्रण पाया जा सका है, किन्तु नदी की धार के साथ, बहुत बड़ी मात्रा में आने वाले सिल्ट के कारण, तटबंधों पर प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा दबाव, उनके उच्चीकरण की आवश्यकता तथा नहर प्रणाली की घटती क्षमता, राज्य सरकार के लिये चिन्ता का विषय रही है। इस समस्या के निदान हेतु नेपाल क्षेत्र में जलाशयों का निर्माण ही समस्या का स्थायी निदान है। वर्ष 1950 में सी॰डब्लू॰आई॰एन॰सी॰ द्वारा तैयार की गयी कोशी हाई डैम परियोजना को वर्ष 1980 में अद्यतन कर पुनः एक प्री फिजीविलिटी रिपोर्ट तैयार की गयी, जिसके अनुसार बराह क्षेत्र (नेपाल) में, सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण के लाभ के साथ बहुत बड़ी मात्रा में पन-बिजली उत्पादन हेतु एक हाई डैम का निर्माण प्रस्तावित है। पिछले दशक में हुई विभिन्न भारत-नेपाल बैठकों में यह विषय चर्चा का मुख्य बिन्दु रहा है, इस विषय पर सहमति की दिशा में कुछ ठोस प्रगति हुई और अब सप्त कोशी हाई बहुउद्देशीय परियोजना हेतु भारत-नेपाल संयुक्त विशेषज्ञ दल के नाम से एक समिति गठित हो चुकी है, परन्तु अभी तक निर्णय नहीं हो पाया है। दिसम्बर, 1993 में भारत-नेपाल जल संसाधन परियोजनाओं पर त्वरित कार्रवाई करने के लिये एक कार्य योजना पर नेपाल सरकार से सहमति हुयी थी, जिसके अंतर्गत, सप्त कोशी हाई डैम के संबंध में निम्नलिखित कार्य योजना बनायी गयी थी :- (क) दोनों देशों द्वारा इंनसेप्शन रिपोर्ट तैयार कर ली जाए। (ख) संयुक्त विशेष पदाधिकारी समिति की बैठक आहुत कर इसमें विस्तृत अन्वेषण प्रतिवेदन तैयार करने के तरीकों पर विचार किया जाए। (ग) संयुक्त परियोजना कार्यालय की स्थापना की जाए। परंतु अभी तक अग्रेत्तर कार्रवाई लम्बित है। आवश्यक है कि योजना का विस्तृत अन्वेषण कार्य प्रारंभ करते हुए, अन्य प्रारंभिक कार्य यथा कार्यालय की स्थापना, अप्रोच-पथ का निर्माण इत्यादि कार्य शीघ्र प्रारंभ कराये जाएँ।

(2)कमला एवं बागमती परियोजना- कमला एवं बागमती नदियों पर, नेपाल क्षेत्र में जलाशय निर्माण के संबंध में राज्य सरकार द्वारा कमला बहुद्देशीय योजना, जो तेतरिया नेपाल में अवस्थित है तथा बागमती बहुद्देशीय योजना, जो नूनथर के पास अवस्थित है, का संभावना प्रतिवेदन 1983 में ही भारत सरकार को भेजा गया था, जिस पर नेपाल सरकार की स्वीकृति अपेक्षित थी। इस संबंध में, भारत नेपाल से सम्बन्धित विभिन्न बैठकों में विचार-विमर्श किया जाता रहा और निर्णय लिया गया था कि कमला एवं बागमती बहुद्देशीय परियोजनाओं की

1 09 अगस्त, 2014

अध्ययन–टिप्पणी नेपाल द्वारा तैयार कर, भारत सरकार के मंतव्य के लिये भेजी जायेगी। नेपाल सरकार द्वारा, संक्षिप्त अध्ययन–टिप्पणी भारत सरकार के माध्यम से बिहार सरकार को उपलब्ध करायी गयी थी, जिस पर बिहार सरकार का मंतव्य भारत सरकार को मार्च, 1994 में भेज दिया गया। कमला जलाशय परियोजना का निर्माण, इस राज्य की कमला सिंचाई योजना के अस्तित्व के लिये अनिवार्य है। उसी प्रकार बागमती जलाशय का निर्माण भी अपरिहार्य है, क्योंकि नेपाल द्वारा बागमती नदी का सारा पानी अपने क्षेत्र में, प्रयोग करने के कारण, इस राज्य की बागमती सिंचाई योजना हेतु, जल की सुनिश्चितता, संदिग्ध हो गयी है। राज्य के कमला नहर क्षेत्र में, वर्तमान सिंचाई सुविधा बरकरार रखने के साथ बागमती कमला क्षेत्र में सिंचाई सुविधा प्रदान करने हेतु कमला एवं बागमती जलाशयों का शीघ्र निर्माण अत्यावश्यक है।

❖❖❖

भूमिहीन एवं आवासविहीन लोगों के लिये जमीन का अधिकार[1]

सरकार का यह निर्णय कि बिहार के सभी बेघरों एवं भूमिहीनों को घर का अधिकार देने के लिये कानूनी रूप से जमीन उपलब्ध करा दी जाए, अत्यंत ही सराहनीय है। ऐसे कानून के अंतर्गत केवल दलितों को ही नहीं बल्कि इसके अंतर्गत अन्य जाति के भूमिहीन गरीबों को भी जमीन उपलब्ध करायी जायेगी। इस कानून के अंतर्गत ग्रामीण इलाकों के भूमिहीन तथा बेघरों को यह अधिकार होगा कि उन्हें कम से कम उतनी जमीन मिल जायेगी जिस पर वे घर बना सकेंगे साथ ही बचे हुए भूखण्ड पर वे अपना जीवन-यापन कर सकेंगे। इस कानून के अंतर्गत दलित, महादलित, अति पिछड़ा वर्ग, अत्यंत पिछड़ा वर्ग, गरीब विधवाओं एवं तलाकशुदा महिला जो अकेली रह रही है उनको प्राथमिकता दी जाए। 1947 आजादी के बाद डॉ॰ श्रीकृष्ण सिंह की सरकार ने बिहार विशेषाधिकृत वास भूमि अभिघृति अधिनियम 1947 बनाकर देश में मिशाल प्रस्तुत की थी उसी कानून के अंतर्गत मेरी सरकार ने 11 लाख परिवारों को जिस भूमि पर उनका आवास अवस्थित था उसका स्वामित्व कानूनी तौर पर सर्टिफिकेट देकर दिया था।

इस राज्य के ग्रामीण क्षेत्र का विकास करने और किसानों की हालत सुधारने तथा कृषि कार्य को बढ़ावा देने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि पूरी ताकत के साथ भूमि सुधार कार्यक्रम कार्यान्वित किये जाएं। यह भी देखा गया है कि कानून के खिलाफ होने पर भी भूमि की बहुत-सी बेनामी काश्तकारी चल रही है। फलतः वास्तविक भू-धारी कृषि का विकास करने के लिये सरकार से मिलने वाली नगदी ऋण और अन्य प्रोत्साहनों से वंचित रह जाते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि जिन क्षेत्रों में जो किसान वास्तविक रूप से कार्य कर रहे हैं, उन्हें कानूनी अधिकार देने के लिये अधिकर के अभिलेख सही ढंग से तैयार किये जाएं और अभिलेखों को अद्यतन बनाया जाए। सरकार सर्वेक्षण करके जानकारी प्राप्त करे कि विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत लोगों को कौन-सी जमीन दी गई थी और जिन्हें जमीन दी गई थी, उन्हें उक्त जमीन पर दरअसल कब्जा दिया गया या नहीं। यदि उन्हें वहाँ से बेदखल कर दिया गया हो तो एक समयबद्ध कार्यक्रम बनाकर कब्जा दिलाने की व्यवस्था की जाए। भूमि सीमा कानूनों के अंतर्गत सीमा से फाजिल जमीन का पता चलाकर उसका वितरण करना था, किन्तु अभी तक न्यायालयों से संबंधित मुकदमें लम्बित पड़े हैं। अतः इसके लिये समुचित व्यवस्था की जाए ताकि एक निर्धारित अवधि में ये मामले निबटा दिये जायें और भूमिहीनों में फालतू जमीन बांट दी जाए। ऐसी जमीन उन्हें वापस दिलाने की दृष्टि से कानूनी उपाय किए जाएं। इस बारे में अभी तक बनाये गये कानूनों को सख्ती से पालन किया जाए। कृषि भूमि के लिए भूमि सुधार संबंधी कार्यक्रम सख्ती से लागू किए जाएं। राज्य सरकार नगर भूमि सीमा कानून के उपबंध दृढ़ता एवं तेजी से लागू करे। भूमि सुधार के नाम पर भूमिहीन लोगों के बीच सिर्फ जमीन का आबंटन ही पर्याप्त नहीं है। आबंटित भूखण्डों पर

1 15 दिसम्बर, 2014

गरीबों को प्रभावी कब्जा दिलवा पाना ही राज्य प्रशासन की सबसे बड़ी चुनौती है। इसके लिए आवश्यक है कि सुयोग्य श्रेणियों के अतिरिक्त अन्य भूसम्पन्न वर्गों द्वारा जमीन के किसी भी प्रकार के अनधिकृत कब्जे के निषेध हेतु कड़े दण्डात्मक प्रावधान किये जायें तथा उनके प्रभावी अनुपालन हेतु अनुमंडल स्तर के प्रशासनिक अधिकारियों को अतिरिक्त दण्डाधिकार भी दिये जायें। साथ ही, एक निश्चित समय-सीमा के अंदर उपयुक्त कार्रवाई न कर पाने या सुयोग्य श्रेणी के परिवारों को प्रभावी रूप से आबंटित जमीन पर कब्जा न दिलवा पाने की स्थिति से संबंधित क्षेत्रों के प्रशासनिक अधिकारियों के खिलाफ भी दण्डात्मक कार्रवाइयों का प्रावधान होना चाहिए। लम्बे समय से लंबित विवादों का निपटारा भूमि सुधार नीतियों की एक और प्राथमिकता के तहत होना चाहिए। विभिन्न न्यायालयों में भू-हदबंदी के कुल 1723 मामले लम्बित हैं, जिनमें कुल 159820.17 एकड़ जमीन सन्निहित हैं।

❖❖❖

भूमि अधिग्रहण कानून-2013 में बदलाव[1]

वर्तमान केन्द्र सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण एवं पुनर्वास में उचित मुआवजा एवं पारदर्शिता का अधिकार कानून 2013 में संशोधन कर किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के अधिकारों पर आघात पहुँचाना कृषि हित में उचित नहीं लगता है। केन्द्रीय स्तर पर इस कानून में बदलाव करके ग्राम सभा किसानों के हितों की बलि चढ़ाकर किसी निजी कम्पनी के लिये अधिक फायदेमंद बनाने का प्रावधान किया जा रहा है।

संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार के दौरान स्वीकृत भूमि अधिग्रहण कानून में कहा गया था कि सार्वजनिक-निजी साझेदारी (पीपीपी) वाली परियोजनाओं के लिए 70 फीसदी भू-स्वामियों की लिखित सहमति के बाद ही अधिग्रहण किया जा सकता है। अब इस प्रावधान को खत्म कर दिया जा रहा है। पीपीपी परियोजनाएं गति नहीं पकड़ पा रही हैं और करीब 18 लाख करोड़ रुपये की लम्बित परियोजनाओं में से 60 फीसदी हिस्सेदारी इसी की है। भू-अधिग्रहण में संशोधन से इन परियोजनाओं को नया जीवन मिल सकता है। परन्तु वर्तमान संशोधन से मुआवजे की बात कानून की नई अधिसूचना की तिथि से गणना की जायेगी, जबकि मौजूदा कानून में आकलन अध्ययन की तिथि से मुआवजा देने का प्रावधान है। मुआवजे के इस संशोधन से किसानों के हितों पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा और निजी क्षेत्र लाभान्वित होंगे।

आजादी के बाद बनी सरकारों द्वारा अभी तक वर्ष 1894 में भूमि अधिग्रहण कानून के प्रावधानों के तहद किसानों से उनकी जमीन लेकर निजी या सार्वजनिक क्षेत्र की एजेन्सियों को दी जाती रही थी। एक अनुमान के मुताबिक आजादी के बाद अब तक 2 करोड़ 20 लाख से अधिक लोग इस कानून के तहत विस्थापित किये जा चुके हैं। उनमें से अधिकांश का पुनर्वास नहीं हो सका। विकास परियोजनाओं के लिये भूमि की मांग के निरंतर बढ़ते दबाव के कारण 2013 में संशोधित भूमि अधिकार कानून पास किया गया था, ताकि इस तरह का अन्याय फिर से न दोहराया जा सके। 1 जनवरी, 2014 को संशोधित कानून प्रभावकारी हो गया और उसे सामाजिक न्याय की दिशा में एक अह्म कदम माना गया। ऐसा पहली बार हुआ था कि भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया से प्रभावित किसानों और खेतिहर मजदूरों के हितों पर ध्यान दिया गया हो। निजी कम्पनियों के लिये यह बाध्यता तय कर दी गयी कि 80 फीसद प्रभावितों की सहमति मिलने के बाद ही उन्हें भूमि मुहैया करायी जायेगी। पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशीप परियोजनाओं के लिये 70 फीसद प्रभावितों की सहमति अनिवार्य रखी गयी।

केन्द्र सरकार का यह संशोधन है कि 80 फीसद प्रावधान घटाकर 50 फीसद कर दिया जाये। ऐसा लगता है कि देश के निजी उद्योगपति द्वारा किसानों से छल करने में ऐसे 50 फीसद

1 24 फरवरी, 2015

सहमति के प्रावधनों से रक्षा नहीं की जा सकेगी। निजी उद्योगों के लिये भूमि अधिग्रहण करने में सरकार की भूमिका नहीं होनी चाहिये क्योंकि सरकारी अधिकारी बड़े कारोबारियों के साथ मिली भगत करके किसानों और जमीन मालिकों को धमकाते रहे हैं। स्थानीय लोगों से जमीन ले ली जा सकती है लेकिन लाभ में वे सहभागी नहीं बन सकेंगे। सरकार किसानों व खेतिहर मजदूरों के लिये समर्पित दिखती है फिर भी वह सामाजिक प्रभाव तथा आकलन के प्रावधान को समाप्त करने का प्रावधान कर रही है। इसके साथ ही अधिग्रहण के मामले में अनिवार्य सामाजिक प्रभाव आकलन के नियम को भी आसान बनाया जा रहा है। अधिकारियों का कहना है कि यह प्रावधान केवल बड़ी और पीपीपी परियोजनाओं पर ही लागू होगा, जबकि फिलहाल सभी तरह के अधिग्रहण में यह लागू होता है। इसके तहत बड़ी परियोजना वाले क्षेत्रों में पर्यावरण और अर्थ की होने वाली क्षति का आकलन किया जा सकता है। संशोधन से कानून में बदलाव संबंधी सबसे खतरनाक प्रस्ताव बहुफसलीय भूमि अधिग्रहण पर लगाये गये प्रतिबंध को समाप्त करना है। इस तरह खाद्य सुरक्षा पर सीधा असर पड़ेगा।

मौजूदा कानून के तहत पूर्ण भूमि श्रमिकों को भी मुआबजा देने का प्रावधान है, जो आजीविका के लिये कृषि भूमि पर निर्भर हैं। इस प्रावधान को भी समाप्त किया जा रहा है। उस प्रावधान को भी समाप्त किया जा रहा है जो अधिगृहित भूमि के दुरुपयोग पर रोक लगाता है।

❖❖❖

बटाईदारों के हितों की रक्षा[1]

किसान भारत के नागरिक हैं। उनके हितों की रक्षा करना राज्य सरकार का दायित्व है। बटाईदार भी तो भारत के नागरिक हैं। क्या उनके हितों की रक्षा करना राज्य सरकार का दायित्व नहीं है? इन बटाईदारों में 90 प्रतिशत से अधिक दलित एवं अत्यंत पिछड़ी जाति के लोग ही सम्मिलित हैं। इन बटाईदारों को बाढ़ एवं सुखाड़ में हुई क्षति के लिये सरकार द्वारा घोषित सहायता अनुदान इसलिए उपलब्ध नहीं हो रहा है, क्योंकि सरकारी रिकार्ड में इनका नाम पंजीकृत नहीं है, जबकि खेती में सारी पूंजी बटाईदारों की ही लगती है।

मिसाल के तौर पर 2008 में कोशी प्रलयंकारी बाढ़ के बाद फसल क्षति के लिये किसानों को सहायता दी गयी वह वास्तव में खेती में पूंजी लगाने वाले बटाईदारों को उपलब्ध नहीं हो पाई। उसी तरह इस वर्ष सुखाड़ के कारण किसानों को हुई क्षति पूर्ति के लिए जो सहायता सरकार की ओर से दी जा रही है वह वास्तव में बटाईदारों द्वारा लगायी गयी पूंजी की क्षति पूर्ति के लिये सहायता राशियाँ जो हैं बटाईदारों को प्राप्त नहीं हो रही है। बटाईदारों की ऐसी पीड़ा को देखते हुए बंधोपाध्याय आयोग ने बटाईदारों के नाम पंजीकृत करने की अनुशंसा की थी, जो पिछले वर्षों से सरकार के समक्ष विचाराधीन पड़ा हुआ है। सरकार द्वारा निर्णय नहीं लिये जाने के कारण ही मुख्य रूप से दलित एवं अत्यंत पिछड़े जाति के बटाईदारों को बड़ी क्षति हो रही है, जो किसी संवेदनशील सरकार के लिये उचित नहीं कहा जा सकता।

बिहार में भूमि समस्या में बटाईदारी एक प्रमुख समस्या है। इसी प्रकार से वासगीत पर्चाधारियों को वासस्थल से बेदखल करना, सरकारी भूमि, गैर मजरूआ आम, हदबंदी से फाजिल भूमि से बेदखल करना बदस्तूर जारी है। बंधोपाध्याय कमीशन के मुताबिक बटाईदारी व्यवस्था को लागू करने की जहाँ तक बात है उसे तो ठंडे बस्ते में डाला गया है। 10 लाख से अधिक गृहविहीन परिवारों को प्रति परिवार 3 डी० वासभूमि उपलब्ध करना, पर्चाधारियों को भूमि पर कब्जा दिलाना, सरकारी, गैर सरकारी भूमि पर बसे भूमिहीनों को वासगीत का पर्चा देने, हदबंदी से फाजिल, सरकारी, भूदान की जमीन का वितरण, बटाईदारों की बेदखली पर रोक, सीमांत, लघु एवं गरीब खेतिहरों का ऋण माफ करने, खेत मजदूरों के लिए व्यापक केन्द्रीय कानून बनाने, खेत मजदूरों के लिए कल्याण बोर्ड का गठन करने जैसे महत्वपूर्ण मांगों को पूरा करने की दिशा में कोई कारगर कार्रवाई नहीं की जा रही, जो विस्मयकारी लगता है।

बिहार राज्य में भूमिहीनता के विशाल स्तर के मद्देनजर बड़े पैमाने के नीतिगत हस्तक्षेपों की आवश्यकता है, ताकि राज्य के एक बहुसंख्यक हिस्से को आजीविका का एक स्थायी आधार उपलब्ध हो सके। बिहार के कम से कम एक तिहाई ग्रामीण परिवार पूरी तरह से भूमिहीन हैं और

---

115 जून, 2015

कुछ जिलों में यह अनुपात 70 प्रतिशत है। आबंटित भूखण्डों पर गरीबों को प्रभावी कब्जा दिलवा पाना राज्य प्रशासन की सबसे बड़ी चुनौती है। इसके लिए आवश्यक है कि सुयोग्य श्रेणियों के अतिरिक्त अन्य भूसम्पन्न वर्गों द्वारा जमीन के किसी भी प्रकार के अनधिकृत कब्जे के निषेध हेतु कड़े से कड़े दण्डात्मक प्रावधान किये जाएँ।

बिहार सरकार के राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग के एक दस्तावेज के मुताबिक विभिन्न न्यायालयों में भूहदबन्दी के कुल 1723 मामले लम्बित हैं जिनमें कुल 159820.17 एकड़ जमीन सन्निहित हैं। इन मामलों का यदि निष्पादन किया जाए तो बड़ी संख्या में भूमिहीनों के बीच जमीन बँटवारे के लिए भूमि उपलब्ध हो सकती है।

नीतिगत हस्तक्षेप का एक महत्वपूर्ण विषय राज्य में बड़ी संख्या में कार्यरत बटाईदारों के भूअधिकारों से जुड़ा हुआ है। चूंकि राज्य में हिस्सेदारी पर खेती के लगभग सभी मामले पूरी तरह मौखिक समझौतों पर आधारित होते हैं, आवश्यक है कि बड़े स्तर पर राज्य में बटाईदारी की व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जाये तथा गाँवों के स्तर पर जन सुनवाई जैसी प्रक्रियाओं के जरिये बटाईदारों की बड़ी संख्या के भूअधिकारों की सुरक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण पहल किया जाए। उनके भूअधिकारों की सुरक्षा के लिए, उनकी अवैधानिक तरीकों से होने वाली बेदखली पर रोक लगाने के लिए तथा उन्हें बटाई के एवज में उपयुक्त पारिश्रमिक दिलवाने के लिए आवश्यक है कि चरम प्राथमिकता के साथ उनकी पहचान की जाए, जिसके लिये विशेष अधिकारों से सम्पन्न कार्यदल बनाये जाने की जरूरत है।

बिहार विशेषाधिकृत वास भूमि अधिघृति 1947 की मंशा के अनुरूप व बिहार सरकार के निर्णय के मुताबिक आवासीय भूमि से विहीन परिवारों के लिए चरम प्राथमिकता के साथ एक समयबद्ध तरीके से पहचान कर 4 डीसमील आवास की भूमि उपलब्ध कराया जाना जरूरी है। इस अति महत्वपूर्ण कार्य के निष्पादन की जिम्मेदारी जिलाधिकारी के स्तर के किसी अधिकारी को दी जानी चाहिये तथा जवाबदेही तय करने की समयबद्ध प्रक्रियायें भी तय होनी चाहिये। अत्यधिक कर्जग्रस्तता की स्थिति की वजह से राज्य में काफी किसानों को अपनी जमीन गिरवी रखनी पड़ती है तथा अनेक मामलों में उन्हें जमीन पर से स्वामित्व खोना भी पड़ता है। अत: गरीब किसानों के सीमित भूस्वामित्व को यथावत बनाये रखने के लिये बिहार साहूकार (संव्यवहार विनियमन) अधिनियम जैसे कानूनों में संशोधनों के साथ उसे कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। साथ ही, सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े एवं दलित परिवारों की जमीन पर से दबंग लोगों के कब्जे की बेदखली के लिए भी प्रभावी निषेधात्मक व दण्डात्मक प्रावधानों की आवश्यकता है।

❖❖❖

भूमि सुधार[1]

राज्य के ग्रामीण क्षेत्र का विकास करने और किसानों की हालत सुधारने तथा कृषि कार्य को बढ़ावा देने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि पूरी ताकत के साथ भूमि सुधार कार्यक्रम को कार्यान्वित किया जाए। ऐसा देखा गया है कि कानून के खिलाफ होने पर भी भूमि की बहुत-सी बेनामी काश्तकारी चल रही है। फलतः वास्तविक भू-धारी कृषि का विकास करने के लिये सरक. ार से मिलने वाली नगदी ऋण और अन्य प्रोत्साहनों से वंचित रह जाते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि जिन क्षेत्रों में जो किसान वास्तविक रूप से कार्य कर रहे हैं, उन्हें कानूनी अधिकार देने के लिये अधिकार के अभिलेख सही ढंग से तैयार किये जाएं और अभिलेखों को अद्यतन बनाया जाए।

भूमि सीमा कानूनों के अंतर्गत सीमा से फाजिल जमीन का पता लगाकर उसका वितरण करना था, किन्तु अभी तक न्यायालयों से संबंधित मुकदमें लम्बित पड़े हैं। अतः इसके लिये समुचित व्यवस्था की जाये ताकि एक निर्धारित अवधि में ये मामले निबटा दिये जायें और भूमिहीनों में फालतू जमीन बांट दी जाए।

जहाँ अनुसूचित जनजातियों की जमीन गैर-अनुसूचित जाति के लोगों द्वारा हथिया ली गई हो, वहाँ ऐसी जमीन उन्हें वापस दिलाने की दृष्टि से कानूनी उपाय किए जाएं। इस बारे में अभी तक बनाये गये कानूनों का सख्ती से पालन किया जाए।

कृषि भूमि के लिए भूमि सुधार संबंधी कार्यक्रम सख्ती से लागू किये जाएं। सरकार राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में मजदूरी संबंधी वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखते हुए ठोस ढंग से सुनिश्चित करे कि मजदूरों, विशेषतः कृषि मजदूरों को, कानून अनुसार न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी न चुकायी जाये और वर्ष भर उनके लिये रोजगार के वैकल्पिक एवं अतिरिक्त रोजगार के अवसर प्रदान किये जायें ताकि उन्हें उचित मजदूरी का सौदा करने की क्षमता हो सके। न्यनूतम मजदूरी अधिनियम के सही रूप में कार्यान्वयन के लिये समुचित प्रशासन तंत्र स्थापित किये जाएं ताकि कृषि मजदूरों को जिनमें कि अधिकांश लोग अनुसूचित जाति के होते हैं, दरअसल मजदूरी मिल सके।

भूमि सुधार संबंधी नीति में इस तरह के उपाय करने की आवश्यकता है कि जमीन के मामले में समाज में समानता आएं, भूमि संबंधों में किसी तरह के शोषण की गुंजाइश नहीं रहे तथा युग-युग से बना यह लक्ष्य पूरा हो सके कि जोतने वाले को जमीन मिले। हदबंदी से फाजिल जमीन का वितरण हो, कृषि भूमि की चकबंदी की जाए तथा भूमि-अभिलेखों को अद्यतन बनाया जाए। बिहार में इस दिशा में संतोषजनक प्रगति नहीं हो पाई है। मुकदमों में फंसी जमीन को न्यायालय से छुड़ाकर गरीबों और कमजोर वर्गों में बांटने का महत्वपूर्ण कार्य आज भी शेष है। यह

1 07 फरवरी, 2017

बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि गरीबों को जमीन का अधिकार देकर उनकी खेती सुनिश्चित करने से एक ओर जहाँ उपज बढ़ेगी वहीं दूसरी ओर गरीबों की आमदनी में भी बढ़ोतरी होगी और उनकी सामाजिक हैसियत भी बदलेगी। भूमि सुधारों का क्रियान्वयन राजनीतिक इच्छाशक्ति एवं नौकरशाहों में प्रतिबद्धता की कमी, कानूनों में मौजूदा खामियों, भूस्वामियों की दाँव-पेंच की व्यापक क्षमता, गरीबों के बीच संगठन के अभाव और अदालतों की अत्यधिक दखलंदाजी की भेंट चढ़ गया।

❖❖❖

कृषि रोड मैप[1]

बिहार में किसानों की हालत में सुधार लाने के उद्देश्य से किसान योजना के अंतर्गत कृषि रोड मैप अलग से बनाये जाने के निर्णय का स्वागत करता हूँ। बिहार में किसानों को इनपुट के तौर पर सब्सिडी देना आवश्यक तो है ही परंतु सभी किसानों की सूची बनाना भी आवश्यक है। केवल वही नहीं हो जिनके पास भूमि हो, वरन वह सभी क्षेत्रों में काम करते हों। 2017-22 के कृषि मैप पर हुई चर्चा और सरकार की तरफ से हुई घोषणा का लाभ किसान तभी उठा सकेंगे, जब भूमि का काम पूरा हो, भूमि चकबंदी पूरी हो, भूमि काराकाट तैयार हो, राज्य भर में सर्वेक्षण का काम पूरा किया जाए। भूमि कार्य अग्रतर हो, उसके लिए आवश्यक है कि पूरी ताकत के साथ भूमि सुधार के कार्यों को कार्यान्वित किया जाए। किसानों की हालत सुधारने के लिए कृषि कार्यों को बल देने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रम आरंभ करने की जरूरत है।

कृषि के क्षेत्र में निराशाजनक प्रदर्शन ही राज्य की कम वृद्धि दर का मुख्य कारण है। कृषि ही राज्य के तीन चौथाई कार्यबल को रोजगार प्रदान करता है। अत: कृषि संबंधी आय को बढ़ाना ही गरीबी कम करने का मुख्य साधन है। राज्य के आर्थिक विकास में सबसे ज्यादा चिन्ताजनक कारण सरकारी एवं निजी स्रोतों से पर्याप्त निवेश का नहीं होना है। कृषि बिहार की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है जिसमें 80 प्रतिशत कामगार लगे रहते हैं और लगभग 40 प्रतिशत कुल घरेलू उत्पाद सृजित करते हैं। कृषि-कार्य में तथा उससे जुड़े ग्रामीण स्तर के गैर-कृषि कार्यकलापों में सुधार लाना जीवन-निर्वाह और गरीबी का स्तर ऊंचा-नीचा करने की दृष्टि से आवश्यक है।

उपज में भारी कमी के अनेक कारण हैं, जैसे कम लागत लगाना, जल-प्रबंधन का अभाव और बाढ़ के प्रभाव वाले जिले में हर वर्ष बाढ़ की विभीषिका आना, परिवहन व्यवस्था की कमी और विपणन की आधारभूत संरचना का अभाव। जमीन का टुकड़ों-टुकड़ों में बाँटा जाना भी उत्पादन को प्रभावित करता है। लोग गुजर-बसर चलाने की मानसिकता बनाये रखते हैं। गरीबी का औसत कम करने में कृषि की कम उत्पादकता भारी बाधा बनी हुई है और गरीबों को समुचित आहार मिल पाना भी संभव नहीं हो रहा है।

विकास कार्यक्रम चलाने के लिए बिहार को केन्द्र से जो साधनस्रोत उपलब्ध कराये जाते हैं उनका उपयोग पूर्ण रूप से और सुचारु ढंग से नहीं किया गया है जबकि इसे अन्य राज्यों की अपेक्षा सार्वजनिक धन विनिवेश और विकास कार्यक्रमों के वित्तपोषण के लिए इन्हीं अन्तरणों पर निर्भर करना पड़ता है। बिहार को अपनी महत्वपूर्ण विकास सम्बंधी आवश्यकताओं के लिए इस तरह की निधि का उपयोग करना उसके हित में है। केन्द्रीय निधि से संचालित कार्यक्रमों में बिहार द्वारा देश के मुकाबले सबसे कम धन राशि का उपयोग किया जाता है। अनुमान किया गया है कि 1990 से 2015 के बीच बिहार को केन्द्र से मिलने वाली योजना-सहायता के 1-5वें हिस्से से

1 18 जून, 2017

वंचित रहना पड़ा। बिहार में योजना मद पर कम खर्च का कारण यह है कि वह केन्द्रीय सहायता योजना और केन्द्र प्रायोजित साधनस्रोतों का उपयोग बहुत कम कर पाया है। 2001 से 2015 तक वर्धित सिंचाई लाभ कार्यक्रम के लिए निधि का आबंटन किया गया 250 करोड़ रूपए जिसमें से वस्तुत: खर्च किया गया केवल 18 करोड़। वर्षों से सामाजिक न्याय की सरकार गरीबी और पिछड़ों के नाम पर चलायी गयी है, परन्तु इन वर्षों में भूमि वितरण की विषमताओं को पाटने की दिशा में कोई प्रयास बिहार सरकार ने नहीं किया है। देश के किसी भी दूसरे राज्य की तुलना में बिहार में जमीन वितरण अत्यधिक विषम है। भारत की तुलना में बिहार में सीमांत भूमि की संख्या का अनुपात काफी बड़ा है।

कृषि क्षेत्र को अन्य आर्थिक-व्यापारिक प्रकल्पों में होने वाली तीव्र प्रगति, विश्व व्यापार संगठन के विनियमों तथा ग्रामीण इलाकों में कम होती प्रति व्यक्ति आय से चोट पहुँची है। कृषि क्षेत्र पर नये सिरे से विचार करना अब नितांत जरूरी हो गया है। इस क्षेत्र के पुनर्गठन के बारे में सरकार के पास क्रमश: एम॰एस॰ स्वामीनाथन और आर॰ए॰ माशेलकर की दो रिर्पोटे हैं। प्रो॰ एम॰एस॰ स्वामीनाथन की अध्यक्षता वाली राष्ट्रीय कृषक आयोग ने कृषि के सर्वांगीण विकास के लिए किसानों से संबंधित एक व्यापक राष्ट्रीय नीति की अनुशंसा की है, जिसमें उन्हें सलाह, तकनीक, कृषि ऋण तथा विपणन सेवाएँ देना शामिल है। आयोग ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि जोतों का औसत आकार छोटा हो गया है, जिससे लागत-जोखिम वापसी संरचना उल्टी हो गई है। इससे ग्रामीण भारत में भूमि सुधार के अधूरे कार्यक्रम को पूरा करने तथा व्यापक संपत्ति एवं कृषिगत सुधारों का आह्वान किया है गया। एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र कृषि का विविधीकरण है। कृषि को अनाज उत्पादन तक ही सीमित रखने की बजाय इसका बागवानी, पुष्प उत्पादन, मवेशी पालन मत्स्यपालन तथा मुर्गीपालन जैसे अनाजों से इतर व्यवसायों में विविधीकरण आवश्यक है।

❖❖❖

प्रधानमंत्री किसान सम्मान योजना[1]

प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना के तहत किसानों को दो हजार रुपये की पहली किस्त सीधे खातों में डिजिटली ट्रांसफर कर दी गयी। योजना के तहत 12 करोड़ से अधिक किसानों को छह हजार रुपये की वार्षिक आय होगी। इसका उद्देश्य खेती और घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने में वित्तीय मदद देना है। जिन किसानों को यह राशि दी जा रही है उन्हें प्राप्त धन लौटाना नहीं है। किसानों के हित में केन्द्र सरकार की यह महत्वाकांक्षी योजना है जिस पर 75 हजार करोड़ रुपये का आर्थिक बोझ केन्द्र सरकार पर पड़ेगा। प्रधानमंत्री ने 1.1 लाख किसानों के खाते में पहली किस्त का धन जारी करने के बाद आश्वस्त किया है कि शेष किसानों के खाते में भी कुछ ही सप्ताह के अन्दर धन पहुँच जायेगा। नि:संदेह यह योजना किसानों के लिए लाभकारी है, लेकिन इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि किसानों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जाए। इसके लिए राज्यों को अपने किसानों का डेटाबेस बनाकर केन्द्र सरकार को देना होगा।

देश में अगस्त, 2018 तक सिर्फ दो राज्य तथा तीन केन्द्र शासित प्रदेश ही ऐसे हैं जिन्होंने अपने यहाँ का भू-ब्योरा कम्प्यूटरीकृत कर लिया है। चार राज्य इस प्रक्रिया को पूरा करने की स्थिति में हैं तथा शेष राज्यों को अभी इस दिशा में काफी कसरत करनी है। क्योंकि कुछ राज्य सरकारें इस योजना के प्रति अपेक्षित गंभीरता का परिचय नहीं दे रही है। यह खेद और लज्जा की बात है कि राज्य सरकारें ऐसी ही संकीर्णता का परिचय गरीबों को एक बड़ी राहत देनी वाली आयुष्मान भारत योजना के प्रति भी दिखा रही हैं। इस योजना के तहत गरीबों का पांच लाख रुपये तक का उपचार मुफ्त हो रहा है। चंद महीनों में ही लाखों निर्धन इस योजना से लाभ उठा चुके हैं, लेकिन कुछ राज्य सरकारें इस योजना को अपनाने से बच रही हैं। समझना कठिन है कि कुछ राज्य सरकारें अपने लोगों को इस उपयोगी योजना से क्यों वंचित करना चाहती हैं? किसान सम्मान निधि योजना के तहत मिलने वाली राशि किसानों के लिए बहुत महत्व रखती है।

भारतीय किसान तमाम समस्याओं से ग्रस्त हैं और उन समस्याओं का प्राथमिकता के आधार पर निदान होना चाहिये। किसानों के हित में कई अहम सुझाव देने वाली स्वामीनाथन समिति की सिफारिशों पर अमल से बात बन सकती है। किसानों की आमदनी दोगुनी करने की दिशा में उठाये गये इन कदमों का असर जमीन पर भी नजर आये और किसान यह महसूस करें कि फसल की लागत से दोगुनी आमदनी का जो संकल्प जताया जा रहा है वह पूरा होगा। इसके साथ ही अपनी माँगें रखते समय किसानों को भी इस पर गंभीरता से विचार करना होगा कि उन उपायों पर अमल कैसे हो जो वास्तव में उनको आत्मनिर्भर बनाये?

कृषि और किसानों का कल्याण एक ऐसा विषय है जिस पर न तो अकेले केन्द्र सरकार

1 25 फरवरी, 2019

कुछ कर सकती है और न ही राज्य सरकारें। किसानों का हित तो तब होगा जब केन्द्र और राज्य मिलकर सक्रिय होंगे और राजनीतिक हानि-लाभ की चिन्ता किये बिना कदम उठाये जाएंगे। कृषि की बदहाली का एक बड़ा कारण उपयुक्त बुनियादी ढाँचे का निर्माण न हो पाना है। यह एक सच्चाई है कि जिस तरह अन्य क्षेत्रों के लिए बुनियादी ढाँचे का निर्माण किया गया है उस तरह का ढाँचा कृषि के लिए नहीं बन पाया। बात चाहे सिंचाई की प्रणाली को दुरुस्त करने की हो या फिर कृषि को आधुनिक तौर-तरीकों से लैस करने की, जब तक केन्द्र और राज्य सरकारें बड़े पैमाने पर निवेश के लिए आगे नहीं आयेंगी तब तक किसानों की दशा में बुनियादी बदलाव नहीं आने वाला।

❖❖❖

स्वामीनाथन आयोग की अनुशंसा[1]

कृषि वैज्ञानिक श्री एम॰एस॰ स्वामीनाथन की अध्यक्षता में गठित किसानों के हितों की रक्षा के लिए गठित आयोग ने 'पाँचवी अंतिम' रिपोर्ट कृषि मंत्रालय को दी है। इसके आधार पर केन्द्रीय कृषि मंत्रालय गंभीरता से चिन्तन और विचार करते हुए लाभकारी कृषि नीति की घोषणा करे जिससे यह स्पष्ट हो कि गैर कृषि कार्यों और विशेष आर्थिक क्षेत्र जैसे कार्यक्रमों के लिए उपजाऊ खेती की जमीन अर्जित नहीं की जायेगी और इसलिए कृषि योग्य भूमि को संरक्षित रखने के उद्देश्य से भूमि अधिग्रहण कानून में संशोधन किया जाये क्योंकि विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए इस बड़े पैमाने पर खेती की जमीन देने की योजना की जा रही है जिससे अनेक राज्यों में हजारों किसान परिवार विस्थापित हो रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ सकती हैं। अत: गैर कृषि कार्यों के लिए किसानों की जमीन नहीं ली जाये। विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए उसर, बंजर या फिर वैसी जमीन अधिग्रहित की जाये जहाँ केवल एक ही फसल होती है।

अभी तक विशेष आर्थिक क्षेत्रों के जितने प्रस्ताव मंजूर किये गये हैं उनमें से तीन तिहाई काफी उपजाऊ भूमि है। एक फसल होने से ही जमीन की उर्वरता कम नहीं आंकी जा सकती। फसलों की विविधता घटते जाने के पीछे कृषि की प्रणाली है जिसके लिए किसानों को जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। राष्ट्रीय किसान आयोग की इस चिन्ता पर गंभीरता से विचार करना चाहिये। कृषि के तरफ नई पीढ़ी की दिलचस्पी घटती जा रही है क्योंकि खेती घाटे का सौदा हो गयी है।

खेती को जब तक लाभदायक, आकर्षक बनाने के लिये उनकी उपजता वाले मूल्यों की गारंटी नहीं दी जायेगी और उन्हें न्यूनतम समर्थन मूल्य की प्राप्ति को सुनिश्चित नहीं किया जायेगा तब तक किसानों की अवस्था में सुधार और आत्महत्या करने की होड़ को समाप्त नहीं किया जा सकता। खेती की बेहतरी को किसी और पैमाने से नहीं बल्कि इसमें लगे लोगों की आर्थिक दशा के आधार पर आंका जाए। बाजार की ताकत पर किसानों को छोड़ देने से और उन्हें बाजार के जोखिम और भाव के उतार-चढ़ाव से बचाने के लिये किसानों के लिए एक विशेष आपदा कोष का गठन कर सहायता पहुँचायी जा सकती है। कृषि आयोग की इस अनुशंसा पर गंभीरता से विचार करते हुए यह सुनिश्चित करना चाहिये कि किसानों को एक सुनिश्चित आय कैसे प्राप्त हो?

खेती भी वैसा ही व्यवसाय है जैसा कि अन्य व्यवसाय। अगर अन्य व्यवसायों में न्यूनतम आय सुनिश्चित की जा सकती है तो किसानों को अनुशंसित आय क्यों नहीं दी जा सकती है? किसानों को अन्य व्यवसायों की तरह सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करें जिसके अंतर्गत बाढ़ सुखाड़ के समय किसानों का संरक्षण किया जा सके। कृषि कार्यों से बड़ी संख्या में नवयुवक बाहर निकल रहे हैं। इसलिए आयोग ने अपनी अनुशंसा में सरकार को हिदायत दी है कि नवयुवकों को खेती में लगाये रखने और नवयुवकों को आकर्षित करने के लिए कृषि संबंधी योजना को लागू करायें।

❖❖❖

1 19 जून, 2017

भारत की नदियों को जोड़ने के कार्यक्रम[1]

देश की विभिन्न नदियों को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने जोड़ने की घोषणा की थी। श्री वाजपेयी जी के सपनों को पूरा कर प्रभावित राज्यों को प्राकृतिक संकट से मुक्त रखने के लिए नदी जोड़ो अभियान को प्राथमिकता दी जाए।

भारत की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या का 18 प्रतिशत है, जबकि उसके पास उपयोग योग्य जल केवल 4 प्रतिशत है जिसका अधिकतर भाग बर्बाद हो जाता है। हमारे देश में वर्ष 1951 में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता 5177 घन मीटर थी, जो 2001 में 1820 घन मीटर और आज 1522 घन मीटर रह गई है। हमारे देश में भूमिगत जल स्तर में खतरनाक रूप से गिरावट आ रही है तथा अगस्त माह में देश के 91 प्रमुख जलाशयों में केवल 55 प्रतिशत जल है। वर्ष 2005 तक गंगा सहित 11 नदी बेसिनों में जल की कमी होगी, जिसके चलते 2050 तक 100 करोड़ लोगों का जीवन खतरे में होगा। क्योंकि जल की मांग 1180 मिलियन घन मीटर तक पहुँच जाएगी, जबकि ताजे जल के स्रोत सूखते जा रहे हैं। इस समस्या के समाधान के लिए दीर्घकालिक और सतत् समाधान की बजाय अल्पकालिक उपाय किये गये जिसके चलते समस्या और उलझी है।

हमारे देश में 6 केन्द्रीय मंत्रालय जल संसाधन, ग्रामीण विकास, कृषि, शहरी विकास खाद्य और पर्यावरण मंत्रालय जल का प्रबंधन करते हैं। इन मंत्रालयों के बीच प्रभावी समन्वय होना चाहिये। 21वीं सदी के भारत में जल की खोज और प्रबंधन सबसे जटिल चुनौती बन गई है। नदियों का अत्यधिक दोहन हो रहा है। उनमें प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। उनमें औद्यौगिक अवशिष्ट और कूड़ा डाला जा रहा है। नदियों को स्वच्छ रखने तथा ग्रामीण जल योजनाओं पर हजारों करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं किंतु, कुएँ सूख गए हैं और महिलाओं को दूर से पानी लाना पड़ता है। गंगा सहित 60 नदियों को जोड़ने की परियोजनाएँ पूरी हो जाती हैं तो किसानों की मानसून पर निर्भरता कम हो जायेगी और लाखों हेक्टेयर भूमि सिंचित भूमि वन जायेगी। इन परियोजनाओं के पूरा होने पर 30 नदी संपर्क होंगे 3,000 हजार भंडारण ढ़ाँचे होंगे, जिसके चलते नहरों के नेटवर्क के माध्यम से 174 बिलियन घन मीटर पानी अंतरित होगा और 34 हजार मेगावाट बिजली का उत्पादन होगा।

भारत की अंतर्राष्ट्रीय नदी सम्पर्क योजना के अंतर्गत सुजलाम–सुफलाम, सावरमती–सरस्वती, भादर–माही परियोजनाओं के साकारात्मक परिणाम आने लगे हैं। उससे सूखा प्रवण उत्तर और मध्य गुजरात को लाभ मिलने लगा है और राज्य में हरियाली बढ़ी है। नदियों को जोड़ने में 2050 तक 160 बिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई क्षमता भी उपलब्ध होगी।

सच यह है कि नदियों के आपस में जोड़ने की परियोजनाएं सभी समस्याओं का समाधान

1 8 सितम्बर, 2017

नहीं है क्योंकि उसका उत्पादन आसान नहीं किया जा सकता इसलिए उपलब्ध जल संसाधनों का प्रबंधन महत्वपूर्ण है। वस्तुत: डॉ॰ अम्बेडकर ने राज्यों के बीच नदी जल विवादों को सुलझाने का एक स्थायी समाधान दिया था। उन्होंने प्रस्ताव किया था कि भारत को जल बंटवारा सभ्यता अपनानी चाहिये और उसके लिए संवैधानिक तंत्र बनाया जाना चाहिये तथा केन्द्र को इस संबंध में स्वायत्त अधिकार देना चाहिये। समय आ गया है कि इस जल को एक राष्ट्रीय सम्पत्ति मानें और उसकी कमी की समस्या के समाधान के लिए दीर्घकालिक उपाय करें।

❖❖❖

ग्रामीण विकास के लिए भूमि नीति[1]

किसानों के लिये लायी गयी विभिन्न योजनाओं से किसानों में विश्वास जगा है और वे बेहतर उत्पादन की ओर बढ़ रहे हैं। ''किसान समृद्धि योजना'' और ''फसल बीमा योजना'' को किसान वरदान के तौर पर महसूस करने लगे हैं।

भूमि सुधार संबंधी नीति में इस तरह के उपाय करने की आवश्यकता है कि जमीन के मामले में समाज में समानता आये, भूमि संबंधों में किसी तरह के शोषण की गुंजाइश नहीं रहे तथा युग-युग से बना यह लक्ष्य पूरा हो सके। भूमि सुधार का उद्देश्य है कि मध्यवर्त्ती हितों का अस्तित्व समाप्त किया जाए, हदबंदी से फाजिल जमीन का फिर से वितरण हो, कृषि भूमि की चकबंदी की जाए तथा भूमि-अभिलेखों को अद्यतन बनाया जाए। मध्यवर्त्ती हितों को तो खत्म कर दिया गया है। चकबंदी के लिए देश के अधिकांश राज्यों ने कानून बना लिए हैं। इसके अनुसार राज्यों को अनिवार्य रूप से अथवा अपनी इच्छा के अनुरूप चकबंदी का कार्य पूरा करना है। भूमि अभिलेखों को अद्यतन बनाने तथा राजस्व प्रशासन को सुदृढ़ बनाने की प्रगति संतोषजनक नहीं है। 28 राज्यों एवं संघ शासित क्षेत्रों के 102 जिलों में भूमि अभिलेखों के कम्प्यूटरीकरण के उपाय किये जा रहे हैं और इसके लिए केन्द्र सरकार से शत-प्रतिशत सहायता भी दी जा रही है फिर भी राज्यों में इस दिशा में संतोषजनक प्रगति नहीं हो पाई है। मुकदमों में फंसी जमीन को न्यायालय से छुड़वाकर गरीबों और कमजोर वर्गो में बांटने का महत्वपूर्ण कार्य आज भी शेष है।

राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिशों पर अमल किया जाए तो किसानों की हालत में कुछ सुधार की उम्मीद की जा सकती है। डॉ॰ एम॰एस॰ स्वामीनाथन की अध्यक्षता वाले इस आयोग ने केन्द्र को सुझाव दिया है कि किसानों को बाजार, कर्ज, तकनीकी सुविधाएं और खेती संबंधी सलाह मुहैया कराने के लिए समग्र राष्ट्रीय कृषि नीति बनाने की जरूरत है। आयोग ने स्वीकार किया है कि खेती घाटे का धंधा बनती गई है। कृषि पर निर्भर लोगों में प्रति व्यक्ति खेती का रकबा कम होता गया है और इस क्षेत्र में रोजगार के अवसर भी लगातार घटते गये हैं। इससे किसानों के अलावा गाँवों में रहने वाले उन लोगों का जीवन भी प्रभावित हुआ है जो खेती से सीधे नहीं जुड़े हैं। सरकार को कृषि संकट से उबारने के लिए ठोस कदम उठाने की सख्त जरूरत है।

किसान कमीशन के अध्यक्ष विख्यात कृषि विज्ञानी स्वामीनाथन ने बताया है कि कृषि उत्थान वर्ष के रूप में मानकर सरकार द्वारा गंभीरता से कृषि सुधार का काम किया जाए। इसके लिए बजट में प्रावधान हो कि प्रत्येक पंचायत में केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, पब्लिक सेक्टर, प्राइवेट सेक्टर, ग्राम पंचायत, कृषि और मवेशी कॉलेज एवं विश्वविद्यालय, ग्रामीण कॉलेज, आईआईटी, किसान संगठन और मीडिया द्वारा मिलकर कृषि विज्ञान केन्द्र खोले जाएं जिनमें व्यापक रूप से चर्चा हो कि किसान कृषि की उत्पादकता को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कैसे लायें?

---

1 23 जुलाई, 2019

भूमि सुधार के मामले में आज भी गहराई से सोचने की जरूरत है। हदबंदी कानून के द्वारा कुछ काश्तकारों की जमीन अर्जित तो की गई किन्तु इस समय भी 2.4 प्रतिशत काश्तकार 22.3 प्रतिशत खेती वाली जमीन जोतते हैं और 74.5 प्रतिशत किसान के पास जोत की जमीन का केवल 26.3 प्रतिशत है। 10 हेक्टेयर से ऊपर की होल्डिंग 2.4 प्रतिशत है जो कुल रकबे का 22.87 प्रतिशत होता है। यह बताता है कि गरीब कृषकों की संख्या बढ़ रही है और हदबंदी कानून के होते हुए भी कुछ प्रभावशाली लोगों के हाथ में जमीन सिमटी हुई है।

❖❖❖

डॉ॰ जगन्नाथ मिश्र : एक संघर्षशील योद्धा

डॉ॰ जगन्नाथ मिश्र सामाजिक कार्यकर्ता और प्रशासक, अर्थशास्त्री एवं राजनीतिज्ञ, डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय में व्याख्याता के रूप में 1960 में जीवन आरंभ करके अन्ततः अर्थशास्त्र के विश्वविद्यालय आचार्य पद पर आसीन हुए। उन्होंने शिक्षा बलुआ बाजार माधयमिक विद्यालय (सुपौल बिहार) से, बी॰ए॰ (ऑनर्स), टी॰एन॰बी॰ कॉलेज (भागलपुर) से, एम॰ए॰ (अर्थशास्त्र) एल॰एस॰ कॉलेज (मुजफ्फरपुर) से करने के बाद पीएच॰डी (पब्लिक फिनान्स) की उपाधि बिहार विश्वविद्यालय से प्राप्त की। वे बिहार के हितों के लिए संघर्ष करने वाले नेता के रूप में ख्यातिप्राप्त हैं, बिनोवा भावे द्वारा चलाये गये भूदान आन्दोलन में उन्होंने 1953 से 60 ई॰ तक सक्रियता से भागीदारी की और अपनी अधिकांश जमीन भूमिहीनों में बांट दी। भूमिहीनों को बड़े पैमाने पर भूमि उपलब्ध कराने की दिशा में ये तत्पर रहे।

1953 ई॰ में बलुआ बाजार सुपौल जिला से माध्यमिक परीक्षा देने के बाद सिंहभूम जिला के चाण्डिल में सर्वसेवा संघ के वार्षिक आयोजन में आचार्य विनोबा भावे और लोकनायक जयप्रकाश नारायण की प्रेरणा से भूदान-आन्दोलन में सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में प्रवेश किया। भागलपुर के टी॰एन॰बी॰ कॉलेज में छात्र सर्वोदय परिषद् का गठन किया जिसके वार्षिक सम्मेलन को प्रतिवर्ष लोकनायक जयप्रकाश नारायण सम्बोधित करते रहे। वहीं उनके सर्वोदयी जीवन की शुरूआत हुई। भूदान आन्दोलन के क्रम में पूरे राज्य का दौरा पाँव-पैदल संत बिनोवा भावे के साथ किया। संत विनोबा भावे के भ्रमण के क्रम में उन्होंने अपने परिवार से हजार एकड़ जमीन भूदान आन्दोलन को दान में दिलायी। भूमि हदबंदी कानून के अन्तर्गत अपनी अधिशेष भूमि बिहार राज्य सरकार को सौंप दी।

परिवार का इतिहास स्वतंत्रता सेनानियों का इतिहास है। इनके पिता पण्डित रविनन्दन मिश्र समस्त कोशी क्षेत्र के वरद पुत्र थे। उस क्षेत्र के प्रतिष्ठित परिवार में जन्म एवं पालन-पोषण होने के बावजूद उन्हें सामन्ती प्रवृत्ति छू तक नहीं सकी थी। उनका व्यक्तित्व बिल्कुल सहज, सरल एवं निर्मल था। पं॰ रविनन्दन मिश्रजी के उच्चादर्शों और समाजसेवा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और स्वतंत्रता आंदोलन की राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत संस्कारों के फलस्वरूप ही उनके परिवार को राष्ट्रीयता की प्रेरणा मिली।

पं॰ रविनन्दन बाबू के भ्रातृ पुत्र पं॰ राजेन्द्र मिश्र, महात्मा गाँधी के आह्वान पर कलकत्ता विश्वविद्यालय की अपनी पढ़ाई को तिलांजलि देकर 1920 में राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े। यह वह समय था जब महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ा था। राजा बाबू सत्याग्रह आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभा रहे थे। पं॰ रविनन्दन बाबू की राष्ट्र भक्ति और राजा बाबू की राजनैतिक सक्रियता के प्रभाव में बलुआ तथा बसानपट्टी के मिश्र परिवार के अनेक लोग स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय हो गए। राजा बाबू और ललित बाबू को कई बार

जेल जाना पड़ा। पूरे परिवार को पुलिसिया दमनात्मक कार्रवाई का सहन करना पड़ा। देश में इनका ऐसा परिवार है जिसके 11 (ग्यारह) सदस्यों ने स्वतंत्रता आंदोलन के विभिन्न चरणों में जेल और अन्य यातनाएँ झेलीं।

उनका ही ऐसा परिवार है जिसे सौभाग्य प्राप्त है कि 1926 से लगातार अब तक परिवार का कोई न कोई सदस्य बिहार विधान मंडल और भारतीय संसद् के सदस्य बने रहे हैं। दो सदस्य केन्द्र सरकार में मंत्री, एक मुख्यमंत्री और तीन राज्य सरकार में मंत्री बने। इनके परिवार के पं॰ राजेन्द्र मिश्र और डॉ॰ मिश्र बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी के दो–दो बार अध्यक्ष बने।

वे 1966 से बिहार विश्वविद्यालय के सिंडिकेट और सिनेट में कई बार सदस्य निर्वाचित हुए। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के कोर्ट एवं जे॰एन॰यू॰ के कोर्ट में भी दो बार सदस्य चुने गये। 1968 में पहली बार मुजफ्फरपुर, चम्पारण एवं सारण स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से बिहार विधान परिषद के सदस्य निर्वाचित हुए। 1969 में राष्ट्रपति के ऐतिहासिक चुनाव में ललित बाबू के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में बिहार में महत्वपूर्ण कार्य किया था। 1972, 1977, 1980, 1985 और 1990 में मधुबनी जिला के झंझारपुर से बिहार विधान सभा के लिए सदस्य निर्वाचित हुए। 1972 में पहली बार श्री केदार पाण्डेय की सरकार में मंत्री बने। श्री अब्दुल गफूर के मंत्रिमंडल में भी मंत्री नियुक्त हुए। 8 अप्रैल, 1975 को बिहार के पहली बार मुख्यमंत्री नियुक्त हुए और 30 अप्रैल, 1977 तक उस पद पर बने रहे। 8 जून, 1980 को बिहार के दूसरी बार मुख्यमंत्री नियुक्त हुए जिस पद पर वे 13 अगस्त, 1983 तक बने रहे। तीसरी बार वे 6 दिसम्बर, 1989 को मुख्यमंत्री नियुक्त हुए जिस पर वे 10 मार्च, 1990 तक बने रहे।

मार्च, 1989 में वे बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी के अधयक्ष नियुक्त हुए दुबारा वे अप्रैल, 1992 में बिहार प्रदेश कांग्रेस के अधयक्ष निर्वाचित हुए। 1978 में श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ कांग्रेस विभाजन में उनकी सक्रिय भूमिका रही। 1978 में बिहार विधान सभा में पहली बार प्रतिपक्ष के नेता निर्वाचित हुए। दूसरी बार मार्च, 1990 में बिहार विधान सभा में प्रतिपक्ष के नेता निर्वाचित हुए। 1988 के अप्रैल में राज्यसभा के लिए सदस्य निर्वाचित हुए। दूसरी बार अप्रैल, 1994 में वे राज्यसभा के सदस्य निर्वाचित हुए।

10 जून, 1995 को वे श्री पी॰वी॰ नरसिंह राव मंत्रिमंडल में ग्रामीण विकास मंत्री नियुक्त हुए और जनवरी, 1996 में उन्हें कृषि मंत्री का प्रभार दिया गया जिस पद पर वे 16 मई, 1996 तक बने रहे।

ग्रामीण विकास मंत्री के रूप में उन्होंने त्रिसूत्री परिवार कल्याण योजना प्रारंभ की जिसके अंतर्गत बृद्धावस्था पेंशन गरीबी रेखा से नीचे के परिवार के प्रमुख की मृत्यु पर 10 हजार अनुकम्पा अनुदान और गर्भवती महिला को पौष्टिक आहार के लिए दो बच्चों के लिए 500–500 रू0 का अनुदान सम्मिलित था। उन्होंने बिहार के सभी 727 प्रखंडों को सुनिश्चित

रोजगार योजना में सम्मिलित किया तथा बिहार को प्रतिवर्ष 3 लाख इन्दिरा आवास की स्वीकृति दी। केन्द्रीय कृषि मंत्री के रूप में बिहार के जिलों में कृषि विज्ञान केन्द्रों एवं 16 कृषि सम्बंधी विषयों पर शोध प्रतिष्ठानों की स्वीकृत करायी।

उर्दू भाषा को द्वितीय राज भाषा का दर्जा देने के लिए लखनऊ की मीर-एकेडमी द्वारा ''मीर-ए-उर्दू'' की उपाधि दी गई। उर्दू तथा अल्पसंख्यक समुदाय के लिए की गई सेवाओं को देखते हुए देश के अनेक राज्यों में अवस्थित अनेक संस्थाओं ने भी अलग-अलग उपाधियां दी हैं। दिल्ली में हुए विश्व उर्दू सम्मेलन में उन्हें 'मोहसिने उर्दू' की उपाधि दी गई।

1982 ई0 में प्रधानमंत्री के विशेष प्रतिनिधि के रूप में मास्को दौरे पर गये। मार्च 1996 में इजिप्ट के कैरो में एफ्को-एशियन रूरल रिकन्स्ट्रकशन ऑरगेनाजेशन के 12वें महाधिवेशन में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया।

बिहार की कारागाओं में विचाराधीन कैदियों की स्थिति का अधयथन कराया और उसकी रिपोर्ट राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को आवश्यक कार्रवाई के लिए भेजी।

शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना :-

1. ललित नारायण मिश्र आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन संस्थान, पटना।
2. ललित नारायण मिश्र व्यापार प्रबंधान महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर की स्थापना।
3. ललित नारायण मिश्र तिरहुत महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।
4. बिहार आर्थिक अधयथन संस्थान, पटना।

ये ललित नारायण मिश्र मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा की स्थापना के प्रेरक तत्व रहे। डाँ. मिश्र ने छपरा में जयप्रकाश नारायण, आरा में वीर कुँवर सिंह, हजारीबाग में संत बिनोवा भावे, दुमका, सहरसा (अब मधोपुरा) एवं पटना में मौलाना मजहरूल हक अरबी परसियन विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए अधिनियम पारित कराया। लोक भाषा साहित्य के सम्बर्द्धन के उद्देश्य से मैथिली, उर्दू, भोजपूरी, संस्कत, मगही, बंगला अकादमियों के साथ दक्षिण भारतीय भाषा संस्थान की भी स्थापना की हैं। पटना में इन्दिरा गांधी आयुर्विज्ञान संस्थान एवं इन्दिरा गांधी हृदय रोग संस्थान की स्थापना के साथ-साथ राज्य में 150 रेफरल अस्तपताल की स्थापना करबायी।

निबंधन लेखन एवं शोध-मार्गदर्शनः-

ख्याति प्राप्त पत्रिकाओं में लगभग 40 शोध पत्र लिखे। उनके अधीन उनके निर्देशन में 20 व्यक्तियों ने अर्थशास्त्र विषय में पी.एचडी उपाधि प्राप्त की। अनेक शोधकर्ताओं का मार्ग निर्देशन किय। गरीबी रेखा से नीचे बसर करनेवालों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार से संबंधित कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया। बिहार आर्थिक अधयथन संस्थान द्वारा चलाये गये शोध एवं विकास कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी की।

उन्होंने अपने मुख्यमंत्रित्व काल में एवं केन्द्रीय मंत्री के रूप में बिहार राज्य और देश के लिए मानवाधिकार सुरक्षित और सुनिश्चित करने के उद्देश्य से समाज के सभी वर्गो के लिए अनेक कार्यक्रम कार्यान्वित कर दलितों, पिछड़ों, महिला, बच्चों, सभी श्रेणी के किसानों के कल्याणार्थ कार्यक्रम लागू किया, स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए अनेक कार्य शिक्षक एवं शिक्षकेत्तर कर्मचारियों, सरकारी कर्मचारियों, अधिवक्ता कल्याण कोष, रिक्सा चालक, रिक्शा स्वामित्व एवं अन्य कल्याण कार्य, कमजोर वर्ग के लिए विधिक सहायता अधिनियम, 45000 चौकीदार-दफादार को सरकारी कर्मचारी का दर्जा, खेतीहर मजदूरों को निम्नतम मजदूरी सुनिश्चित करने के लिए प्रथम बार प्रशासनिक तंत्र का गठन, बिहार में प्रथम औद्योगिक नीति के अंतर्गगत अनेक उद्योगों की स्थापना, पहली बार अत्यंत पिछड़ी जाति की 1976 में पहचान एवं उन्हें विशेष सुविधा देना, अत्यंत पिछड़ी जाति के छात्रों को दलित छात्रों की तरह सुविधा, जिला बोर्ड एवं जिला परिषद में अत्यंत पिछड़े एवं दलित का मनोयन 14 नवम्बर, 1980 को सम्पूर्ण राज्य में पंचायती राज की शुरूआत, 1976 में विश्वविद्यालय एवं अन्य शिक्षण संस्थानों में देश में पहली बार आदिवासी एवं दलितों के लिए आरक्षण सुनिश्चित किया जाना। औद्यौगिक मजदूरों के कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रम चलाया।

पहली बार श्रम नीति निर्धारित की 23 लाख बूढ़ों एवं विधवाओं के लिए सामाजिक सुरक्षा पेंशन, 3 लाख पढ़े लिखे युवकों को बेरोजगारी भत्ता, 80 हजार रिक्शा चालक को रिक्शा का स्वामित्व सुनिश्चित हुआ।

2.50 लाख एकड़ जमीन अर्जित की गयी और भूमि सुधार के अधिनियम में अनेक संशोधन किये गये, भूमि सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत भूमिहीनों को जमीन देने, अल्पसंख्यक समुदाय के लिए सुरक्षा एवं कल्याण की अनेक योजनाओं के साथ-साथ औद्यौगिक एवं आर्थिक विकास की संभावनाओं को गतिशील बनाने के उद्देश्य से अनेक कार्यक्रम कार्यान्वित कराकर बिहार राज्य में सामाजिक न्याय एवं गरीबी उन्मूलन की सम्भावनाएं बनाईं जिससे भारत के संविधान के अन्तर्गत प्राप्त 'मानवाधिकार' और मूल अधिकार आम लोगों को उपलब्ध कराने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य हुए। जैसे सहकारिता आन्दोलन से दलितों एवं आदिवासियों को लाभान्वित करने के उद्देश्य से इन्हें सहकारिता का सदस्य बनाने के लिए 10 रूपया हिस्सा पूंजी सरकार की ओर से दी जाने लगी और सभी स्तरों की प्रबंध समितियों में इन समूहों के लिए स्थान आरक्षित किये गये।

सभी श्रेणी के किसानों को निजी नलकूप लगाने के लिए उदारतापूर्वक अनुदान दिया। इसके फलस्वरूप 1982-83 में 2.50 लाख निजी नलकूप बैठाए गए। 4000 से अधिक राजकीय नलकूप लगाये गये। सभी श्रेणी के किसानों का बकाया सिंचाई-शुल्क माफ कर दिया गया और सिंचाई शुल्क स्थायी रूप से माफ कर दिया गया। 10 एकड़ तक जोतदार किसानों के लिए बिजली-शुल्क माफ कर दिया गया था। कृषि मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी का कानून को सख्ती से लागू करने की जिला एवं प्रखंड के स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्था की गई। बिहार विशेषाधिकृत वास भूमि अधिकृति नीति अधिनियम के अनुरूप राज्य

में 11 लाख परिवारों को पर्चा उपलब्ध कराया गया। बिहार विशेषाधिकृत वास भूमि अधिकृत अधिनियमों के अंतर्गत आवासी भूमि से विहीन परिवारों के लिए प्राथमिकता के आधार पर एक समयबद्ध तरीके से 3 डिसमिल आवास की भूमि उपलब्ध कराने का प्रावधान हुआ।

54000 प्राथमिक विद्यालयों एवं 3000 माध्यमिक विद्यालयों का राजकीयकरण, 235 महाविद्यालयों का अंगीभूतीकरण, 429 संस्कृत विद्यालयों का राजकीयकरण एवं 39 संस्कृत महाविद्यालय का अंगीभूतीकरण, संस्कृत, मदरसा को सरकारी शिक्षकों की भांति वेतन एवं सुविधा, 1600 संस्कृत विद्यालयों एवं 1100 मदरसा को वित्त सहित मान्यता दी गई। 3776 संस्कृत विद्यालयों की स्वीकृति दी गई। 2995 मदरसा को मान्यता दी गई। मदरसा एवं संस्कृत बोर्ड की स्थापना की गई। अल्पसंख्यक विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के शिक्षकों को राजकीय विद्यालयों के शिक्षकों के समान वेतन, भत्ता स्वीकृत किया गया। उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा के साथ 1000 उर्दू अनुवादक की नियुक्ति उर्दू टाइप राइटर की व्यवस्था प्रत्येक वर्ष 4000 उर्दू शिक्षक की नियुक्ति, उर्दू विकास निदेशालय, उर्दू एकेडेमी को एक करोड़ का अनुदान 10 करोड़ की लागत से अल्पसंख्यक वित्त निगम की स्थापना। विश्वविद्यालय महाविद्यालयों में रीडर एवं प्रोफेसर की कालबद्ध, प्रोन्नति का प्रावधान कर 8 हजार से अधिक शिक्षकों की कालबद्ध प्रोन्नति सुनिश्चित की गयी। पहली बार आरक्षण सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण आयुक्त की नियुक्ति के साथ प्रत्येक विभाग में आरक्षण समिति का गठन।

डॉ॰ मिश्र के कार्यकाल में ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय का यू॰जी॰सी॰ की स्वीकृति के लिए अपेक्षित 2 करोड़ रूपए उपलब्ध कराए गए। उनके शासनकाल में ही भवन एवं जमीन के अभाव की पूर्ति 1976 ई॰ में दरभंगा राज की भूमि एवं भवन का अधिग्रहण विशेष व्यवस्था के आधार पर किया गया जिसके फलस्वरूप दरभंगा राज के अखबारों का कोप भाजन बनना पड़ा। संस्कृत विश्वविद्यालय के अध्यापकों के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वेतनमान सहित प्रोफेसर एवं रीडर का प्रावधान किया गया। मदरसा की डिग्री को अन्य विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की डिग्री के समकक्ष बनाकर सरकारी सेवा के लिए उसे मान्य बनाया गया। कमजोर एवं गरीब लोगों, विधवा एवं बच्चों को मुफ्त कानूनी सहायता के लिए कानून बना। अधिवक्ताओं के लिए कल्याण कोष की स्थापना और अधिवक्ता पुस्तकालयों के लिए विशेष अनुदान। पत्रकार कल्याण कोष की स्थापना। विश्वविद्यालय शिक्षकों के लिए यू॰जी॰सी॰ वेतनमान एवं सरकारी कर्मचारी के लिए केन्द्रीय वेतन लागू करने संबंधी नीति निर्धारण। प्रत्येक जिलों में एक उद्योग की स्थापना की स्वीकृति और 37 औद्योगिक प्रांगण की स्वीकृति के साथ-साथ औद्योगिक विकास प्राधिकरण और क्षेत्रीय विकास प्राधिकार की स्थापना के साथ प्रेरणादायक औद्योगिक नीति। अनेक निगम, बोर्ड और अनेक सार्वजनिक कंपनियों का गठन महत्वपूर्ण निर्णय के रूप में देखा जा सकता है।

सामाजिक और शैक्षणिक रुप से पिछड़े वर्ग की स्थिति एवं सरकारी सेवाओं में संख्या की जाँच के लिए मुंगेरी लाल की अधयक्षता में 1971 में एक आयोग का गठन हुआ था जिसका प्रतिवेदन डॉ॰ मिश्र के मुख्यमंत्रित्वकाल में दिनांक 26 दिसम्बर, 1976 को प्रस्तुत

हुआ उसे कार्यान्वित करने हेतु स्वीकृति प्रदान करते हुए मंत्रिपरिषद् में संलेख उपस्थापित करने का निर्णय हुआ। 18 जनवरी, 1977 को लोकसभा चुनाव की घोषणा के साथ आचार संहिता लागू होने के कारण आरक्षण लागू नहीं किया जा सका। नेता प्रतिपक्ष के रुप में डॉ॰ मिश्र ने कर्पूरी ठाकुर की आरक्षण नीति का खुलकर समर्थन किया। राज्य में चल रहे आरक्षण विरोधी आंदोलन को समाप्त करने एवं इस पर सर्वानुमति बनाने हेतु सर्वदलीय बैठक में डॉ॰ मिश्र के (आरक्षण का) समर्थन से सर्वदलीय बैठक में आम सहमति बनी। बैठक में दिये गये सुझावों के परिप्रेक्ष्य में ही श्री ठाकुर ने आरक्षण नीति बनाई एवं इसकी अधिसूचना 10 नवम्बर, 1978 को जारी की। आरक्षण लागू करने के कारण ही श्री ठाकुर को जनता पार्टी ने बहुमत से मुख्यमंत्री से हटाया। उस समय डॉ॰ मिश्र ने विपक्ष के नेता के रूप में श्री ठाकुर का समर्थन किया था। 1980 में डॉ॰ मिश्र के मुख्यमंत्री बनने के बाद आरक्षण नीति में संशोधन हुआ जिसमें प्रावधान हुआ कि जो पिछड़े लड़के योग्यता के अधिमान में आयेंगे उनकी गणना आरक्षित कोटे में नहीं होगी। मेधा से आये छात्रों को आरक्षित कोटा से अलग करने से पिछड़ा की संख्या सेवा में बढ़ गई। आरक्षण को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से डॉ॰ मिश्र की सरकार ने पहली बार आरक्षण आयुक्त का पद-सृजन करते हुए यह प्रावधान किया कि सभी विभाग में आरक्षण लागू हो।

डॉ॰ मिश्र के मुख्यमंत्रित्वकाल में ही अत्यन्त पिछड़ी जातियों में मदन प्रसाद सिंह (मल्लाह) योगेश प्रसाद योगेश (नोनिया) एवं जगदीश मंडल (केवट) को मंत्रिपरिषद में लिया गया। श्री महेन्द्र सहनी, श्री जगमल चौधारी, युगेश्वर प्रसाद निषाद एवं रामकरण पाल ऐसे अत्यंत पिछड़ी जाति के व्यक्तियों को विभिन्न बोर्ड-कॉरपोरेशन का अधयक्ष-उपाधयक्ष मनोनीत किया गया। प्रेम नारायण गढवाल, योगेन्द्र प्रसाद चौरसिया एवं अन्य कई व्यक्तियों पिछड़े एवं अत्यंत पिछड़ी जाति को विधान परिषद् में सदस्य मनोनीत किया गया। डॉ॰ मिश्र के शासन काल में पिछड़े वर्गों से डॉ॰ के॰ के॰ मंडल, डॉ॰ महावीर प्रसाद यादव, डॉ॰ ए॰एस॰ यादव, डॉ॰ एच॰एन॰ यादव, डॉ॰ परमेश्वर दयाल, डॉ॰ डी॰एस॰ नाग, (दलित) डॉ॰ ए॰के॰ धान, डॉ॰ इन्दुधन आदिवासी जैसे अन्य पिछड़ा वर्ग, दलित एवं आदिवासी समूह से कुलपति नियुक्त किये गये। उसी तरह डॉ॰ एम॰क्यू॰ तोहिद, डॉ॰ फहीम अहमद एवं डॉ॰ एम॰ए॰ गिलानी जैसे व्यक्ति अल्पसंख्यक समुह से कुलपति नियुक्त किये गये। डॉ॰ कुमार विमल एवं डॉ॰ एच॰एन॰ यादव, श्री हसन जैसे अन्य पिछड़े वर्ग और मुसलमान को लोक सेवा आयोग के अधयक्ष बनाया गया। अल्पसंख्यक, दलित एवं आदिवासी वर्गों से लोक सेवा आयोग में प्रतिनिधि के लिए बिहार लोक सेवा आयोग के सदस्य की संख्या बढ़ायी गई। विश्वविद्यालय सेवा आयोग, कॉलेज सेवा आयोग, विद्यालय सेवा आयोग जैसी संस्था में इन वर्गों को निरंतर प्रतिनिधित्व दिया गया।

डॉ॰ मिश्र की सरकार के द्वारा 1980-81 के बजट में प्रावधान हुआ कि पिछड़ी एवं अत्यंत पिछड़ी जाति के छात्रों, दलित एवं आदिवासी छात्रों को मिल रही, छात्रवृत्ति की संख्या 2.5 लाख से बढ़कर 5 लाख और धान 4.5 करोड़ से 13.5 करोड़ की गयी। महादलित में

मुशहर जाति के बच्चों की प्राथमिक विद्यालयों में उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक छात्र को 30 रुपये प्रतिमाह भत्ते का भुगतान के लिए 9 करोड़ राशि का प्रावधान किया गया। डॉ॰ मिश्र की सरकार ने 1981-82 के बजट में यह प्रावधान किया था कि अत्यंत पिछड़ी जाति के छात्रों को वही सुविधा मिलेगी जो दलित छात्रों को उपलब्ध है। 1976 में बिहार के आदिवासी बाहुल्य 111 प्रखंडों में जनजाति उप योजना चालू की गयी। 1980-81 में बिहार में दलितों (अनुसूचित जाति) के लिए अंगीभूत योजना प्रारंभ हुई जिसके अंतर्गत कुल योजना उद्व्यय का 24 प्रतिशत जनजाति उपयोजना एवं अंगीभूत योजना के लिए कर्णांकित करने का प्रावधान हुआ। दलित एवं आदिवासी छात्रें के लिए प्रखण्ड एवं जिला स्तर पर आवासीय विद्यालय के साथ-साथ प्रत्येक प्रखण्ड में कम से कम 4 माधयमिक विद्यालय और उसमें लड़कियों के लिए एक माधयमिक विद्यालय की स्थापना की गई। उसी क्रम में 1982 में 150 (एक सौ पचास) प्रोजेक्ट हाई स्कूल भी स्थापित गये, जिनमें अनेक बालिका उच्च विद्यालय भी सम्मिलित किये गये थे। बालिकाओं की शिक्षा पर उन्होंने विशेष धयान दिया था।

डॉ॰ मिश्र ने 1994 में ही कहा था कि उच्चतम न्यायालय के निर्देश के आलोक में यह आवश्यक है कि आरक्षण का लाभ प्राप्त कराने के लिए पिछड़ों को राष्ट्रीय स्तर पर दो मुख्य वर्गों में अलग-अलग विभाजित किया जाए और उनका स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया जाए कि लगभग समान स्तर का लाभ उस प्रकार के संबंधित वर्ग की सभी जातियों को समान रूप से प्राप्त हो सके और संबंधित वर्गों की प्रभावशाली जातियों से इन जातियों के लोग प्रतिस्पर्धा से बच सकें और उन्हें आरक्षण का लाभ प्राप्त करना संभव हो। आरक्षित 27 प्रतिशत का लाभ यह वर्गीकरण कर उनकी आबादी के अनुपात में दिया जाए।

बिहार के औद्योगीकरण के लिए केन्द्र सरकार से विशेष सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से उनकी सरकार ने बिहार से कोयला एवं अन्य खनिज से प्राप्त हो रही रॉयल्टी को मूल्य आधारित करने की मांग की। बिहार की खनिज संपदा में भारत सरकार से मूल्य की तुलना में बहुत कम रॉयल्टी प्राप्त होती थी। राष्ट्रीय विकास परिषद् में उन्होंने सवाल उठाया था कि पंचवर्षीय योजना में निवेश एवं योजना सहायता भी बहुत कम है। बिहार की प्रति व्यक्ति आय में राष्ट्रीय आय से 61 प्रतिशत की कमी है। इसे पाटने के लिए आंतरिक संसाधान प्राप्त करने के उद्देश्य से खनिज की रॉयल्टी का मूल्य निर्धारण किया जाना उचित है। भारत सरकार सहमत नहीं हुई। खनिज स्वामित्व अधिनियम के तहत सेस लगाने का अधिकार राज्य सरकार का है। अब तक रॉयल्टी का कुछ प्रतिशत ही सेस लगाया जा रहा था जिससे बिहार को 25-30 करोड़ की ही आय हुआ करती थी। बिहार की आर्थिक संपन्नता के लिए 1981 में खनिज संपदा के मूल्य के आधार पर ही सेस लगाने का अधिनियम पारित किया गया जिसके कारण बिहार की आमदनी बढ़कर 30 करोड़ से 500-600 करोड़ होने लगी। आज झारखंड सरकार को इस फार्मूले से हजार करोड़ की आमदनी हो रही है। किन्तु अपने प्रदेश के हित में लिए गए फैसले के कारण केन्द्र सरकार को उनके प्रति नाराजगी उत्पन्न हो गयी। बिहार के हित में उन्होंने दूसरा निर्णय यह लिया कि बिहार के आनुशंगिक

उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की खरीदारी बिहार के बड़े उद्योगों द्वारा की जाये, जिसका लाभ छोटे उद्योगों को मिल सकेगा। उन्होंने एक अध्यादेश जारी कर यह प्रावधान करने का निश्चय किया कि अगर बिहार के आनुशंगिक उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की खरीद बड़े उद्योग नहीं करेंगे तो राज्य सरकार इन उद्योगों को सुरक्षा प्रदान नहीं करेगी। प्रान्त-हित में तीसरा महत्वपूर्ण प्रस्ताव उन्होंने भारत सरकार को यह दिया था कि बिहार के औद्योगिक उत्पाद जो अन्य राज्यों को भेजे जाते हैं, उन उत्पादों से बिहार को 'ट्रांसफर ऑफ स्टाक' के नाम पर बिक्री कर से वंचित होना पड़ता है। केन्द्र सरकार से यह मांग की गई कि राज्य सरकार को कनसाइनमेंट टैक्स लगाने का अधिकार दिया जाए। चौथी बात थी कि माल भाड़ा समानीकरण के कारण बिहार बड़े उद्योगों से वंचित रहा है, क्योंकि बिहार की खनिज संपदा का मूल्य जो बिहार में रहा वही बिहार से बाहर मुम्बई, चेन्नई इत्यादि में भी रहता था। सामान्यत: बड़े उद्योग घराने बिहार में उद्योग स्थापित करने के बजाय बिहार से बाहर उद्योग स्थापित करते रहे। इन चारों मुद्दों को उठाये जाने के कारण केन्द्र सरकार की नाराजगी उनके प्रति बढ़ती गई और कांग्रेस के भीतर इनके विरुद्ध के गुट सूबे के हित की अनदेखी कर कंग्रेस आलाकमान के समक्ष यह मुद्दा उठाते रहे कि वे केन्द्र के विरुद्ध हैं और टकराहट उत्पन्न कर रहे हैं। केन्द्रीय नेतृत्व की नाराजगी का यह प्रमुख मुद्दा बनता गया।

वर्ष 2008 में कोशी के प्रलयकारी बाढ़ के बाद ये सक्रिय राजनीति से अलग हो गये। लेकिन वर्ष 2019 में अपने अंत समय तक बिहार और देश के हित के लिए अपने बेबाक अंदाज में संघर्ष करते रहे।

❖❖❖

चिंतन के आयाम

डॉ. जगन्नाथ मिश्र द्वारा लिखित एवं सम्पादित प्रकाशित पुस्तके :

(1) सार्वजनिक वित्त

(2) मनी, बैंकिंग एण्ड इंटरनेशनल ट्रेड

(3) लैंड रिफार्मस इन बिहार

(4) एग्रीकल्चर मार्केटिंग इन बिहार

(5) इंडस्ट्रीयल फाइनेंसिंग इन बिहार

(6) आर्थिक सिद्धांत एवं व्यावसायिक संगठन

(7) ट्रेंड्स इन इंडियन फेडरल फिनान्स

(8) कॉपरेटिव बैंकिंग इन बिहार

(9) दिशा संकेत

(10) इंडियाज इकोनामिक डेवलपमेंट

(11) फिनांसिंग ऑफ स्टेट प्लान्स

(12) भारतीय आर्थिक विकास की नयी प्रवृत्तियाँ

(13) प्लानिंग एण्ड रिजनल डेवलपमेंट इन इन्डिया

(14) न्यू डायमेंसन्स ऑफ फेडरल फिनान्स

(15) बिहार की पीड़ा से जुड़िये

(16) माई विजन फॉर इंडियाज रूरल डेवलपमेंट

(17) भारतीय संघ की वित्तीय प्रवृत्तियाँ

(18) चिन्तन के आयाम

(19) बिहार : विकास और संघर्ष

(20) समग्र विकास : एक सोच

(21) ए क्रिटिक ऑफ द इकॉनामिक्स ऑफ कीइन्स एण्ड पोस्ट कीइन्स थ्यौरी

(22) बिहार बढ़कर रहेगा

(23) लेबर इकॉनामिक्स

❖❖❖

डॉ. मिश्र के साथ कार्य करने वाले अथवा उनके निकट के व्यक्ति विस्मित रहते थे। इनके चिन्तन से ऐसे-ऐसे वक्तव्य निकलते रहते थे जो अन्य चिंतकों को भी सृजनशील होने की प्रेरणा देते थे। इनके विचार समाज, देश और विश्व स्तर पर रचनात्मक कदम उठाये जाने हेतु होते थे। डॉ. मिश्र के इस विशाल बौद्धिक फलक की उपयोगिता सिर्फ अल्पकालिक नहीं है, निश्चित रूप से लोकतंत्र, समाज और भारतवर्ष के लिये दीर्घकालिक रूप में फलदायी और सृजनात्मक है। इसीलिए पाठक इन संवादों का राज्य और भारत के उत्तरोत्तर विकास के लिए उपयोग कर सकते हैं। मेरा विश्वास है कि डॉ. मिश्र के इस विराट चिंतक व्यक्तित्व के निर्भीक ज्ञान भरे संदेशों से देश का लोकतंत्र दृढ़तर होगा। जिज्ञासु नये विचार-तत्व प्राप्त कर सकते हैं। इन विचारों पर मनन, डॉ. मिश्र द्वारा प्रदत्त ज्ञान प्रकाश के आयाम को विस्तृत भी करते रहेंगे।

इन बेबाक बातों में कई संदेश हैं। इन संदेशों की मूल भावना यह थी कि देश और समाज की प्रगति हो। उनके विचारों की विशिष्टता उनका बेबाक होना था। तत्कालीन घटनाओं पर वो एक ऐसे पक्ष को दर्शाते थे जिन्हें अनदेखा करना मुश्किल था। इनमें कहीं भी किसी के प्रति न तो कभी अनादर रहा और न ही विद्वेष। जिस अंतराल, 2002-2019 में वो दिए गये थे वो व्यक्तिगत रूप से डॉं. मिश्र के लिए बहुत ही संघर्षपूर्ण समय था। फिर भी वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने संवाद जारी रखा। आज वो नहीं है लेकिन उनके शब्द हमारी जिज्ञासा की राह को प्रकाशित करते रहेंगे।

डॉं. शिप्रा मिश्र

डॉ. शिप्रा मिश्र एक प्रबंधन सलाहकार हैं। कई गैर सरकारी सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से जुड़ी हुई हैं। ये एक स्वतंत्र पत्रकार भी हैं।

₹450/-

नवजागरण प्रकाशन
109, प्रथम तल, मनीष मार्केट, सेक्टर-11, द्वारका, न.दि.-75
E-mail : navjagranprakashan@gmail.com , Mob: 9718013757

ISBN 978-93-886406-1-9
9 789388 640619